आत्मवल्लभ-ग्रंथ-सीरीज-ग्रंथ ९ वाँ

आदर्श जीवन

या

आचार्य महाराज १००८ श्रीमद्

विजयवल्लभ-सूरि-चरित्र ।

लेखक—

श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा

प्रकाशक—

ग्रंथभंडार, माटूंगा, बंबई

बंबईमें ग्रंथ मिलनेका पता—

ग्रंथभंडार, हीराबाग, गिरगांव .

वीर संवत् २४५२. आत्म संवत् ३०.

मूल्य साढ़े तीन रुपये.

प्रकाशक—
कृष्णलाल वर्मा.
प्रोप्राइटर ग्रंथभंडार, लेडी हार्डिंजरोड,
माटूँगा, बंबई.

रा. चिंतामण सखाराम देवळेद्वारा मुंबईवैभव प्रेस, सँडहर्स्ट रोड, सर्व्हंट्स् ऑफ इंडिया सोसायटीज् बिल्डिंग्ज्, गिरगांव, मुंबईमें पूर्वार्द्ध पेज ४९ से ५२० तक और उत्तरार्द्ध पेज ११३ से पेज २४० तक मुद्रित और
ठक्कर अंबालाल विठ्ठलदासद्वारा लुहाणामित्र प्रेस, शियापुर बडोदेमें पूर्वार्द्ध पेज १ से ४८ तक और उत्तरार्द्ध पेज १ से ११२ तक मुद्रित.

श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा की लिखित पुस्तकें।

स्वलिखित।	अनुवादित।
१ आदर्श जीवन	१ सूरीश्वर और सम्राट् अकबर
२ पुनरुत्थान	२ जैनरामायण
३ चंपा (अप्राप्य)	३ अपूर्व आत्मत्याग
४ दलजीतसिंह ”	४ गृहिणी गौरव
५ स्त्रीरत्न ”	५ सर्वोदय
६ बालविवाहका हृदयद्रावक दृश्य (अप्राप्य)	६ स्वदेशी धर्म
७ धर्म प्रचार (अप्राप्य)	७ गाँधीजीका बयान
८ सुर सुंदरी	८ तीन रत्न
९ वीर हनुमान	९ पंचरत्न
१० सच्चा बलिदान	१० राजपथका पथिक
११ तीर्थंकरचरित्रभूमिका	११ दरिद्रतासे बचनेका उपाय
१२ आदिनाथ चरित्र	१२ सामायिक रहस्य (अप्रकाशित)
१३ अजितनाथचरित्र	१३ धर्मदेशना (”)
१४ रमाकान्त (अप्रकाशित)	१४ अकबरके दर्बारमें हीरविजय सूरि
१५ बूढ़ेबाबाका ब्याह (अप्राप्य)	१५ पैंतीस बोल
१६ मनोरमा (”)	१६ पन्द्रहलाखपरपानी
१७ हिन्दी प्रवेश	१७ भावनाबोध (अप्रकाशित)
१८ महासती सीता	१८ जैनदर्शन (अप्राप्य)
१९ सती दमयन्ती	
२० अनन्तमती	

समर्पण।

स्वर्गीय युगप्रधान, आचार्य महाराज १००८ श्रीमद्विजयानंदसूरिजीके पादपद्मोंमें,

पूज्यवर्य,

जिस आत्माको आपने पदाश्रय देकर उन्नत बनाया, जिस आत्माको योग्य समझ कर आपने अपने लगाये हुए बागीचेका माली नियत किया, जिस आत्माको आपने अपना असीम प्रेम देकर प्रेममूर्ति बनाया, जिस आत्माकी वाणीमें, आपने अपना वाक्चातुर्य देकर, जादूका असर पैदा किया, जिस आत्माको आपने अपने अथाग परिश्रम द्वारा प्राप्त किये हुए ज्ञानका कवच पहनाकर अजेय कर दिया,

उसी आपके अनन्य भक्त, आपके नामपर प्राण न्योछावर करने की हौंस रखनेवाले, आपकी सरस्वती मंदिर बनानेकी अधूरी रही हुई इच्छाको पूर्ण करनेके लिए अपनी सारी शक्ति लगा देनेवाले, समस्त भारतमें आपके नामका डंका बजानेवाले, आपहीके समान जीवनभर ब्रह्मचर्य पालकर जप तप संयमसे रहनेवाले,

महान् नरकी जीवन-घटनाओंका संग्रह आपके पादपद्मोंमें अर्पण करता हूँ।

चरण-चंचरीक

कृष्णलाल वर्मा.



१००८ न्यायाम्भोनिधितपगच्छाचार्य श्रीमद्विजयानंदसूरि उर्फ़ श्रीआत्मारामजी महाराज.

जन्म सं. १८९३ अवसान संवत् १९५३

प्राक्कथन।

हों सन्त जिस पथके पथिक, पावन परम वह पंथ है।
आचरण ही उनका जगत्में पथ-प्रदर्शक ग्रंथ है॥

जो जमानेकी आवश्यकताको समझकर, लोकोपकार करते हैं; लोगोंकी भलाईमें ही अपना जीवन बिताते हैं; जीवनका प्रत्येक श्वासोश्वास जिनका परोपकारके लिए होता है; प्रत्येक विचार जिनका दूसरोंको लाभ—आत्मलाभ—पहुँचानेके लिए होता है; जिनका जीवन सदा सत्यमय होता है; इन्द्रिय संयमका जो आचरणीय पाठ पढ़ाते हैं; रागद्वेषकी परिणति दूर हो और वीतरागभाव फैले इसी उद्देश्यसे जो जीवनकी प्रत्येक क्रिया करते हैं; वे महात्मा धन्य हैं, उनका जीवन सफल है और उन्हींका जीवन आदर्श जीवन है। ऐसे आदर्शजीवनसे जो शिक्षा मिलती है और हमारे जीवनमें जो परिवर्तन हो जाते हैं; वे सैकड़ों, हजारों उपदेशोंसे भी नहीं होते। इसी लिए भक्त तुलसीदासजी कह गये हैं—

एक घड़ी आधी घड़ी, आधीमें भी आध।
तुलसी संगति साधुकी, कटे कोटि अपराध

यदि प्रत्यक्ष साधु-महात्माकी संगति नहीं मिले तो उनकी जीवन-कथा भी हमें अनेक अपराधोंसे छुड़ा सकती है।

आज पाठकोंके हाथोंमें, ऐसे ही एक आदर्शजीवनको देते हमें बड़ी प्रसन्नता होती है। आशा है पाठक इस जीवनसे स्वयं लाभ उठायँगे और अपने इष्ट मित्रोंको भी उठानेका अवसर देंगे।

गये चौमासेमें अर्थात् सं० १९८१ के चौमासेमें १०८ पंन्यासजी महाराज श्रीललितविजयजी गणीने १००८

श्रीआचार्य महाराज श्रीविजयवल्लभ सूरिजीका एक छोटासा जीवनचरित्र लिख देनेके लिए कहा। कारण जोधपुरसे निकलनेवाले 'ओसवाल' पत्रके संपादकने, कई वार पंन्यासजी महाराजसे आचार्यश्रीका चरित्र 'ओसवाल' पत्रमें प्रकाशित करानेके लिए लिखकर भेजनेकी, विनती की थी। पंन्यासजी महाराज इतने मीठे बोलनेवाले हैं और लोगोंके दिलोंको इतने अच्छे ढंगसे अपने कब्जेमें कर लेनेवाले हैं कि, मैं उसको बता नहीं सकता। मेरी इच्छा न होते हुए भी यंत्रचालित फोनोग्राफकी भाँति मैं बोल उठाः—" आप मुझे चरित्र सुनाइए, मैं लिख दूँगा।"

आचार्यश्रीका चरित्र वैसे ही उत्तम है उस पर पंन्यासजी महाराजकी, वर्णन करनेकी शैली इतनी सुंदर थी कि मेरे हृदयमें अनिच्छाकी जगह श्रद्धा उत्पन्न हो गई। जिस समय मैंने यह सुना कि, आपने कैसे मिलके चरबीवाले वस्त्रोंका, अधर्म समझ कर, त्याग किया, कैसे हजारों लाखों कीडोंके संहारसे बनते हुए रेशमके कपडोंके व्यवहारको बंद करनेका उपदेश दिया, उपदेश ही नहीं उनका व्यवहार श्रावकोंसे बंद कराया, कैसे आपने गोरवाडकी शिक्षाविहीन-विकट भूमिमें, विहार कर अनेक तरहके कष्ट सह, लोगोंके दिलोंमें शिक्षाप्रचार का बीज बोया, शिक्षाप्रचारके लिए लोगोंसे लाखों रुपये इकट्ठे करवाये, कैसे आपने अनेक स्थानोंमें श्रावकोंके आपसी विवाद मिटाये, कैसे आपने जमानेके अनुसार पश्चिमी सभ्यतामें बहकर धर्मसे विमुख बनते हुए युवकोंको धर्ममें स्थिर रखनेके लिए संस्थाएँ स्थापित कराई आदि; तब मेरे हृदयमें भक्तिभाव उत्पन्न हो गये। मैंने छोटासा चरित्र लिख देनेकी बात छोड़ दी और एक बृहद् चरित्र लिखकर प्रकाशित करानेका विचार कर लिया।



हमारे चरित्रनायक.

मनोरंजन प्रेस, बम्बई नं. ४

उसके लिए 'मिच्छामि दुक्कड' देता हूँ। किसीका मन दुखानेका इरादा बिल्कुल ही नहीं है।

इसमें 'आप' शब्दका प्रयोग सिर्फ इस चरित्रके नायकके लिए ही किया गया है औरोंके लिए नहीं। इससे किसीको यह खयाल न करना चाहिए कि, दूसरोंके लिए 'आप' शब्द न लिखकर उनका अपमान किया गया है। अनेकोंके लिए 'आप' शब्दका उपयोग करनेसे समझनेमें गड़बड़ी होनेकी संभावना थी।

चरित्र स्वतंत्र रूपसे लिखा और प्रकाशित कराया जा रहा है। इसमें किसीसे किसी तरहकी आर्थिक सहायता धर्मके या गुरुभक्तिके नामसे नहीं ली गई है। हाँ पहलेसे ग्राहक बनानेका प्रयत्न अवश्य मेव किया गया है। और जिन सज्जनोंने पहलेसे ग्राहक होकर मुझे उत्साहित किया है उनका उपकार मानता हूँ। महावीर जैन-विद्यालयके संचालकोंसे पाँच ब्लॉक छापनेके लिए मिले इस लिए उनका भी उपकार मानता हूँ।

अनेक परिस्थितियोंके कारण चरित्रको मैं जिस रूपमें पाठकोंके सामने रखना चाहता था उस रूपमें न रख सका, इसका मुझे खेद है; मगर जिस रूपमें पाठकोंके सामने आ रहा है वह भी उत्तम है और भक्तोंकी मनस्तुष्टिके लिए सम्पूर्ण है। पूजा और पदवीप्रधानका वर्णन लाहोरवालोंका प्रकाशित ही हूबहू दे दिया है भापाभाव सभी उसीमेंके हैं।

इस चरित्रमें केवल लाहोरके चौमासे तकका ही वर्णन है। आगेकी बातें फिर कभी पाठकोंको भेट की जायँगी।

मूलचूकके लिए क्षमा प्रार्थी, जैनत्वका सेवक—
कृष्णलाल वर्मा।

उसी समयसे मैं सम्पूर्ण चरित्र लिखनेके लिए सामग्री इकट्ठी करनेमें लगा। कारण पंन्यासजी महाराजको भी पूर्ण चरित्र मालूम नहीं था, तो भी मैं यह कहे विना नहीं रह सकता कि, चरित्र लिखनेके लिए सामग्री जुटा देनेकी सहायता पूर्ण रूपसे पंन्यासजी महाराज ललितविजयजीने ही दी है। इस लिए मैं उनका अत्यंत कृतज्ञ हूँ। १०८ उपाध्यायजी महाराज श्रीसोहनविजयजीसे प्रार्थना करने पर उन्होंने स्वतंत्र रूपसे, जितना हाल उन्हें मालूम था, उतना लिख भेजनेका कष्ट उठाया इस लिए उनके प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। १०८ पंन्यासजी महाराज श्रीउमंगविजयजी गणी, मुनिश्री प्रभाविजयजी महाराज, मुनि श्रीचरणविजयजी महाराज, और होशियारपुरके लाला नानकचंदजीका भी उपकार मानता हूँ कि जिनके द्वारा मुझे अनेक वातें मालूम हुई हैं। "आत्मानंद जैनपत्रिका" लाहोर (हिन्दी) और 'श्रीआत्मानंद-प्रकाश' भावनगर (गुजराती) के संपादकोंका भी उपकार मानता हूँ। क्योंकि पुराने वहुतसे हालात इन्हीं पत्रोंकी पुरानी फाइलोंसे मुझे मालूम हुए हैं। इनके अलावा उन सज्जनोंका भी उपकार मानता हूँ जिनसे कुछ वातें मालूम हुई हैं; परन्तु जिनके नाम मुझे याद नहीं रहे हैं।

इसमें एक दो घटनाएँ ऐसी छोड़ दी गई हैं, जो यद्यपि आपके चरित्रको महिमान्वित करने वाली थीं, किन्तु दूसरोंके हृदयोंमें दुःख पहुँचाने वाली थीं। मैंने लिखते समय इस वातका खास ध्यान रक्खा है कि, कोई ऐसी वात न लिखी जाय जिससे किसीका मन दुखे; तो भी छद्मस्थावस्थाके कारण किसीको किसी वातसे दुःख पहुँचे तो

श्रीमती
केशरश्रीजी
सुवर्णश्री

आदर्शजीवन

पूर्वार्द्ध ।

☞ बहुत प्रयत्न करनेपर भी हमें चरित्रनायकका दीक्षासे पहलेवाला और अजमेरवाला फोटो न मिल सका, पाठक क्षमा करें ।

—प्रकाशक.

आदर्श-जीवन

प्रथम खंड ।

(सं. १९२७ से सं. १९४४ तक)

बड़ोदेके जानीसेरीका उपाश्रय नरनारियोंसे भराहुआ थ महात्माकी जलद गंभीर वाणीका श्रवण करनेके लिए लोग आगे बैठनेका प्रयत्न करनेमें एक दूसरेको धकेल रहे थे। इस धकापेलमें लोगोंकी उपदेशामृतकी बहुत ही थोड़ी बूँदें पान करनेको मिल रही थीं। ऐसे समयमें भी एक दीवारके सहारे एक १९ वर्षीय बालक एकाग्रचित्तसे उस अमृत वाणीका पान कर रहा था। उसकी आँखें महात्माके भव्य तेजोदीप्त मुख मंडल पर स्थिर थीं और उसके कान अस्खलित भावसे उस अमृतको पीकर अपने अन्तस्थलमें पहुँचा रहे थे और वहाँसे अनन्त जीवनके बद्ध कर्म मलको, उस अमृतद्वारा ढीलाकर, बाहर फैंक देनेका यत्न कर रहे थे।

व्याख्यान समाप्त हुआ। श्रोता लोग महात्माको वंदना कर, एक एक करके अपने घर चले गये, मगर वह बालक उसी तरह स्थिर बैठा रहा।

महात्माने पूछाः—" बालक क्यों बैठे हो ? "

बालक चौंक पड़ा। उसके सुख स्वप्नकी सुंदर मूर्तिके निर्माणमें बाधा पड़ गई। उसके नेत्रोंमें जल भर आया। उससे उठा न गया। वह करुणा पूर्ण दृष्टिसे महात्माकी ओर देखता रह गया। उस दृष्टिने महात्माके हृदय पर गहरा असर किया। वे उठे; बालकके पास गये और पितृप्रेमसे उसके मस्तक पर हाथ रखकर बोले:—“ वत्स ! इस तरह क्यों बैठा है ? उठ ! ”

बालकने महात्माके दोनों पैर पकड़ लिए। उसकी आँखोंसे जलधारा बह चली। जुबानसे शब्द न निकले। दोनों पैर वाष्पोष्ण वारिसे परिप्लावित हो गये।

महात्मा बालकको उठानेका प्रयत्न करते हुए स्नेह गद्गद कण्ठसे बोले:—“ भद्र ! क्या दुख है ? धन चाहता है ? ”

बालक पैर छोड़ उठ खड़ा हुआ और आँखें पोंछते हुए बोला:—“ हाँ ”

महात्मा:—“ कितना ”

बालक:—“ गिन्ती मैं नहीं बता सकता। ”

म०—“ अच्छा किसीको आने दे। ”

बा०—“ नहीं मैं आपहीसे लेना चाहता हूँ। ”

म०—“ हम पैसा टका नहीं रखते। ”

बा०—“ मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है। वह तो विनश्वर है। ”

महात्माने कुतूहलके साथ पूछाः—" तब कौनसा धन चाहता है ? "

बालक,—" वह धन जिससे अनन्त सुख मिले । "

महात्माको बालकके बुद्धिकौशल पर आश्चर्य हुआ । उन्होंने ध्यानसे बालकके चहरेकी ओर देखा । ललाट पर भावी जीवनकी उज्ज्वल रेखाएँ दिखाई दीं । उन्होंने देखा,–इस महान आत्माद्वारा समाजका कल्याण होगा; इसके द्वारा धर्मका उद्योत होगा; इसके द्वारा शासनकी प्रभावना होगी । महात्मा बोले,– " वत्स ! योग्य समय पर तेरी मनोकामना पूरी होगी । "

बालकका मुखकमल आनंदसे खिल उठा । भक्तिपूर्ण हृदयसे महात्माको नमस्कार कर वह धीरे धीरे चला गया ।

× × × ×

हमारे इस चरित्रके नायक ही यह बालक था और महात्मा थे जगत्पूज्य श्री श्री १००८ श्रीमद्विजयानंदसूरिजी महाराज ।

हमारे चरित्र नायकका जन्म बड़ोदेमें, सं० १९२७ के कार्तिक सुदी २ (भाईदूज) के दिन, हुआ था । आपका गृस्थावस्थामें नाम छगनलाल था । आपके चार भाई थे । सबसे बड़े हीराचंद, दूसरे खीमचंद तीसरे आप (छगनलाल) और सबसे छोटा मगनलाल । आपके तीन बहिनें थीं । उनके नाम

थे महालक्ष्मी, जमुना और रुक्मणी; पिताका नाम श्रीयुत दीपचंदभाई था और उनका देहान्त आप नव छोटी उम्रमें थे तभी हो गया था। आपकी माता श्रीमती इच्छाबाई आपसे बहुत ही ज्यादा स्नेह रखती थीं। धर्मात्मा भी अपने शहरमें अद्वितीय थीं। अपनी धर्मभावनाओंका सारा ख़ज़ाना वे अपने स्नेहभाजन इसी पुत्रको दे गई थीं।

इच्छाबाईका अन्त समय निकट था। मनुष्य--आयुरूपी कर्म--रज्जूका एक एक तार वेगपूर्वक प्रत्येक श्वासोश्वासके साथ टूटता जा रहा था। धर्मात्मा देवी बड़ी कठिनताके साथ शब्दो-च्चार कर सकती थीं। जिस समय उनके मुँहसे शब्द निकलता 'अर्हत'। प्यारी सन्तान सामने बिलखकर रो रही थी। स्वजन सम्बंधी व्याकुलतासे देवीकी ओर देख रहे थे। देवी सबको हाथ उठाकर अपनी अन्तिम अवस्थामें भी आश्वासन दे रही थीं और मुखसे अर्हत शब्दका उच्चारण कर रही थी। इस शब्दोच्चार और स्वाभाविक शान्तिसे जो आश्वासन मिलता था वह संभवतः अनेक व्याख्यानों और उपदेशोंसे भी नहीं मिल सकता था।

देवी थोड़ी देर हमारे चरित्रनायककी ओर स्थिर दृष्टिसे देखती रहीं और बोलीं,-" छगन! तू भी इतना दुर्बल ? "

आप अबतक धीरे धीरे आँसू बहा रहे थे अब अपने आपको न सम्भाल सके उच्च स्वरमें करुणक्रंदन करने लगे। कुछ

शान्त होने पर डसूक भरते बोले,–" माँ ! हमें किसके भरोसे छोड़ जाती हो ? "

माँके हृदयमें मोहकी एक आँधी उठी । सन्तान–स्नेहके तूफानमें धार्मिक ज्ञानके कारण शान्त बना हुआ चित्त क्षुब्ध हो उठा । प्रसन्नतापूर्ण चहरे पर म्लानता दिखाई दी । आँखोंमें पानी भर आया । एक दीर्घ निःश्वास डालकर बोलीः–"अर्हन्त !"

इस निःश्वासके साथ ही मानों सारी क्षुब्धता निकल गई । चहरेपर फिरसे प्रसन्नता दिखाई दी । वे बोलीं:–" छगन ! "

इस शब्दने हमारे चरित्र नायकको सजग किया । बचपनसे माता संसारकी असारताके जो उपदेश दिया करती थीं वे एक एक करके आपकी आँखोंके सामने खड़े होने लगे । अविनाशी आत्माकी भावना, विनाशी पुद्गल धर्मके विचार, कर्मोदयके कारण होनेवाला संसारके परिवर्तनका खयाल सभी आपको स्थिर करने लगे । आपने माताके संबोधनका अर्थ समझा, आँखें पोंछ डालीं और पूछाः–" माँ क्या आज्ञा है ? "

माता स्नेहगद्गद स्वरमें बोलीः–" बेटा ! अविनाशी सुख-धाममें पहुँचानेवाले धनको प्राप्त करने और जगत्का कल्याण करनेमें अपना जीवन बिताना । "

माताने एक निःश्वास छोड़ी; अर्हंत शब्दका उच्चारण किया और उसके साथ ही उनका जीवनहंस भी उड़ गया ।

× × × ×

उसी समयसे आप माताकी आज्ञाका पालन करते हो इसकी न्तामें रहते थे। आपमें सामान्य बालकोंसा न खिलाड़ीपन न उधम। एक गंभीर शान्तिसे आप अपने दिन निकालते । आपकी इस गंभीरताको देखकर लोग आपके विषयमें तरह हके अनुमान बाँधा करते थे।

सं० १९४० की बात है। श्रीआत्मारामजी महाराजके घाड़ेके साधु मुनिराज श्रीचंद्रविजयजी महाराजका चौमासा, ड़ोदेमें, पीपलासेरीके दर्वाज़े पर हुआ था। हमारे चरित्रनाय-का घर भी पीपलासेरीहीमें था। इसलिए आप प्रायः चंद्रविज-जी महाराजके पास आया जाया करते थे। पूर्वजन्मके सुकृत, ाताके जीवनव्यापी धर्मोपदेश और साधु महाराजकी संगति ीनोंने मिलकर आपके मनको संसारसे उदास किया; आपके हृदयमें दीक्षा लेनेकी इच्छा हुई। दूसरे चार साथियोंने आपके ाथ ही दीक्षित होनेका विचार प्रदर्शित कर. इस इच्छाको कार्यके रूपमें परिणत करनेके लिए, आपको दृढ बना दिया।

वे चार साथी थे,—हरिलाल, साँकलचंद खूबचंद खंभाती, वाडीलाल लालभाई गाँधी और मगनलाल मास्तर। मगनलाल अंग्रेजीका अध्ययन करते थे और अनेक प्रकारकी सांसारिक उच्च आशाएँ रखते थे; उन्हें उनसे छूटना था। वाडीलाल विवाहित थे और उन्हें पत्नीके मोह-पिंजरेसे निकल भागना था; हरिलाल जौहरी हीराचंद ईश्वरदासके यहाँ रहते थे; लोग उनको 'सूबा'

कहकर पुकारते थे । उनके एक वृद्ध माता थी । उसका आधार वेही थे । उन्हें वृद्ध माताको त्याग करना पड़ता था । तीनोंके हृदयोंमें द्वंद्व मचा हुआ था; वैराग्य और बंधनमें युद्ध हो रहा था, मगर बाहर वे पक्का वैराग्य ही दिखाते थे ।

पाँचोंने मिलकर एक दिन घरसे निकलजाना निश्चित किया। तारीख और समय मुकर्रर हुए। हरिलालके वैराग्यने सबसे पहले हार खाई । उसने किसीके द्वारा पाँचोंके अभिभावकोंको खबर दे दी। उनकी सलाहें निष्फल गईं । उनके संरक्षकोंने उन्हें कहीं जाने न दिया । कुछ समयके बाद श्रीचंद्रविजयजी महाराजका भी स्वर्ग-वास हो गया । इसलिए सबके वैराग्य शान्त हो गये । सभीने फिरसे विद्याध्ययनमें चित्त लगाया ।

आपने भी छठी क्लासका इम्तहान दिया और सफलता पाई । जब आप सातवीं क्लासमें पढ़ते थे परीक्षाका समय पास था, तब विं० सं० १९४२ था । उसी साल स्वर्गीय १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरिजी महाराजका बड़ोदेमें आगमन हुआ । आपकी सोईहुई भावना फिर जागृत हुई और एक दिन जो घटना हुई उसका वणन हमने पुस्तकके आरंभहीमें दे दिया है ।

एक महीने तक महाराज साहबका यहाँ विराजना हुआ । फिर विहार करके छाणी पधारे । अनेक श्रावक छाणी तक गये । आप भी अपने बड़े भाई खीमचंद्रजीके साथ छाणी गये । आपकी ईच्छा वापिस बड़ोदे आनेकी न थी । मगर भाईके डरके मारे

कुछ बोल न सके । चुपचाप भाईके साथ ही बड़ोदे लौट आये ।

यद्यपि महाराज साहब विहार कर गये थे तथापि उनके शिष्य मुनिराज श्रीहर्षविजयजी महाराज वहीं थे । दो तीन साधु बीमार हो गये थे इसलिए उनकी सेवाशुश्रूषा करनेके लिए आचार्य महाराज उन्हें छोड़ गये थे । इसलिए व्याख्यान सुननेके लिए नियमित रूपसे आप जाते रहते थे । मुनि श्रीहर्षविजयजी महाराजके उपदेश बालजीवोंके साध्य मोह-रोगको नष्ट करनेके लिए रसायन थे । इसलिए रातके समय भी अनेक भव्य जीव उनके पास आया करते थे । आप भी जाया करते थे ।

एक दिन आपके सिवा अन्य कोई श्रावक नहीं आया था । मौका देख आपने अपने हृदयकी भावना कही । उन्होंने इस भावनाको पल्लवित किया और समय पर दीक्षा दिलानेका भी आश्वासन दिया ।

एक महीनेके बाद उनका भी वहाँसे विहार हुआ । अपने भाईके साथ आप भी उनके साथ छाणी गये । मुनि श्रीहर्ष-विजयजी महाराजके उपदेशसे और संगसे आपके हृदयमें कुछ विशेष निर्भयता आगई थी । इसलिए आपने भाईसे कहा:—
" कल स्कूलकी छुट्टी है, इसलिए यदि आप इजाजत दें तो मैं महाराज साहबके साथ अगले गाँवतक विहारमें जाऊँ । कल-शामको घर पहुँच जाऊँगा । "

भाईके दिलमें अब अगला संदेह बाकी नहीं रहा था; क्योंकि आप नियमित रूपसे सभी काम किया करते थे; इसलिए उन्होंने प्रसन्नतासे इजाजत दे दी। वे खुद घर चले गये।

आपके लिये यह स्वाधीनताका पहला दिन था। आपने मुनि महाराज श्रीहर्षविजयजीके साथ जी खोलकर बातें कीं और निश्चय किया कि, अपने आप वापिस घर न जाऊँगा। यदि भाई साहब आयँगे तो जैसा मौका होगा किया जायगा।

आप मुनिराजोंके साथ अहमदाबाद पहुँचे। उसी दिन आपके भाई खीमचंदजी बाहर ही आमिले। दो चार चपत लगाये कान पकड़कर आगे किया। आप रोते धोते भाईके साथ घर चले गये।

इस बार पूरी देखरेख होने लगी। एक क्षणके लिऐ भी आप अकेले नहीं रह सकते थे। इच्छा न रहने पर भी नियमित रूपसे स्कूल जाना पड़ता था। आ के भाई अपने साथ ले जा कर स्कूल मास्टरके सिपुर्द कर आते थे; उसे सावधान कर आते थे और शामको छुट्टी होते ही वापिस स्कूल आकर ले जाते थे।

पहले कभी बाहरकी हवा न लगी थी; इसलिए आप अपने भाईसे बहुत ज्यादा डरते थे; कहीं बाहर निकलनेका साहस भी नहीं होता था। अब बाहरकी हवा खा चुके थे; कर्मरोगके

वैद्योंकी संगतिमें रह चुके थे इसलिए आपके हृदयसे भय बहुत कुछ निकल गया था। तो भी भाईके सामने बोलनेका हौसला नहीं पड़ता था। एक तरफ़ भाईका प्रबंध था दूसरी तरफ़ आप निकल भागनेका अवसर देखते थे। एक दिन अवसर मिल गया। छुट्टीका दिन था। देखरेख करनेवाला कोई नहीं था। इसलिए आप घरसे यह कहकर रवाना हुए कि दुकान पर जाता हूँ। रवाना हुए मगर सीधे बाजारके रस्ते होकर जाना कठिन था; क्योंकि बाजारमें खीमचंदभाई अपनी दुकान पर बैठे थे। सिंहके सामनेसे बकरीका भागना जितना कठिन है उतना ही आपके लिए खीमचंदभाईके सामनेसे होकर चला जाना था। अतः आपने जंगलका रस्ता लिया। गरमीका मोसिम था। अष्टमीका दिन था। आपने एकासन किया था। पैरोंमें जूते न थे। जमीन आगकी तरह तप रही थी। उसी जमीनमें आप धुन लगाये चले जा रहे थे। प्यासके मारे हलक़ सूखने लगा; पैरोंमें जल जल कर छाले पड़ने लगे; मगर आपका इस ओर ध्यान नहीं था। आप तो इस जेलखानेसे आत्माको सदाके लिए मुक्त करनेकी धुनमें थे; वैराग्यका प्रेमी भला इन शरीरके कष्टोंकी क्या परवाह करने लगा था? वैराग्य इसीको कहते हैं। कवि दाग़ कहते हैं—

कमाल इश्क़ है ए दाग़ महव हो जाना;
मुझे ख़बर नहीं नफ़ा क्या जरर कैसा।

स्टेशन पर पहुँचकर आपने अहमदाबादका टिकिट लिया। दिनभर प्रासुक पानी न मिलनेसे जी बड़ा बेचैन रहा। जीवनमें आजका दिन सबसे पहला था कि, आपको परिसहका अनुभव-जन्य ज्ञान हुआ; आजतक साधुओंके परिसह सहनकी केवल बातें पढ़ा और सुना करते थे; आज आपको विदित हुआ कि, परिसह कैसे सहा जाता है और मनको अधिकारमें रखनेके लिए कितनी कठिनताका सामना करना पडता है।

शामको अहमदाबाद पहुँचे। प्यास बुझानेके लिए आप सीधे सेट भूराभाईके घर पहुँचे। इनका घर आपने पहली बार आये थे तब देख रक्खा था। इनके घर हमेशा प्रासुक पानी रहा करता था और उस दिन तो खास अष्टमी थी। जाते ही पानी मिल गया। पानी पी कर मन शान्त हुआ। वहाँ कुछ क्षण बातचीत कर आप मुनि महाराजके पास गये।

स्वर्गीय १००८ श्री आत्मारामजी महाराज अपनी शिष्य-मंडली सहित प्रतिक्रमण करनेकी तैयारी कर रहे थे। आपने जाकर वंदना की। महाराज बोले.—"ले * भाई छगन आ गया। वैराग्यमें पूरा रंग गया है। धर्मकी इसके कारण बहुत

* मुनि श्रीहर्षविजयजी महाराजको सब साधु भाईजी महाराज कहा करते थे; इस लिए सूरिजी महाराज भी आपको कई बार भाई ही कहा करते थे।

प्रभावना होगी । यह मेरी भविष्य वाणी रही । " आपने यथा-क्रम सबको वंदना की । रात आनंदसे बीती ।

दूसरे दिन जब आप भोजन करके वापिस लौटे तो सामने खीमचंदभाई खड़े दिखाई दिये । आपके तो हाथके तोते उड़ गये; आनंद विषादमें परिवर्तन हो गया । हँसते हुए चहरे पर उदासीकी छाया आ पड़ी । आप बड़े चक्करमें पड़े । सांसारिक विवेक कहता था कि जिन्होंने तुझे पाला पोसा पढ़ा लिखाकर इतना बड़ा किया उन्हींका दिल दुखानेकी धृष्टता करता है ! वैराग्य कहता था,—ये सब खयालात फिजूल हैं । जीव कर्माधीन है । सांसारिक भलाई बुराई कर्मोंके रचे हुए आडंबर हैं । जब तक जीव इनमें फँसा रहता है तबतक उसे अपनी भलाईका खयाल नहीं होता । इसलिए संसारके जंजालसे छूटनेका यत्न कर । इस कर्मके जालमें न फँस ।

मगर खीमचंद भाईने आपको इस झंझटसे क्षणभरके लिए बचा दिया । वे ठहरे वणिक् । कहावत प्रसिद्ध है

'वणिग्गेहे च धूर्तता'

उसीसे उन्होंने अपना काम निकाला । उन्होंने निराशा व्यंजक करुण स्वरमें सूरिजी महाराजसे अर्ज की,—" महाराज ! आप ज्ञानी छो ! हुं मूर्ख आपने वधारे शुं कहुं ? छगन नासीने आपनी पासे आव्यो छे । एनी मरजी हशे तो हुं ना नथी कहेतो । घणी खुशीथी ए संयम ले । पण हाल एनी उमर बहुज

न्हानी छे। आप एने दीक्षा आपवामां उतावळ न करशो । हाल एने भणावो । पछी ज्यारे ए मोटो थाय अने आपने योग्य लागे त्यारे मने फरमावशो । हुं पोते आवीने बहु आनंदनी साथे एने दीक्षा अपावीश । ”

खीमचंदभाईकी बातें सुनकर सभी साधु प्रसन्न हुए। किसीने इन्हें भव्यजीव, किसीने, उदार, किसीने सरल हृदयी और किसीने धर्मपरायण बताया । आपने भी आनंदोल्लासके साथ ये बातें सुनीं । ऐसा मालूम हुआ मानों स्वर्गका राज्य मिल गया है ।

सूरिजी महाराजने कहाः—“ जैसा तुम कहते हो वैसा ही होगा । तुम बेफिकर रहो । मगर साधुओंके सामने मिथ्या बोलनेसे बचना । ” फिर आपकी तरफ़ मुखातिब होकर कहाः– “ छगन ! तुमने अपने भाईकी बातें सुन लीं न ? शान्ति और धैर्यके साथ विद्याध्ययन करना होगा । दीक्षा तभी मिलेगी जब तुम्हारे बड़े भाई इजाजत देंगे । ”

आपको तो विश्वास हो गया था कि, अब मेरी दीक्षामें कोई विघ्न नहीं आयगा इसलिए आप प्रसन्नतासे बोलेः—“ मैं आपके चरणोंमें रहकर विद्याध्ययन और संयम साधनेका अभ्यास कर सकूँगा । अभी मेरे लिए इतनाही बस है । जब आप और भाई मुझे योग्य देखें तभी दीक्षा दें, दिलावें । मेरा हृदय संसारके बंधनोंसे छूटनेके लिए तड़पता था सो आज मेरी वह तड़प मिट-गई है । ”

खीमचंदभाई प्रसन्न होकर उठे । आपको दो चार उपदेश देकर अपने घर बड़ोदे चले गये । खीमचंदभाईके हृदयको कोई भी न पहचान सका । किस तरकीबसे वे अपना अभिप्राय सिद्ध कर गये, इस बातका किसीको विचारतक न आया । वे समझते थे कि, अहमदाबाद बड़ा शहर है । यहाँ यदि कुछ गड़बड़ी करूँगा तो छगन कहीं जाकर छिप जायगा और उसे वापिस ढूँढ लाना असाध्य हो जायगा । साधु यहीं तो रहेंगे ही नहीं । जब ये छोटे गाँवमें विहार कर पहुँचेंगे तभी छगनको पकड़ लेजाऊँगा । साधुओंके पास क्या अपने भाईको रहने दूँगा ।

'कार्यदक्षो वणिक् पुत्रः'

के अनुसार अपना कार्य करके वे चले गये ।

खीमचंदभाईके एक मुनीम था । जातिका पाटीदार, नामथा भगवानदास । उसकी सुसराल अहमदाबादमें थी । खीमचंद-भाई बड़ोदे जाते समय आपको देखते रहनेकी सूचना भगवान-दासके सालेको देते गये । बड़ोदे जाकर भगवानदाससे अपनी सुसरालमें एक पत्र लिखवा दिया । उसका आशय यह था कि,— छगनको एक दो बार दिनमें देख आना और साधु किधर विहार करते हैं और छगन किनके साथ जाता है इस बातका खयाल रखना । विहार होते ही तारद्वारा सूचना देना ।

मुनीमका साला उपाश्रयमें आया । लोगोंने उसको आनेका

कारण पूछा । उसने जवाब दिया कि,—मेरे बहनोईके सेठका साला यहाँ पढ़ता है । उसकी सार सम्भाल लेने और उसे किसी चीजकी जरूरत हो तो लादेनेके लिए आया हूँ । फिर किसीने उससे कोई बात न पूछी । वह रोज एक चक्कर लगा जाता । आप भी उससे अच्छे हिलमिल गये ।

उस समय अहमदाबादके नगरसेठ श्रीयुत प्रेमाभाई थे । वे बड़े धर्मात्मा और भव्य जीव थे । आत्मारामजी महाराजके प्रति उनकी बड़ी भक्ति थी । वे अक्सर कहा करते थे कि, मैंने आजतक सच्चा गीतार्थ यदि कोई देखा है तो वे आत्मारामजी महाराज ही हैं । वे बहुत वृद्ध थे । पचीस पचास कदम भी कठिनतासे चल सकते थे; तो भी आत्मारामजी महाराजके व्याख्यानमें हमेशा आते थे और नौकर उन्हें छोटीसी डोलीमें बिठाकर ऊपर, जीना चढ़ा, रख देते थे । दुपहरमें भी वे हमेशा आते और एक दो सामायिक कर जाते । सामायिकमें वे महाराज साहबके साथ तत्वचर्चा किया करते ।

एक दिन इन्होंने आपको देखा । महाराज साहबसे दर्याफ्त किया । महाराज साहबने सारी बातें कह सुनाई ।

दूसरे दिन सेठ व्याख्यान सुनकर घर जाने लगे तब उन्होंने श्रीयुत नानचंद केवल नामके श्रावकको कहा कि, आज दुपहरमें

छगनको लेकर मेरे घर आना। श्रीयुत नानचंद अच्छे श्रद्धालु श्रावक थे। साधुओंके पूरे भक्त थे। नगरसेठके यहाँ अक्सर जाया आया करते थे। सेठकी इच्छानुसार नानचंदभाई आपको लेकर सेठके घर गये।

सेठने आपसे पूछाः—"तुम साधु क्यों होना चाहते हो?"

आपने उत्तर दियाः—" आत्मकल्याणके लिए।"

" तुम्हें किसीने बहकाया है ?"

" नहीं।"

" घरमें दुःख है ?"

" नहीं।"

सेठने इसी तरहकी अनेक बातें पूछीं। आपको डराया; लालच दिखाया, मगर आप अपनी भावना पर स्थिर रहे। सेठने एक जरीकी टोपी मँगाई और कहाः—" यह तुम पहनो; मुझे तुम्हारी सादी टोपी दे दो। मैं इसको बतौर यादगारके अपने संदूकमें रक्खूँगा।"

आपने फर्मायाः—"यदि आप इस टोपीको रखना चाहते हैं तो इसमें मेरी कोई हानि नहीं है। चार दिन बाद इसे उतारता चार दिन पहले ही आपके भेट कर जाऊँगा। मगर आपकी जरीकी टोपीका बोझा उठानेके लिए मुझसे न कहिए। सादी टोपीका बोझा उठानेमें भी असमर्थ, आपकी जरीकी टोपीका भार कैसे सह सकूँगा ?

सेठ हँस पड़े और स्नेहसे सिरपर हाथ फिराते हुए बोले:— " कल्याण हो बेटा ! तुम शासनको दिपाओगे और अपने कुलको उज्ज्वल करोगे। "

आप वापिस लौट आये। आत्मारामजी महाराजने पूछा:— " सेठके पास हो आया ? "

" हाँ साहब। " कह कर आप एक ओर जा बैठे और पढ़नेमें लीन हुए।

दूसरे दिन सेठ आये। उन्होंने सारी बातें महाराज साहबको सुनाईं और प्रसन्नता प्रकट की। महाराजने भी कहा:— " सेठजी ! मैंने जिस दिनसे इसे देखा है उसी दिनसे मेरे हृदयमें भी ये ही भाव हैं। ऐसे जीवोंहीसे शासनकी ज्योति अखंड जागती रहेगी। "

इसी वर्ष (यानी सं. १९४२ में) पालीताणेके राजाके साथ जैन श्रीसंघका जो मुकद्मा चलता था उसका फैसला हुआ। सिद्धाचलजीकी यात्राके लिए जानेवालोंसे राजा जो मूड़का (प्रत्येक व्यक्तिसे टेक्स) लिया करता था वह बंद हुआ और तीर्थों तथा यात्रियोंकी हिफाजतके लिए जैनोंसे, राजाको पन्द्रह हजार रुपये सालाना दिलायाजाना नक्की हुआ।

इस निमित्तसे वड़ोदेके सेठ गोकलभाई दुल्लभदास, भरोचके सेठ अनूपचंद मलूकचंद, सूरतके सेठ कल्याणभाई, धूलियाके

सेठ सखाराम दुल्लभदास और खंभातके सेठ पोपटभाई अमरचंद आदिने आकर आत्मारामजी महाराजसे विनती की कि यदि आप इस वर्ष पालीतानेहीमें चौमासा करेंगे तो बड़ा उपकार होगा। आपके वहाँ विराजनेसे अनेक जीवोंको विशेषरूपसे यात्राका और तीर्थ-भक्तिका लाभ होगा।

आत्मारामजी महाराजने फर्माया:—" आपलोगोंका कहना ठीक है; मगर वहाँ साधुओंका निर्वाह कैसे हो सकता है ? यद्यपि कहनेको वहाँ श्रावकोंके पाँच सौ घर हैं तथापि साधु साध्वियोंके लिए तो पाँच भी कठिनतासे होंगे। ऐसी हालतमें चौमासा कैसे हो सकता है ? "

पालीतानेकी उस वक्तकी हालतमें और इस वक्तकी हालतमें बहुत फर्क हो गया है। मगर जिन्होंने उस समयकी दशा देखी है वे जानते हैं कि, वहाँके श्रावक सभी गरीब थे। उनकी आजीविका यात्रियोंके आधार थी। इसके अलावा वे सभी यतियों—गोरजी—के सेवक थे। बहुत समयसे वहाँके यतिजीने आनंदजी कल्याणजीकी पेढीमें भी अपना दखल जमा रक्खा था; इससे सभी श्रावक यतियोंसे डरते भी थे। यति लोग संवेगी साधुओंके साथ ऐसा सद्भाव नहीं रखते थे जैसा आज रखते हैं। इसलिए साधुओंको आहारपानी मिलना तो दूर रहा रहनेको स्थान भी कठिनतासे मिलता था। ऐसी दशामें अनेक

कष्ट सहकर आत्मारामजी महाराजने वहाँ चौमासा किया था और भविष्यके साधुसाध्वियोंके लिए मार्ग निष्कंटक बना दिया था। कहा जाता है कि, सैकड़ों वर्षोंके बाद आत्मारामजी महाराजका ही चौमासा सबसे पहले इस परम प्रभाविक तीर्थ पर हुआ था और उन्हींने पालीतानेके श्रावकवर्गमें साधु-भक्तिका बीज बोया था। उसके बाद अनेक मुनिराजोंके—

'महाजनो येन गतःस पंथाः'

कहावतके अनुसार वहाँ चौमासे हुए हैं। अस्तु।

श्रावकोंने विनती की;—"यदि आप वहाँ चौमासा करना स्वीकार करें तो हम लोग भी सकुटुंब वहाँ चौमासेमें रहेंगे।"

सेठ प्रेमाभाई और सेठ दलपतभाईने—जो अहमदाबाद संघके मुखिया थे—विनती की कि,—"आप इस प्रार्थनाको स्वीकार करनेका अनुग्रह करें। आपके पुण्यप्रतापसे सबकुछ ठीक हो जायगा।"

महाराजने फर्माया:—"अच्छी बात है। ज्ञानीने जैसी स्पर्शना देखी होगी, वैसा ही होगा।"

बाहरके आये हुए श्रावकोंने प्रेमाभाई और दलपतभाईसे कहा कि—"आप महाराज साहबका विहार पालीतानेकी तरफ ही करावें और पालीतानेकी तरफ विहार होनेपर हमें सूचना दें ताके हम वहाँ जानेकी तैयारी करें।"

बाहरसे आये हुए श्रावकलोग महाराजसे बार बार विनती करके अपने अपने घर चले गये ।

आत्मारामजी महाराजने अपने साधुओंकी सलाह माँगी । सबने प्रसन्नतापूर्वक पालीतानेमें चौमासा करनेकी सम्मति दी ।

महाराजने फर्माया:—" इरादा बहुत अच्छा है । वहाँ जानेसे तीर्थसेवा, शासनसेवा, आत्मसाधन सभी कार्य सरलतासे हो सकेंगे । पवित्र वातावरणमें, प्रतिक्षण, अनायास ही, पवित्र और आत्मजागृतिकी भावनाएँ आती रहेंगी । जो श्रावक विनती कर गये हैं वे भी वहाँ आवेंगे और रहेंगे; उनके वहाँ रहनेसे वे आरंभ समारंभसे, छलकपटसे और व्यापार रोजगारसे होनेवाले पापास्त्रवसे मुक्त होंगे और ब्रह्मचर्यव्रतसे रहकर धर्मध्यानमें विशेष-रूपसे अपने मनको लगासकेंगे । उन्हें भी लाभ है और हमें भी। उनके कारण हमें कठिनता कम पड़ेगी। तो भी मैं उनके ही भरोसे पालीतानेमें जाकर चौमासा करना नहीं चाहता । यदि आप लोगोंमें आत्मबल विकसित करनेके भाव हों ? धैर्यके साथ परिसह सहनेकी शक्ति हो और सभी तरहके उपद्रव, यदि हों, शान्तिके साथ सहनेका सामर्थ्य हो तो चलिए; हम लोग पाली-तानेहीमें चौमासा करेंगे । इतना मुझे विश्वास है कि, थोड़े दिनके बाद शासनदेव हमारे लिए सब तरहके सुभीते कर देंगे । श्राव-कोंमेंसे यदि एक भी किसी कारणसे पीछा हटा तो फिर सभी

वहाँने बनायँगे; एक भी न आयगा । इसलिए अपने ही भरोसे पर उधर जानेका विचार करना चाहिए । "

सब साधुओंने एक स्वरसे कहा:—" हमें कष्टोंकी कोई परवाह नहीं है । हम पंजाबसे यहाँ तक आये हैं । रास्तेमें कहाँ सब जगह श्रावकोंके घर थे । कहीं जाट जमींदारोंके घरोंसे आहारपानी ले आये थे और कहीं निराहार ही, दोष रहित आहार न मिलनेसे, रहना पड़ा था । वहाँ तो पाँच सौ श्रावकोंके घर हैं; और अगर बीच बीचमें आहारपानी नहीं मिलेगा तो भी कोई चिन्ता नहीं है । आप तो केवल वहाँ चौमासा करनेकी आज्ञा भर दे दीजिए । "

महाराजने जब साधुओंका इस तरह उत्साह देखा तब कहा:—" अच्छी बात है । उधर ही विहार करेंगे । एक बार दादाकी यात्रा करलें, फिर जैसी स्पर्शना होगी होगा । "

पालीतानेकी तरफ विहार करनेका विचार स्थिर होगया । महाराजका इरादा था कि, पहले थोड़े थोड़े साधु उस तरफ जायँ फिर मैं यहाँसे विहार करूँगा । मगर सेठ प्रेमाभाईने विनती की कि,—" पहले आपका ही यहाँसे विहार करना उचित होगा; क्योंकि लोगोंको इस समाचारसे उत्साह मिलेगा और जो भाग्यवान वहाँ जानेका इरादा रखते होंगे वे अपनी तैयारीयाँ करने लग जायँगे । अन्यथा सभी सोचेंगे कि, महाराज साहबने

तो उधर विहार किया ही नहीं है। शायद इरादा कम होगा।"

महाराज साहबने ही, प्रेमाभाईकी सलाह मानकर, पहले विहार किया। आप साबरमतीके पास सरखेज गाँवमें जाकर ठहरे।

विहारके समाचार सुनकर मुनीमका साला आया और उसने आपसे पूछा:—" क्या तुम भी आज ही जाओगे ?"

आपने उत्तर दिया:—" आज नहीं एक दो दिनके बाद।"

वह चला गया और उसने वड़ोदे सूचना भेज दी कि,—" मैं ये लोग जब रवाना होंगे तब तार द्वारा खबर दूँगा।"

महाराज श्रीहर्षविजयजीका भी अहमदाबादसे विहार हुआ। पहला मुकाम सरखेज, दूसरा मोरैया और तीसरा बावला गाँवमें हुआ। यहाँ पर दुपहरमें जब साधु धर्मशालामें विश्राम ले रहे थे तब एक बैलगाड़ी घर घर करती हुई आकर वहाँ थम गई। गाड़ीके थमते ही एक आवाज आई। परिचित मगर क्रोधपूर्ण। आवाज सुनकर आपके हृदयमें एक भय पैदा हुआ। आपने उठकर नीचेकी तरफ़ देखा।

इतनेहीमें धड़ धड़ करते तीन आदमी ऊपर चढ़ आये। उनमेंसे एक आपके भाई खीमचंद थे; दूसरा मुनीम भगवानदास था और तीसरा आदमी था आपके बहनोई नानाभाई।

उन्होंने आते ही आपका हाथ पकड़ा और घसीटकर

नीचे ले गये। साधु चुपचाप देखते रहे; फकत इतना कहा:— " खीमचंदभाई वार्ताहीसे काम चल सकता है। ऐसी खींचतान क्यों करते हो ? " मगर उनकी बात पर किसीने ध्यान नहीं दिया। क्षमा प्रधान धर्मके साधु पंच महाव्रत पालनेवाले शान्तिके साथ देखते रहने और कर्मकी विचित्र गतिका विचार करनेके सिवा और करते ही क्या ?

कुछ श्रावक भी वहाँ जमा हो गये थे। उन्होंने भी आपको धमकाया और खीमचंदभाईके साथ जानेका उपदेश किया। कारण यह था कि गाँवका पटेल मुनीम भगवानदासके सालेका ससुरा था। गाँवोंमें तो, इस बातको सभी जानते हैं कि, जिधर पटेल पटवारी होते हैं उधर ही सभी होते हैं।

उस दिन अपने पकड़नेवालोंके साथ आप बावलेहीमें पटेलके घर रहे। दूसरे दिन अहमदाबादकी तरफ़ रवाना हुए। दुपहरमें एक वृक्षके नीचे गाड़ियाँ खोलकर सभी कुछ विश्राम कर खा पी चलनेकी तैयारी कर रहे थे उसी समय वीरविजयजी महाराज आदि कुछ साधु, अहमदाबादसे पालीतानेकी तरफ़ जाते यहाँ आ मिले। आप उनके चरणोंमें गिर गये और गिडगिड़ाकर बोले:—" महाराज ! रक्षा कीजिए। "

वीरविजयजी महाराजने कहा:—" इतना उदास क्यों होता है ? अपने भाईको प्रसन्न करके, उनसे इजाजत लेके, आना। हमने भी तो बड़ी उम्रहीमें दीक्षा ली है। "

वीरविजयजी महाराजने यह बात चाहे किसी भी विचारसे कही हो, मगर उसका असर आपके दिल पर हताश करनेवाला और खीमचंदभाईके दिल पर उत्साह बढ़ानेवाला हुआ ।

शामको अहमदाबाद पहुँचे और मुनीमके सालेके मकान पर रहे । यहाँसे आपने भाग जानेका प्रयत्न किया; मगर नाकामयाब हुए ।

बड़ोदे पहुँचे । यहाँ, कहीं भाग न जायँ इस खयालसे, आपकी कैदीकी तरह रक्षा होने लगी । आपने भी—

'मौनं सर्वार्थ साधकं'

का पाठ पढ़ा । न किसीसे विशेष बातचीत न किसीके साथ ऊठ बैठ । चुपचाप अपने धर्मध्यानमें लगे रहते । नित्य प्रासुक जल पीते; एकासना, बीआसना, उपवास इच्छानुसार करते; कंबल पर सोते सुबेशाम प्रतिक्रमण करते और साधुकी तरह अपना जीवन बिताते ।

आपको यह मालूम था कि, आत्मारामजी महाराज खीमचंदभाईकी आज्ञाके बिना कभी दीक्षा न देंगे इसलिए आपने सोचा कि, ऐसा काम करना चाहिए जिससे तंग आकर खीमचंद भाई आप ही छुट्टी दे दें । आपने, अपने पासकी चीजें याचकोंको देनी शुरू कीं । जब वे पूरी हो गईं तब घरकी चीजोंमेंसे जो चीज समय पर आपके हाथ आ जाती वही याचकको

दे देते। दुकान पर भी इसी तरह करते। माँगने आए हुए याचकको कभी यथासाध्य, वापिस न जाने देते।

हीराचंद ईश्वरदास जौहरीके यहाँ, खीमचंदभाईकी ज्यादा बैठक थी। दोनों सगे मासीके लड़के भाई; हीराचंदभाईके कारण ही खीमचंदभाई भी कुछ गिन्तीमें आये थे इसलिए ये उनका उपकार भी मानते थे; इन पर उनका प्रभाव भी था; साथ ही वे धर्मात्मा और नेक सलाहकार भी थे। वे हमेशा यथासाध्य, दो, तीन, चार—जितनी हो सकती थीं उतनी—सामायिक किया करते थे। यदि कभी ज्यादा नहीं होती थीं तो एक तो नित्य करते ही थे। सामायिकमें वे अध्ययनके सिवा कभी दूसरी बातें न करते थे; इसलिए उन्हें तत्त्वोंका बोध भी अच्छा था। बड़ोदेमें आत्मारामजी महाराजके व्याख्यानोंको भली प्रकार समझने और उनपर मनन करनेवाले हीराभाई ही थे। आत्मारामजी महाराजपर उनकी असाधारण भक्ति हो गई थी।

एक दिन खीमचंदभाईने जाकर हीराचंदभाईसे कहा कि,—"छगन मुझे तंग कर रहा है और घरकी चीजें लुटा रहा है।" उन्होंने कहा,—"खीमचंद! तुम उसे व्यर्थ ही बाँध कर रखनेका प्रयत्न करते हो। मैं तो बराबर देख रहा हूँ कि, बचपनहीसे वह उदासीन है; वैरागी है। मैंने उसको सांसारिक कामोंमें कभी उत्साहसे भाग लेते नहीं देखा। महाराज आत्मारामजी, जब

यहाँ पधारे थे तब नित्य प्रति वह व्याख्यानमें आता था। एकाग्रता पूर्वक व्याख्यान सुनता था और एकटक महाराजकी तरफ देखा करता था। जब गुँहलीका वक्त आता यह उठकर चला जाता। एक दिन महाराजने पूछा,—"हीराचंदभाई वह कौन है और व्याख्यान समाप्त होते ही क्यों चलाजाता है?" मैंने उत्तर दिया था कि;—"यह मेरी मासीका लड़का है। सातवीं क्लासमें पढ़ता है। स्कूलका वक्त हो जानेसे चला जाता है।" महाराजने फर्माया था;—"हीराचंदभाई! मुझे यह लड़का होनहार मालूम होता है। इससे शासनकी शोभा बढ़ेगी। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि, यह गृहस्थीके बंधनमें न रहेगा।" महात्माके ये वचन मिथ्या न होंगे। अब तो यह उनके चरणोंमें रह भी आया है इससे उसका मन दृढ हो गया है। श्रीचंद्रविजयजी महाराजके समयसे इसके अंदर वैराग्यभावके अंकुर दिखे थे अब तो वे वृक्षके रूपमें बदल गये हैं। अब उसे इसके विरुद्ध कुछ कहना पाप है।

"एक बार मैंने चुन्नीभाईसे कहा था,—"चुन्नीभाई देख लो जीवकी अवस्था कैसी बदल जाती है। एक दिन किसीकी जेबमेंसे कोई चीज चली गई थी। तुमने छगनपर ही संदेह करके उसे रस्सीसे बाँधकर पीटा था; मगर उसके पाससे कुछ भी न निकला था। उस समय वह एक मामूली लड़का था और अब वह एक महान वैरागी है।" चुनीभाईको भी खेद था कि उन्होंने

ऐसे उच्च आत्माको सताया था। अस्तु। अब तू मुझसे क्या चाहता है ? "

खी०—"मैं सिर्फ़ इतना चाहता हूँ कि वह भाग न जाय।"

ही०—"मैं उसे समझा दूँगा। मगर मैंने सुना है तू उसकी धर्मक्रियामें बाधा डालता है। वह गरम पानी पीना चाहता है; तू गड़बड़ कर देता है। परिणाममें वह दिन दिन भर भूखा प्यासा रह जाता है। ऐसा अनुचित काम कर पाप न बाँध। भावीमें जो होनेवाला है वही होकर रहेगा। "

खीमचंदभाईने कहा:—" मैं छगनको आपके पास भेज देता हूँ। आप जैसा उचित समझें करें। "

जैन और जैनेतर सभी लोगोंमें यह बात प्रसिद्ध थी कि, हीराचंदभाई सच्चे सलाहकार हैं। जो उनके पास सलाह लेने जाता था वे उसे उचित ही सलाह देते थे। उनकी सलाहके अनुसार काम करनेवालोंको प्राय: सफलता ही मिलती थी। यदि कोई अनुचित बात उनके सामने करता और सलाह चाहता तो वे बड़े नाराज़ होते और उस मनुष्यको फटकार देते।

आप हीराचंदभाईके पास गये। इन्होंने प्यारसे सिर पर हाथ फेर कर कहा:—" छगन ! तू धर्म करने निकला है फिर इस तरह लोगोंकी आत्माको दुःख पहुँचाना तुझे शोभा नहीं देता। घरको उजाड़ना क्या तेरे लिए उचित है ? तू तो साधु

होगा मगर दूसरे भी क्या साधु होंगे? घर उजाड़ कर क्या तू उनसे भीख मँगवायगा? आजसे फिर कभी ऐसी बेजा हरकत न करना। भोजन तू चाहे यहाँ कर चाहे वहाँ। तेरे लिए दोनों घर खुले हैं। भोजन करके यहाँ आ जाया कर और कुछ पढ़ कर मुझे सुनाया कर। यहीं अपना अभ्यास भी किया कर। देख मेरे कहनेके माफ़िक चलेगा तो तेरा मनोर्थ सफल होगा; अन्यथा पछतायगा।"

आपने हीराचंदभाईकी बात स्वीकार की। उनके कथनानुसार निश्चिन्त होकर धर्माराधन करते हुए अपना जीवन बिताने लगे।

खीमचंदभाईके लिए यह बात असह्य थी कि छगनलाल आनंदसे अपने इष्ट मार्गकी साधनामें लगा हुआ है। वे हर समय यही सोचा करते थे कि, कोई ऐसी घटना हो कि छगनके भाव बदल जायँ।

ऐसा अवसर भी आया। आपके मामा जयचंदभाईके लड़के नाथालालका ब्याह था। खीमचंदभाईने उसमें आपको लेजाना स्थिर किया। सब जानते हैं कि, ब्याहोंमें गया हुआ मनुष्य वैरागी नहीं रह सकता। खीमचंदभाईने भी इसी ज्ञानका उपयोग किया। आपने ब्याहमें जानेसे इन्कार किया। खीमचंदभाईने कहा,—"अगर छगन नहीं जायगा तो मैं भी ब्याहमें न

जाऊँगा।" आखिर सबके दबावसे आपने ब्याहमें जाना स्वीकर कर लिया।

साधकोंके लिए संसारमें कठिनाइयाँ हमेशा आया करती हैं। ये कठिनाइयाँ ही साधककी उच्चताका सबसे पहले परिचय कराती हैं। खीमचंदभाई समझते थे कि अब छगन सब वैराग्य भूलकर ठिकाने लग जायगा। मगर उन्हें यह ज्ञात न था कि, कुदरत उन्हें ही अपना विचार छोड़ देनेका आग्रह करेगी।

शामको बरात रवाना होकर मामाकी पोलमें ठहरी। स्टेशन वहाँसे नजदीक था और सवेरे जल्दी रवाना होना था इसीलिए बराती यहाँ आ रहे थे।

आपको वह जगह मालूम थी इसलिये सबके पहले ही आप वहाँ पहुँच गये और प्रतिक्रमण कर एक कोनेमें खेस (दुपट्टा) बिछा सो रहे।

बरात आई। सब लोगोंने अपने अपने सोनेका इन्तजाम किया। खीमचंदभाई अबतक तो गड़बड़ीमें लगे हुए थे। सोनेके वक्त छगनकी सुध आई। उसे न देखकर घबरा गये। सोचा,-- मौका पाकर भाग तो नहीं गया है। मगर वापिस उन्हें खयाल आया कि, छगन जबानका सच्चा है। जब उसने हीराचंदभाईको उनकी आज्ञाके बिना कहीं न जानेका वचन दे दिया था तब वह जायगा तो नहीं; फिर वह गया कहाँ ? इधर उधर खोजते उन्हें

एक कोनेमें गठड़ीसी पड़ी दिखाई दी। वहाँ जाकर देखते हैं कि, छगनलाल सुकड़कर दोनों हाथोंमें सिर रख सो रहा है। वे स्तब्ध होकर खड़े हो रहे। आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आये। हाय ! मेरा भाई इस दशामें पड़ा है। मैंने इसके संथारियादि साधुओं-के से बिछोने छिपा दिये थे; मगर यह उनके बगैर भी आरा-मसे सो रहा है। सबसे पहले आज खीमचंदभाईके हृदयमें विचार आया कि मेरे किये कुछ न होगा; मेरा भाई शासनके लिए जन्मा है हमारे लिए,—केवल कुटुंबके दायरेहीमें बंद रह-नेके लिए नहीं। उन्होंने एक निश्वास डाला और पुकारा:— "छगन !"

आप उठ बैठे और आँखें मलते हुए पूछा:—"क्या ?"

खीमचंदभाईने पूछा:—"क्या बिस्तरे नहीं थे सो जमीनपर सो रहा है ? लोग मुझे क्या कहेंगे ?"

आप बोले:—"कोई कुछ न कहेगा; और किसीके कहने सुननेसे क्या नियम तोड़ दिया जाता है ?"

इतनेहीमें रुक्मणी बहिनने आकर आपको संथारियादि दे दिये और खीमचंदभाईसे कहा:—"भाई, छगनको इसके रस्ते जाने दो; फिजूल दुःख न दो। यह घरमें बैठा है इतना ही हमारे लिए बहुत है।"

---

१. गुजरातमें स्त्रियाँ भी बरातोंमें जाया करती हैं। ऐसा रिवाज है।

खीमचंदभाईने मन ही मन कहा,--"घरके लोग ही जब मेरे विरुद्ध इसे सहायता देते हैं तब मेरे अकेलेके किये क्या होगा ?" उनका मोहावरण कुछ हटा। वे सोचने लगे,—मैं क्यों अपराध करूँ ? क्यों अन्तराय कर्मको बाँधूँ ? यह विवाहित नहीं है कि, इसके चले जाने पर मेरे सिर दुखद उत्तर दायित्वका-जवाबदारीका--भार आपड़ेगा। यदि विवाहित होता तो भी मैं क्या कर सकता था ? श्रीकान्तिविजयजी महाराज[1] और श्रीहंसविजयजी महाराजने भी तो विवाहित ही थे। वे अपनी पत्नियों और कुटुंबके लोगोंको छोड़कर चले गये; किसीने क्या कर लिया ? यदि इसके भाग्यमें साधु ही बनना लिखा है तो फिर मेरे लाख उपाय करने पर भी वह न मिटेगा और यदि नहीं लिखा है तो यह चाहे जितनी कोशिश करे कभी साधु न बन सकेगा। सच है—

यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते ॥[2]

वे फिर सोचने लगे,--हरिभाई सूबा, मगनलाल मास्टर, वाडीलाल

१. गृहस्थावस्थामें इनके नाम क्रमशः छगनलाल और छोटालाल थे।

२. भावार्थ—जो अनहोनी है वह कभी न होगी और जो होनी है वह कभी न टलेगी। यह विचाररूपी औषधि चिन्ताको मिटानेवाली है। इसलिए इसको पीना चाहिए।

गाँधी और साँकलचंद खंभाती भी तो इसीके साथी थे । वे तो इससे उम्रमें भी बड़े थे । जब वे ही अपनी वैराग्य भावनाओं पर स्थिर न रह सके तब यह कैसे रह सकता है ? दो दिन धक्के खाकर आप ही ठिकाने आजायगा । फिर बोले:--" छगन ! जैसी तेरी इच्छा ! मगर एक बात कह देता हूँ--जो कुछ करे बहुत सोच समझ कर; मनको दृढ़ बनाकर करना । "

खीमचंदभाई चले गये । बिस्तरों पर लेटते ही निद्रादेवीने उन्हें अपनी गोदमें आराम दिया ।

सवेरा हुआ । बरातने चलनेकी तैयारी की । आप जानते ही थे । इसलिए सवेरे ही उठे और अपने आवश्यक कार्यसे निश्चिन्त हो गये । प्रतिक्रमण हो चुका था । सामायिक पारनेकी देरी थी । खीमचंदभाई सबको रवाना कर आपके लिए ठहर गये । थोड़ी देरके बाद आप भी तैयार हो गये और अपना संथारिया बाँधकर बोले,--" चलिए । "

खीमचंदभाईने कहा:—" ला, तेरा संथारिया मुझे दे । मैं ले चलूँगा । "

आप बोले—" यह नहीं हो सकता । आप बड़े हैं । आपको अपने बिस्तर उठवानेके बराबर मेरी और कौनसी असभ्यता हो सकती है ? "

" बस बस रहने दे अपनी सभ्यता ! " कहते हुए

खीमचंदभाई बिस्तर उठाकर रवाना हुए । आपने दौड़कर अपने भाईके हाथसे बिस्तर ले लिए । दोनों स्टेशन पर पहुँचे । आज दोनों भाइयोंका कैसा स्नेह था । सच है—

सब दिन जात न एक समान ।

सभी रेलमें बैठे । गाड़ी रवाना हुई । बरात गाँव समनीमें जानेवाली थी, इसलिए पालेजके स्टेशन पर उतर गई । समनीवाले गाड़ियाँ और छकड़े लेकर बरातको लेनेके लिए सामने आये थे । उन्हें कहा गया कि,—" बरातमें एक लड़का है । उसका नाम छगनलाल है । वह प्रासुक पानी पीता है और रातको भोजन नहीं करता । इसलिए पहले एक आदमीको भेजकर उसके लिए भोजनका इन्तजाम कराओ । ऐसा न हो कि, बरात पहुँचे तबतक रात हो जाय या तबतक भोजनकी वहाँ तैयारी ही न हो और उसे भूखा रहना पड़े । "

समनीवालोंने एक आदमीको घोड़ेपर आगे भेज दिया । उसने वहाँ जाकर सब प्रबंध कर दिया । बरात भी एक घंटा दिन रहते ही समनी गाँवके पास पहुँच गई । गाँवके बाहर ही बरात ठहर गई । सामैयाकी—जुलूसके साथ बरातको गाँवमें ले जानेकी—तैयारी होने लगी । लड़कीवालोंकी तरफके एक आदमीने आकर कहा कि,—" सामैयेमें अभी देर लगेगी; रात होगी । ज्यादा रात भी हो जाय । इसलिए जिनको रात्रिका नियम है वे चलकर भोजन करलें । छगनलालजीको भेज दीजिए । "

गाँवोंमें सामैये प्रायः रातही को हुआ करते हैं। भोजन करनेमें विवेक जैसा अभी देखाजाता है वैसा उस समय नहीं था। आप रवाना हुए। आपके साथ ही खीमचंदभाई आदि दूसरे भी कई चले।

समनीके भाइयोंने बड़े आदरके साथ सभीको भोजन कराया। आपकी तो उन्होंने इसलिए बहुत ज्यादा खातिरी की कि, आप छोटी उम्रमें ही धर्माचरणमें इतने दृढ हैं। स्त्री पुरुषोंने मुक्त कंठसे प्रशंसा करते हुए कहा कि,—यह कोई होनहार जीव है। खीमचंदभाई आदि कहने लगे,—" धर्मकी बलिहारी है। एक धर्मात्माके कारण हम इतने आदमियोंकी कितनी खातिर तवाजे हुई और वह भी आशातीत। अगर बरातके साथ जीमते तो न जाने कब पेटमें पड़ता; और वह भी ठंडा। अभी कैसा गरमा गरम मिल गया है! इसकी रीस हो सकती है? हम तो जबतक यहाँ रहेंगे छगनके साथ ही जीमते रहेंगे।"

खीमचंदभाईके हृदयमें धर्मकी श्रद्धा तो थी ही। इस घटनाने उसमें विशेषता ला दी। इस विशेषताने आपके मार्गकी भी बहुतसी असुविधाएँ निकाल दीं।

बरातसे वापिस बड़ोदे आगये। थोड़े दिन बाद समाचार मिले कि, महाराज साहब श्रीआत्मारामजी पालीताने पहुँच गये हैं। वहाँ अहमदाबादके नगर सेठ प्रेमाभाई हेमाभाई, तथा सेठ दलपतभाई भग्गुभाईके पत्रके कारण सेठ आनंदजीकी पेढीकी

तरफसे और पालीताना दर्बारकी तरफ़से आत्मारामजी महाराजका, बड़ी धूमके साथ स्वागत किया गया और नगरप्रवेश कराया गया।

आपके दिलमें पालीताने जानेकी चटपटी लगी। आपने सुना कि, बड़ोदेसे परम श्रद्धालु, धर्मात्मा सुश्रावक सेठ गोकुलभाई दुल्लभदास और परम श्राविका विजली बहिन आदि कई श्रावक श्राविकाएँ पालीताने जानेवाले हैं। उनमेंसे कई तो पालीतानेहीमें चौमासा बितायँगे और कई यात्रा करके लौट आयँगे। आप सेठ गोकुलभाई और विजली बहिनके पास पहुँचे और बोले:—" मुझे भी अपने साथ ले चाहिए।"

उन्होंने उत्तर दिया:—" आनंदसे हमारे साथ चलो; हमारे साथही रहना और अध्ययन करते रहना। हाँ तुम्हें अपने भाईकी आज्ञा जरूर ले लेनी होगी। उनकी इजाजतके बिना हम तुम्हें नहीं ले जा सकेंगे; क्योंकि उनका मिजाज तेज है। वे हमसे कुछ कह बैठें तो अच्छा न हो।"

आप बोले:—" मैं इसका प्रबंध कर लूँगा। मुझे तो केवल गुरु महाराजके चरणोंमें पहुँचू तबतकके लिए साथकी जरूरत है। मैं कभी गया नहीं हूँ इसी लिए मार्गसे अपरिचित आपके साथ जाना चाहता हूँ।"

आप हीराभाईके पास गये और नम्रताके साथ बोले:—" मुझे पालीताने जानेकी इजाजत दिला दीजिए।"

हीराभाईने खीमचंदभाईको बुलाया और कहाः-" छगन पालीताने जाना चाहता है। साथ भी अच्छा है। यात्रार्थ भेजनेमें क्या कोई हर्ज है ?"

खीमचंदभाईने उत्तर दियाः—" यात्रा जाते मैं नहीं रोकता। इसकी इच्छा हो वहाँ जाय; यदि पालीतानेहीमें चौमासा करना चाहे तो भी करे। मगर इसको प्रतिज्ञा करके जाना होगा कि,-यह वापिस बड़ोदे जरूर आयगा।"

आपने सोचा सस्तेहीमें छूटते हैं। झटसे बोल उठे,-" मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि बड़ोदे जरूर जाऊँगा।"

खीमचंदभाईने इजाजत दे दी। उन्होंने खर्चके लिए सेठ गोकुलभाईको रुपये दिये और उनको कहाः-" जैसे आप इसे अपने साथ ले जाते हैं वैसे ही वापस ले आना। मैं इसे आपको सौंपता हूँ।"

गोकुलभाई बोलेः—" साथमें ले जाना और सार सम्भाल रखना हमें मंजूर है मगर वापस ले आनेका जिम्मा हम नहीं ले सकते। यदि यह राजीखुशी हमारे साथ आयगा तो हम ले आवेंगे नहीं आयगा तो हम उत्तरदाता नहीं। इच्छा हो भेजो न हो न भेजो।"

आप बोलेः—" जब मैं वापस आना स्वीकार कर चुका हूँ तब इनके साथ कौल करार करनेकी क्या जरूरत है ?"

खीमचंदभाईने वैसे ही जानेकी इजाजत दे दी। पालीताना

पहुँचे। अपनी आयुमें पहली ही बार आपने दादाके दर्शन किये। आपको उस समय जो आनंद हुआ वह वर्णनातीत है।

सं० १९४३ का चौमासा आपने पालीतानेहीमें स्वर्गीय श्रीआत्मारामजी महाराजके पास विताया। यथाशक्ति विद्या-भ्यास भी करते रहे। पंजाबी पंडित खीमचंदजी ओसवालके पास चंद्रिका पढ़नी शुरू की। पंडित अमीचंदजी पट्टी जिला लाहोरके निवासी थे। जिस समय आत्मारामजी महाराजकी श्रद्धा स्थानकवासियोंके पंथसे हट गई, उस समय अमीचंदजीके पिता घसीटामलको स्वर्गीय महाराजने कहा कि,–तुम्हारे तीन पुत्र हैं। उनमें अमीचंद्रकी बुद्धि तेज है। तुम इसे संस्कृतादि विद्या पढ़ाओ। फिर जो कुछ सत्य बात होगी सो तुम्हें मालूम हो जायगी। तुम्हारा बेटा तो तुम्हें असत्य बात नहीं कहेगा न?

लाला घसीटामलके दिलमें यह बात जच गई। उन्होंने अमीचंद्रको संस्कृत पढ़ाना प्रारंभ कर दिया। जब व्याकरण न्याय, धर्मशास्त्र आदिमें अमीचंद्र प्रवीण हो गये तब उनके पिताने उनसे पूछाः—" बेटा बता,–सूत्रोंका अर्थ पूज्य अमर-सिंहजी करते हैं वह सत्य है या आत्मारामजी महाराज करते हैं वह सत्य है ? "

अमीचंद्रजीने उत्तर दियाः–" पिताजी! श्री आत्मारामजी महाराज फर्माते हैं वही सत्य है। ये ही जैनधर्मका–सत्य मार्गका उपदेश देते हैं। "

उसी दिनसे लाला घसीटामलजीकी श्रद्धा ढूँढकपंथसे हट गई ।

यह बात तो निश्चित है कि, विद्वानोंसे कभी दुकान्दारी नहीं होती । यही हालत पंडित अमीचंद्रजीकी भी हुई । उन्हें अपने योग्य कामकी जरूरत मालूम हुई । एक बार मुर्शिदाबाद-वाले बाबू धनपतिसिंहजीने कहाः—" आप गुरु महाराजकी (स्व० आत्मारामजी महाराजकी) सेवामें रहिए और साधुओंको पढ़ाइए । साधर्मीभाई समझकर आपकी योग्य सेवा होती रहेगी । तभीसे वे साधुओंके साथ ही रहते थे । स्वर्गीय आचार्य महाराज श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरिजीके प्रायः सभी साधु आपके पाससे कुछ न कुछ सीखे हैं,—उस समय सीखते थे । पालीतानेके चौमासेमें चौबीस साधु थे उनमेंसे पन्द्रह सोलह साधु अमीचंद्रजीके पास उस समय पढ़ते थे ।

आपकी बुद्धि तेज थी । इसलिए आपने चौमासेहीमें चंद्रिकाका पूर्वार्द्ध समास तक समाप्त कर दिया । यह हम पहले ही बता चुके हैं कि, स्वर्गीय महाराज आप पर उसी दिनसे विशेष स्नेह रखते थे जिस दिनसे आपको उन्होंने देखा था और आपकी बुद्धिका परिचय पाया था । अब चौमासेमें साथ होनेसे विशेष अनुग्रह हो गया । आप अभी अदीक्षित थे तो भी महाराज आपहीके पाससे अपना लिखानेका और पत्रव्यवहारका कार्य कराते थे । आपका भी स्कूलके अध्ययनके कारण लिख-

नेमें अच्छा अभ्यास था इसलिए फुर्तीके साथ हरेक कार्य कर दिया करते थे। गुरु महाराजका अनुग्रह देखकर अन्यान्य साधु भी आपसे स्नेह करने लग गये थे। सच है—

'यथा राजा तथा प्रजा।'

आनंदके साथ चौमासा समाप्त हुआ। लोग यात्रार्थ आने लग गये। इस वर्ष आपकी बहिन श्रीमती जमनाबहन भी यात्रार्थ आई थीं।

नरसि केशवजीकी धर्मशालामें—जहाँ स्वर्गीय महाराजका चौमासा था—अठाई महोत्सवके लिए एक भव्य मंडप तैयार हो रहा था; क्योंकि उसमें धुलियावाले सेठ सखारामजी बारह व्रत ग्रहण करनेवाले थे। मंडपको जमनाबहनने देखा। उन्होंने किसीसे कुछ पूछताछ किये बिना ही यह निश्चित कर लिया कि, यह तैयारी मेरे भाई छगनलालको दीक्षा देनेके लिए हो रही है। उन्होंने तत्काल ही बड़ोदे खीमचंदभाईको तार दे दिया कि,— शीघ्र ही पहुँचो। मिगसर वुदी (गुजराती कार्तिक वुदी) पंचमीके दीन छगनलालको दीक्षा दी जायगी।

खीमचंदभाईने तत्काल ही एक तार स्वर्गीय आचार्यश्रीको दिया कि,—छगनको दीक्षा न देना। और दूसरा तार पालीताना दर्बारको दिया कि,—अमुक साधुको रोको, वे मेरे भाई छगनको बगैर मेरी इजाजतके दीक्षा न दें।

पालीताना दर्बारने अपना कर्तव्य किया। एक रामपुरा

सूरिजी महाराजके पास आया और तारका अभिप्राय बतलाकर बोलाः—" आपको दर्बारमें आना होगा; यदि आप नहीं आसकते हों तो अपनी ओरसे किसी विश्वस्त मनुष्यको भेज दीजिए।"

उस समय वहाँ बड़ोदावाले सेठ गोकुलभाई, धूलियावाले सेठ सखारामभाई, भरूचवाले सेठ अनूपचंदभाई और खंभातवाले सेठ पोपटभाई ऐसे चार श्रावक मौजूद थे। वे बोले.—" चलो हम आते हैं।" कलकत्तावाले राय साहब बद्रीदासजी मुकीम भी उस समय यात्रार्थ आये हुए थे और वे खास पालीताना दर्बारके महेमान थे; महलोंहीमें ठहरे हुए थे। सभी उनके पास गये और सारा हाल उन्हें कह सुनाया।

राय साहब हमारे चरित्र नायकको साथ लेकर पालीताना दर्बारके पास पहुँचे। उन्होंने सत्य बात दर्बारको बताई और कहा कि—" किसीने दीक्षाकी झूठी अफवा उड़ादी है। जिस लड़केको दीक्षा देनेके विषयमें लिखा गया है वह आपके सामने खड़ा है।"

दर्बार बोलेः—" जब दीक्षा दी ही नहीं जाती है तब विशेष छानबीनकी हमें कोई जरूरत नहीं दिखती। हमारे पास एक आदमीने अर्जी भेजी उसकी जाँच करना हमारा कर्तव्य था। हमने जाँच की और हमें मालूम हो गया कि, बात ग़लत है। अगर दीक्षा देनेकी बात सच होती तो यह देखना हमारा फ़र्ज

था कि लड़का छोटी उम्रका तो नहीं है। मगर लड़केको देखनेसे और जाँचसे हमें यह निश्चय हो गया है कि, लड़का बड़ी उम्रका है और अच्छा पढ़ा लिखा होशियार भी। आप लड़केको लेजाइए और महाराज साहबसे अर्ज कीजिए कि, कष्टके लिए क्षमा करें।

चौमासा समाप्त हो गया। महाराज साहबका विहार पालीतानेसे होनेवाला था। जमना बहिनने आपको अपने साथ चलनेके लिए बहुत आग्रह किया मगर आप राजी न हुए। वे चली गईं। स्वर्गीय महाराजका वहाँसे विहार हुआ। हमारे चरित्रनायकने भी उनके साथ ही अपने बिस्तरे और पढ़नेके ग्रंथ उठाकर प्रयाण किया। क्रमशः विहार करते हुए आचार्य महाराज राधनपुर पधारे। आप भी साथ ही राधनपुर पहुँच गये।

इसी तरह करीब तेरह चौदह महीने गुजर गये। आपने दो बार दीक्षा लेनेका प्रयत्न किया और दोनों ही बार असफल हुए। खीमचंदभाईकी आशा दोनों ही बार सफल हुई। अब तीसरी बार इम्तहानका समय आया।

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ,
माकुरु यत्नं विग्रह संधि।

१. भावार्थ—हे जीव! यदि तू शीघ्र ही मोक्ष चाहता है तो शत्रु और मित्र, पुत्र और बंधुके साथ झगड़ा या मेल करनेका यत्न न कर; सबके साथ समानताका वर्ताव कर। (चर्पट पंजरी)

भव समचित्तः सर्वत्र त्वं,
वाञ्छस्यचिराद् यदि विष्णुत्वम् ॥

दुनिया है वह सय्याद कि सब दाममें इसके–
आ जाते हैं लेकिन कोई दाना नहीं आता ।[1]

हमारे चरित्र नायक तो कबसे मोक्षके अभिलाषी थे । उस मार्ग पर चलनेका यत्न करते थे; कवि जौकके कथनानुसार आप दाना बनकर इस दुनियाकी जालमें फँसना नहीं चाहते थे ।

लगभग दस महीने तक आप स्वर्गीय महाराज साहबके पास रह चुके थे । साधुसंगतिसे और श्रावकोंके घर भोजन करने जाया करते थे इससे दिलकी झिझक मिट गई थी । एक तो साधर्मी भाई और दूसरे दीक्षा लेनेका उम्मेदवार; श्रावक लोग सोचते हमारा धनभाग है कि, हमें ऐसे सुपात्रको भोजन करानेका अवसर मिलता है । वे बड़े आदर और आग्रहके साथ आपको अपने यहाँ ले जाते और प्रेमके साथ भोजन कराते । स्त्री पुरुष आपकी प्रशंसा करते,–तुम धन्य हो ! तुम्हारा जीवन धन्य है ! आप सिर झुका लेते । लोग कहते,– कैसे विनयी हैं ? इनसे शासनकी प्रभावना होगी ।

इतना होनेपर भी आपके दिलमें बेचैनी थी । आपका

१. संसार ऐसा शिकारी है कि, सभी उसकी जालमें फँस जाते हैं; कोई दाना-बुद्धिमान ही उसमें नहीं आता है ।

मन आपसे बार बार पूछता,—इस तरह कबतक रहोगे? कोई जवाब न मिलनेसे, अन्तरात्मामें एक दर्द पैदा होता। इस स्थितिका अन्तलानेके लिए आपका मन इसी तरहसे तड़पताथा जिस तरहसे पानीमें डूबनेवाला आदमी बाहर निकलनेके लिए तड़पता है।

वोह कौनसा उकदा[1] है जो वाँ हो नहीं सकता?
हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता?

× × × ×

जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी ढूँढन गई, रही किनारे बैठ॥

आप हमेशा सोचते कि,—किस तरह इस बातका फैसला हो? किस तरह मैं इस झंझटसे निकलूँ? एक दिन इसी तरह सोचते सोचते आपके चहरेपर प्रसन्नता छा गई। आप सहसा बोल उठे,—हाँ यह मार्ग बहुत अच्छा है। एकान्तमें बैठकर आपने तीन पत्र लिखे। उनमेंसे एक खीमचंदभाईके नाम था जिसे रजिस्ट्री कराके भेजा; दूसरा सेठ हीराभाई ईश्वरदासके नामका था और तीसरा था सेठ गोकुलभाई दुल्लभदासके नामका। दोनों डाकमें डाल दिये। पत्रों में लिखा था कि,—अमुक दिन मेरी दीक्षा होनेवाली है। आप दीक्षा महोत्सव पर अवश्य पधारें।

१ कठिन बात; २ हल होना।

पत्र पाते ही खीमचंदभाई राधनपुर जानेको तैयार हो गये । हीराचंदभाईने उन्हें रवाना होते समय समझाया, देखना वहाँ कुछ गड़बड़ न करना । छगनको समझाना । यदि वह आवे तो ले आना न आवे तो उसकी मर्जी । खीमचंद भाई अपने साथ अपनी भूआ दीवाली बहिनको भी लेते गये । उस समय राधनपुर तक रेल नहीं थी । दूसरे स्टेशन पर उतरकर जाना पड़ता था । खीमचंदभाई जब रेलसे उतरे तो उस समय वहाँ उन्हें कोई गाड़ी आदि न मिले । आपने दीक्षाकी जो मिति लिखी थी उसमें दो दिन ही बाकी रह गये थे । तत्काल ही राधनपुर पहुँचना खीमचंदभाईके लिए जरूरी था । इसलिए ऊँट पर ही सवारी करके राधनपुर पहुँचे । क्योंकि उस समय वही मिला था । कभी ऊँट पर चढ़े न थे इसलिए उन्हें रास्तेमें बड़ी तकलीफ हुई ।

राधनपुरमें ऊँटसे उतरते ही खीमचंदभाई सीधे स्वर्गीय महाराज साहबके पास पहुँचे; चरणवंदना की हमारे चरित्र नायकका पत्र सामने रक्खा और संक्षेपमें सब हाल कहा । कहते कहते वे रो पड़े,—"महाराज साहब मेरा छगन मुझे दे दीजिए ।" मोह कैसा प्रबल होता है ? सांसारिक संबंध कितने सुदृढ होते हैं ? धन्य हैं वे नर जो मोहममत्वका त्याग कर आत्मकल्याणमें लगते हैं ।

आचार्यश्रीने खीमचंदभाईको समझाकर ढारस बँधाया ।

इतनेहीमें सीरचंदभाई, मोहनलाल पारख, गोड़ीदासभाई आदि कुछ राधनपुरके मुखियालोग आगये । उन्होंने भी खीमचंदभाईको धीरज दिया और कहाः–" हमारे घर चलो स्नान पूजा करके जीमो फिर शान्तिसे बातें करना । यहाँ तो कोई दीक्षाकी बात तक नहीं जानता । राधनपुर जैसे शहरमें भी दीक्षा क्या चुपचाप ही होगी ? जब होगी तब बड़ी धूमके साथ । महोत्सव करनेवाले तो हम लोग ही हैं । "

खीमचंदभाईने आपकी चिट्ठी सबको दिखाई और कहाः– " देखिए यह छगनकी चिट्ठी है । "

आत्मारामजी महाराजने फर्मायाः–" खीमचंदभाई, तुम्हें हमारा विश्वास है या नहीं ? "

खीमचंदभाई बोलेः–" महाराज ! आपके वचनोंपर मुझे पूरा विश्वास है । आप उन साधुओंमेंसे नहीं हैं जो छोकरोंको बहकाकर भगा देते हैं और फिर चुपकेसे दीक्षा दे देते हैं । मगर मुझे यह विचार आता है कि, आपने सूचना न दी और छगनने दीक्षाकी सूचना क्यों दी ? "

आचार्यश्रीने फर्मायाः–" भोले ! इस चिट्ठीमें दीक्षाका जो दिन लिखा है वह मुहूर्तका हो ही नहीं सकता । मीनार्कमें कहीं दीक्षा हुआ करती है ? जान पड़ता है छगनहीने अपने मनसे यह चिट्ठी लिख दी है । अच्छा बुलाओ छगनको ! "

आप बुलाये गये । आप आचार्यश्रीके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये । महाराजने पूछाः—" पत्रकी क्या बात है ? "

आप नम्रता पूर्वक बोलेः—" कृपानाथ ! अपराध क्षमा कीजिए । मुझे यह विश्वास हो गया था कि, जबतक खीमचंद-भाईकी तरफ़से सफ़ाई न हो जाय तबतक आपके चरणोंमें अर्ज करना फिजूल है । कारण,—आप खीमचंदभाईको फ़र्मा चुके हैं कि, जबतक तुम इजाजत न दोगे हम छगनको दीक्षा न देंगे । खीमचंदभाई आपके इस वचनपर निश्चिन्त होकर बैठे हैं । उन्होंने सोच लिया है कि, न मैं इजाजत दूँगा और न महा-राज साहब दीक्षा देंगे । ऐसी हालतमें छगन व्याकुल होकर आप ही घर आजायगा । "

इसबातको सुनकर खीमचंदभाई सहित सभी हँस पड़े । आचार्य महाराज भी मुस्कुराये और बोलेः—" तो खीमचंद-अब तुझे इजाजत दे देंगे ? "

आपबोले.—" कृपालो !

स्थानंप्रधानं न बलप्रधानं ।

गरज बुरी बला है । गरज मुझे है खीमचंदभाईको नहीं । मैंने सोचा,—खीमचंदभाई अपने आप तो फैसला करेंगे नहीं, इसलिए मैंने ही फैसला करा लेना स्थिर किया । बड़ोदेमें ये अपनी इच्छानुसार कर सकते थे । इसलिये मैंने इन्हें यहाँ बुलानेकी तरकीब सोची । मुझे विश्वास था कि आपके सामने खीमचंदभाई-

की सोई हुई आत्मा जरूर जागृत होगी और फैसला मेरे हक़में होगा। बड़ोदेमें तो इन पर अनेक पानी चढ़ानेवाले हैं मगर आपके क़दमोंमें पहुँच कर तो चढ़ा हुआ पानी भी उतर जायगा। इसी लिए आपको न बताकर इनके पास पत्र भेज दिया। पत्रकी रजिस्ट्री इसलिए करा दी थी कि, यहाँ आ जायँगे तो ठीक ही है वरना ये फिर यह बहाना न कर सकेंगे कि मुझे पत्र मिला ही नहीं। अच्छा हुआ कि ये आ गये। अगर न आते तो मैं आपसे अर्ज करता कि,–मैंने इस तरहका पत्र भेजा है, मगर वे नहीं आये। न कुछ लिखा ही। इसलिए उनका मौनावलंबन ही एक तरहकी इजाजत है। कहा है कि—

'नानुपिद्धमनुमतम्।'

इसलिए आप मुझे दीक्षा दे दीजिए। मैंने यह भी स्थिर कर लिया था कि, यदि आप मेरी प्रार्थना अस्वीकार करेंगे तो मैं श्रीसंपतविजयजी[१] महाराजकी तरह दीक्षित होजाऊँगा।"

१. शान्तमूर्ति मुनिमहाराजश्री १०८ श्रीहंसविजयजी महाराजके परम भक्त सुशिष्य पंन्यासजी महाराज श्रीसंपतविजयजी पाटनके रहनेवाले थे। इनका गृहस्थ नाम वाडीलाल था। ये अपनी माता आदिको समझा कर दीक्षा लेनेको उद्यत हुए। बड़ोदेमें दीक्षा महोत्सव होना स्थिर हुआ। किसीके बहकानेसे इनकी माताने दीक्षामें रुकावट डाल दी। इन्होंने माताको समझा दिया कि अच्छा मैं दीक्षा न लूँगा। माता घर चली गई। इन्हें मालूम था कि, माताकी इजाजतके बिना हंसविजयजी महाराज हरगिज दीक्षा न देंगे। कारण आत्मारामजी महा-

महाराज साहबने खीमचंदभाईसे कहा:—" क्यों भाई सुन लिया ? देखो तुम भी श्रावक हो। तुम्हें कुछ सोच विचार कर लेना चाहिए।

' अति सर्वत्र वर्जयेत् । '

किसी बातका अन्त लेना अच्छा नहीं होता। इसने अपनी अन्तिम इच्छा भी प्रकट कर दी है। क्या अब भी तुम सोचते हो कि यह वापिस घर जायगा ? "

सीरीचंद सेठ बीचहीमें बोल उठे:—" कृपानाथ ! अभी इन्हें भोजनादिसे निश्चिन्त हो लेने दीजिए बादमें शान्तिके साथ सब कुछ निश्चित किया जायगा। उठिए खीमचंद सेठ ! भोजनके लिए चालिए। "

खीमचंदभाई बोले:—" छगनको भी साथमें ले चलो। आज दोनों भाई साथ ही भोजन करेंगे। "

आपने कहा:—" आज चर्तुदशी है। मेरे उपवास है। मैं आकर क्या करूँगा ? "

खीमचंदभाई बोले:—" कुछ खाना मत। मेरे सामने बैठा ही रहना। मुझे संतोष होगा। "

राजके सिंघाड़ेका यही दस्तूर है। इसलिए आप कुछ दिनके बाद मातर गाँवमें गये और वहीं आपने सच्चे देव श्रीसुमतिनाथ स्वामीके सामने मुनिवेष धारण कर लिया। माताको समाचार मिले। वह दुखी होती हुई आई और इन्हें दीक्षा लेनेकी इजाजत दे दी। तब गुरुमहाराजने इन्हें संस्कारोंद्वारा अपनाया।

आपने कहाः—" अच्छी बात है। चलिए मैं तैयार हूँ।"

सब उठे। अपने अपने घर गये। आप भाईके साथ पारख मोहन टोकरसीके घर गये। खीमचंदभाईने स्नान पूजन करके भोजन किया। दोनों भाई एक जगह बैठकर बातें करने लगे। खीमचंदभाई बोलेः—" मैं समझ गया कि तू करेगा अपना धारा ही। मगर छः सात महीने और ठहर जा। चौमासे बाद खुशीसे दीक्षा ले लेना।"

आपने कहाः—" छः सात महीने ही क्यों मैं तो छः सात बरस ठहर सकता हूँ। मगर आप मुझे इस बातका निश्चय करा दीजिए कि मैं इन छः सात महीनोंमें मरूँगा नहीं।"

खीमचंद०—" क्या मुझे भविष्यका ज्ञान है सो मैं निश्चय करा सकूँ ?"

आप—" जब आप मुझे यह निश्चय नहीं करा सकते हैं तब मैं कैसे आपके कहनेसे अपना स्वार्थ-आत्मलाभ-बिगाड़ दूँ ?"

' स्वार्थ भ्रंशो हि मूर्खता।'

मैं तो अब देर न करूँगा। यदि कालने अचानक ही आ दबाया तो मेरे मनोरथ मनमें ही रह जायँगे।

काल करंतो आज कर, आज करंतो अब्ब।
पल्में परले होयगी, फेर करेगो कब्ब॥

मैं अब देर करना नहीं चाहता। कालका कुछ भरोसा नहीं। आप कृपा करके आज्ञा दे दीजिए। इतना ही नहीं आप अगुवा बनकर मुझे दीक्षा दिला दीजिए। आपने अहम-

दावादमें गुरु महाराजसे कहा भी था कि,—थोड़े समयतक आप इसको अपने पास रखकर पढ़ाइए; फिर समय आनेपर मैं खुद ही इसको दीक्षा दिला दूँगा । मैं समझता हूँ आप यह बात अबतक भूले न होंगे ? महाराज साहबने अपने वचनानुसार अबतक मेरी दीक्षाका नाम भी नहीं लिया है । अब समय आ गया है कि, आप अपना वचन पालिए और अपनी धर्मज्ञता और उदारताका परिचय दीजिए । ”

पासहीमें भूआजी बैठी हुई थीं । वे बोलीं:—“ खीमा ! देख तो किस तरह बातोंके तड़ाके लगा रहा है ! है जरा भी लाज शरम ! आगे कभी तेरे सामने बोला भी था ? तू अब इसको घर ले जाकर क्या करेगा ? इससे क्या तेरा दरिद्र दूर होगा ? उठ ! चल अपने घर चलें । ”

आप तो यह चाहते ही थे कि, ये लोग राजीखुशी या नाराज होकर किसी भी तरहसे घर चले जायँ और आप अपने साध्यको सिद्ध करें—अपनी इच्छानुसार दीक्षा ले लें । इसलिए आप इस गीदड़भपकीका कुछ जवाब न देकर मौन रहे । कहा है—

‘ मौनं सर्वार्थसाधकम्[1] ’

थोड़ी देर सभी चुप एक दूसरेकी तरफ देखते रहे फिर आप उठ खड़े हुए और यह कहते हुए चले गये कि, प्रतिक्रम-

---

१ मौन सारे कामोंको सिद्ध करनेवाली है ।

णका समय हो गया, अब मैं जाता हूँ। भूआ भतीजे बैठे सलाह करते रहे कि, अब क्या करना है?

राधनपुरमें गोड़ीदासभाई अच्छे जानकार और धर्मके कामोंमें मुखिया समझे जाते थे। उस समय वहाँ जितनी इनकी बात मानी जाती थी उतनी साधु मुनिराजोंकी भी नहीं मानी जाती थी। आचार्य महाराजको, ये ही कई मुखियोंके साथ, माँडलसे विनती करके ले गये थे। इसलिए सारे राधनपुरमें अपूर्व उत्साह फैला हुआ था। इन्होंने खीमचंदभाईको समझाया, उत्साहित किया और कहाः—

"यह तो छगनकी बातोंसे निश्चित हो गया है कि, वह अब घर लौटकर न जायगा, चाहे तुम कुछ भी कर लो। तब व्यर्थ ही अन्तराय कर्म क्यों बाँधते हो? अपने हाथहीसे यह शुभ कार्य करके कस्तूरीकी दलाली क्यों नहीं लेते?"

खीमचंदभाईने जवाब दियाः—"गोड़ीदासभाई! मैं इन बातोंको समझता हूँ। आचार्य महाराज बड़ोदे पधारे तबसे मेरी परिणति भी बदल गई है। मैं धर्मको कुछ भी नहीं समझता था, मगर आचार्य महाराजकी कृपासे और छगनकी प्रवृत्तिसे मेरे हृदयमें भी धर्मभावनाएँ बढ़ती जा रही हैं; मगर वे इतनी नहीं बढ़ीं कि मैं अपनी दाहिनी भुजाको—अपने प्यारे भाईको साधु हो जाने दूँ।"

गोडी०—"तुम्हारा कहना सच है। दुनियामें मोह बड़ा ही जबर्दस्त है। सारा संसार ही मोहके आधीन है।

'[1]पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ।'

मगर मोहममत्वमें—माना हुआ संसारी सुख भी उस समय होता है जब दोनों तरफसे एकसा प्रेम हो—

'महोब्बतका मजा तब है, दोनों हों बेकरार,
दोनों तरफसे हो आग बराबर लगी हुई ।'

मगर यहाँ तो उल्टा ही हिसाब है । तुम मेरा छगन मेरा छगन करते फिरते हो और छगन तुम्हारा भाव भी नहीं पूछता । तुम्हें छगनकी रट है और छगनको अपने स्वार्थकी—अपनी मुक्तिकी । ऐसी दशामें तुम मोह रखकर क्या करोगे ? सिवा कर्मबंधनके तुम्हारे हाथ क्या आयगा ?"

खीमचंदभाईके मनमें बड़ा द्वंद्व मचा हुआ था । उनकी तो ऐसी हालत हो रही थी,

'ठहरे बन आती है न भागे;
तेरी जबर्दस्ती के आगे !'

न छगन घर जानेको तैयार था न उनका मन छगनको दीक्षाकी आज्ञा देना चाहता था । जबर्दस्ती भी कहाँ तक की जाय ? आखिर खीमचंदभाईके मोहका पर्दा हट गया । उनको संसार विस्तीर्ण दिखाई दिया । उन्हें साफ मालूम हुआ कि, छगन मेरे कुटुंबके घेरेमें रहनेके लिए नहीं जन्मा है । इसका दायरा बड़ा है । यह जनसमाजके लिए जन्मा है । इसका कुटुंब प्राणिमात्र है—

१ मोहरूपी मदिरा पीकर सारा संसार उन्मत्त—पागल—हो रहा है ।

' मरना भला है उसका जो अपने लिए जिए।
जीता है वह जो मरचुका संसारके लिये ॥'

मैं क्यों इसे अपने बंधनमें बाँधकर रखनेका यत्न करूँ? इससे हमारा कुटुंब उज्ज्वल होगा। गोड़ीदासभाईकी बातोंने खीमचंदभाईकी भावनाओंको दृढ बना दिया। वे कर्मबंधनकी दलालीके बदले धर्मके–मुक्तिके दलाल हो गये। वे बोलेः– " मैं आपका उपकार मानता हूँ कि, आपने मुझे यथार्थ बातें कहीं और मेरे मनको दृढ बनाया। इसी समय आचार्य महाराजके पास चलिए और मेरी ओरसे निवेदन कीजिए कि, छगनको दीक्षा दे दीजिए। मैं राजी हूँ। यदि कोई मुहूर्त पासहीमें आता हो तो मैं इसको दीक्षा दिलाकर ही जाऊँगा। मैं महाराज साहबसे ये बातें न कह सकूँगा। मेरा हृदय भर आयगा।"

गोड़ीदासभाई बोलेः–" अब तो रात बहुत चली गई है। ग्यारह बजे होंगे। महाराज साहब आराम करते होंगे। इस समय उनके आराममें खलल डालना अच्छा नहीं है। सवेरे चलेंगे।"

खीमचंदभाईने कहाः–" महाराज साहबने अबतक आराम न फर्माया होगा। और यदि फर्माया ही होगा तो भी वे दयालु हैं, हमारे जानेका खयाल न करेंगे। मगर मैं इस खुशीकी ख़बरको महाराज साहबके कानोंतक पहुँचाये बगैर चैनसे न सो सकूँगा। इसलिए जल्दीसे महाराज साहबके

पास चलिए और बधाई दीजिए। फिर आप अपने घर चले जाइए, मैं यहाँ लौट आऊँगा।"

मोहन पारख पासमें बैठे ऊँघ रहे थे। वे खीमचंदभाईकी न्यायसंगत बातें सुनकर प्रसन्न हुए और बोलेः—"गोड़ीदास-भाई! खीमचंदभाई ठीक कह रहे हैं। तुम इनके साथ जाओ। मैं जेसंगको साथ भेजता हूँ। तुम फिर घर चले जाना और वह इन्हें यहाँ ले आयगा।"

मोहन पारखका लड़का जेसंग लालटेन उठाकर आगे चला, और दोनों उसके पीछे। तीनों रत्नत्रयकी—ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी—दलाली करने उपाश्रयमें पहुँचे।

आचार्य महाराज अभी ही लेटे थे। उनके कानोंमें त्रिकाल वंदनाकी आवाज पहुँची। आचार्य महाराजने धीरेसे पूछाः—"श्रावकजी इस वक्त?"

गोड़ीदास बोलेः—"कृपानाथ! तकलीफ दी, माफ कीजिए। खीमचंदभाई कुछ जरूरी अर्ज करना चाहते हैं। इसलिए अभी हाजिर हुए हैं।"

आचार्य महाराज उठ बैठे। तीनों सामने बैठ गये। संकेतानुसार गोड़ीदासभाईने सारी बातें कह सुनाईं। सुनकर आचार्य महाराजने खीमचंदभाईको शाबाशी दी और कहाः—"अच्छी बात है। तुम चाहते हो ऐसा ही होगा। अभी रात ज्यादा चली गई है। जाकर शान्तिसे आराम करो। सवेरे ज्योतिषीको बुलाकर तुम्हारे सामने ही मुहूर्त नक्की कर लिया जायगा।"

सब वंदना कर अपने अपने घर गये। आचार्य महाराजने भी आराम किया।

सवेरे ही आप प्रतिक्रमण कर आचार्य महाराजको वंदना करने गये। उनके चहरे पर प्रसन्नता थी। वे आपकी पीठपर हाथ फेरते हुए बोलेः-"ले बचा! तेरी मनोकामना पूरी होगई। रातको खीमचंदभाई आकर इजाजत दे गये हैं।"

यह सुनकर आपको जो आनंद हुआ उसका वर्णन करनेकी शक्ति इस लोहेकी कलममें कहाँ?

मुनि महाराज श्रीहर्षविजयजीको, आचार्य महाराजने फ़र्मायाः-"भाई! तेरे चेलेकी दीक्षाका मुहूर्त्त दिखलाना है। किसी श्रावकको कहकर जो ज्योतिषी श्रीसंघका काम करता हो उसे बुला लेना।"

व्याख्यान हुआ। फिर भोजनके बाद शुभ चौघड़ियेमें एक श्रावक ज्योतिषीको ले आया। और श्रावक भी एकत्रित हो गये। श्रीसंघके नेताओंने खीमचंदभाईको अगुआ बनाकर शिष्टाचारपूर्वक ज्योतिषीसे मुहूर्त पूछा। ज्योतिषीने बहुत देर तक देखभाल करनेके बाद वैशाख सुदी त्रयोदशीका दिन दीक्षाके लिए शुभ बताया। लग्नकुण्डली भी उसने उसी समय बना डाली। वह बोलाः-"यद्यपि खीमचंदभाई दीक्षाका मुहूर्त जल्दी चाहते हैं, मगर इससे जल्दी अच्छा मुहूर्त एक भी नहीं है। इस मुहूर्तमें जो व्यक्ति दीक्षित होगा उसे संसारमें

यश मिलेगा, लाखों लोग उसे पूजेंगे और वह किसी उच्च पदको प्राप्त करेगा।"

आचार्यश्रीने भी कुंडली देखी और कहाः—"ज्योतिषीजी-का कहना वास्तवमें सत्य है। क्यों खीमचंदभाई तुम क्या कहते हो?"

खीमचंदभाई बोलेः—"आपकी समझमें जो बात ठीक जचे वही कीजिए। चार दिन बादका मुहूर्त्त हो तो कोई हर्ज नहीं मगर होना चाहिए वह बहुत बढ़िया। जब आप, ज्योतिषीजी और अमीचंदजी इसीको ठीक समझते हैं तो यही रहने दीजिए। मगर खेद है कि मैं इससे लाभ न उठा सकूँगा। करीब एक महीनेका अन्तर है और मेरे पास सरकारी ठेका है, इसलिए इतने समयतक मैं यहाँ नहीं रह सकता। समय आनेपर आप खुशीसे दीक्षा दीजिए। यदि मौका मिलेगा और सरकारसे छुट्टी पासकूँगा तो उस समय जरूर आऊँगा। मैंने कुछ अनुचित व्यवहार किया हो; मन, वचन या कायसे मैंने किसी तरहकी आपको तकलीफ दी हो; आपका मन दुखाया हो तो उसके लिए आप मुझे क्षमा करें। मैं अज्ञानी हूँ। मेरी बातोंका खयाल न करें।"

खीमचंदभाईका हृदय भर आया। उन्होंने महाराज साहबके चरण पकड़ लिए। आचार्यश्रीने उन्हें उठाया और मधुर शब्दोंमें कहाः—"खीमचंदभाई! तुमने बहुत बहादुरीका काम किया है। तुम निकट भव्य जीव हो। मैंने कइयोंको दीक्षा दी

है, मगर यह पहला ही अवसर है कि दीक्षा लेनेवालेको इस तरह आनंद और उत्साहसे आज्ञा मिली हो । तुमने शास्त्रोंके वचनोंको सत्य कर दिखाया है । तुम्हारा भाई होनहार है । उससे जैनधर्मकी प्रभावना होगी । ”

खीमचंदभाईने नम्रतासे कहाः—“ गुरुदेव ! मैं यही चाहता हूँ कि, आपकी वाणी सफल हो । मैं अपना प्यारा भाई,— अपनी दाहिनी भुजा आपकी रक्षामें छोड़ता हूँ । उसे आप सदा अपने चरणोंमें रक्खें; कभी उसको अलग न करें । वह बालक है । उसका कोई गुनाह हो जाय तो आप दयालु क्षमा कर दें ।”

बोलते बोलते खीमचंदभाईकी आँखोंसे जल बह चला । आह ! आज भाईको छोड़ते कितना दुःख खीमचंदभाईको हुआ होगा ? भगवान महावीरके समान अवतारी, पुरुषोंके ज्येष्ठ बंधु नंदीवर्द्धनके समान ज्ञानियोंका हृदय भी जब दृढ न रह सका तो खीमचंदभाईका हृदय उमड़ आया, इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

फिर खीमचंदभाईने आपको छातीसे लगाया, आपके मस्तकको अश्रुजलसे अभिषिक्त किया और करुण कंठसे कहाः— “ छगन ! भाई !” खीमचंदभाईका गला रुंध गया । हमारे चरित्रनायक भी आँसू न रोक सके । आह ! कैसा करुण दृश्य था ? जितने साधु और श्रावक वहाँ मौजूद थे सबकी आँखोंमें पानी था । आज भाई भाईसे जुदा होता है । सबके हृदयमें प्रश्न उठता है—“ आज यदि हमारा भाई भी हमसे जुदा होता तो हमारी क्या हालत होती ? ”

आँसू हृदयको हल्का करने की एक अमोघ ओषधि है। जब खीमचंदभाई बहुत आँसू बहा चुके तब उनका मन स्थिर हुआ और वे बोलेः-" प्यारे भाई ! देखना जिस उत्साहसे आज दीक्षा लेनेको तैयार हुआ है वह उत्साह कभी ठंडा न पड़े। सदा शुद्ध चरित्र रखना। संयम पालनेमें शिथिलता न करना। कोई ऐसा काम न करना जिससे गुरुके या पिताके नामपर कलंक लगे। सदा गुरु महाराजकी आज्ञामें रहना और धर्मसेवा कर शासनको देदीप्यमान करना।"

आपने अपने भाईकी पदरज सिरपर लगाई और कहाः-" दादा ! आपके आशीर्वादसे मेरा उत्साह कभी शिथिल न होगा। मैंने आपको कष्ट पहुँचाया है इसके लिए मुझे क्षमा करें।"

खीमचंदभाईने एक बार और छगनको छातीसे लगाया। और हमेशाके लिए छगनको-छगन नामको विदा कर दिया। फिर वे साधुमंडलीको वंदना कर वहाँसे रवाना हुए। चलते समय खीमचंदभाईने कुछ रकम पारख मोहन टोकरसीको दी और कहाः-" सेठ ! यदि संभव होगा तो मैं दीक्षाके मौक़ेपर आजाऊँगा अन्यथा मेरी यह थोड़ीसी भेट दीक्षा महोत्सवमें शामिल करलेना।"

खीमचंदभाई वड़ोदे चले गये और दीक्षा महोत्सवपर न आसके।

वड़ी धूमसे दीक्षाकी तैयारी हुई। एक महीने तक लगातार

शादीमें निकलते हैं वैसे जुलूस निकलते रहे। अन्तमें आपको वह धन मिला जिसको पाकर किसी वैभवकी जरूरत नहीं रहती; वह चावी मिली जिससे अनन्त सुखभंडारके ऊपर लगा हुआ कर्म-ताला खुल जाता है; वह साधन मिला जिससे जीवनके अनन्त अशान्त वातावरण शान्त हो जाते हैं; वह तरणी–नौका मिली जिससे कर्णधार–मल्लाहके विना ही जीव भवसागरसे पार हो जाता है,–अर्थात आपको सं० १९४४ के वैशाख सुदी १३ के दिन शुभ मुहूर्तमें सूरिजी महाराजने दीक्षा दे दी। आपका नाम 'वल्लभविजयी' रक्खा गया। आप स्वर्गीय हर्षविजयजी महाराजके शिष्य हुए। जिस दिन आपने संयम लिया उस दिन आपको ऐसी प्रसन्नता हुई मानों दरिद्रको चिन्तामणि रत्न मिल गया; मानों वरसोंसे तपस्या करते हुए तपस्वीको आत्म साक्षात्कार हो गया।

दीक्षा लेनेके वाद आपका (सं० १९४४ का) पहला चातुर्मास राधनपुरहीमें सूरिजी महाराजके साथ हुआ। यहाँ आप चंद्रिका पूर्वार्द्ध तक ही पढ़ सके। कारण--कुछ अरसे तक तो आपको अपने समयका वहुत वड़ा भाग, साधुधर्मसे सम्बंध रखने वाली, ग्रहणशिक्षा और आसेवन शिक्षा रूप क्रियाएँ, सीखनेमें देना पड़ता था; फिर पं. अमीचंद्रजी अपने किसी खास कामके सवव अपने घर पंजावमें चले गये थे।

चातुर्मास समाप्त हुआ। आपने वहाँसे आचार्यमहाराज और अपने गुरु महाराजके साथ विहार किया। श्रीसंखेश्वरा-

जन्मा है जिसने 'वसुधैव कुटुंबकम्' कहावतको चरितार्थ किया है।

मॉंडलसे विहार करके आप श्रीसूरिजी महाराजके साथ अहमदाबाद पधारे। श्री सूरिजी महाराजकी आँखोंमें मोतिया हो गया था। उसे निकलवानेके लिए कुछ अधिक समयतक यहाँ रहना पड़ा।

\+ + + +

(सं० १९४५ से सं० १९५० तक)

श्रीसूरिजी महाराज अहमदाबादसे विहार करके महेसाना पधारे और सं० १९४५ का चौमासा वहीं किया। सूरिजी महाराजके साथ ही हमारे चरित्रनायकका भी दूसरा चौमासा वहीं हुआ। उस चौमासे में डॉ. ए. एफ. रुडॉल्फ हार्नलके साथ, अहमदाबाद निवासी सेठ मगनलाल दलपत भाईकी मारफत, पत्रव्यवहार शुरू हुआ। ये डॉक्टर रॉयल एशियाटिक सोसायटीके एक चुनंदा कार्यकर्त्ता थे। पाठकोंको यह मालूम है कि, श्रीसूरिजी महाराजके पत्रव्यवहारका काम प्राइवेट सेक्रेटरीकी तरह, दीक्षा होनेके पहलेहीसे, आपको पालीतानेमें मिल गया था। वह काम उस समय भी आपही करते थे। डॉक्टर महाशयके जो प्रश्न आते थे उनके उत्तर पेन्सिलसे लिख कर श्रीसूरिजी महाराज आपको दे देते थे। आप उसकी स्याहीसे सुंदर अक्षरोंमें नकल कर देते थे।

हो गई। सच है भक्ति कभी निष्फल नहीं होती। इसी लिये तो श्री १००८ श्रीमानतुंगाचार्य महाराज, भगवान श्री आदिनाथकी स्तुति करते हुए भक्तामरके दसवें काव्यमें लिखते हैं १:—

नात्यद्भुतं भुवनभूषणभूत नाथ,
भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभिष्टुवंतः
तुल्या भवंति भवतो ननु तेन किंवा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥

इस चौमासेहीमें आपको, यद्यपि व्यवहारसे नहीं तथापि निश्चय से,—आचार्यश्रीने पढ़ानेका काम करनेकी आज्ञा देकर, उपाध्याय पदवी प्रदान कर दी। इसलिए आपको अध्ययन करते हुए भी उपाध्यायका यानी अध्यापनका काम करना पड़ता था। झींझुवाड़ानिवासी दीपचंद भाई; दशाड़ानिवासी वर्द्धमानभाई, पाटननिवासी वाडीलालभाई और अहमदावादनिवासी मगनलालभाई ये चारों सज्जन दीक्षालेनेकी अभिलाषासे श्रीसूरिजी महाराजके चरणोंमें उपस्थित हुए थे। इन्हें आप जीवविचार, नवतत्त्वादि प्रकरण और व्याकरण पढ़ाते थे। स्वयं इस प्रकार काममें लगे रहने पर भी आपने वृद्ध मुनिराज श्री १०८ श्री

१—हे नाथ! हे जगतके भूषण! आपकी स्तुति करनेवाले-आपके भक्त-यदि आपके ही सत्य गुणोंसे आपके समान हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। वह स्वामी किस कामका है जो अपनी संपत्तिसे निजाश्रितोंको अपने समान नहीं बना लेता है?

तीविजयजी (४) वाड़ीलालजीका श्रीलब्धिविजयजी (५) मगनलालजीका श्रीमानविजयजी (६) जयचंदजीका श्रीजसविजयजी (७) अनंतरामजीका श्रीरामविजयजी । प्रारंभके तीन १०८ श्रीहर्षविजयजी महाराजके, चौथे १०८ श्रीहीरविजयजी महाराजके पाँचवें १०८ श्रीप्रेमविजयजी महाराजके, छठे, उस समय मुनि और इस समय आचार्य श्री १०८ श्रीविजयकमलसूरिजी महाराजके और सातवें १०८ श्रीसुमति विजयजी उर्फ़ स्वामीजी महाराजके शिष्य हुए।

पालनपुरसे विहार करके आचार्य महाराज पाली (मारवाड़) पधारे। आप भी आचार्यश्रीके साथ ही आबूजी पंचतीर्थी आदि तीर्थोंकी यात्रा करते हुए पाली पहुँचे। पंच तीर्थीकी यात्रा करने जाते हुए मार्गमें वाली आता है। वहाँ रातको आपने जुबानी ही उपदेश दिया और दूसरे दिन नाडलाईमें व्याख्यान वाँचा। श्रावकोंने आपके व्याख्यानोंको बहुत पसंद किया। ये ही दोनों स्थान हमारे चरित्रनायकके प्रथम–उपदेश स्थान हैं। पालीमे आचार्यश्री ने आपको एवं ज्ञानविजयजी, लब्धिविजयजी, मानविजयजी, शुभविजयजी, मोतीविजयजी और जशविजयजी ऐसे सात साधुओंको छेदोपस्थापनीय चारित्र दिया अर्थात् वड़ी दीक्षा दी। यह दीक्षा सं० १९४६ के वैशाख सुदी १० या ११ को श्रीनवलखा पार्श्वनाथजीके मंदिरमें हुई थी।

प्रमोदविजयजी महाराज और मुनि महाराज श्री १०८ श्री अमरविजयजी महाराजके पाससे चंद्रिकाके उत्तरार्धका दसगणों पर्यंत अध्ययन कर लिया।

महेसानासे विहार करके श्रीसूरिजी महाराज वडनगर, विसनगर होते हुए श्रीतारंगाजी तीर्थकी यात्रा करनेके लिए खेरालु पहुँचे। यहाँ गोधानिवासी श्रीयुत मगनलाल भाई, दीक्षालेनेके इरादेसे आये। आचार्यश्रीने अगले चार विद्यार्थियोंके साथ इन्हें भी पढ़ानेके लिए आपको सौंप दिया। आप पाँचों विद्यार्थियोंको सस्नेह विद्या पढ़ाते रहे। आचार्यश्री तारंगाजीकी यात्रा करके विचरण करते और भक्तजनोंको उपदेशामृतका पान कराते हुए पालनपुर पहुँचे।

दीक्षालेनेके इच्छुक भव्य जीवोंको साथ देखकर पालनपुरके श्रीसंघने आचार्यश्रीसे प्रार्थना की कि, इन भाग्यशालियोंको आप यहीं पर दीक्षा दें। हम लोग दीक्षामहोत्सव कर आनंद मनायँगे और अपने आपको धन्य मानेंगे। आचार्यश्रीने संघकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। दीक्षामहोत्सव हो रहा था। उसी समय दो सज्जन दीक्षा लेनेकी अभिलाषासे और आगये। एक थे लीमडीनिवासी श्रीयुत जयचंद भाई और दूसरे थे श्रीयुत अनंतराम। दूसरे स्थानकवासी साधुपनेका त्याग करके आये थे। यहाँ आचार्यश्रीने सात सज्जनोंको सात भयोंकी मिटानेवाली दीक्षा दी। उनके नाम—(१) दीपचंदजीका श्रीचंद्रविजयजी (२) वर्द्धमानजीका श्रीशुभविजयजी (३) मगनलालजीका श्रीमो-

तीविजयजी (४) वाड़ीलालजीका श्रीलब्धिविजयजी (५) मगनलालजीका श्रीमानविजयजी (६) जयचंदजीका श्रीजसविजयजी (७) अनंतरामजीका श्रीरामविजयजी। प्रारंभके तीन १०८ श्रीहर्षविजयजी महाराजके, चौथे १०८ श्रीहीरविजयजी महाराजके पाँचवें १०८ श्रीप्रेमविजयजी महाराजके, छठे, उस समय मुनि और इस समय आचार्य श्री १०८ श्रीविजयकमलसूरिजी महाराजके और सातवें १०८ श्रीसुमति विजयजी उर्फ़ स्वामीजी महाराजके शिष्य हुए।

पालनपुरसे विहार करके आचार्य महाराज पाली (मारवाड़) पधारे। आप भी आचार्यश्रीके साथ ही आबूजी पंचतीर्थी आदि तीर्थोंकी यात्रा करते हुए पाली पहुँचे। पंच तीर्थीकी यात्रा करने जाते हुए मार्गमें वाली आता है। वहाँ रातको आपने जुबानी ही उपदेश दिया और दूसरे दिन नाडलाईमें व्याख्यान बाँचा। श्रावकोंने आपके व्याख्यानोंको बहुत पसंद किया। ये ही दोनों स्थान हमारे चरित्रनायकके प्रथम-उपदेश स्थान हैं। पालीमें आचार्यश्री ने आपको एवं ज्ञानविजयजी, लब्धिविजयजी, मानविजयजी, शुभविजयजी, मोतीविजयजी और जशविजयजी ऐसे सात साधुओंको छेदोपस्थापनीय चारित्र दिया अर्थात् वड़ी दीक्षा दी। यह दीक्षा सं० १९४६ के वैशाख सुदी १० या ११ को श्रीनवलखा पार्श्वनाथजीके मंदिरमें हुई थी।

योगोद्वहनकी क्रिया समाप्त होनेपर आचार्यश्री जोधपुर पधारे और आप अपने गुरुमहाराजके साथ पाली ही रहे। श्रीसूरिजी महाराजका चौमासा जोधपुरमें हुआ और आपका हुआ पालीमें। १०८ श्री हर्षविजयजी महाराजकी तबीअत उस समय खराब थी। इस लिए उनकी सेवा करनेके लिए किसी सेवापरायण साधुकी आवश्यकता थी। सूरिजी महाराज हमारे चरित्रनायकको इसके लिए सबसे ज्यादा योग्य समझकर अन्यान्य साधुओंके वहाँ होते हुए भी पाली ही छोड़ गये। इसलिए आपका सं० १९४६ का तीसरा चौमासा पालीमें हुआ। इस चौमासेमें कभी कभी आपको व्याख्यान भी वाँचना पड़ता था। पर्युषणमें तो आपहीको कल्पसूत्र वाँचना पड़ा था। यहीं आपने अपने गुरुमहाराजसे आत्मप्रबोध और कल्पसूत्रकी सुबोधिका टीकाका अध्ययन किया था। १०८ श्रीहर्षविजयजी महाराज बड़े ही शान्त और अध्ययन करानेमें अथक परिश्रम करने करानेवाले सच्चे उपाध्याय थे। आचार्यश्री (आत्मारामजी महाराज) के एक भी साधु ऐसे न होंगे जिन्हें इन्होंने सूत्राध्ययन न कराया हो। ये उपाध्याय पदके न होते हुए भी वास्तविक उपाध्यायका काम करते थे।

आप पालीमें थे इसलिए आचार्यश्रीको पत्रव्यवहार और अन्य लेखन के काममें बहुतसी असुविधा हुई। जो जरूरी पत्र होते थे उनका जवाब आचार्यश्री ही लिख देते थे, बाकीके

मसौदे बनाकर पाली हमारे चरित्र नायकके पास भेज दिया करते थे। उनकी आप नकल कर आचार्यश्रीके पास लौटा देते थे। इसी वर्ष आचार्यश्रीको, डॉक्टर ए. एफ. रुडाल्फ हॉर्नलके कहनेसे, गवर्नमेंटकी तरफसे ऋग्वेद भेटमें मिला था।

इस चौमासेमें आपने चंद्रिका समाप्त कर ली। थोड़ा अमर-कोश भी कंठ कर लिया। पालीके उपाश्रयमें एक ज्योतिर्विद् रहते थे। उनका नाम था अमरदत्त। जातिके पुष्करणा ब्राह्मण थे। हमारे चरित्रनायकने उनसे थोड़ा ज्योतिषका अभ्यास भी किया था।

चौमासा बीतनेपर आप अपने गुरुमहाराजके साथ पालीसे विहार करके ब्यावर होते हुए अजमेर पहुचे। आचार्यश्री भी जोधपुरसे विहारकर कापरड़ा तीर्थकी यात्रा करते हुए अजमेर पधारे। कापरड़ा तीर्थकी उस समयकी हालतमें और इस समयकी दशामें जमीन आसमानका अंतर है। उस समय इस तीर्थ स्थानकी दशा खराब हो रही थी, मगर आज वह वर्त्तमान आचार्य श्री १००८ विजयनेमि सूरिजी महाराजकी कृपासे चमन हो रहा है।

अजमेरमें उस समय आचार्यश्रीके साथ (१) मुनिमहाराज श्रीकुमुदविजयजी उर्फ छोटेमहाराज (२) मुनि महाराज श्रीकुशलविजयजी उर्फ बाबाजी महाराज (३) मुनि महाराज श्रीहर्षविजयी प्रसिद्ध नाम भाईजी महाराज (४) मुनि

महाराज श्रीहीरविजयजी (५) मुनि महाराज श्रीकमल विजयजी (६) मुनि महाराज श्रीसुमतिविजयजी प्रसिद्ध नाम स्वामीजी महाराज (७) मुनि महाराज श्रीअमरविजयजी, (८) मुनि महाराज श्रीप्रेमविजयजी (९) मुनि महाराज श्रीमाणिकविजयजी (१०) हमारे चरित्रनायक मुनि महा राज श्रीवल्लभविजयजी (११) मुनि महाराज श्रीज्ञान-विजयजी (१२) मुनि महाराज श्रीलब्धिविजयजी (१३) मुनि महाराज श्रीमानविजयजी (१४) मुनि महाराज श्रीजशविजयजी (१५) मुनिमहाराज श्रीशुभ-विजयजी तपस्वी, और (१६) मुनि महाराज श्रीमोती-विजयजी। इस तरह कुल सोलह साधु थे। अजमेर श्री-संघमें बड़ा उत्साह था। श्रीसंघने समवसरणकी रचना कराई और अठाई महोत्सवकर अपने आपको कृतकृत्य किया। आचार्यश्रीके साथ उपर्युक्त सभी साधुओंका एक ग्रूप लिया गया था। वह यहाँ दिया जाता है। इसमें आचार्य महारा-जके पीछे जो साधु खड़े हैं उनमें तीनकी संख्यावाला फोटो हमारे चरित्र नायक का है। यही आपका साधु पर्यायका प्रथम दर्शन है। ग्रूपसे जुदा भी हमने यह फोटो दे दिया है।

अजमेरसे विहार करके आचार्यश्री सपरिवार जयपुर पधारे। वहाँ बड़ी धूमसे स्वागत हुआ। अठाई महोत्सवके कारण कुछ समयतक यहाँ आचार्यश्रीको ज्यादा ठहरना पड़ा। यहाँ श्रीहर्ष विजयजी महाराजकी तबीअत फिर खराब

होगई। इस लिए हमारे चरित्रनायक और अन्य कुछ साधुओंको उनकी सेवाके लिए आचार्यश्रीने वहीं छोड़ा और आपने जयपुरसे विहार किया।

श्रीहर्षविजयजी महाराजकी तबीअत सुधर जानेपर उन्होंने दिल्लीकी तरफ विहार किया। उस समय उनके साथ हमारे चरित्रनायक, श्रीशुभविजयजी और श्रीमोतीविजयजी थे। तीनों सेवा भक्ति करते हुए उन्हें आरामसे दिल्ली ले गये।

दिल्लीमें सभी आचार्य महाराजके साथ हो गये। मगर आचार्यश्रीको पंजाबमें जाना था और भाईजी महाराजकी तबीअत अभीतक अच्छी नहीं हुई थी। दिल्लीमें हकीमोंका इन्तजाम भी अच्छा था इसलिए उन्हें इलाज करानेके लिए वहीं छोड़ कुछ साधुओंको उनकी सेवा शुश्रूषाके लिए रख आचार्यश्रीने वहाँसे विहार किया। रवाना होते समय श्रीसूरिजी महाराजने हमारे चरित्रनायकको—जो कि आयुमें उस समय सबसे छोटे थे और जिनपर उनकी खास कृपा भी थी—फर्मायाः—"दिल्लीमें अच्छे अच्छे हकीम हैं। यहीं तुम लोग भाईजीका इलाज कराना। इनकी सेवामें कमी न करना। ये आराम हो जायँ तब तुम हमसे आ मिलना। अपना चौमासा साथ ही होगा। यदि इनकी शारीरिक दुर्बलताके कारण यहीं चौमासा करना पड़ेगा तो भी कुछ हानि नहीं है। क्योंकि यहाँका श्रीसंघ तुम्हारी सेवा, भक्तिमें कुछ कमी नहीं करेगा। मैं जानता हूँ तुम तीनों ही (श्रीशुभविजयजी,

श्रीमोतीविजयजी और हमारे चरित्रनायक) इस देशसे अजान हो और बच्चे हो; मगर मुनि श्रीकमलविजयजी यहीं चौमासा करनेका इरादा रखते हैं। ये बड़े हैं और इस देशसे परिचित भी हैं इसलिए ये तुम्हारा खयाल रक्खेगें।"

आचार्यश्रीके विहारके बाद श्रीहर्षविजयजी महाराजकी व्याधि बढ़ गई। श्रावकोंने हकीम महमूदखाँ का:—जो दिल्लीहीमें नहीं बल्के सारे हिन्दुस्थानमें प्रख्यात थे—इलाज कराना प्रारंभ किया। हकीमजीने बड़े परिश्रमके साथ इलाज और मुनिराजोंने तनदेहीसे सेवा, शुश्रूषा की; मगर आईका उपाय क्या? जीवनके टूटे हुए धागेको कौन जोड़ सकता है? हकीम, डॉक्टर, वैद्य, यंत्र, मंत्र, तंत्रादि कोई कुछ काम नहीं आता। भाईजी महाराजकी तबीअत बिगड़ती ही गई।

पालीमें श्रीहर्षविजयजी महाराजकी तबीअत एक यतिजीके इलाजसे सुधर गई थी इसलिए श्रीसंघ दिल्लीने उन्हें बुलाया। यतिजीने उन्हें भली प्रकार देख भाल कर कहा:—"दवा और वैद्य साध्य रोगीके लिए उपयोगी होते हैं असाध्यके लिए नहीं। असाध्य वह होता है जिसकी जीवनडोरी सर्वथा जर जर हो जाती है; जिसका टिक रहना असंभव हो जाता है। मैं अपनी साठ बरसकी उम्रके अनुभवसे कह सकता हूँ कि, अब इनका इलाज करना मानों राखमें घी उँडेलना है।"

जंडियाला गुरु (पंजाब) के वैद्य सुखदयालजी भी आचार्यश्रीके आदेशसे वहाँ आये थे। उनकी आयु करीब सत्तर वर्षके होगी। उन्होंने भी यही सलाह दी बल्के यहाँ तक कहा कि,–" मुझे गुरु महाराज श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरि महाराजकी यह आज्ञा है कि:–यदि तुम्हारे ध्यानमें यह बात बैठ जाय कि साधु अब बचेंगे नहीं तो तुम तत्काल ही पासके साधुओंको सूचित कर दो, ताके वे लोग अपनी धार्मिक क्रियाओंका प्रबंध कर लें। " फिर उन्होंने हमारे चरित्रनायककी तरफ मुखातिब होकर कहा:–" मैं जानता हूँ, ये आपके गुरु हैं। आपको जरूर रंज होगा; मगर मैं भी इनका सेवक हूँ मुझे भी रंज होता है तो भी आपका तथा मेरा यह कर्तव्य है कि, हम इनका अन्त समय सुधरे वह काम करें। मेरी बातका विश्वास कीजिए कि, ये आजकी रात न निकालेंगे। यदि रात निकल गई तो कोई खतरा नहीं है। "

भाईजी महाराज इनकी बातें सुन रहे थे। वे बोले:–" वल्लभ! सुखदयालजी और यतिजी ठीक कहते हैं। अब आखिरी समय आ पहुँचा है। मैंने मनमें संथारा (अभिग्रह) ले लिया है। तुम किसी तरहकी चिन्ता न करो। " फिर उन्होंने विधिपूर्वक, आलोचना, निंदा, देववंदन, गुरुवंदन आदि किया; तब–' जइ मे हुज्ज पमाओ इमस्स देहस्स ' इत्यादि और–' चत्तारि मंगलं ' आदि पाठोचार द्वारा

चारों शरण धारण किये । 'खामेमि सव्वजीवे' गाथा पढ़कर सबसे क्षमा प्रार्थना की और तब 'अरिहंतो मह देवो' आदि गाथाको पढ़ते हुए पंचपरमेष्ठि नमस्कार मंत्रके ध्यानमें लीन हो गये । ऐसे लीन हुए कि, फिर वह ध्यान न टूटा । उनका जीवनहंस इस भौतिक-औदारिक शरीरका त्यागकर हमेशाके लिए चला गया । अर्थात् सं० १९४७ के चैत्र सुदी १० ता० २१-३-१८९० सोमवारके दिन १०८ श्रीहर्षविजयजी महाराजका स्वर्गवास हो गया । दिल्लीके श्रीसंघने दूसरे दिन यानी चैत्र शुक्ल ११ के दिन बड़ी धूम धामके साथ उनके शरीरका अग्निसंस्कार किया । दिल्लीमें लाल किलेके पास बाजा बजानेकी किसीको इजाजत नहीं है मगर उस दिन इजाजत मिल गई ।

जिस समय उनका स्वगवास हुआ उस समय उनके पास मुनि महाराज श्रीहीरविजयजी, मुनिमहाराज श्रीशान्तिविजयजी, मुनिमहाराज श्रीअमरविजयजी, मुनि महाराज श्री माणिकविजयजी, हमारे चरित्रनायक, मुनि श्रीशुभविजयजी तपस्वी, मुनि श्रीमोतीविजयजी, मुनि श्रीलब्धिविजयजी और मुनि श्रीजशविजयजी मौजूद थे ।

गुरुवियोगका आपको कितना दुःख हुआ होगा उसे यह लोहेकी लेखनी कैसे बता सकती है ? यह अनुभव करनेकी बात है । हम केवल इतनाही लिख सकते हैं कि, असह्य दुःख हुआ होगा ।

अब दिल्लीमें रहना आपके लिए कठिन हो गया। आपने वहाँसे विहार करनेकी ठान ली। दिल्लीके श्रीसंघने चौमासा वहीं करनेकी विनती की। मुनि महाराज १०८ श्रीकमलविजयजी आदिने कहाः—"तुम किसी तरहकी चिन्ता न करो। हम तुम्हारे पढ़ने लिखनेका सब इन्तजाम कर देंगे। तुम्हें किसी तरहकी तकलीफ़ न होने देंगे।" मुनि महाराज १०८ श्री शान्ति विजयजीने कहाः—"मैं खुद तुम्हें जितनी देर चाहोगे उतनी देर पढ़ाऊँगा। तुम यहीं रहो।"

आपने कहाः—"आपकी मुझपर असीम कृपा है कि, आप मुझे अपने पास रखना चाहते हैं। मुझे इस बातका फ़ख्र है और मैं अपने आपको धन्य मानता हूँ। मगर मेरा अन्तरात्मा कहता है कि, मुझे गुरुचरणों या आचार्यश्रीके चरणोंके सिवा अन्यत्र कहीं शान्ति नहीं मिलेगी। गुरुचरण तो अब असंभव होगये हैं अतः श्रीआचार्य महाराजके चरणोंमें जाकर ही रहूँगा।"

आपने अपने दोनों सतीर्थी-गुरु भाई श्रीशुभविजयजी और श्री मोती विजयजीको साथ लेकर दिल्लीसे पंजाबकी तरफ़ विहार किया।

तीनों इस देशसे अपरिचित थे। इस लिए बड़ी सड़क पर चल पड़े और क्रमशः अंबाले शहरमें जा पहुँचे। जब आपने सुना कि, आचार्यश्री छावनीमें पधार गये हैं तब आप सामने गये और भेट होने पर आचार्यश्रीके चरणोंमें

गिरकर रोने लगे । आचार्यश्रीने आपको हाथ पकड़कर उठाया और धीरज बँधाया—"क्यों इतना दुखी होता है ? जो भावी ज्ञानी महाराजने ज्ञानमें देखा था वह हो गया।"

आप बोलेः—"अब आप मुझे कभी अपने चरणोंसे दूर न करें।"

आचार्यश्रीने प्यारसे पीठ पर हाथ फेरते हुए कहाः—"चिन्ता न कर जैसा तू चाहेगा वैसा ही होगा।"

आचार्यश्री छावणीसे विहार कर अंबाला शहरमें पधारे। कई वर्षोंके बाद पुनरागमन होनेसे, पंजाबके सभी शहरोंके लोग आचार्यश्रीके दर्शनार्थ आने लगे। श्रीसूरिजी महाराजके साथ उस समय पन्द्रह साधु थे। (१) श्रीकुमुदविजयजी महाराज (२) श्रीचारित्रविजयजी महाराज (३) श्रीकुशलविजयजी महाराज (४) श्रीहीरविजयजी महाराज (५) श्रीउद्योतविजयजी महाराज (६) श्रीसुमतिविजयजी महाराज (७) श्रीसुंदरविजयजी महाराज (८) श्रीअमरविजयीमहाराज (९) श्रीमाणिक विजयजी महाराज (१०) हमारे चरित्र-नायक (११) श्रीलब्धिविजयजी महाराज (१२) श्रीशुभविजयजी महाराज (१३) श्रीमोतीविजयजी महाराज (१४) श्रीभक्तिविजयजी महाराज और (१५) श्रीरामविजयजी महाराज।

वाहरसे आनेवाले श्रावकोंकी दृष्टि हमारे चरित्रनायककी तरफ़ अवश्य आकर्षित होती थी। इसका कारण यह था

कि,–एक तो आपकी आयु सबसे छोटी थी। अभी मुँहपर मूँछकी रेखाएँ भी नहीं उठी थीं; दूसरे जब वे देखते तभी आप उन्हें, आचार्य महाराजके पास बैठे कुछ पढ़ते, लिखते तत्वान्वेषण करते या आचार्यश्रीको गुजरातीका अखबार सुनाते नजर आते थे। एक दिन श्रावकोंने आचार्यश्रीसे पूछाः—"ये छोटे महाराज क्या पढ़ते हैं ?" आचार्यश्रीने मुस्कराकर फर्माया,—"पंजाबकी रक्षा" सुनकर श्रावक एक दूसरेका मुँह देखने लगे। तब आचार्यश्रीने कहाः—"मैं इसको पंजाबके लिए तैयार करता हूँ। मुझे विश्वास है कि, यह यथाशक्ति जरूर पंजाबकी रक्षा करेगा।"

पंजाबका श्रीसंघ उसी दिनसे आपके प्रति विशेषरूपसे भक्तिभाव रखने लगा। वह उत्तरोत्तर बढ़ता गया और बढ़ता ही जा रहा है।

उस समय पंजाबमें स्थानकवासी साध्वी श्रीपार्वतीजीकी अच्छी प्रसिद्धि हो रही थी। उन्होंने ज्ञान दीपिका नामकी एक पुस्तक लिखी। उसमें कई बेसिरपैरकी बातें लिख डाली थीं। हमारे चरित्रनायकने उसके उत्तर स्वरूप गप्पदीपिका समीर नामकी पुस्तक तैयार की। यह आपकी प्रथम बाल-रचना और गुरुकृपाका फल थी।

अंबालेके श्रीसंघने आचार्यश्रीसे वहीं चौमासा करनेकी प्रार्थना की, मगर सूरिजी महाराजने मालेरकोटलामें चौमासा करनेकी इच्छा प्रकट की। इस पर अन्य साधुओंके लिए

आचार्यश्रीसे प्रार्थना की गई। आचार्यश्रीने श्रीचारित्रविजयजी महाराज आदि कुछ साधुओंको वहीं चौमासा करनेकी आज्ञाकर लुधियानाकी तरफ विहार किया। बड़े समारोहके साथ लुधियानाके श्रीसंघने आचार्यश्रीका नगर प्रवेश कराया। आचार्यश्रीने लुधियानाके श्रीसंघको उपदेशामृत पान कराकर निहाल किया। वहाँके श्रीसंघकी प्रार्थनाको स्वीकार कर आचार्यश्रीने मुनि श्रीउद्योतविजयजी महराज, मुनि श्रीसुंदरविजयजी महाराज आदि साधुओंको वहीं चौमासा करनेकी आज्ञा दी।

आपके बड़े गुरुभाई मुनि श्रीप्रेमविजयजी महाराज, किसी कारण वश, भाईजी महाराजके स्वर्गारोहणके पहिले ही, दिल्लीसे विहार कर पंजाबमें चले आये थे। यहाँ उनके साथ हमारे चरित्रनायककी भेट हुई। आपने अपने तीनों गुरु भाइयोंसे सलाह करके आचार्यश्रीसे अर्ज की कि, हम स्वर्गीय गुरुमहाराजके नामका एक ज्ञानभंडार यहाँ स्थापित कराना चाहते हैं। आचार्यश्रीने प्रसन्नतापूर्वक इजाजत दे दी। लुधियानेमें, 'श्रीहर्षविजयजी-ज्ञानभडारं' नामसे एक पुस्तकालय स्थापित हुआ जो पीछेसे आचार्यश्रीकी इच्छानुसार जंडियालागुरुमें पहुँचा दिया गया।

आचार्यश्री लुधियानासे विहारकर मालेरकोटला पधारे। सं० १९४७ का चातुर्मास वहीं किया। हमारे चरित्रनायक का यह चौथा चौमासा था। यहाँ आपने कुछ न्यायका भी अभ्यास किया। अमरकोष समाप्त किया और अभिधान

चिन्तामणि नाममालाका भी बहुतसा भाग कर लिया। आचार्यश्रीके पास दशवैकालिककी, श्रीहरिभद्रसूरिमहाराज विरचित बृहद्टीकाका और आचारप्रदीप शास्त्रका अभ्यास किया। उपाध्यायजी महाराज श्रीसमय सुंदरजी रचित दशवैकालिककी लघु टीकाका अभ्यास आप पहले ही पालीसे दिल्ली जाते हुए मार्गमें भाईजी महाराजके पाससे कर चुके थे।

चौमासेके व्याख्यानमें आचार्य महाराज विशेष आवश्यकर्मसे गणधरवाद और श्रीवासुपूज्यचरित्रका उपदेश फर्माते थे। उसको भी आप धारण करते जाते थे। आपमें गुरुगमता और प्रभावोत्पादक व्याख्यान देने का जो ढंग है वह आचार्यश्रीके निरंतर व्याख्यान–श्रवणका ही प्रभाव है। जबतक आचार्यश्री जीवित रहे और जब तक वे व्याख्यान देते रहे तबतक हमारे चरित्रनायकने कभी आचार्यश्रीके व्याख्यानोंका सुनना न छोड़ा। केवल दो चौमासोंमें आप आचार्यश्रीके व्याख्यान न सुन सके। एक वार आपका चौमासा पालीमें हुआ था तब, और दूसरी वार आपका चौमासा अंबालेमें हुआ था तब।

आजकल मुनिराज दीक्षा लेनेके पहले तक तो बड़े ध्यानसे व्याख्यान सुनते हैं; परन्तु दीक्षित हो जानेके बाद वे गुरु जनोंके व्याख्यान सुनना छोड़ देते हैं। वे सोचते हैं अब तो हम खुद ही उपदेशदाता हो गये हैं। अब हमें गुरुजनोंके व्याख्यान सुननेकी क्या आवश्यकता है? मगर वे यह नहीं

सोचते कि, व्याख्यानमें कभी कभी अपूर्व बातें आ जाया करती हैं; जिनका स्पष्टीकरण गुरुजन व्याख्याके समय ही किया करते हैं। अस्तु।

मालेरकोटलासे विहार कर आचार्यश्री रायकोट जगरावा आदि स्थानोंमें होते हुए जीरा पधारे। एक मासकल्प वहीं बिताया। वहाँसे विहारकर हरिकापत्तन—जहाँ विपासा (व्यास) और शतद्रु (सतलज) का संगम होता है—नौका द्वारा पारकर पट्टी पधारे। श्रीसंघने बड़े उत्साहके साथ आचार्यश्रीका स्वागत किया। आचार्यश्री उन्हें उपदेशामृत पिला निहाल करने लगे।

पट्टीके श्रीसंघने आचार्यश्रीसे सं० १९४८ का चौमासा वहीं करनेकी प्रार्थना की। आचार्यश्रीने श्रावकोंका उत्साह देख, क्षेत्रको उत्तम समझ, व्यवहारतया यह कहकर उनकी विनती स्वीकार ली कि, यदि ज्ञानीने क्षेत्रस्पर्शना देखी होगी तो समय पर विचार कर लिया जायगा।

पट्टीमें उत्तमचंद्रजी नामके एक वृद्ध विद्वान पंडित रहते थे। आचार्यश्रीकी आज्ञा पाकर आपने उनके पास पढ़ना प्रारंभ किया। पहले आपने चंद्रिकाके कठिन कठिन स्थलोंका स्पष्टीकरण कराया। उनकी विवेचन शैलीने आपको इतना आकर्षित किया कि आपने चंद्रिकाकी पुनरावृत्ति करनी शुरू कर दी। पंडितजी चंद्रिका पढ़ानेमें एक अद्वितीय विद्वान थे।

एक मासकल्प समाप्त होने पर आचार्यश्रीने कसूरकी तरफ़ विहार किया और हमारे चरित्रनायकको वहीं मुनि श्रीचरित्रविजयजी महाराजके साथ अध्ययनके लिए ठहरनेकी आज्ञा दी।

कसूरमें मासकल्प करके आचार्यश्री अमृतसर पधारे। हमारे चरित्रनायक भी श्रीचारित्रविजयजी महाराजके साथ विहारकर जंडियाला गुरुमें पधारे। यहाँ आपने एक नैयायिक पंडितसे न्यायबोधिनी और चंद्रोदय इन दो न्याय शास्त्रके ग्रंथोंका आध्ययन किया। कुछ दिनोंके बाद आचार्यश्री भी अमृतसरसे विहार कर वहीं पधार गये। वहाँ आपने और १०८ श्रीकमलविजयजी महाराजने सहाध्यायी होकर आचार्यश्रीके पास सम्यक्त्व सप्ततिका पढ़ना शुरू किया।

कुछ समयके बाद आचार्यश्री अरनाथ स्वामीके मंदिरकी प्रतिष्ठा करनेके लिए अमृतसरमें पधारे। सं० १९४८ के वैशाख सुदी ६ के दिन बड़े समारोहके साथ प्रतिष्ठा हुई। हमारे चरित्रनायक भी आचार्यश्रीके साथ प्रतिष्ठा संबंधी कामोंमे लगे रहनेसे कुछ अध्ययन न कर सके। प्रतिष्ठाके बाद जंडियाला होकर प्रथम स्थिर किये हुए विचारके अनुसार आचार्यश्री पट्टीमें पधारे। सं० १९४८ का चौमासा वहीं किया। हमारे चरित्रनायकका पाँचवाँ चौमासा पट्टीहीमें हुआ। इस चौमासेमें आचार्यश्रीके साथ नौ साधु थे। (१) श्रीकुमुदविजयजी महाराज (२)

श्रीकुशलविजयजी महाराज (३) श्रीहीरविजयजी महाराज (४) श्रीकमलविजयजी महाराज (५) श्रीसुमतिविजयजी महाराज (६) हमारे चरित्रनायक (७) श्रीलब्धिविजयजी महाराज (८) श्रीशुभविजयजी तपस्वी और (९) श्रीमोतिविजयजी महाराज

इस चौमासेमें हमारे चरित्रनायकने 'चंद्रप्रभा' व्याकरण पंडित उत्तमचंद्रजीके पाससे पढ़ना शुरु किया । साथ ही उनसे कुछ ज्योतिष भी पढ़ते रहे । सहाध्यायी मुनि श्रीकमलविजयजी महाराजके अनुग्रहसे श्रीआवश्यक सूत्रका अध्ययन भी आचार्य श्रीकेचरणोंमें होता रहा ।

वलाद जिला अहमदावादके रईस श्रीयुत डायाभाई जो करीब नौ महीनेंसे दीक्षा ग्रहण करने की इच्छासे आये हुए थे उन्हें सं० १९४८ के मार्गशीर्ष वदी ५ को आचार्यश्रीने दीक्षा दी । विवेकविजयजी नाम रक्खा । हमारे चरित्रनायकके यही पहले शिष्य हुए ।

फिर पट्टीसे विहारकर आचार्यश्री सपरिवार जीरा पधारे । वहाँ सं० १९४८ के मार्गशीर्ष शुक्ला ११ के दिन श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथजीकी प्रतिष्ठा तथा भरूचनिवासी परम श्रद्धालु, परम भक्त धर्मात्मा सेठ अनूपचंद मलूकचंद कई स्फटिकके जिनबिंब लाये थे उनकी अंजनशलाका कराई । आचार्य महाराज पहलेसे ही यह सोच चुके थे कि, वल्लभ विजयजी ही पंजाबकी सारसम्भाल लेंगे इसलिए इसको हरेक

कार्यसे जानकार बना देना चाहिए। तदनुसार प्रतिष्ठाकी और अंजनशलाकाकी सारी विधियाँ आचार्यश्रीने अपने सामने हमारे चरित्रनायकसे कराई।

प्रतिष्ठाके बाद आचार्यश्रीने होशियारपुरकी तरफ़ विहार किया; क्योंकि वहाँपर सं० १९४८ के माघ सुदी ५ के दिन लाला गुज्जरमलजीके बनाये हुए मंदिरमें श्रीवासुपूज्य स्वामीकी प्रतिमा प्रतिष्ठित करानी थी।

आचार्यश्रीने हमारे चरित्रनायकको कुछ साधुओंके साथ पट्टी यह कहकर भेज दिया कि, तुम जाकर वहाँ अध्ययन करो। हम धीरे धीरे होशियारपुर पहुँचेंगे, तब तुम भी समयपर वहाँ आ पहुँचना। तदनुसार हमारे चरित्रनायक पट्टी चले गये। प्रतिष्ठाके समय आप होशियारपुर गये। वहाँ भी आचार्यश्रीकी अतुल कृपाके कारण आप प्रतिष्ठाके हरेक कार्यमें भाग लेते रहे।

होशियारपुरकी प्रतिष्ठाके समय आचार्यश्रीकी सेवामें अठाईस साधु मौजूद थे। (१) मुनि श्रीचंदनविजयजी महाराज (२) मुनि श्रीकुमुदविजयजी महाराज (छोटे महाराज) (३) मुनि श्रीचारित्रविजयजी महाराज (४) मुनि श्रीकुशलविजयजी (बावाजी महाराज) (५) मुनि श्रीहीरविजयजी महाराज (६) मुनि श्रीकमलविजयजी महाराज (७) मुनि श्रीउद्योतविजयजी महाराज (८) मुनि श्रीसुमतिविजयजी महाराज (स्वामीजी महाराज) (९)

मुनि श्रीवीरविजयजी महाराज (१०) मुनि श्रीकान्तिविजयजी महाराज (११) मुनि श्रीहंसविजयजी महाराज (१२) मुनि श्रीसुंदरविजयजी महाराज (१३) मुनि श्रीजयविजयजी महाराज (१४) मुनि श्रीअमरविजयजी महाराज (१५) मुनि श्रीप्रेमविजयजी महाराज (१६) मुनि श्रीराजविजयजी महाराज (१७) मुनि श्रीसंपत्विजयजी महाराज (१८) मुनि श्रीमाणिकविजयजी महाराज (१९) हमारे चरित्रनायक (२०) श्रीलब्धिविजयजी महाराज (२१) श्रीमानविजयजीमहाराज (२२) श्रीजशविजयजी महाराज (२३) श्रीशुभविजयजी महाराज (२४) श्रीमोतीविजयजी महाराज (२५) श्रीदानविजयजी महाराज (२६) श्रीचतुरविजयजी महाराज (२७) श्रीभक्तिविजयजी महाराज और (२८) श्रीगौतमविजयजी महाराज।

संवत १९४९ का चौमासा आचार्यश्री होशियारपुरहीमें करनेका इरादा रखते थे; क्योंकि होशियारपुरहीके नहीं बल्के सारे पंजाबश्रीसंघके मुखिया लाला गुज्जरमलजी और लाला नत्थूमलजीकी साग्रह विनती थी। इसीलिए आचार्यश्रीने हमारे चरित्रनायकको मुनिश्रीवीरविजयजी महाराजके सिपुर्द करके उन्हें फर्माया-" तुम चौमासा पट्टीमें करनेका इरादा रखना। कारण-वल्लभविजयका चंद्रप्रभा व्याकरणका अवशेष भाग समाप्त हो जायगा। तुम्हारे शिष्य दानविजय आदि भी वहाँ अच्छी तरह अध्ययन कर सकेंगे; क्योंकि

पंडित उत्तमचंद्रजी वहाँ एक बहुत अच्छे पंडित हैं।" श्रीवीर-विजयजी महाराजने सहर्ष इस बातको स्वीकार कर लिया।

श्रीवीरविजयजी महाराज हमारे चरित्रनायक आदिको साथ लेकर पट्टी गये। मगर वहाँ मालूम हुआ कि, पंडित उत्तमचंदजी किसी कार्यके लिए बाहर गये हुए हैं और उनके शीघ्र ही लौट आनेकी कोई आशा भी नहीं है। अतः पट्टीमें विशेष न ठहरकर आप श्रीवीरविजयजी महाराजके साथ अमृतसर पधारे। यहाँ पंडित कर्मचंदजीके पास आपने अवशिष्ट चंद्रप्रभाका पाठ शुरू किया श्रीदानविजयजी महाराजने भी चंद्रिकाका उत्तरार्ध अध्ययन करना प्रारंभ किया। पं० कर्मचंद्रजी अच्छे व्युत्पन्न और बुद्धिवान् थे और पदार्थको अच्छी तरह समझाते थे। वे स्वयं भी विशेष अध्ययन करनेके तीव्र अभिलाषी थे इसलिए थोड़े ही दिनों बाद वे बनारस चले गये। अमृतसरके श्रावकोंने तलाश करके पंडित बिहारीलालजीका योग मिला दिया। उनके पास आपने न्यायमुक्तावलीका अध्ययन प्रारंभ किया। थोड़े दिनों बाद वे किसी आवश्यक कार्यसे अपने घर चले गये।

उन्हीं दिनोंमें श्रीवीरविजयजी महाराजके पास भावनगर-निवासी सेठ कुँवरजी आनंदजीका एक पत्र आया। उसमें लिखा था कि,—"मकसूदाबादनिवासी बाबू बुधसिंहजी दुधेरियाने पालीतानेमें एक संस्कृतपाठशाला खोली है। जो मुनिराज अध्ययन करना चाहते हैं उनके लिए यह पाठशाला बहुत

ही उत्तम है। पढ़ने योग्य मुनियोंको आप इस पाठशालासे लाभ उठानेकी प्रेरणा करें।"

श्रीवीरविजयजी महाराजने यह पत्र हमारे चरित्र नायकको वताया और कहाः—"तुम्हारी अध्ययन करनेकी उत्कट अभिलापा है। उसको पूरा करनेके लिए यह वहुत ही अच्छा अवसर है। जगह जगह भटकने और जुदा जुदा पंडितोंसे थोड़ा थोड़ा पढ़नेकी अपेक्षा, एक ही स्थानमें, एक ही पंडितसे क्रमशः ग्रंथोंका अध्ययन करना विशेप उत्तम है। इससे विशेप ज्ञानकी प्राप्ति होगी। जिस भाग्यवानने मुनिराजोंके लिए यह प्रयत्न किया है, उसका प्रयत्न भी सफल होगा।"

आपके मनमें पढ़नेकी उत्कट अभिलापा थी; मगर इस समय पढ़नेका कोई साधन नहीं था इसलिए आपके हृदय पर इस प्रेरणाने असर किया। आप हाथ जोड़कर वोलेः— "आपका फर्माना ठीक है; परन्तु मैं अकेला कैसे वहाँ तक जा सकता हूँ। फिर महाराज साहवका हुक्म भी चाहिए। उनकी आज्ञाके विना तो मैं एक क़दम भी नहीं उठा सकता हूँ।"

श्रीवीरविजयजी महाराजने फ़र्मायाः—" आचार्यश्रीकी आज्ञाके लिए तुम कुछ चिन्ता न करो। यदि तुम्हारी जानेकी इच्छा होगी तो आज्ञा मैं मँगवा दूँगा। आचार्य-श्रीकी तुम पर पूर्ण कृपा है। वे चाहते हैं कि, तुम पढ़कर तैयार हो जाओ ताके उनके वाद पंजावकी रक्षा कर सको।

साथीके लिए अपने साथ जो साधु हैं उनसे पूछ लिया जाय। यदि कोई तैयार हो जायँ तो ठीक है, अन्यथा तुम दोनों गुरुचेले तो हो ही। वहाँ पहुँचने पर अनेक साथी मिल जायँगे। तुम अपने विचार दृढ कर लो, मैं आचार्यश्रीको पत्र लिख देता हूँ।"

आपने कहाः—"आप आचार्यश्रीकी आज्ञा मँगवा लें। मैं जानेको तैयार हूँ। यदि और कोई साथी न मिलेगा तो हम दोनों गुरु चेले ही जायँगे।"

श्रीवीरविजयजी महाराजने आचार्यश्रीके पास आज्ञा लेनेके लिए पत्र भेजा। उस पर आपके हस्ताक्षर भी करा लिये। साथके साधुओंसे जब पूछा गया तो उनमेंसे मुनि श्रीराजविजयजी महाराज और मुनि श्रीमोतीविजयजी महाराज आपके साथ जानेको तैयार हो गये। आचार्यश्रीकी भी आज्ञा आई कि,—"यदि जानेकी इच्छा हो तो खुशीके साथ जाओ मगर पाँच सालसे ज्यादा उधर न रहना। पाँच सालके अंदर जब इच्छा हो तभी यहाँ लौट आना। इस बातका खयाल रखना कि, कहीं दोनों तरफसे न जाओ।"

न खुदा ही मिला न विसाले सनम।
न इधरके रहे न उधरके रहे।

आपने जानेकी तैयारी कर ली। अमृतसरके श्रीसंघने आपको ठहरनेकी विनती की और कहाः—"हम श्रीसंघके दो

आदमी जाकर आचार्यश्रीके पास सब बातें स्थिर कर आते हैं। आप ठहर जाइए।"

मगर आपको ज्ञान प्राप्त करनेकी लगन लग रही थी। आप कब सुननेवाले थे। बोले:—"महाराज साहबने आज्ञा कर दी है। अब कोई बात स्थिर करनेके लिए न रही।"

श्रीसंघने नम्रता पूर्वक कहा:—"हम आपसे विवाद करना नहीं चाहते मगर हम इतना कहे विना नहीं रह सकते कि आपने आचार्यश्रीके अभिप्रायको नहीं समझा। आचार्यश्रीने स्पष्ट लिखा है कि,—"यदि जानेकी इच्छा होतो जाओ।" इसका साफ् मतलब यह होता है कि, आश्चर्यश्री अपनी इच्छासे आपको नहीं भेजते। यदि वे भेजना चाहते तो आपकी इच्छाकी बात अंदर न लिख कर स्पष्ट लिखते कि,—"तुम अमुक अमुक साधुको साथ लेकर पालीताने चले जाओ।" फिर पत्रमें लिखा है,—"पाँच बरसमें जब चाहो तभी आजाना।" इसका अभिप्राय यह है कि, तुम्हारी इच्छामें हम वाधा डालना नहीं चाहते; परन्तु यथा साध्य जितना शीघ्र हो सके तुम हमारे पास आजाना। पाँच सालसे ज्यादा तो किसी तरहसे भी दूर न रहना। "कहीं दोनों तरफसे न जाओ" यह वाक्य स्पष्ट बताता है कि, आचार्यश्रीकी इच्छा आपको उधर भेजनेकी बिलकुल नहीं है। इतना ही क्यों? श्रीजी इस वाक्यको लिखकर स्पष्टतया अपना हृद्गत बता रहे हैं कि, तुम न जाओ। यदि जाओगे तो दोनों तरफ़से रहोगे। न

यहीं कुछ सीख सकोगे और न वहाँसे ही कुछ मिलेगा। अतः आपके लिए महाराज साहबके चरणोंमें रहना ही उत्तम है। ऐसा न हो कि—

'आधी छोड़ आखीको जाय,
आधी रहे न आखी पाय॥'

वाला हिसाब हो जाय और पंजाबके श्रीसंघको इसका फल भोगना पड़े; क्योंकि आचार्यश्रीने आपको खास पंजाब-श्रीसंघके ही नाम कर दिया है। आपकी और खासकर हमारी इसीमें भलाई है कि आप महाराज साहबके साथ ही रहें।"

लाला पन्नालालजी जौहरी, लाला महाराजमलजी सराफ़ आदिका इस तरहका आग्रह देखकर एवं युक्ति संगत कथन सुनकर आपने फर्मायाः—"आप चिन्ता न करें। मैं पहले यहाँसे महाराज साहबके चरणोंमें जाकर हाजिर होऊँगा। फिर जैसी वे आज्ञा देगें वैसा ही करूंगा।"

पंजाबके श्रीसंघने आपकी यह बात मान ली। आप अमृतसरसे विहारकर जंडियाला महेता, श्रीगोविंदपुर आदि स्थानोंमें होते हुए मियानी जिला होशियारपुरमें आचार्यश्रीके चरणोंमें जा उपस्थित हुए। आपने आचार्यश्रीसे प्रार्थना की कि—"मेरे पढ़ने जानेके विषयमें आपकी क्या आज्ञा है।"

आचार्यश्रीने यह सोचकर कि, इनका उत्साह भंग न हो जाय, फर्मायाः—"तुम खुशीसे जाओ। मैं नाराज नहीं हूं।

मगर उधर अधिक समय न लगाना । यथा साध्य शीघ्र ही हमसे आ मिलना।"

आप आचार्यश्रीकी आज्ञा लेकर मियानीसे रवाना हुए और जलंधर, लुधियानादि शहरोंमें होते हुए अंबाले पधारे। जबसे आपने अमृतसरसे विहार किया तभीसे सारे पंजाबमें यह खबर फैल गई थी कि, वल्लभविजयजी महाराज गुजरात जाने वाले हैं। इसलिए अमृतसर, होशियारपुर, गुजराँवालादि स्थानोंके श्रीसंघोंके पत्र अंबालेमें श्रीसंघपर और खास खास श्रावकोंके पास भी आये। उनका आशय यह था,—कि जैसे हो सके वैसे मुनि श्रीवल्लभविजयजीको अंबालेसे आगे मत जाने देना। कमसे कम इस चौमासेतक उन्हें वहीं रोक लेना। इतनेमें आचार्यश्रीसे अर्ज करके उनके गुजरातमें जानेकी मनाई करवा देंगे। तदनुसार अंबालेके श्रीसंघने आपसे थोड़े दिन वहाँ ठहरनेकी प्रार्थना की। दैवयोग! स्पर्शना प्रबल! ज्ञानीका देखा कभी अन्यथा नहीं होता। आपके साथमें आपके बड़े गुरुभाई श्रीराजविजयजी महाराज थे। उन्हें बुखार आने लग गया। करीब एक महीनेसे भी अधिक समयतक बुखारने पीछा नहीं छोड़ा। चौमासा पासमें आ रहा था, तोभी आपने स्थिर कर रक्खा था कि, यदि आषाढ़ सुदी १ तक भी ये चलने लायक हो जायँगे तो आठ दिनमें हम दिल्ली जा पहुँचेंगे।

अंबालाके श्रीसंघने आचार्यश्रीके चरणोंमें एक प्रार्थनापत्र

भेजा उसमें लिखा था कि,—" १०८ श्रीराजविजयजी महाराज़का शरीर अशक्त है। ऐसी हालतमें अगर हठ करके यहाँसे मुनिमहाराज विहार कर जायँगे तो मार्गमें विशेष तकलीफ हो जानेकी संभावना है। इस लिए आप उन्हें यहीं चौमासा करनेकी आज्ञा करें। हम उन्हें यहाँसे विहार तो हरगिज न करने देंगे; क्योंकि ऐसी हालतमें उनके यहाँसे विहार कर जानेसे हमारे शहरकी बदनामी होगी। आप अवसरके जानकार हैं इसलिए आपका आज्ञापत्र आजानेसे हमें बहुत सहारा मिल जायगा।"

आचार्यश्रीने अंबालेके श्रीसंघकी इच्छानुसार आज्ञापत्र भेज दिया कि,—" तुम अंबालेके श्रीसंघकी विनतीकी अवहेलना मत करना। अभी राजविजयजीका शरीर विहार करने लायक भी नहीं है। इसलिए अंबालेहीमें चौमासा करलेना। तुम जवान हो। चतुर्मास करलेनेके बाद भी तुम लोग विहार करके पालीताने पहुँच सकोगे।"

आचार्य महाराजकी आज्ञा मिल गई, फिर क्या था? आप चुप हो रहे। वहीं चौमासा स्थिर हो गया। उस समय आपको अमृतसरके वृद्ध श्रावक लाला बागामलजी लोढ़ाकी बात याद आई। उन्होंने अमृतसरसे चलते समय कहा था कि,—" महाराज ! आप मुझ बूढ़ेकी बात न सुनकर यहाँसे जा रहे हैं; मगर याद रखिए कि आप अंबालेसे

आगे इस चौमासेके पहले तो न जा सकेंगे। यदि मेरी बात झूठ निकले तो कहना बूढ़ा बड़ा लबाड़ था।"

अब आपके विचारोंमें एक परिवर्तन उपस्थित हुआ। आप सोचने लगे,–महाराज साहबकी आज्ञा पाँच बरसमें लौट आने की है। मगर यदि बीमार हो जाऊँगा तो क्या होगा? विद्या विना तो रहूँगा ही ऊपरसे आचार्यश्रीकी छत्र-छाया और कृपासे भी वंचित रहूँगा। गुरुआज्ञाभंग कर-नेका दोष भी सिरपर आयगा। इस औदारिक शरीरका भरोसा ही क्या है? यह कौन जानता था कि, राजविजयजी महाराजकी तबीअत बिगड़ जायगी और हम एक महीना अंबालेहीमें रहना पड़ेगा।

इधर आपके मनमें दुविधा उत्पन्न हुई उधर गुजरातके भिन्न भिन्न स्थानोंसे आपके पालीतानेजानेके समाचार सुनकर पत्र आने लगे। उन सबका आशय यही था कि,—"आपके गुजरातकी तरफ़ आनेके समाचार सुनकर हमें आनंद हुआ; क्यों कि कई बरसोंके बाद आपके गुजरातको दर्शन होंगे। मगर आनंदसे ज्याद दुःख हमें यह समझकर हुआ कि साक्षात् कल्पवृक्षके समान, मन-वांछित फल देनेवाले, ज्ञानसागर, गुणके आगार, परमगीतार्थ, युगप्रधानके तुल्य १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरिजी महाराजके चरणोंमें गुरुकुल-वासमें–अध्ययन करना छोड़कर आप इधर आनेको तैयार हुए हैं। देखना भूल कर भी किसीकी उल्टी सलाह न मान

लेना। हम आपके दर्शनलाभसे वंचित रहकर भी आपका आचार्यश्रीकी चरणसेवामें रहना ज्यादा पसंद करते हैं। इसीमें आपका और साथ ही समाजका भी कल्याण है। ”

इन पत्रप्रेषकोंमेंसे वड़ौदाके धर्मात्मा सेठ गोकलभाई दुर्लभदास, खीमचंद भाई, आपको पहले दिनसे ही धर्मकाममें सहायता देनेवाले जौहरी हीराचंद ईश्वरदास। भरूचके सेठ अनोपचंद मलूकचंद, खंभातके सेठ पोपटभाई अमरचंद, धूलिया (खानदेश) के सेठ सखाराम दुल्लभदास आदि सज्जन मुख्य थे।

आपके दिलमें पहले ही अनेक तर्क वितर्क उठ खड़े हुए थे और फिर ऊपरसे पंजाबके समस्त श्रीसंघका और गुजरातके अनेक धर्मात्मा श्रावकोंका आग्रह। आपका दिल फिर गया। आपने निश्चय कर लिया कि आचार्यश्रीकी चरणसेवा छोड़कर मैं कहीं न जाऊँगा। विद्या जो कुछ प्राप्त होनी होगी मुझे आचार्यश्रीके चरणोंमें बैठ कर ही होगी।

श्रीराजविजयजी महाराज, श्रीमोतीविजयजी महाराज और श्रीविवेकविजयजी महाराज सहित बड़े आनंदसे आपने अंबालेमें चौमासा विताया। वहाँ किसी निकम्मीसी बातके पीछे श्रावकोंके आपसमें मनमुटाव हो रहा था वह भी मिट गया और मंदिर बनानेका कार्य जोरोंसे चलने लगा। इस तरह अंबालेमें आपका सं० १९४९ का छठा चौमासा हुआ।

अंबालासे विहारकर आप लुधियाना होते हुए जलंधर शहरमें पधारे। आचार्यश्री होशियारपुरसे विहार कर वहीं विराजे हुए थे। आपने जाकर आचार्यश्रीके चरणोंमें सिर रक्खा। आचार्यश्रीने मुस्कुराकर पूछाः—"पंडित हो आया?"

आपने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक अर्ज की,—"भूल सुधार आया, कल्पवृक्ष छोड़कर भ्रमसे अन्यत्र मनोवांछित फल पानेकी इच्छा करता था उस भ्रमको मिटा आया।"

आचार्यश्री जलंधरसे विहारकर वेरोवाल, जंडियालागुरु होते हुए अमृतसर पधारे। वेरोवालमें बंबईके श्रीसंघकी मार्फत चिकागोकी पार्लियामेंटका आमंत्रणपत्र 'सार्वधर्म परिषद' में शामिल होनेके लिए मिला। साधुधर्मके कारण आचार्यश्री तो वहाँ जा नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने बंबईसे वीरचंद राघवजी गाँधीको बुलाया और उन्हें एक निबंध उस परिषदमें पढ़नेके लिए लिख दिया। वह निबंध 'चिकागो प्रश्नोत्तर' के नामसे प्रकाशित हो चुका है। आचार्यश्रीने पेन्सिलसे रफ़ लिख दिया था। उसकी साफ नकल हमारे चरित्रनायकने की थी।

आचार्यश्री अमृतसरसे विहारकर जंडियालागुरु पधारे। सं १९५० का चौमासा यहीं किया। आचार्यश्रीने व्याख्यानमें श्रीसूत्रकृतांगका व्याख्यान इसलिए रक्खा था कि; हमारे चरित्रनायकको भी उसकी वाचना मिलती रहे।

ापने आचार्यश्रीकी इच्छानुसार यहाँ जैनमतवृक्ष तैयार
किया। कई साधुओंको भी आप यहाँ पढ़ाते रहे। इस तरह
ं० १९५० का सातवाँ चौमासा आपका जंडियाला
ुरुमें हुआ।

\+ + + +

जंडियालागुरुसे आचायश्री, घुटनोंमें दर्द हो जानेसे, चौमासा समाप्त होजानेपर भी विहार न कर सके। कुछ समयतक वहीं विराजे। जिन जिन मुनिराजोंका उस समय पंजाबके अन्यान्य शहरोंमें चौमासा था वे चौमासा समाप्त कर आचार्यश्रीके चरणोंमें आ उपस्थित हुए। मुनिराजोंमेंसे मुख्य ये थे,–१०८ श्रीकमलविजयजी महाराज, १०८ श्रीउद्योतविजयजी महाराज, १०८ श्री वीरविजयजी महाराज, १०८ श्रीकान्तिविजयजी महाराज आदि।

मुनिराजोंने आचार्यश्रीसे नवीन साधुओंकी योगोद्वहन क्रिया करानेके लिए प्रार्थना की। आचार्यश्रीने अनुकूल क्षेत्र और समय देख इस प्रार्थनाको स्वीकार किया और १०८ श्रीउद्योतविजयजी महाराजके शिष्य श्रीकपूरविजय, १०८ श्रीवीरविजयजी महाराजके शिष्य श्रीदानविजयजी, १०८ श्रीकांतिविजयजी महाराजके शिष्य श्रीचतुरविजयजी तथा श्रीलाभविजयजी, १०८ श्रीहंसविजयजी महाराजके शिष्य श्रीतीर्थविजयजी[1], और हमारे चरित्रनायकके शिष्य श्रीविवेक-

[1] श्रीतीर्थविजयजी महाराजका, योगोद्वहनकी क्रिया समाप्त होनेके पहले ही, स्वर्गवास हो गया था।

विजयजी, इन छः साधुओंको छेदोपस्थापनीय योगोद्वहन करानेकी क्रिया शुरू की ।

आचार्यश्री प्रायः सब क्रियाएँ हमारे चरित्रनायकके हाथसे कराते थे; सायंकालकी क्रिया तो समाप्तितक सदा हमारे चरित्रनायकने ही कराई थी ।

इसके कुछ दिन बाद आचार्यश्री जंडियालासे विहार कर पट्टी पधारे । यहाँ श्रीदानविजयजी आदि योगोद्वाही पाँचों मुनियोंको बड़ी दीक्षा दी गई । इसकी सारी क्रिया आचार्यश्रीने हमारे चरित्रनायकके हाथोंहीसे कराई थी ।

पट्टीसे विहार करके श्रीआचार्य महाराज जीरा पधारे । शहरमें बड़ा उत्साह फैला । बड़े समारोहके साथ आचार्यश्रीका नगर प्रवेश हुआ । श्रावकोंकी प्रार्थना और वहाँके लोगोंकी धर्मजिज्ञासाको देखकर आचार्यश्रीने सं० १९५१ का चौमासा वहीं किया । हकीम हरदयालजी, खलीफा—मास्टर माघी रामजी, शिब्बूमलजी आदि कई भव्यजीव धर्मकी बारीक बातों और तार्किक दलीलोंको अच्छी तरह समझ सकते थे इसलिए उनके आग्रहसे आचार्यश्रीने व्याख्यानमें गणधर वाद वाँचना प्रारंभ किया । हमारे चरित्र नायकको भी दूसरी बार इसको सुननेका लाभ मिला । इस चौमासेमें आचार्यश्रीने आपको ' यतिजीत कल्प ' आदि कुछ छेद ग्रंथोंका अध्ययन भी कराया । इस तरह हमारे चरित्र

नायकका सं० १९५१ का आठवाँ चौमासा जीरा जिला फिरोजपुरमें हुआ।

चौमासा समाप्त होते ही आचार्य श्री जीरासे विहार करना चाहते थे क्योंकि पट्टीमें पट्टीके मंदिरकी प्रतिष्ठा करवानी थी; परन्तु श्रीवीरविजयजी महाराज और श्रीकांतिविजयजी महाराजका—जिन्होंने पट्टीमें चौमासा किया था—पत्र आया कि आप अभी जीरासे विहार न करें तो उत्तम हो; क्योंकि हम आपकी पदधूलि मस्तक पर चढ़ाकर वाकानेरकी तरफ जानेका इरादा रखते हैं।

आचार्यश्री जीराहीमें विराजमान रहे। कुछ दिनोंके बाद श्रीवीरविजयजी महाराज और श्रीकांतिविजयजी महाराजने अपने शिष्यों सहित आकर आचार्यश्रीके दर्शन कर अपनेको कृतार्थ किया।

इस बार आचार्यश्रीकी हमारे चरित्रनायक पर अधिक कृपा देखकर दोनों मुनिराजोंके नेत्रोंमें हर्षाश्रु आगये। उन्हें इस बातकी प्रसन्नता ही नहीं बल्के उचित अभिमान भी था कि, उनका एक गुजराती भाई पंजाबका प्यारा बन रहा है। श्रीकांतिविजयजी महाराजको और भी अधिक प्रसन्नता इस लिए थी कि, जो मुनि पंजाबके और खासकर आचार्य श्रीके प्रियपात्र हो रहे हैं वे उनके स्वप्रान्तके ही नहीं बल्के स्वनगरके भी हैं।

एक दिनकी वात है। श्रीकांतिविजयजी महाराज और हमारे चरित्रनायक एक तरफ बैठे कुछ शास्त्रीय चर्चा कर रहे थे। इतनेहीमें आचार्य महाराज पधार गये। दोनों उठे और हाथ जोड़ सिर झुका सामने खड़े हो रहे।

आचार्यश्रीने मुस्कुराकर परिहासके तौरपर श्रीकांतिविजयजी महाराजसे कहाः—"देखना मेरे तैयार किये हुए साधुको कहीं गुजरातमें न उड़ाले जाना मुझे पंजावके लिए इससे वहुत वड़ी आशा है।"

श्रीकांतिविजयजी महाराजने भक्ति पूर्वक आचार्यश्रीके पदपद्मोंमें नमस्कार कर कहाः—"कृपानाथ! ऐसा कभी न होगा। यह आपका कृपापात्र वनगया है। इसके मनपर आपकी कृपादृष्टिका ऐसा जादू हो गया है कि, वह किसीके उतारे उतरने वाला नहीं है।" सच है—

तुझे देखकर औरोंको किन आँखोंसे हम देखें?
वे आँखें फूट जायँ औरोंको जिन आँखोंसे हम देखें।

"मैंने तो जव कभी इस विषयकी वात चली है इसको यही सलाह दी है कि, तू कभी गुरुचरणोंसे जुदा न होना। तेरा अहो भाग्य है जो तू आचार्य भगवानका विश्वासपात्र वनगया है। देखना कभी कोई ऐसी वात न करना जिससे तुझ पर आचार्यश्रीको शंका करनेका मौका मिले। कृपासागर! इसके इस दर्जेपर पहुँचनेकी मुझे जितनी

प्रसन्नता है इतनी अन्य किसीको होगी या नहीं ज्ञानी महाराज जानें।"

इससे पाठकोंको विदित होगा कि, १०८ श्रीकांतिविजयजी महाराज आपपर कितनी श्रद्धा और कितना प्रेम रखते थे और अब भी रखते हैं। इसकी साक्षी आपको वह पत्र देगा जो उन्होंने, अभी गत वर्ष हमारे चरित्रनायकको श्रीसंघने लाहोरमें जब आचार्यपद पर स्थापित किया था, उस समय हमारे चरित्रनायकके पास भेजा था। वह पत्र हम पदवीप्रदानके समयकी अन्यान्य घटनाओंके साथ देंगे। वह पत्र हरेक आचार्य महाराजके एवं हरेक मुनिराजके पढ़ने और मनन करने योग्य है।

कुछ समय बाद आचार्यश्री जीरासे विहारकर पट्टी पधारे। श्रीकांतिविजयजी महाराजने अपने शिष्यों सहित बीकानेरकी तरफ़ विहार किया और श्रीवीरविजयजी महाराज अपने शिष्य सहित वहीं रहे।

श्रीआचार्य महाराजके पधारने पर पट्टीके श्रीसंघमें बड़ा उत्साह फैला। आचार्यश्रीकी इच्छानुसार प्रतिष्ठाका प्रबंध होने लगा। आमंत्रण पत्रिकाएँ भेजी गईं। अनेक लोग आये। बड़ी धूमधामसे सं० १९५१ के माघ सुदी १३ के दिन आचार्यश्रीने श्रीपार्श्वनाथ स्वामीको गद्दीपर विराजमान किया अर्थात् वासक्षेप किया। इसी मुहूर्तमें पचास नवीन प्रतिमाओंकी नवीन प्रतिष्ठा-अंजनशलाका भी आचार्यश्रीने की थी। इसमें यथाशक्ति हमारे चरित्रनायकने आचार्यश्रीका हाथ

बटाया था। जीराके चौमासेमें आचार्यश्रीने 'तत्वनिर्णय-प्रासाद' नामका ग्रंथ लिखना प्रारंभ किया था, यहीं आपने उसकी प्रेसकॉपी करनी शुरू की थी।

पट्टीसे विहार करके आप अंबाला पधारे और सं० १९५२ का नवाँ चौमासा आपने आचार्यश्रीके साथ यहीं किया। यहीं आचार्यश्रीकी दूसरी आँखका मोतिया निकलवाया गया था इसलिए आप नवीन ग्रंथका अध्ययन न कर सके। हाँ तत्वनिर्णयप्रासाद ग्रंथका उल्लेखन होता रहा। सं० १९५२ के मार्गशीर्ष सुदी १५ के दिन अंबाले शहरमें श्रीसुपार्श्वनाथ स्वामीकी प्रतिष्ठा हुई।

अंबालेसे विहार करके लुधियानाआदि स्थानोंमें होते हुए आप आचार्य महाराजके साथ सनखतरा पधारे। सनखतरेका मंदिर बड़ा ही सुंदर बना हुआ है। जब आचार्यश्रीके साथ आप दर्शनार्थ मंदिरके जीनेपर चढ़ रहे थे तब आचार्यश्रीने आपको फर्मायाः—"अरे वल्लभ! क्या हम शत्रुंजयपर चढ़ रहे हैं?"

आपने निवेदन कियाः—"हाँ साहब! यह शत्रुंजय तीर्थ-पर विराजमान मूलनायक श्रीऋषभदेवजीकी, टूँककासा बना हुआ साक्षात् शत्रुंजय ही मालूम देता है।"

यहाँपर दो सौ पचहत्तर जिनबिंबोंकी अंजनशलाका हुई थी इसमें आप स्वर्गीय आचार्य महाराजकी दाहिनी भुजाके समान थे।

जेठ वदी ६ सं० १९५३ को सनखतरासे विहार करके पसरूर, छछरॉ वाली, सतराह, सेरॉवाली वड़ाला होते हुए आचार्य महाराजके साथ आप गुजरॉवाला पधारे ।

वड़ाला गॉवसे ही आचार्यश्रीको श्वासका रोग वढ़ गया था; मगर आचार्यश्रीने कभी उसकी परवाह न की। आपने अन्यान्य साधु महात्माओं सहित आचार्य महाराजसे औषधोपचार करानेकी प्रार्थना की मगर आचार्य महाराज यह कह कर वात टाल देते थे कि ऐसे छोटे छोटे रोगोंका क्या इलाज कराना। यद्यपि होनी कभी टलनेवाली न थी; मगर हमारे चरित्रनायकको आजतक इस वातका अफसोस है कि, आपने आचार्यश्रीका, साग्रह निवेदन करके, इलाज क्यों न कराया।

सं० १९५३ जेठ सुदी सप्तमी मंगलवारकी रात थी। आचार्यश्री और सभी साधु प्रतिक्रमण, संथारा, पौरसी आदि नित्य क्रियाएँ करके आराम करने लगे थे। घड़ीने वारह वजाये उस समय आचार्यश्रीको दस्तकी हाजत हुई। वे उठ वैठे और दिशा गये आप आचार्यश्रीके निकट ही सो रहे थे। आपकी नींद खुल गई; उठ वैठे। आचार्यश्री हाजतरफा करके आसन पर वैठे 'अर्हन्' 'अर्हन्' वोलरहे थे, इतने हीमें दम उलट गया। सभी साधुओंकी नींद टूट गई। आप उठकर आचार्यश्रीके चरणोंमे वैठे। आचर्यश्री उस समय वड़ी कठिनतासे वोल सकते थे। उनके मुखसे केवल 'अर्हन्' शब्द

निकलता था। जब आप उनके चरणोंके पास जा बैठे तो उन्होंने सस्नेह आपके सिरपर हाथ रक्खा और आन्तरिक आशीर्वादकी दृष्टि की।

आचार्यश्री प्रयत्न करके बोले:–"लो भाई, अब हम चलते हैं और सबको खमाते हैं।" इस बातको सुनकर सभी साधु रोने लगे। आचार्यश्रीने और दो चार बार 'अर्हन' शब्दका उच्चारण किया और उनका जीवनहंस सदाके लिए जड़ देह-पिंजरका त्याग करके उड गया। उस समय जो दुःख साधु और श्रावक–मंडलमें फैल गया उसका वर्णन करना हमारी तुच्छ लेखनीकी शक्ति के बाहर है। हमारे चरित्र नायकको जो दुःख हुआ उसका अंदाजा वे सभी मनुष्य लगा सकते हैं जिन्होंने अपने पिताकी, महरबान पिताकी हृदयके टुकड़े कर देनेवाली मौत देखी है।

दुःखकी परमौषध रुदनका पूर्ण रूपसे पान करने पर जब हृदय कुछ हल्का हुआ तब शोकावेगमें जो दो भजन आपने लिखे थे हम उन्हें यहाँ उद्धृत कर देते हैं।

(१)

हेजी तुम सुनियो जी आतमराम, सेवक सार लीजो जी ॥ अंचली ॥
आतमराम आनंदके दाता, तुम बिन कौन भवोदधि त्राता ?
हुं अनाथ शरणि तुम आयो, अब मोहे हाथ दीजो जी॥ हे० ॥ १ ॥
तुम बिन साधु-सभा नहिं सोहे, रयणी कर बिन रयणी खोहे।
जैसे तरणि बिना दिन दीपे, निश्चय धार लीजो जी ॥ हे० ॥२॥

दिन दिन कहते ज्ञान पढ़ाऊँ, चुप रह तुझको लड्डु खिलाऊँ।
जैसे मात बालक पतयावे, तिम तुमे काहे कीजो जी॥ हे०॥२॥
दीन अनाथ हुं चेरो तेरो, ध्यान धरूँ मैं निशदिन तेरो।
अबतो काज करो गुरु मेरो, मोहे दीदार दीजो जी॥ हे०॥३॥
करो सहाय भवोदधि तारो, सेवक जनको पार उतारो।
बार बार विनती यह मोरी, 'वल्लभ' तार लीजो जी॥ हे०॥४॥

(२)

गजल—(चाल रास धारियोंकी)

विना गुरुराजके देखे, मेरे दिल बेकरारी है॥ अंचलि॥
आनंद करते जगतजनको, वयण सत सत सुना करके॥ वि०॥
तनु तस शांत होया है, पाया जिनें दर्श आकरके॥ वि०॥
मानो सुर सूरि आये थे, भुविं नरदेह धर करके॥ वि०॥
राजा अरु रंक सम गिनते, निजातम रूप सम करके॥ वि०॥
महा उपकार जग करते, तनु फनाह समझ करके॥ वि०॥
जीया 'वल्लभ' चाहता है, नमन कर पाँव पड़ करके॥ वि०॥

उस वर्ष यानी सं० १९५३ का दसवाँ चौमासा आपने गुजराँवालाहीमें किया। यहाँ आपने एक ऐसी योजना तयार की कि जिसको आचरणमें लानेसे स्वर्गीय आचार्यश्रीकी स्मृति सदा कायम रहे। फिर इस योजनाको व्यवहारमें लानेका आपने पंजाबके श्रीसंघको उपदेश दिया। पंजाबका संघ उसे व्यवहारमें लाया। वह योजना यह थी—

(१) आत्म संवत् प्रारंभ करना। यह संवत् बराबर चल रहा है।

(२) आचार्यश्रीका समाधि मंदिर बनवाना। मंदिरकी नींव सं. १९५३ आत्मसंवत १ में पड़ी। मंदिर तैयार हो जाने पर सं. १९६५ आत्म संवत १२ वैशाख सुदी ६ को चरणस्थापना—समाधिमंदिरकी प्रतिष्ठा हुई। इस मंदिरका दूसरा नाम आत्मानंद जैनभवन है। इसी भवनमें अभी सं. १९८१ आत्म सं. २९ माघसुदी ६ शुक्रवारके दिन हमारे चरित्रनायकके हाथसे 'श्रीआत्मानंदजैनगुरुकुल पंजाब' की स्थापना हुई।

(३) 'श्री आत्मानंदजैनसभा' स्थापन करना। इस नामकी सभाएँ पंजाबके प्रायः सभी शहरों और कस्बोंमें स्थापित हैं। गुजरातमें भी हैं। सारी सभाओंके कार्यको केन्द्रीभूत करनेके लिए—'श्रीआत्मानंद जैनमहासभा पंजाब' की भी स्थापना हो चुकी है।

(४) पाठशालाएँ स्थापित करना। अनेक स्थानोंमें आत्मानंद जैन पाठशालाएँ चल रही हैं। श्रीआत्मानंद जैनमहाविद्यालय (जैन कॉलेज) स्थापित करानेका विचार भी किया गया था। उसके लिए 'पाइ फंड' नामका एक फंड जारी किया गया।

मगर पीछेसे वह बंद होगया । उस फंडके पास भी रकम जमा हुई थी वह दो छात्रोंको पढ़ानेह संतुष्ट की गई । वे दोनों विद्वान होकर आज जैन कृपाजकी–जैनधर्मकी सेवा कर रहे हैं । वे विद्वान्‌ड़ी वेदान्ताचार्य पं. व्रजलालजी और व्याकरण, न्यायाचार्य पं. सुखलालजी ।

यदि 'पाई फंड' चलता रहता तो उसके द्वारा कितना काम हो सकता था इसका अनुमान सहजहीमें किया जा सकता है। मगर ज्ञानी महाराजने ज्ञानमें देखा था वैसा हुआ । आज कॉलेज नहीं तो भी उसके स्थानमें एक गुरुकुल तो स्थापित हो ही गया है ।

(५) श्री आत्मानंद जैनपत्रिकाका प्रकाशन करना । यह मासिक' पत्रिका कई बरसोंतक बाबू जसवंतरायजी जैनीके संपादकत्वमें चलती रही थी ।

आचार्यश्रीके स्वर्गारोहणके बाद व्याख्यान वाँचना अन्य साधुओंको पढ़ाना, पंजाबके क्षेत्रोंकी सार सम्भाल लेना आदि सारा ही भार चारों तरफ़से आप ही पर आ पड़ा । आपको गुरुवियोगका दुःख था, उस पर भी आपकी उमर छोटी थी । ऐसी दशामें गुरुवियोगसे विव्हल बने हुए श्रीसंघके चित्तको स्थिर करना और आचार्यश्रीके अभावमें प्रति पक्षियोंके किये हुए आक्रमणोंका उत्तर देना आपके लिए अत्यंत कष्टसाध्य काम था; मगर आपने जिस सावधानीसे कष्ट सहनकर

महाराजके नामके फरोते हुए
उसको सारा जैन समाज
उसके लिए हमारे चरि-

साधु १०८ श्रीकुशल-
श्रीचंदनविजयजी महाराज, १०८श्रीही-
महाराज, १०८ श्रीसुमतिविजयजी महाराज, १०८
शुभविजयजी तपस्वी, १०८ श्रीलब्धिविजयजी महाराज,
और १०८ श्रीरामविजयजी महाराज। ऐसे सात मुनिराज थे।

व्याख्यान सभामें व्याख्यान वाँचनेका आपका यह पहला ही अवसर था। व्याख्यानमें आप श्रोताओंकी रुचि और मुनिराजोंकी इच्छानुसार श्रीस्थानांगसूत्र और सम्यक्त्व सप्ततिका वाँचते थे। श्रीआचार्य महाराज विरचित तत्वनिर्णय प्रासादका प्रस्तावनादि अवशेष कार्य भी आपने यहीं पर समाप्त किया था।

गुजराँवालेका चौमासा समाप्त होनेपर आपने वहाँसे, श्रीस्तम्भन पार्श्वनाथ और श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथकी यात्राके लिए रामनगरकी ओर विहार किया।

आप पपनाखा पधारे। वहाँ लाला गणेशदास और लाला जवंदामलने बहुत धर्मलाभ उठाया। वहाँ एक स्कूल-मास्टर था वह जितने साधु या पंडित आते उन सबके पास अपनी शंकाओंका समाधान कराने जाता; मगर अव-

तक कोई उसकी शंकाएँ न मिटा सका था। आपके पास भी वह आया। एक घंटे तक आपके साथ बात चीत करके वह संतुष्ट हुआ। उसने हाथ जोड़ भक्ति गद्गद कण्ठसे कहाः—"कृपानाथ! आज मैं शंकाओंके भूतसे रिहा हो गया; मुझे बड़ी शान्ति मिली"

पपनाखासे आप विहार करते हुए किला दीदारसिंह पहुँचे। यहाँ लाला मइयादासजीका अच्छा प्रभाव था आपके लिहाजसे कई लोग व्याख्यान सुनने आते। जो एक बार भी आपकी मधुर वाणीका स्वाद चखता वह दूसरी दफा चखनेके लिए सौ काम छोड़कर दौड़ा आता। एक (सौवर्णिक) सर्दार–जो कई गाँवोंके मालिक और महाराजा रणजीतसिंहजीके प्रपौत्र सरदार इच्छरासिंहजी गुजराँवालोंके मित्र थे आपकी भक्तिमें ऐसे लीन हुए कि जबतक रोजमर्रा वे आपके दर्शन न कर लेते और आपके मुखारविंदसे धर्मोपदेश न सुन लेते तबतक उनको चैन न पड़ता।

फिर आप अकालगढ़ होते हुए रामनगर पहुँचे। वहाँ जितने श्रावक थे सभी स्वर्गीय बूटेरायजी महाराजके बनाये हुए थे। उन्होंने आपकी बड़ी सेवा की। वे सभी पुरानी बातोंका और स्मरणोंका वर्णन करते। उन्हें सुन सुनकर आप प्रसन्न होते।

वहाँ श्रावकोंकी अपेक्षा सर्वसाधारण लोग प्रायः विशेष संख्यामें आया करते थे। लाला रामेशाह वहाँके बड़े रईसोंमेंसे

एक थे । जातिके क्षत्रिय थे पक्के सनातन धर्मी थे। लोग उन्हें सनातन धर्मका स्तंभ कहते थे । उनपर आपका ऐसा प्रभाव पड़ा कि, वे नियमित रूपसे अपने मित्रों सहित व्याख्यानमें आते और सार्वभौम धर्मका उपदेश सुन आनंदित होते।

एक सिक्ख सरदार कर्तारसिंहजी वहाँ पोस्ट और तार मास्टर थे। उन्होंने भी आपकी तारीफ सुनी। वे एक दिन व्याख्यान सुनने चले गये । व्याख्यान सुनकर वे इतने प्रसन्न हुए कि दूसरे दिनसे व्याख्यानके समय सकुटुंब आने लगे और बड़ी ही श्रद्धा और भक्तिसे धर्मोपदेश सुनने लगे।

पन्द्रह बीस दिन रहनेके बाद आप रावलपिंडीकी तरफ जानेको तैयार हुए। शहर भरमें इस बातके फैलते ही उदासी छा गई। जब आखिरी दिनका व्याख्यान समाप्त हुआतब सरदार कर्तारसिंहजी आदि श्रद्धालु जनोंने प्रार्थना की कि, आप एक महीना यहीं समाप्त करें।

हमारे चरित्रनायकमें एक बहुत बड़ा गुण है कि आप अपनेसे वृद्ध साधुओंका बड़ा मान रखते हैं। यह गुण प्रसिद्धि पाये हुए लोगोंमें बहुत ही कम होता है। आप विहार करना न करना आदि बातें अपनेसे वृद्ध साधुओंकी इच्छानुसार ही किया करते हैं, उन्हें सदा पूज्य समझते हैं और वे नाराज न हों इस बातका खयाल रखते हैं। अतः आपने फर्माया:—"यहाँ रहना न रहना श्रीबाबाजी महाराज श्री कुशलविजयजीके हाथकी बात है। मैं तो उनका आज्ञापालक हूँ।"

सरदारजी बाबाजीकी सेवामें उपस्थित हुए। बाबाजीने फर्माया कि, " आपका धर्मराग प्रशसंनीय है मगर आगेके गाँवोंके लोगोंको भी तो लाभ पहुँचाना चाहिए "। सर्दारजी वगैराने इस बातपर ध्यान नहीं दिया। बच्चे, बूढ़े, स्त्री, पुरुष सभी बैठे रहे। बाबाजीने कहाः—" सरदारजी छोटे छोटे बच्चे सवेरेसे भूखे हैं। पोस्टकी थैली बंद पड़ी है। लोग अपने पत्र पानेके लिए व्याकुल हो रहे हैं।"

सरदारजीने पोस्ट ऑफिसकी तालियाँ बाबाजी महाराजके सामने डाल दीं और कहाः—"यदि आपकी इच्छा हो तो बच्चोंको खिलाइए और लोगोंकी व्याकुलता मिटाइए, वरना हम तो यहीं बैठे हैं।"

आखिरकार बाबाजीने आपसे पूछाः—" वल्लभविजयजी! क्या कहते हो?" आपने उत्तर दियाः—" आप मालिक हैं।" अगत्या बाबाजीने महीना वहीं पूरा करनेकी अनुमति दे दी। लोग प्रसन्नताके साथ जयजयकार मनाते चले गये। एक महीना समाप्त होनेपर आप वहाँसे गुरुवियोग—दुःखसे उदास बने हुए लोगोंको धीरज बँधाते हुए रवाना हुए।

रामनगरसे विहार कर आप पुनः अकालगढ़ पहुँचे। आपने पन्द्रह दिन तक वहाँके लोगोंको धर्मामृत पान कराया। यहाँपर बड़ोदानिवासी आपकी मासीके पुत्र भाई, जौहरी नगीन भाई और अहमदाबादनिवासी जौहरी हरिभाई छोटालाल आपके दर्शनार्थ आये थे। इन लोगोंकोयह देख-

कर आश्चर्य हुआ कि, किसी श्रावकके न होते हुए भी आप इतने दिनसे वहाँ हैं और जैनेतर लोग आपकी इतनी सेवाभक्ति करते हैं ।

आपकी प्रेरणासे दोनों सज्जन रामनगर यात्रा करनेके लिए गये थे । वहाँ पन्नेकी श्रीस्तंभन पार्श्वनाथकी मूर्तिके दर्शन करके वे मुग्ध होगये । सचमुच ही वह मूर्ति ही ऐसी है । उन्होंने, आपको पूछने पर, कहा था,–कि हमने अपनी आयुमें इतना वड़ा वेदाग पन्ना कहीं भी नहीं देखा ।

उस समय नगीनभाईने एक ऐसी वात कही थी जिसे हरेक नवयुवकको, चाहे वह गृहस्थी हो या साधु, हर वक्त अपने सामने रखनी चाहिए । उन्होंने कहा था,—" आप वृद्ध महात्माओंके साथमें रहते हैं यह वात वहुत ही श्रेष्ठ है । वृद्ध साधुओंके सहवाससे युवक साधु अनेक तरहकी बुराइयोंसे वच जाते हैं । "

उस समय श्रीकुशलविजयजी (वावाजी) महाराज, श्रीहीर-विजयजी महाराज और श्रीसुमतिविजयजी महाराज ये तीनों-वृद्ध मुनिराज थे ।

अकालगढ़से विहार कर आप गुजराँवाला पधारे । एक महीनेतक वहाँ निवास किया और श्रद्धालु भक्तोंको जिनव-चनसुधा पिलाई ।

गुजराँवालासे विहार करके आप जम्मू पधारे । कई वर-सोंसे वहाँ मुनिराजका पधारना नहीं हुआ था । लोग वड़ी

उत्कण्ठासे आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे।आपके वहाँ पहुँचने पर बड़ी धूमके साथ आपका स्वागत किया गया। व्याख्यानमें श्रावकोंके सिवा कई सनातन धर्म और सिक्ख भी आया करते थे। दुपहरके समय भी कई ब्राह्मण आपके पास आते थे और धर्मचर्चा कर प्रसन्न होते थे। एक महीने तक आप वहाँ विराजे।

जम्मूसे आपने सनखतरेकी तरफ विहार किया। रास्तेमें विशनाह नामक गाँवमें रात रहे। आप जिस धर्मशालामें ठहरे थे उसमें एक कथाभटजी कथा वाँचा करते थे। शामको कथा वाँच कर उठे। उन्हें मालूम हुआ कि, धर्मशालामें कोई ठहरा है। उन्होंने नौकरको पुकारा और पूछाः—"धर्मशालामें कौन ठहरा है?" नौकर ने उत्तर दिया कि साधु ठहरे हैं" साधुका नाम सुनते ही भटजी गर्ज कर बोलेः—"तूने साधुको किसके हुक्मसे ठहराया है।" फिर उन्होंने आकर असभ्यताके साथ पूछाः—"तुम कौनसे साधु हो?"

आपने शांत भावसे मधुर शब्दोंमें कहाः—"पंडितजी बैठिए! आप जानते हैं कि अगले जमानेमें वनोंमें जाकर गृहस्थ साधुओंकी सेवा किया करते थे। आज नगरमें आये हुए साधुओंकी सेवा करना तो दूर रहा, उन्हें रात बितानेके लिए ढाई हाथ जमीन भी गृहस्थ न देंगे? अपने घरकी जमीन दूर रही मुसाफिरोंके लिए ही जो स्थान है उस स्थानमें भी,—एक मुसाफिर समझकर भी, क्या ढाई हाथ जमीन साधुको देना गृहस्थके लिए दुखदायी है? आप तो पंडित हैं। धर्मशास्त्रोंके ज्ञाता.

है। अन्यान्य हिन्दु शास्त्रोंकी तरह आपने वासिष्ठ स्मृति भी जरूर देखी होगी। उसमें लिखा है कि, ब्रह्मचारी-स्नातक राजाकी अपेक्षा भी पूज्य और बड़े होते हैं। एक ओरसे राजा आता हो और दूसरी ओरसे ब्रह्मचारी आता हो तो राजाको चाहिए कि, वह ब्रह्मचारीको प्रणाम कर एक ओर हट जाय और उसे निकल जाने दे। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है कि-

" एक घड़ी आधी घड़ी आधीमें भी आध।
तुलसी संगत साधकी, कटे कोटि अपराध ॥ "

भटजी आपकी मधुर और ऋषियोंके वाक्योंसे मिश्रित वाणी सुनकर ठंडे पड़ गये, मगर फिर भी बोलेः-" महाराज ! आज साधुओंके वेषमें अनेक लुच्चे लफंगे फिरते हैं; इसीलिए हम किसी साधुवेषधारीको यहाँ ठहरने नहीं देते।"

आप बोलेः-" पंडितजी तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि धर्मपरायणा भारत वसुंधरासे अब धर्म उठ ही गया है। लाखों बरसोंसे जिस हिन्दुस्थानमें हजारों त्यागी मुनि होते आये हैं उसी भारतमें क्या आज उनका अभाव ही हो गया है ? सुनिए,-मैं भी जैन मजहबका एक साधु हूँ। हमारे साधुओंमें द्रव्यके नाम एक फूटी बदाम भी नहीं रक्खी जाती फिर कामिनीकी तो बात ही क्या है ? और तो और जिस मकानमें स्त्री रहती है उस मकानमें साधु ठहरते भी नहीं हैं। गरमीका कितना ही जोर हो, दिनभर अन्नजल

न मिले हों तो भी साधु कभी रातको अन्नजल नहीं लेते। अपने घरकी धन दौलत छोड़ मधुकरी मॉगकर खाते हैं। करोडपति या गरीब सभी जैन साधुओंकी निगाहमें एकसे हैं। अपने पेट भरनेलायक आहार वे एक ही घरसे कभी नहीं लेते। विद्याभ्यास करते हैं। कहीं एक महीनेसे अधिक चौमासेके सिवा नहीं रहते कभी किसी सवारी पर नहीं चढ़ते। पैदल सर्वत्र भ्रमण करते हैं, तीर्थ यात्रा करते हैं और लोगोंको आत्मकल्याणका रस्ता दिखाते हैं। हमारे साधुओंके जीवन और भाव तो श्रीभर्तृहरि के शब्दोंमें इस तरह के होते हैं,—

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा।
मणौ वा लोष्ठे वा कुसुमशयने वा दृशादि वा॥
तृणे वा स्त्रैणे वां मम समदृशो यान्ति दिवसाः
क्वचित्पुण्यारण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः॥

भावार्थ–हे प्रभो! मैं किसी ऐसे पवित्र वनमें वसना चाहता हूँ कि जिसमें रहकर सर्पको और हारको, बलवान शत्रुको और मित्रको, मणिको और पत्थरको, फूलोंकी सेजको और शिलाको, तृणको और स्त्रियोंके समूहको-सभीको समान रूपसे देख सकूँ और 'शिव' 'शिव' रटते हुए अपना समय बिता सकूँ।

इस साधुजीवनकी रूपरेखा; इस धाराप्रवाही विवेचनशैली तथा इस प्रभावोत्पादक और मधुरवाणीको सुनकर भटजी

अवाक रह गये। उन्होंने भक्तिभरे शब्दोंमें कहाः—"महाराज भूल हुई। क्षमा करें। ढौंगी साधुओंसे इतना मन खराब होगया था कि, मैं अच्छे साधुओंकी कल्पना भी नहीं कर सकता था। हुक्म दीजिए कि मैं आपके लिए भोजनका प्रबंध करूँ। मैं आपको जिमाकर धन्य होऊँगा।" नौकरको पुकार कर कहाः—"यहाँ एक बत्ती ले आ।"

आप मुस्कुराये और बोलेः—"पंडितजी! मैं पहले ही कह चुका हूँ कि, हम एक घरका आहार नहीं लेते, रातमें तो हम स्पर्श भी नहीं करते, रातमें चिराग भी नहीं जलवा सकते।"

इसके बाद पंडितजी जिस कथाको सुनाते थे उसके उस दिनके व्याख्यानकी आपने चर्चा इस ढंगसे की कि पंडितजी-को उस दिनकी कथामें की हुई भूलें भी मालूम हो गई। उन्होंने अपनी भूलें स्वीकार करते हुए कहाः—"महाराज! हम तो पेट भरनेके लिए यह कथा करते हैं। हमसे भूल हो ही जाती है" फिर भटजी भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अपने घर चले गये।

वहाँसे आप डफरवाल आदि गाँवोंको पावन करते हुए, सनखतरा पधारे। एक महीना वहीं रहे।

सनखतरेसे विहार करके आप नारोवाल पधारे। वहाँ धर्मकी बड़ी प्रभावना हुई। वहाँ एक भव्य जीवको आपने

सं० १९२४ के वैशाख सुदी ८ के दिन धूमधामसे दीक्षा दी। नाम 'ललितविजयजी' रक्खा।

रामनगरके अंदर जिन सर्दार कर्तारसिंहजीका वर्णन आया है, वे भी सनखतरा, सियालकोट आदि होते हुए और अनेक कष्ट झेलते हुए आपके दर्शन करने यहाँ आपहुँचे।

आपने सं० १९५४ का ग्यारहवाँ चौमासा नारोवालमें ही किया था। इस चौमासेमें आपने प्रातःस्मरणीय, न्यायांभोनिधि १००८श्रीमद्विजयानंदसूरिजी महाराजका जीवनचरित्र लिखकर तैयार किया था। यहाँ व्याख्यानमें आप श्रीउत्तराध्ययन सूत्र और पद्मचरित्र (जैनरामायण) वाँचते थे।

इस चौमासेमें आपके साथ श्रीकुशलविजयजी—बावाजी महाराज, श्रीसुमतिविजयजी महाराज, श्रीविवेकविजयजी महाराज और श्रीललितविजयजी महाराज थे।

श्रीहीरविजयजी महाराज, श्रीलब्धिविजयजी महाराज और श्रीशुभविजयजी तपस्वीजी इन तीन मुनिराजोंका चौमासा सनखतरेमें हुआ था। नारोवाल और सनखतरेके वीचमें छःसात कोसका अन्तर है।

चौमासा समाप्त होने पर श्रीहीरविजयजी महाराज आदि नारोवाल आ मिले। नारोवालसे सभीने एक साथ विहार किया। आप अमृतसर पधारे। यहाँ अंवालानिवासी लाला गंगारामजी, होशियारपुरनिवासी लाला गुज्जरमलजी तथा लाला-नत्थूमलजी, अमृतसरनिवासी लाला पन्नालालजी जौहरी

और लाला फग्गूमलजी महाराजमलजी सराफ़के साथ सलाह कर हमारे चरित्रनायकको स्वर्गीय आचार्यश्रीकी गद्दीपर बिठानेका यानी आपको आचार्य पद प्रदान करनेका प्रयत्न करने लगे। लाला गंगारामजीने यह स्वीकार किया कि, वे जाकर सब साधुओंसे आपको आचार्यपद देनेकी स्वीकारता ले आयँगे। जब हमारे चरित्रनायकको इस बातकी खबर लगी तब आपने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि,—“आप वृथा ही इस बातका प्रयत्न करते हैं। मैं इस बातको कदापि स्वीकार न करूँगा।”

लाला गंगारामजी आदि बोले:—“आप इस बातको भले स्वीकार न करें; मगर हम तो यह देख लेंगे कि स्वर्गीय गुरु महाराजकी आज्ञाको सभी मानते हैं या नहीं।” फिर वे अपने स्थानपर चले गये।

आप अमृतसरसे श्रीबाबाजी महाराज आदिके साथ विहार करके जंडियालागुरुको पधारे। यहाँ लुधियानानिवासी लाला-हरदयाल आदि जोधावालोंकी भोजाई और अंबालानिवासी लाला नानकचंद भाबूकी पुत्रीकी दीक्षा बड़ी धूमधाम से हुई। नाम देवश्रीजी रक्खा गया।

वहाँसे विहार करते हुए कई दिनोंके बाद आप पट्टी पधारे। वहाँके श्रावकोंके अत्यंत आग्रहसे आपने पट्टीहीमें चौमासा करना स्थिर किया। चौमासेमें कई महीने बाकी थे इसलिए आप श्रीबाबाजी महाराज, श्रीशुभविजयजी तपस्वी,

श्रीलब्धिविजयजी और श्रीविवेकविजयजी महाराजको वहीं छोड़ श्रीहीरविजयजी महाराज, श्रीस्वामी सुमतिविजयजी महाराज और श्रीललितविजयजी महाराजको अपने साथ ले लाहौरकी तरफ़ रवाना हुए।

रास्तेके छोटे बड़े गाँवोंमें होते हुए जब आप बकियाँ नामक गाँवमें पहुँचे तब दुपहर हो गई थी। आपका मन उस गाँवमें प्रवेश करते ही उदास हो आया। कारण कुछ ज्ञात न हुआ। मगर थोड़ी दूर जानेपर आपने देखा कि एक मकानमें एक काटा हुआ बकरा लटक रहा है और छुरी तरहसे लोग उसके टुकड़े कर रहे हैं। आपका दयापूर्ण हृदय भर आया, मुखसे एक निःश्वास निकला और अपने साथके साधुओंसे बोलेः—"यह गाँव साधुओंके ठहरने लायक नहीं है।" मगर धूप तेज थी, साथके साधु थक गये थे इसलिए विवश धर्मशालाकी एक कोटड़ीमें जा ठहरे।

आप इस बातको सोच रहे थे कि इस क्रूरताको करनेवालेजीवोंका कैसे कल्याण होगा। इतनेहीमें मदिरामें मत्त हाथोंमें भाले लिए हुए कई पुरुष उधरसे निकले। उनके वार्तालापसे मालूम हुआ कि वे शिकार करने जा रहे हैं।

थोड़ी ही देरमें वहाँ एक स्त्री आई और प्रणाम करके बोलीः—"सन्तो! तुम यहाँसे चले जाओ। यह गाँव चोरोंका है। मेरा स्वामी दिनमें मुसाफ़िरोंको आराम पहुँचाता है मगर

रातमें गाँवके दूसरे लोगोंके साथ मिलकर मुसाफिरोंका सर्वस्व छीन लेता है। अगर प्राण लेने पड़ते हैं तो इसमें भी वह आगा पीछा नहीं करता। यद्यपि अपने पतिकी बुराई करना स्त्रीके लिए पाप है तथापि मैंने आपके सामने की है। इसके दो कारण हैं, एक तो यह कि, मेरे पति साधुको दुख देनेसे जो पाप लगेगा, उससे बचेंगे और दूसरा साधुकी रक्षा होगी।"

आपके साथ तीन साधु थे और ७, ८ श्रावक। आपने उनसे मशवरा किया। इतनेहीमें वहाँ एक वृद्ध सिक्ख आ गया। उसने कहाः—" महाराज! मैं आपको यही सम्मति दूँगा कि आप यहाँसे चले जाइए।"

श्रावक बोलेः—" महाराज! यदि आप चल सकते हों तो हमारी कोई हानि नहीं है; भले चले चलिए, अन्यथा यहीं रहिए। चोर भी तो इन्सान हैं। हम देख लेंगे।"

आप बोलेः—" लाला तुम्हारा कहना ठीक है। मगर मैं बिना प्रयोजन किसीके प्राण खतरेमें डालना नहीं चाहता। अगर हम सब साधु ही होते तो हमें कोई चिन्ता न थी। हमारे पाससे चोर आकर क्या ले जाते? मगर आप लोग हैं इसलिए मैं यह जोखम उठाना ठीक नहीं समझता।"

आखिरकार खरे तड़केमें आप वहाँसे रवाना हो गये और आठ कोसकी कठिन मुसाफिरी पैदल, नंगे पैर, तै करके संध्याको मियाँमीरकी छावनीमें पहुँचे।

लाहोर छावनी और शहरमें पाँच मीलका अन्तर है। लाहोर छावनीका दूसरा नाम ही मियाँमीरकी छावनी है। अगले दिन आप शहरमें पधारे। श्रीजिनमंदिरके पास ही वहाँ एक पंचायती मकान (उपाश्रय) है। उसीमें आप ठहरे। एक महीना यहीं बिताया। आजतक लाहोरमें एक भी मुनिराज इतने समयतक नहीं ठहरे थे। कारण वहाँ पुजेरे श्रावकोंके केवल एक दो ही मकान उस वक्त थे। यह समाचार मिलने पर कि, वल्लभविजयजी आदि लाहोरमें ठहरे हुए हैं १०८ श्रीचरित्रविजयजी महाराज, और १०८ श्रीउद्योतविजयजी महाराज आदि वृद्ध साधुओंके पत्र इस आशयके आने लगे कि, लाहोरमें पुजेरे (मंदिर आम्नायवाले) हीरालाल मुन्हानी वगैरहके एक दो ही घर हैं, फिर तुम इतने दिन तक वहाँ क्यों ठहरे हो? साथके साधु तो सभी सुखसातामें हैं न?

उत्तरमें आपने लिखा,—"सभी मुनि यहाँ सुखसातामें हैं। यहाँ रहनेमें कुछ लाभ दिखाई देता है इसी लिए हम लोग यहाँ ठहरे हुए हैं। हमेशा व्याख्यान होता है। व्याख्यान सुननेके लिए जौहरियोंके परिवारमेंसे बाबू नत्थूमल, बाबू मोतीलाल, लाला धुलाकीमल आदि कई भाई और बहनें आते हैं। संभव है इस समयका बोया हुआ बीज भविष्यमें फलदायी हो। दिल्लीवाले लाला महतावरायजीके परिवारमेंसे कई यहाँ सरकारी नौकर हैं। वे और उनके घरकी सन्नारि-

कर प्रश्न कियाः—" क्या सर्दार हीरासिंह आपहीका नाम है ?"

सिक्ख लोग साधुओंका बहुत सम्मान करते हैं। सर्दार उसी अपने जातीय नम्र भावसे हाथ जोड़कर बोलाः—"हाँ महात्मा ! इस दासहीको हीरासिंह कहते हैं।"

आपने कहाः—" सर्दारजी ! हमने आपके बलकी बहुत तारीफ सुनी है।"

हीरासिंहने नम्रताके साथ कहाः—" यह संत पुरुषोंकी महरबानीका फल है।"

आप वहाँसे विहार करते हुए पट्टी पहुँचे और—

सं० १९५५ का बारहवाँ चौमासा आपका पट्टीमें हुआ।

चौमासा बड़े आनंदसे समाप्त हुआ। इस चौमासेमें आपके साथ बाबाजी महाराज श्रीकुशलविजयजी, श्रीहीरविजयजी महाराज, श्रीसुमतिविजयजी महाराज, श्रीशुभविजयजी तपस्वी, श्रीलब्धिविजयजी महाराज, श्रीविवेकविजयजी महाराज और श्रीललितविजयजी महाराज ऐसे सात साधु थे। पं० उत्तमचंदजी तथा पं० अमीचंदजीका सुयोग मिलनेसे तत्वचर्चाका बड़ा आनंद रहा।

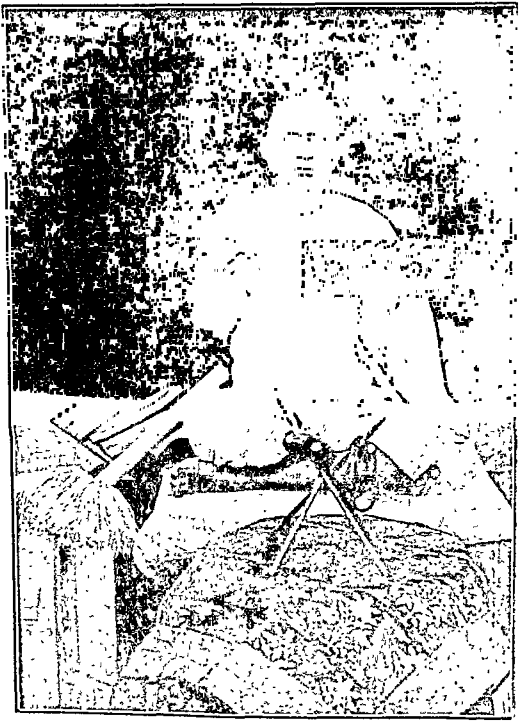
× × × ×

(सं० १९५६ से सं० १९६० तक)

चौमासा समाप्त होने पर आप पट्टीसे विहार कर जीरे पधारे

यहाँसे श्रीशुभविजयश्री तपस्वी और श्रीविवेकविजयजी[1] महाराजने आपकी आज्ञासे मारवाड़ गुजरातकी तरफ़ विहार किया।
आप जीरासे विहार कर जगराँवाँ, लुधियाना आदि

१–इनका गृहस्थ नाम डाह्या भाई था। ये मु० वलाद जिला अहमदावादके रहनेवाले थे। इनकी माताका नाम श्रीमती अंबा बाई और पिताका नाम सेठ डूँगर भाई था। इनका जन्म फाल्गुन वदी २ सं० १९२४ के दिन हुआ था। शाहपुरमें इनके पिताकी दुकान थी। वहीं ये रहते थे। वहाँ खीमचंद पीतांवर नामका एक धर्मात्मा श्रावक था। उसीके सहवाससे इन्हें वैराग्य हुआ। इनके लग्न हो गये थे। ये दीक्षा लेने एक वार पूना चले गये थे; मगर इनके पिताने खबर पाकर वापिस बुला लिया। एक वार ये अहमदावादमें धर्मात्मा सेठ सवचंद-भाई लालचंदभाईके पास गये और अपनी इच्छा प्रकट की। उन्होंने इन्हें आत्मारामजी महाराजसे दीक्षा लेनेकी सम्मति दी और आत्मारामजी महाराजके शिष्य कान्तिविजयजी महाराज आदिके पास जानेके लिए कहा। तदनुसार मौका देखकर ये कान्तिविजयजी महाराजके पास आबू पहुँचे। कान्तिविजयजी महाराजने इन्हें पंजावमें भेज दिया। ये पंजावमें हमारे चरित्रनायकके पास जँडियाला पहुँचे। अपनी इच्छा प्रकट की। आपने इनके घरवालोंको एक रजिस्टर्ड पत्रद्वारा सूचना दी कि डाह्याभाई हमारे पास दीक्षा लेने आया है। इनके सुसरे छगनलाल, इनके वड़े भाई मूलचंद और एक तीसरा आदमी तीनों जंडियाला पहुँचे। इन्हें घर चलनेको बहुत समझाया। मगर ये एकके दो न हुए, तब उन लोगोंने कोर्टमें नालिश की। हाकिमने इन्हें बुलाया और तेहकीकात करनेके बाद अपनी इच्छानुसार वर्ताव करनेकी इजाजत दे दी। इनके ससुर आदि तीनों अपने घर लौट गये। फिर सं० १९४८ की मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमीको सूरिजी महाराजने इन्हें पट्टीमें दीक्षा दी। नाम विवेकविजयजी रक्खा; हमारे चरित्रनायकके यही प्रथम शिष्य हुए। ये वड़े ही गुरुभक्त और धर्मपरायण हैं। अभी गुजरातमें विचरते हैं। पंन्यासजी श्रीललितविजयजी महाराजने एक वार हमसे कहा था कि– “ ये वड़े ही शान्त प्रकृति और निर्लेप हैं। आत्मसाधनाके सिवा इन्हें किसी भी वातसे सरोकार नहीं है। ”



मुनि महाराज श्रीविवेकविजयजी (तपस्वी).

१००८ आचार्य महाराज श्रीमद्विजय वल्लभसूरिजीके मुख्य शिष्य. पृ. १२०

स्थानोंमें लोगोंको विशेप रूपसे धर्ममें लगाते हुए मालेर कोटला पधारे।

सं० १९५६ का तेरहवाँ चौमासा आपका मालेरकोटलामें हुआ। व्याख्यानमें आप सम्यक्त्व सप्ततिका और सूत्रकृतांग बाँचते रहे। यहाँ मुन्शी अब्दुल्लतीफ नामके एक मुसलमान सज्जन आपके गाढे भक्त बन गये। धर्मचर्चामें उन्हें बड़ा आनंद आता था; इस लिए वे हमेशा आते और दुपहरका प्रायः समय आप उनके साथ धर्मचर्चामें ही बिताते।

उन्होंने एक दिन हाथ जोड़कर प्रार्थना की,–" महाराज आप जैसे भावड़ोंके गुरु हैं वैसे ही मेरे भी गुरु हैं। फिर आप-भेदभाव क्यों रखते हैं? मैं आपसे मेरे घरका आहार लेनेके लिए नहीं कहता। मेरी तो सिर्फ इतनी ही अर्ज है कि आप मेरी गायोंका एक दिन दुग्ध ग्रहण करें। आप पधारेंगे तब मैं हिन्दुसे गौ दुहा दूँगा।"

आपने हँसकर कहाः–" मुन्शीजी! आप जानते हैं कि हमारे लिए जो पदार्थ प्रस्तुत किया जाता है वह हम नहीं लेते। मुझे तो आपकी भक्ति दूध क्या अमृतसे भी ज्यादा प्यारी है।"

चौमासा समाप्त होने पर आप मालेरकोटलासे नाभा पधारे। यद्यपि यहाँ श्रावकोंके घर थोड़े थे तथापि आपकी वाणीमें वह जादू है कि जो आपका एक वार उपदेश सुन लेता है वह हमेशाके लिए आपका भक्त बन जाता है। नाभानरेशके

वालमित्र और पूर्ण विश्वासपात्र लाला जीवारामजी मालेरी आपके ऐसे भक्त वने कि, सिरपर राजकीय कामोंका अत्यंत वोझा रहने पर भी जवतक वे घंटा आध घंटा आपके पास न आते थे तवतक उन्हें चैन नहीं पड़ता था। वहाँके प्रसिद्ध व्यापारी लाला फतेचंदजी घुरांटोंवाले भी आपके ऐसे ही भक्त वन गये। इनके अलावा और भी अनेक लोग हमेशा आपके वचनामृतका पान करने आते थे।

नाभासे विहार कर आप सामाना, पटियाला, अंवाला होते हुए रोपड और रोपड़से होशियारपुर पधारे। यहाँके श्रीसंघने स्वर्गीय आचार्य महाराज श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरिजी (आत्मारामजी) महाराजकी एक प्रतिमा वनवाई थी। उसकी प्रतिष्ठा करानेहीके लिए, श्रीसंघके अत्यंत आग्रहसे, आप यहाँ पधारे थे। सं० १९५७ के वैशाख सुदी ६ के दिन वड़े समारोह एवं शान्तिके साथ प्रतिष्ठाका कार्य समाप्त हुआ।

सं० १९५७ का चौदहवाँ चौमासा आपका होशियारपुरमें हुआ। पंजावके श्रीसंघने आपको इस साल आचार्य पदवी देना निश्चित कर आपसे निवेदन किया। आपने झट-पट इन्कार कर दिया।

श्रीसंघने कहाः—" हम तो स्वर्गीय गुरु महाराजकी आज्ञाका पालन करना चाहते हैं। हमने जव पूछा कि, गुरुवर्य आप हमें किसके भरोसे छोड़ कर जाते हैं, तव गुरुदेवने फर्माया

था,—“ तुम चिन्ता क्यों करते हो ? मैं तुम्हें वल्लभके भरोसे छोड़ जाता हूँ। वह मेरी कमी पूरी करेगा।”

आपने भक्तिभावसे स्वर्गीय गुरुचरणोंमें प्रणाम कर कहा:—“ वे बड़े थे। उनकी आज्ञाका पालन करनेमें मैं कभी आगा पीछा नही करता। मैं तो क्या मेरे जैसे हजार वल्लभविजय भी उनकी कमीको पूरा न कर सकेंगे। कहाँ वे शासन-सूर्य और कहाँ मैं टिम टिमाता हुआ दीपक ? सूर्यके अभावमें चिराग़ भी कुछ उपयोगी हो ही जाता है; उसी प्रकार मैं भी आपको धर्मकार्यमें लगाये रखनेके काममें उपयोगी हो सकता हूँ। मगर इतनेहीसे मैं अपने आपको गुरू-गद्दीपर बैठनेके योग्य नहीं समझता। गुरु महाराजके और भी शिष्य हैं। कई मुझसे दीक्षा पर्यायमें बड़े हैं। उनमेंसे आप इस पदके लिए किन्हींको चुन लीजिए। इस तरह मेरा विरोध होने पर भी यदि आप लोगोंका आग्रह ही है तो समस्त मुनिराजोंसे सम्मति ले लीजिए। यदि सबकी राय होगी तो मैं विचार करूँगा। उस वक्त लाला गंगारामजीने कहा;—“मैं मारवाड़ गुजरात आदिमें जाकर प्रायः सब साधुओंसे सम्मति ले आया हूँ। सबने प्रसन्नताके साथ कहा है कि, आप ही इस पदको सुशोभित करनेके योग्य है।

“हाँ एक कान्तिविजयजी महाराजने दूसरी ही सम्मति दी है। उन्होंने कहा है कि,—वल्लभविजयजी इस पदके सर्वथा योग्य हैं। इसका मैं विरोध नहीं करता। जैसे वे अद्वितीय

गुरु भक्त हैं वैसे ही वे विद्वान और वक्ता भी हैं। तो भी मैं उन्हें आचार्य पद देनेमें सम्मत नहीं हूँ। कारण,—वे दीक्षा पर्यायमें कई मुनियोंसे छोटे हैं। मान लो कि हमने उन्हें आचार्य पदवी दी और एक दो साधुओंने इन्कार कर दिया तो इसका फल क्या होगा? आपसी विरोध-से दो दल हो जायँगे। मुझे गुरु महाराजके संघाड़ेमें दो दल हों यह बात बिलकुल मंजूर नहीं है। मुझे विश्वास है कि, वल्लभविजयजी भी यही चाहते होंगे; क्योंकि मैं उनकी महत्ता और शासनभक्ति जानता हूँ। इस लिए मेरी सम्मति है कि, यह पद मुनि श्रीकमलविजयजीको दिया जाय; क्योंकि वे दीक्षापर्यायमें बड़े हैं। ज्ञाता भी अच्छे हैं और वयोवृद्ध भी हैं।"

आप तो पहले ही कह चुके थे कि मैं यह पद स्वीकार न करूँगा। संसारके कार्य बहु सम्मतिसे हुआ करते हैं। इसीके अनुसार अनेक श्रावकों और मुनियोंने आग्रह किया कि, आप इस पदको स्वीकार कर लें; मगर आप सम्मत न हुए, यही कहते रहे कि, गुरु—"महाराजके समुदायको एकताके सूत्रमें बाँधकर रखना मेरे लिए और मेरे साथ ही आप सभीके लिए महान कार्य है। इस लिए आप सभी इस कार्यको कीजिए। मैं आचार्य न बननेसे आपको धर्मकार्यमें मदद न दूँगा, इस तरहकी शंका यदि किसीके दिलमें हो तो उसे निकाल दीजिए।"



उ. सोहनविजयजी चरित्रनायक. वृद्ध म. सुमतिविजयजी

मनोरंजन प्रेस बम्बई.

वृद्ध मुनिराज बाबाजी महाराज श्रीकुशलविजयजी, मुनि श्रीचारित्रविजयजी, मुनि श्रीप्रमोदविजयजी, मुनि श्रीहीरविजयजी और मुनि श्रीउद्योतविजयजी, स्वामीजी श्रीसुमतिविजयजी आदि मुनिगणका आग्रह था कि, हम वल्लभविजयजीहीको आचार्य बनायँगे और मानेंगे । उन्हें बड़ी कठिनतासे आपने समझाया और फिर एक सम्मति-पत्र लिख उस पर आपने सबसे पहले सही की, सब साधुओंकी सही करवाई और वह कान्तिविजयजी महाराजके पास पाटन भेज दिया ।

वाह ! क्या त्याग है ? संसारमें धन-दौलत पुत्र कलत्र और गृहस्थाश्रम छोड़ देना सरल है मगर मान-बड़ाईका त्याग करना, बड़ा ही कठिन काम है। उसमें भी आचार्यके समान दुष्प्राप्य पदवीको-जो विरलोंहीको मिला करती है-छोड़ देना वह भी ऐसी दशामें जब कि अपनें पक्षमें बहु सम्मति हो छोड़ देना, एक दुःसाध्य साधना है । मगर हमारे चरित्रनायकने उसको साधा; एकताके सूत्रमें सबको बाँधे रखनेके लिए आपने यह महान त्याग किया ।

इस सम्मतिपत्रके पहुँचनेपर सं. १९५७ की माघ सुदी १५ के दिन पाटन (गुजरात) में १०८ श्री कमलविजयजी महाराजको सूरि पद प्रदान कियागया ।

पाटन पदवीप्रदान महोत्सवके समय पंजाब श्रीसंघमेंसे कोई भी श्रावक सम्मिलित न हो सका था । केवल गुजराँवा-

लाके एक सज्जन शामिल हुए थे। कारण पंजाबका श्रीसंघ उस समय जंडियालेमें प्रतिष्ठा उत्सव पर गया हुआ था।

१०८ श्रीकमलविजयजी महाराजकी इच्छा थी कि उपाध्याय पद हमारे चरित्रनायकको दिया जाय; मगर हमारे चरित्रनायकने उसे लेना नामंजूर किया।

इस साल स्थानकवासियोंके पूज्य श्रीसोहनलालजी भी होशियारपुरहीमें थे। उनके साथ शास्त्रार्थकी बात छिड़ी थी; मगर अन्तमें वह ढीली पड़ गई। वे शास्त्रार्थ करनेको तैयार न हुए।

× × × ×

चौमासा समाप्त होने पर आप होशियारपुरसे विहारकर, गढ़दिवाला, उरमड, अड्यापुर, टाँडा, मियानी आदि स्थानोंमें होते हुए जंडियाले पधारे। आपके पधारनेका हेतु था यहाँ होनेवाली मंदिरजीकी प्रतिष्ठा। माघ सुदी १३ सं० १९५७ को प्रतिष्ठा हुई। प्रतिष्ठाका सारा काम आप हीकी देखरेखमें हुआ था। इस अवसर पर आपने पचास जिन बिंबोंकी अंजनशलाका भी की थी। स्वर्गवासी आचार्यश्रीने अपनी देखरेखमें आपको जो कार्य सिखाया था वह आज सफल हो गया।

यहाँ प्रतिष्ठा महोत्सव पर समस्त पंजाबका श्रीसंघ आया था। उससे आपने पाइफंडको समृद्ध बनानेके लिए एक फंड जारी कराया। संघने अपनी शक्तिके अनुसार उसमें


॥श्री मद्विजयवल्लभसूरिना शिष्य।
पन्यास ललित विजयजी महाराज॥

रुपया देना स्वीकार किया। कइयोंने उसी समय नकद रुपये भी दे दिये।

यहाँकी प्रतिष्ठा समाप्त होने पर मुनि श्रीलब्धिविजयजी और मुनि श्रीललितविजयजीने आपकी आज्ञानुसार मारवाड़ गुजरातकी तरफ़ विहार किया।

१-इनका जन्म गुजराँवाला जिलेके रहनेवाले श्रीयुत दौलतरामजीके घर हुआ था। सं. १९३७ में इनका जन्म हुआ था। इनका नाम लक्ष्मणदास था। इनके पुरखा महाराजा रणजीतसिंहजीके जमाने तक बहुत बड़े जमींदार रहे थे। इनके पिता अपने इन इकलौते पुत्रको छोड़ कर परलोकवासी हो गये थे। गाँवमें लाला चूड़ामल भगत रहते थे। वे जातिके ओसवाल और पक्के बालब्रह्मचारी एवं जैनधर्मधारी थे। उनका और दौलतरामजीका गाढा स्नेह था। इसलिए दौलतरामजीके मरने पर उन्होंने इन्हें अपने पास रखकर जैनधर्मके रंगमें रंगना प्रारंभ किया। थोड़े ही दिनोंमें पक्के शैवका लड़का दृढ जैनधर्मधारी बन गया। इनका मन जब वैराग्यमें सन गया तब भगतजीने इन्हें गुजराँवालामें आकर हमारे चरित्रनायकके भेट कर दिया। हमारे चरित्रनायकने ग्यारह महीने अपने पास रख, भव्य जीव समझ सं.१९५४ के वैशाख सुदी ८ के दिन नारोवालमें इन्हें दीक्षा दी। नाम 'ललितविजयजी' रक्खा। ये हमारे चरित्रनायकके द्वितीय, आपके (हमारे चरित्रनायकके) शब्दोंमें, अद्वितीय गुरुभक्त हैं। आप जैसे विद्वान हैं वैसे ही अच्छे गायक भी हैं। जिस समय आप भक्तिपूर्ण हृदयसे मंदिरजीमें पूजा पढ़ाते हैं उस समय श्रोता लोग मंत्रमुग्ध सर्पकी भाँति तल्लीन हो जाते हैं। इनके व्याख्यान भी बड़े ही प्रभावोत्पादक होते हैं। गुरुदेवकी आज्ञा, अनेक कष्ट उठाकर भी पालन करनेको ये हर समय तैयार रहते हैं। ये कहा करते हैं,—"गुरुमहाराजके मुझपर इतने उपकार हैं कि उनके हुक्मको पालते हुए यदि मेरा देहपात हो जाय तो भी मैं उनसे उऋण न होऊँ।" सं० १९७६ में बाली (मारवाड़) में गुरु महाराजके समक्ष ही इन्हें पंन्यास सोहनविजयजी महाराज ने, पंन्यास पदसे विभूषित किया। इनके साथ ही मुनि श्रीउमंगविजयजी महाराज और मुनि श्रीविद्याविजयजी महाराज भी पंन्यास पदसे विभूषित किये गये थे।

आप जंडियालासे विहार कर अन्यान्य गाँवोंके जीवोंको धर्मामृत पिलाते हुए अमृतसर पधारे। वहाँ पर 'आत्मानंद जैन पाठशाला पंजाव' की योजना करनेके लिए सं. १९५८ के वैशाख सुदी ११ ता० २९ अप्रेल सन् १९०१ ईस्वीको बाबाजी महाराज श्रीकुशलविजयजीके सभापतित्वमें एक सभा हुई। उसमें आपने श्रावकोंको उत्साहित करनेवाला एक छोटासा व्याख्यान दिया था। उसका श्रावकों पर बड़ा प्रभाव हुआ और उस समय जो पाँच प्रस्ताव आपकी सम्मतिसे पास किये गये उनको उपयोगी समझकर हम यहाँ उद्धृत कर देते हैं

(१) शहर जंडियालेमें प्रतिष्ठामहोत्सवके समय 'श्रीआत्मानंद जैन पाठशाला पंजाव' के लिए जो फंड श्रीसंघ पंजावने स्थापित किया है उसमें जिन जिन शहरोंने अपने नाम चंदेमें नहीं लिखाये हैं उन शहरोंको चंदा देना चाहिए।

(२) पहली मई सन् १९०१ से प्रत्येक नगरके श्रद्धालु सेवकोंको चाहिए कि वे अपनी शक्तिके अनुसार प्रति दिन कमसे कम एक पाई इस फंडमें जरूर दें। ज्यादा इच्छानुसार दे सकते हैं। यह नियम अभी दस वरस तकके लिए किया जाता है।

(३) 'श्रीआत्मानंद जैनपाठशाला पंजाव' के लिए पुत्रके विवाह पर पाँच रुपये और पुत्रीके विवाह पर दो रुपये निकाले जाया करें। अधिक निकालनेका हरेकको अखतियार है।

(४) विवाहके समय जैसे श्रीजिनमंदिरजीमें रुपये चढ़ाया करते हैं वैसे ही 'श्रीआत्मानंद जैनपाठशाला पंजाव' के नाम भी चढ़ाया करें। क्योंकि प्रायः पंजाव देशमें सब स्थानों पर श्रीजिनमंदिर बन गये हैं, बन रहे हैं और सब तरहके खर्चका काम चल जाता है, इसलिए ज्ञानके उद्धारका ध्यान करना भी श्रीसंघका उचित आचरण है।

(५) पर्युषणोंके दिनोंमें कल्पसूत्रकी बोलियाँ और ज्ञान पंचमी वगैरहका जो कुछ ज्ञानसंबंधी चढ़ावा होता है, वह 'श्रीआत्मानंद जैनपाठशाला पंजाव' के फंडमें शामिल होना चाहिए।

(६) चातुर्मास आदिमें साधु मुनिराजोंके दर्शनार्थ जो श्रावक आते हैं वे जैसे श्रीजिनमंदिरमें चढ़ाते हैं वैसे ही उस समय 'श्रीआत्मानंद जैनपाठशाला पंजाव' के नाम भी, न्यूनाधिक जैसा बन सके, कुछ चढ़ावा चढ़ाया करें।

उस साल यानी सं० १९५८ का पन्द्रहवाँ चौमासा आपने अमृतसरहीमें किया था। यहींसे आपने 'आत्मानंद जैनपत्रिका- में श्रीगौतमकुलकका हिन्दी रुपान्तर निकलवाना प्रारंभ किया। इसी चौमासेमें कार्तिक सुदी १४ के दिन वृद्ध महात्मा मुनि श्री १०८ कुशलविजयजी (बावाजी) महाराजका देवलोक हो गया। इनमें वैयावृत्यका जो गुण था वह श्रीआत्मारामजी महाराजके संघाड़ेके साधुओंमें तो क्या अन्य भी किसी संघाड़ेके साधुओंमें नहीं है।

अमृतसरका चौमासा समाप्तकर आप २१ दिसंबर सन् १९०१ ईस्वीको लाहोर पधारे आपके साथ मुनि श्रीहीरविजयजी महाराज और मुनि श्रीसुमतिविजयजी महाराज थे। लाहोरमें आपने सूयगडांग सूत्रका व्याख्यान प्रारंभ किया था। आप सं० १९५५ में जिस उपाश्रयमें ठहरे थे, इस बार भी उसी पंचायती उपाश्रयमें ठहरे थे।

यहाँ 'आत्मानंद जैन सभा पंजाब' का दूसरा वार्षिकोत्सव आपकी उपस्थितिमें हुआ। आपने उपदेश देकर यहाँ उन सभी प्रस्तावोंको पुनः पास करवाया जो अमृतसरमें हो चुके थे। तीसरे प्रस्तावमें पाँच और दो रुपयेकी जगह एकसे लेकर पाँच रुपये तक इच्छानुसार निकालना लिखा है। चौथे प्रस्तावमें विशेष फ़र्क है इसलिए उसकी पूरी नक़ल यहाँ दी जाती है।

(४)—"विवाहके समय श्रीजिनमंदिरजीमें जो रकम बराती चढ़ावें सो 'श्रीजिनमंदिरजी' तथा 'श्रीआत्मानंद जैन पाठशाला पंजाब, के नामसे (चढ़ावें और) जमा करें। खास गुजराँवालाके वास्ते श्रीसंघ पंजाबकी यह सम्मति है कि, जो रकम बराती चढ़ावें उसको (१) श्रीजिनमंदिरजी (२) श्रीआत्मानंद जैन पाठशाला पंजाब और (३) श्री १००८ श्रीगुरुदेवजी महाराजकी समाधिके नामसे चढ़ावें और शहर गुजराँवालाका श्रीसंघ उसको बराबर तीन हिस्सोंमें तीनोंहीके नामसे जमा करे।"

पाँचवें प्रस्तावमें पर्युषणोंका ज्ञानसंबंधी चढ़ावा 'श्रीआत्मानंद जैन पाठशाला पंजाब' हीमें देनेकी बात थी वह बदल दी गई और उसकी जगह यह स्थिर हुआ कि चढ़ावेका आधा हिस्सा 'पाठशाला पंजाब' में और आधा अपने शहरके 'ज्ञानखाते' में दिया जाय।

एक महीने तक लाहोर निवासियोंका उपकार कर ता. १९ जनवरी सन् १९०२ को आपने वहाँसे विहार किया। मुनि महाराज श्रीहीरविजयजी और मुनि महाराज श्रीसुमतिविजयजी सहित आप ग्रामानुग्राम विचरते हुए लुधियाना पधारे। यहाँके श्रावक आपके आगमनसे बड़े हर्षित हुए। आपके वचनामृत पानकरनेके लिए सारे ही गाँवके नरनारी सवेरे व्याख्यानमें आया करते थे।

लुधियानेमें एक मास तक अमृत वर्षाकी और वहाँसे विहार करके आप फाल्गुन वदी १३ सं० १९५८ को कसूर पधारे और वहाँके लोगोंको धर्म-पीयूष पिलाने लगे। आपके उपदेशसे वहाँ फाल्गुन सुदी १० को शांतिस्नात्र पूजा पढाई गई और लाला जीवनलालने 'सधर्मी वात्सलय' किया। यह बात कसूरके लिए सबसे पहली ही थी।

कसूरसे आप विहार कर अमृतसर और अमृतसरसे जंडियाले पधारे। वहाँ सं. १९५८ के आषाढ़ वदी ५ गुरुवार ता. २६ जून सन् १९०२ ईस्वीको बड़ी धूम धामसे दो व्यक्तियोंकी दीक्षा हुई। उनका नाम विनोदविजयजी और विमलविजयजी रक्खा गया।

जंडियालेसे आप चौमासा करनेके लिए पट्टी पधारे। संवत १९५९ का सोलहवाँ चौमासा आपने पट्टीहीमें किया। पट्टीमें आपके उपदेशसे स्वर्गीय आचार्य महाराजकी स्वर्गवास तिथिके दिन और संवत्सरीके दिन दुकानें बंद रखने और आरंभसे बचनेका सारे संघने नियम किया।

पट्टीसे विहार करके आप जीरा पधारे। जीरामें, आपने श्रीजैनधर्म प्रसारक सभा भावनगर द्वारा प्रकाशित 'साधुप्रति-क्रमण' नामका ग्रंथ देखा। उसमें सालमें दो बार यानी हर छठे महीने, साधुओंके लिए कायोत्सर्ग करनेका विधान किया-गया था। आपने इस लेखमें एक भूल देखी और 'आत्मानंद जैन पत्रिकामें'—जो उस समय लाहोरसे प्रकाशित होती थी,-एक सूचना प्रकट कराई और उसके द्वारा यह सिद्ध किया कि वर्षमें एक ही बार और वह भी चैत्रके महीनेहीमें कायोत्सर्ग करनेकी शास्त्र-आज्ञाहै। अपने कथनकी पुष्टिमें आपने 'सामाचारी शतक' और 'आवश्यक प्रतिक्रमण अध्ययन' के पाठ भी दिये। इस सूचनामें आपने जामनगर निवासी पंडित हीरालाल हंसराज द्वारा लिखित 'जैनधर्मनो प्राचीन इतिहास' नामक पुस्तकके विषयमें भी लिखा है कि, उसमें कई बातें अनुचित और गलत हैं। आपने संघसे अपील की थी कि, एक ऐसी कमेटी बनाई जावे कि, जो जैनधर्मसे संबंध रखने वाले ग्रंथोंको आद्योपान्त देख ले और जबतक वह देख कर पास न कर दे तबतक कोई ग्रंथ—एक छोटासा पेम्प्लेट भी—जैनधर्मके विषममें प्रमाणित न माना जावे।

जीरासे विहार करके आप मालेरकोटला पधारे। वहाँ कई दिनों तक आप भक्तोंको जिनवचनामृतका पान कराते रहे। वहाँसे विहार करके ग्रामानुग्राम विचरते, जैन धर्मकी प्रभावना करते और उपदेशामृतकी वर्षा करते हुए आप अंबाला पधारे और सं १९६० का सत्रहवाँ चातुर्मास आपने अंबालेहीमें किया।

यहाँ आठ और नौ अगस्त सन् १९०३ को आत्मानंद जैन सभा पंजाबका जल्सा हुआ था। सभापतिका स्थान आपने सुशोभित किया था।

होशियारपुरके सरकारी गेजेटियरमें किसी लेखकने–जिसको जैन धर्म और उसके पालनेवालोंका कुछ परिचय नहीं था–भावड़ोकी यानी ओसवालोंकी शूद्रोंमें गिनती कर डाली थी। इस भूलको सुधरवानेके लिए आपने उपदेश देकर एक कमेटी बनवाई। इस कमेटीमें बाबू लेखूराम आदि कई सज्जन थे। कमेटीने प्रयत्न करके सफलता प्राप्त कर ली।

उसी वर्ष बंबईमें श्वेताम्बर जैन कॉन्फरन्स होनेवाली थी। आपने कॉन्फरन्समें भाग लेनेका उपदेश दिया। इस पर पंजाबके प्रत्येक शहरमेंसे प्रतिनिधि भेजना स्थिर हुआ। तबसे प्रत्येक कॉन्फरन्समें पंजाबके प्रतिनिधि जाते रहे हैं।

इस चौमासेमें अंबालाशहरमें एक पाठशाला खोली गई। उसका नाम 'श्रीआत्मानंद जैन पाठ शाला' रक्खा गया। वह धीरे धीरे उन्नत होकर अब हाई स्कूल बन गई है। आपके उपदेशसे यहाँ और भी अनेक कार्य हुए थे।

अंबालेसे विहार करके आप सामाना (पटियाला स्टेट) में पधारे। वहाँ उस समय मूर्तिपूजक श्रावकोंके केवल पाँच ही घर थे। बाकी सभी स्थानकवासी थे। फिर भी बड़ी धूमधामके साथ आपका नगर प्रवेश हुआ। अन्य धर्मावलंबियोंकी काफी तादाद आपके स्वागतार्थ जुलूसमें शामिल हुई। कई कुतूहलवश आये थे, कई भक्तिवश आये थे, कई प्रख्यात साधुवरके दर्शनकरनेकी इच्छासे आये थे कई आपके वचनामृतका पान करने आये थे और कई श्रावकोंके मुलाहजेसे जुलूसमें शामिल हो गये थे।

उपाश्रयमें पहुँचकर आपने धर्मोपदेश दिया। उसे सुनकर लोग मुग्ध हो गये। फिर तो सभी हमेशा आपका उपदेशामृत पान करने आने लगे। कई स्थानकवासी भाई भी अपनी भूलको सुधारकर पुनः वीतरागके शुद्ध धर्ममें सम्मिलित हो गये।

वहाँ सुरजनमल नामके एक स्थानकवासी श्रावक थे। वे एक दिन महाराज साहबके पास आये और चर्चा करने लगे। मगर दो चार प्रश्नोत्तरहीमें उनका सारा ज्ञान समाप्त हो गया। तब उन्होंने आपसे कहाः—" यदि आप हमारे पूज्य श्रीसोहनलाल-जीसे शास्त्रार्थ करनेको तैयार हों तो मैं उन्हें बुलाऊँ। यदि वे हार जायँगे तो मैं भी श्वेतांबर बन जाऊँगा और यदि आप हार जायँ तो आप स्थानकवासी हो जाइएगा।"

आप मुस्कुराये और बोले—" अच्छा!"

लाला सुरजनमल कैथल—जहाँ पूज सोहनलालजी थे—दो

चार दूसरे स्थानकवासियोंके साथ गये। उन्हें सारी बातें सुनाई अपनी प्रतिज्ञाका हाल भी कहा।

इच्छा न होते हुए भी पूज सोहनलालजी १४ साधुओं सहित सामाने आये। सारे शहरमें पवनवेगसे यह बात फैल गई कि स्थानकवासियोंका और श्वेतांबरोंका शास्त्रार्थ होनेवाला है।

लाला सुरजनमलने पूज सोहनलालजीसे कहा:—" महाराज! अब शास्त्रार्थकी तैयारी होनी चाहिए। "

पूज सोहनलालजीने जवाब दिया—" श्रावकजी! शास्त्रार्थ किससे करनेको कहते हो इसके गुरु आत्मारामजी भी जब हमारे प्रश्नोंका जवाब न दे सके तब यह तो देही कैसे सकता है?"

सुरज०—यह तो और भी अच्छी बात होगी। अगर वे हार जायँगे तो तत्काल ही स्थानकवासी हो जायँगे।

बात बड़ी, मीठी, मनमें गुद्गुदी पैदा करनेवाली थी; मगर थी असाध्य। पूजजी अपनी स्थिति समझते थे। यदि उन्हें रुपयेमेंसे एक आना भी विश्वास होता कि, हम वल्लभविजयजीसे शास्त्रार्थमें जीत जायँगे तो वे इस स्वर्ण अवसरको कभी न छोड़ते। मगर उन्हें तो रत्तीभर भी विश्वास नहीं था। इस सौदेमें उन्हें तो हानि ही हानि दिखती थी। इसलिए बोले:— " एक प्रश्न जाकर वल्लभविजयजीसे पूछो। वे इसका उत्तर बिलकुल न दे सकेंगे। प्रश्न यह है,—'आत्मारामजीने जैनतत्वादर्शके बारहवें परिच्छेदमें, महानिशीथ सूत्रके तीसरे अध्ययनका पूजाके विषयका जो पाठ दिया है वह सूत्रमें कहाँ लिखा है?

बताइए।' वे पाठ न बता सकेंगे; क्योंकि सूत्रमें वह पाठ नहीं है। बस लोगोंसे कह देना कि, इनकी सारी बातें इसी तरह मनगढंत हैं। सच्चा वीतरागका धर्म तो स्थानकवासी ही पालते हैं। लोग तत्काल ही स्थानकवासी धर्मके हिमायती हो जायँगे।"

सुर्जनमल उछल पड़ा। मानों उसे चिन्तामणि रत्न मिल गया है; उसका मन आकाशमें महल बनाने लगा। उसने अपने कल्पना चक्षुसे देखा कि, जो वल्लभविजयजी श्वेतांबर सम्प्रदायके स्तंभ थे वे ही अब स्थानकवासी संप्रदायके स्तंभ हो गये हैं। जिनके कारण श्वेतांबरोंका समस्त भारतमें जयजय कार हो रहा था उन्हींके कारण अब स्थानकवासियोंकी जय पताका उड़ रही है। भोले श्रावकको क्या खबर थी कि थोड़ी ही देरमें यह महल—यह सुखस्वप्न नष्ट भ्रष्ट हो जायगा।

हमारे चरित्रनायक व्याख्यान दे रहे थे। मुसलमान, ब्राह्मण, क्षत्री आदि सभी तरहके लोग उपदेश सुन रहे थे और अपनी शंकाएँ मिटा रहे थे। उसी समय लाला सुर्जन-मल कई स्थानकवासियोंके साथ वहाँ पहुँचे उस समय वे इतना हर्षवावले हो रहे थे कि उन्हें सभ्यताका भी खयाल न रहा। बात कैसे शुरू करनी चाहिए इसका ज्ञान तो हो ही कैसे सकता था? उन्होंने झटसे मुखधनुषकी टंकार कर पूज सोहनलालजीका दिया हुआ ब्रह्मास्त्र छोड़ा।

श्रोता चौंके। उन्होंने सुर्जनमलकी तरफ देखा। व्याख्या-नके रसपानमें विघ्न डालनेवालेपर उन्हें तरस आया। हमारे

चरित्रनायककी स्थिति निराली थी । वे सुर्जनमलकी तरफ देखकर मुस्कुराये और बोलेः—" भावी श्रावक ! एक बड़ी सभा करो। सभी धर्मके बड़े बड़े विद्वानोंको बुलाओ ! उसीमें हम वह पाठ दिखायँगे। यहाँ दिखानेसे कोई लाभ नहीं है। "

सभी श्रोताओंने कहाः—" ऐसा ही होना चाहिए। जनता-पब्लिक-को भी मालूम हो जायगा कि, कौनसा फिरका वीतरागका सच्चा उपासक है । "

सुर्जनमल ऐसी आशा करके नहीं आया था। उसका हवाई किला ध्वंस हो गया। उसे दुःख हुआ । "ऐसा ही सही" कह कर वह चला गया।

शास्त्रार्थका दिन निश्चित हुआ। सारे शहरमें धूम मच गई। आसपासके अनेक लोग शास्त्रार्थ सुनने जमा होने लगे ।

शास्त्रार्थके एक दिन पहले शहरके मुखिया लाला पंजाबराय, लाला सीताराम, आदि कई पंडितों और यति बख्शीऋषिजीके सहित पूज सोहनलालजीके पास गये । अनेक बातें होती रहीं। शास्त्रार्थकी बात छिड़ी। बख्शीऋषिजी बोलेः—"महाराज आप शास्त्रार्थमें तो कल जावेंहीगे ? "

सोहनलालजीने वही बात दुहराई जो सुर्जनमलसे कही थी।

बख्शी०—" मगर वल्लभविजयजी तो पाठ दिखानेके लिये तैयार हैं। "

सोह०—" नहीं जी ! यह पाठ सूत्रमें है ही कहाँ ? "

बख्शी०—"यदि नहीं है तब तो आपकी जीत निश्चित ही है। आपको यह अवसर हाथसे न खोना चाहिए।"

सोह०—"हम अपना स्थान छोड़ कर कहीं नहीं जाते।"

बख्शी०—"धर्मकार्यमें जाना बुरा नहीं है और वह तो ऐसी जगह है जहाँ किसी तरहकी रोक नहीं हो सकती। पंडितोंके सामने सत्यासत्यका निर्णय हो जायगा।"

सोह०—"पंडित क्या समझते हैं वे तो टुकड़ गदाई हैं।"

साथमें गये हुए पंडितोंके अंदरसे एक क्रुद्ध होकर बोलाः—"यदि पंडित नहीं समझते हैं तो क्या गधे चरानेवाले कुम्हार समझते हैं? कहाँ मुनि वल्लभविजयजी विद्या और विद्वानोंका सम्मान करनेवाले और कहाँ तुम!"

सभी उठ कर चले गये।

कटरेमें सभा होना निश्चित हुआ था। सभास्थान जनतासे खचा खच भर गया। दिनके ठीक चार बजे हमारे चरित्रनायक सभामें, अपने कई साधुओं सहित पहुँचे। आपने जैन धर्मका महत्त्व समझाकर श्वेताम्बरों और स्थानकवासियोंमें क्या फर्क है सो समझाया। स्थानकवासियोंके दिल दहले। उन्हें अपने पंथकी नौका डगमगाती हुई दिखाई दी। उनमेंसे कई पूज सोहनलालजीके पास पहुँचे और दुःखी स्वरमें बोलेः—"महाराज अगर आज आप शास्त्रार्थमें न चलेंगे तो हम कहीं मुँह दिखाने लायक भी न रहेंगे।"

यद्यपि पूज सोहनलालजी पहले कह चुके थे कि हम

किसी दूसरी जगह नहीं जाते तथापि उन्होंने अपने श्रावकोंको प्रसन्न रखनेके लिए करमचंदजी नामके साधुको भेजा। उन्हें महानिशीथ सूत्र भी दे दिया।

करमचंदजी एक दूसरे साधु सहित सभास्थानमें पहुँचे और सभामें व्याख्यान और शास्त्रार्थके लिए बनाई हुई जगह पर न जाकर एक तरफ़ खड़े हो गये और कुछ कहने लगे।

लोगोंने कहा:—"महाराज आप व्यास पीठ पर आइए।"

उन्होंने उत्तर दिया:—"हम वहाँ नहीं आ सकते।"

लोगोंको व्याख्यानमें आनंद आ रहा था मगर उन्होंने व्याख्यान बंद कर कर्मचंदजीसे वार्तालाप करनेकी हमारे चरित्रनायकसे प्रार्थना की। आप अपना व्याख्यान बंद कर करमचंदजी जहाँ खड़े थे वहाँ गये और सादर पूछा:—"क्या आप शास्त्रार्थ करेंगे?"

करमचंदजीने उत्तर दिया:—"हम यहाँ शास्त्रार्थ करने नहीं आये हैं।"

लोग हँस पड़े। कुछ उद्धत युवक करमचंदजीको अपमान जनक शब्द कह बैठे। हमारे चरित्रनायकने उनको धमकाया और कहा:—"खबरदार! त्यागीका अपमान न करना।"

लोग चरित्रनायककी इस महानताको देखकर मुग्ध हो गये। करमचंदजीके दिल पर भी इस महानताका प्रभाव पड़ा। वे बोले:—"हम तो यतिजीको पाठ दिखाने आये हैं।"

यति चरणऋषिजीने जैनतत्त्वादर्शके साथ पाठ मिलानेके

कहा। करमचंदजीने अंगूठे नीचे उस पंक्तिको छुपा दिया जिसमें पूजा करनेकी बात लिखी थी। यतिजीने अंगूठा हटवाकर वह पंक्ति स्पष्ट अक्षरोंमे पढ़कर सुनाई। स्थानकवासी साधु और श्रावकोंको बड़ा बुरा लगा। लोगोंने भगवान महावीरकी जय! आत्मारामजी महाराजकी जय! वल्लभ-विजयजी महाराजकी जय! ध्वनिसे सभामंडपको गुँजा दिया। स्थानकवासी साधु तथा श्रावक चुपचाप अपने पूजजीके पास चले गये। पब्लिकने जुलूसके साथ हमारे चरित्रनायकको उपाश्रयमें पहुँचाया।

दूसरे दिन सूर्यग्रहण था। ग्रहणमें अन्नोदक ग्रहण करना प्रायः हिन्दु तथा जैन सभी बुरा समझते हैं; कोई करता भी नहीं है। मगर पूज सोहनलालजीने उस दिन आहारपानी मँगवाया, किया और पटियाले चले गये इसलिए वे लोगोंकी दृष्टिमें और भी ज्यादा गिर गये।

हमारे चरित्रनायकने दो चार दिन और वहीं ठहर रियासत नाभाकी तरफ विहार किया; नाभे पहुँचे। पूज सोहनलालजी भी पटियालेसे विहार कर वहीं पहुँच गये थे।

एक दिन हमारे चरित्रनायक जब व्याख्यान समाप्त कर साधारणतया वार्तालाप कर रहे थे तब एक व्यक्तिने निवेदन किया:—"कृपानिधान! पूज सोहनलालजी और उनके शिष्य जगह जगह कहते फिरते हैं कि, श्वेतांबरोंमें कोई ऐसा नहीं है जो हमारे साथ शास्त्रार्थ करे।"

१ विशेष वृत्तान्त और वहाँ की उपस्थित जनता—जिसमें अनेक विद्वान भी थे—का फैसला उत्तरार्द्ध में देखिए।

नाभाके महाराज श्रीहीरासिंहजी बड़े ही धर्मप्रेमी और न्यायी थे । साधु संतों पर उनकी बड़ी भक्ति थी। जब उन्होंने हमारे चरित्रनायकके आगमनकी खबर सुनी तो आपको बुलाया । आप राजसभामें पधारे । नरेशने आपको बड़े आदरके साथ ऊँचे स्थान पर बिठाया । आपसे वार्तालाप कर नरेश बहुत प्रसन्न हुए। उनके अन्तःकरणमें बड़ी ही शान्ति हुई । सच है—

चंदनं शीतलं लोके, चंदनादपि चंद्रमाः ।
चंदनचंद्रयोर्मध्ये, शीतलः साधुसंगमः ॥

(भावार्थ—संसारमें चंदन शीतल है, चंदनसे चंद्रमा शीतल है, मगर चंदन और चंद्रमाकी अपेक्षा भी साधुओंकी संगति विशेष शीतल है,—आत्माको विशेष रूपसे शान्ति देनेवाली है।)

अनेक मतमतान्तरोंकी चर्चा होती रही । नाभानरेश और उनके दर्बारी आपकी विविध धर्मोंकी जानकारी, तथा भिन्न भिन्न धर्मोंके तत्वोंको, अहिंसाधर्मके प्रतिनिधिके रूपमें होनेकी, प्रतिपादनकरनेकी सुंदर रीतिको देखकर बड़े खुश हुए । सबने धन्य धन्य कहा । करीब एक घंटे तक वार्त्तालाप करके आप अपने उपाश्रय लौट गये ।

लाला जीवाराम नाभामें एक बहुत प्रतिष्ठित सज्जन थे । जातिके अग्रवाल और नाभानरेशके बालमित्र थे । राज्यमें वे चाहते थे सो करसकते थे । यद्यपि वे वैष्णवधर्म पालते थे, तथापि हमारे चरित्रनायक पर उनकी अचल भक्ति थी ।

सं० १९५६ में जब आप नाभा पधारे थे तभीसे, लालाजीके हृदयमें आपके लिए भक्ति उत्पन्न हो गई थी ।

वे रोज व्याख्यानमें आते थे और धर्मवचनामृत पान कर कृतकृत्य होते थे। जिस रोज चर्चाकी वात छिड़ी थी उस दिन भी वे बैठे हुए थे। आपने उनकी तरफ देखा और कहा:—"लालाजी! सुना आपने? नाभाका राज्य वड़ा ही न्यायी समझा जाता है। महाराज हीरासिंहजी सत्य निष्ठ और न्याय करनेमें साक्षात् धर्म-राज हैं। आप इस न्यायासनके स्तंभ हैं; मगर आपके राज्यमें भी ऐसी बातें होती हैं। यह आश्चर्य है। एक वार राज्यसभामें शास्त्रार्थ कराकर सदाके लिए क्या इसका फैसला नहीं हो सकता?"

लालाजी कुछ देर सोच कर बोले:—"आप शास्त्रार्थके लिए तैयार हैं?"

आपने उत्तर दिया:—"मैं हर समय तैयार हूँ। आप मेरे इन छः प्रश्नोंका उत्तर मँगवा दें।" आपने छः प्रश्न लिखे हुए दिये।

लालाजीने जाकर महाराज हीरासिंहजीसे अर्ज की। प्रश्न-पत्र भी दिया। उन्होंने फर्माया:—"कोई हर्ज नहीं है। तुम स्थानकवासियोंको पूछकर इसका प्रबंध कर दो।"

लाला जीवारामजीने पूज सोहनलालजीके पास आदमी भेज-कर उनसे पूछा कि आप शास्त्रार्थके लिए तैयार हैं या नहीं? श्वेतांबरी शास्त्रार्थके लिए तैयार हैं।"

पूज सोहनलालजी बड़े चक्करमें पड़े। हाँ कह कर हमारे चरित्रनायकके साथ शास्त्रार्थमें ठहरना दुःसाध्य था। ना कहनेसे लोगोंकी और खासकरके वहाँके अपने बड़े बड़े श्रावकोंकी निगाहसे गिर जानेका भय था। बहुत सोचविचारके बाद उन्होंने शास्त्रार्थ करनेकी सम्मति दी। मगर खुद शास्त्रार्थमें शामिल न हुए। उन्होंने अपने पोते शिष्य श्रीयुत उदयचंद्रजीको इस शास्त्रार्थका मुखिया नियत किया और लिख दिया कि इनकी हारसे हमारी हार समझी जायगी और इनकी जीतसे हमारी जीत।

कई दिन तक यह शास्त्रार्थ हुआ। महाराजा हीरासिंहजी स्वयं शास्त्रार्थके समय उपस्थित रहते थे। प्रसंगोपात्त अनेक मनोरंजक बातें भी हुआ करती थी। उनमेंसे हम एकका यहाँ उल्लेख करते हैं।

"एक दिन श्रीयुत उदयचंद्रजीने कहा कि,—"श्वेतांबर लोग मुँहपत्ति नहीं रखते हैं। शास्त्रोंमें मुँहपत्ति रखनेकी आज्ञा है। अतः ये लोग शास्त्राज्ञाके विराधक हैं।"

आप बोले;—"धर्मावतार! आप देखते हैं कि मेरे हाथमें एक छोटासा सोलह अंगुल लंबा और सोलह अंगुल चौड़ा कपड़ा है। इस कपड़ेको मुँहके आगे रक्खे बिना कभी मैं एक शब्द भी नहीं बोलता। (सभामें बैठे हुए सभी लोगोंको संबोधन करके) क्या आपमेंसे कोई कह सकता है कि, मैं एक शब्द भी बगैर इस कपड़ेके बोला हूँ। सब बोल उठे,—

“ बिलकुल नहीं। ” आपने फर्माया:—“ इस कपड़ेहीका नाम मुँहपत्ति है। मैं हर समय इसका उपयोग करता हूँ। अब स्वयं आप विचार सकते हैं कि, श्रीयुत उदयचंद्रजीका आक्षेप कितना निरर्थक है। ”

महाराजा हीरासिंहजी मुस्कुराये और बोले:—“ उदयचंदजी तुम्हारी यह कपड़ा मुँह पर बाँध रखनेकी कला बिलकुल अच्छी नहीं लगती। जीव मरनेकी बात कहते हो सो हवा तो नाकमेंसे भी निकलती है और कानसे भी जाती आती ही है। अगर तुम जीवोंकी रक्षा ही करना चाहते हो तो इसतरहका टोपा बनाकर पहना करो। ”

सी तरहकी अनेक बातें हुई थीं। नाभेके शास्त्रार्थका फैसला और प्रश्नपत्र उत्तरार्द्धमें ‘नाभेका शास्त्रार्थ’ के नामसे छपे हैं।

नाभेके शास्त्रार्थके बाद आपने ‘ मालेरकोटला ’ की तरफ विहार किया। एक महीने तक वहीं रहे और भव्य जनोंको और जिज्ञासुओंको धर्मामृत पिलाकर कृतकृत्य करते रहे। सामानेके श्रीसंघने आपसे सामानामें चौमासा करनेकी विनती

१ कहा जाता है कि, नाभानरेशने एक टोपा बनवाया। वह इस तरहका था कि, जिससे आँखोंके सिवा नाक, कान और मुँह सभी ढक जायँ। फिर एक बालकको सभामें बुलवाकर उसे वह टोपा पहनाया और कहा कि, तुम इस तरह पहना करो। इसीसे तुम्हारी धारणाके अनुसार तुम पूर्णरूपसे जीवोंकी रक्षा कर सकोगे।

की' आप उस विनतीको मान कर कोटलेसे सामाने पधारे और सं० १९६० का सत्रहवाँ चौमासा वहीं किया।

वहाँ एक जिनमंदिर बनवाना भी स्थिर हुआ।

पंजाबमें प्रायःसभी स्थानोंपर पर्युषणोंमें रथ निकलते हैं। भगवानकी प्रतिमाएँ सारे शहरमें जुलूसके साथ फिराई जाती हैं। सामानेमें भी बड़ी धूमसे जुलूस निकलनेकी तैयारियाँ हो रही थी। शान्तमूर्ति मुनि श्रीहंसविजयजी महाराजने पाली-तानेसे दो छोटी मूर्तियोंके साथ एक श्रीशान्तिनाथ भगवा-नकी दिव्य प्रतिमा भेजी थी। उसका नगरप्रवेश बड़ी धूमधामसे कराया। गया उस दिन भी स्थानकवासियोंने गड़बड़ी मचाई थी; मगर हमारे चरित्रनायकके दिव्य उपदे-शके कारण सनातनी भी आप पर भक्ति रखते थे और हैं इस लिए उन्होंने भी इस कामको आपहीका काम समझकर रथ निकालनेमें पूरी सहायता की। स्थानकवासी देखते ही रह गये।

लाला सीताराम और लाला पंजाबराय सामाना शहरमें अच्छे प्रतिष्ठित और वसीलेवाले आदमी हैं। जातिके अग्रवाल हैं और सनातन धर्म पालते हैं। वे हमारे चरित्रनायक पर इतनी भक्ति रखते हैं कि संभवतः श्रावक भी उनकी बराबरी शायद ही कर सकें। दोनों सज्जन नियमित रूपसे आपके व्याख्यान सुनने आते थे। उन्होंने प्रथमसे ही आपसे निवेदन किया था

कि आप किसी तरहकी चिंता न करें। हम सब प्रबंध ठीक कर देंगे। प्रभुकी सवारी जरूर निकाली जावे।

आपने लाला पन्नालालजी अमृतसर वालोंको, लाला गंगारामजी अंबालावालोंको और लाला गूजरमलजी होशियारपुरवालोंके पोते लाला दौलतरामजीको बुलाया और रथयात्राकी इच्छा जाहिर की।

और विघ्नोंकी बात कही। वे तत्काल ही पटियाला पहुँचे। वहाँ मालूम हुआ कि बारबटन साहब—जो आजकाल राज्यका इंतजाम कर रहे हैं—शिमला हैं। वे तत्काल ही शिमलाके लिए रवाना हो गये और आपको पता दे गये कि, आप चिन्ता न करें। हम शिमला जा रहे हैं शासनदेव हमारी सहायता करेंगे। इस धर्मकार्यको कोई रोक न सकेगा। जहाँ आप हैं वहाँ विघ्न कितनी देर ठहर सकता है?

इन सज्जनोंका पंजाबमें अच्छा मान है। लाला पन्नालालजीको प्रायः कई राजा महाराजा और हाकिम लोग पहचानते हैं। जब ये शिमला पहुँचे और बारबटन साहबसे मिले तब साहबने आश्चर्यके साथ पूछाः—"आप किधरसे आ गये?"

लालाजी बोलेः—"आपसे हमारा धर्मकाम कराना है इस लिए यहाँ आये हैं।"

साहबने पूछाः—"आपका कौनसा धर्म-कार्य है?"

लालाजीने सामानेकी बात सुनाई और कहाः—"सामा-

नेमें हमारे गुरुओंका चौमासा है। वहाँ हम जुलूस निकालना चाहते हैं; मगर वहाँके स्थानकवासी भाई हमारे धर्मकाममें विघ्न डालनेके लिए हर तरहकी कोशिश करते नजर आते हैं, सो इसके लिए उनको हिदायत होनी चाहिए। हमको वे लोग फिसाद करेंगे ऐसा डर है; इस लिये आप वहाँ खास पुलिसका, इन्तजाम करनेके लिए, भेज दीजिए, ताके वे हमारे काममें किसी तरहका खलल न डाल सकें।"

बहुत कुछ सोच विचारके बाद साहबने जुलूस निकालनेका इनामत और पटियाले अपने सुप्रिण्टेण्डेण्टके पास हुक्म भेज दिया कि, वे सशस्त्र पुलिसकी चार गार्द सामाने भेज दें और जहाँ कोई थोड़ीसी भी गड़बड़ करे फौरन उसको कैद कर लें।

इस कारणसे भी जुलूस आनंदपूर्वक निकाला गया। विक्रम संवत् १९६१ भादवा वदी १४ को महेन्द्रध्वज निकला, रथयात्रा हुई और कल्पसूत्रकी सवारी निकली। साथमें, कोटला, पट्टी, होशियारपुर, सामाना, गुजराँवाला और :अंबालाकी जैनभजन–मंडलियाँ थीं। इतना ही क्यों सामानेके सनातनी भाई भी अपनी भजनमंडली और पूरे ठाठ सहित जुलूसके साथमें थे।

सामानेके श्रीआत्मानंद जैनसभाके सभासदोंकी विनतीसे हमारे चरित्रनायकने लच्छीकी चालमें उस समय एक भजन बनाया था, वह यहाँ दिया जाता है।

आहोजी शांति प्रभु सुखकारी।
सुखकारी सुखकारी भवसागर पार उतारी। शांति० (अंचली)
आहोजी शहर समानामें,
समानामें समानामें जिनमंदिर बनाया भारी॥ शां०॥ १॥
आहोजी सिद्धगिरि तीरथसे।
तीरथसे तीरथसे प्रभु मूरति मोहनगारी॥ शां०॥ २॥
आहोजी भेजी भावोंसे।
भावोंसे भावोंसे हंसविजय मुनि उपकारी॥ शां०॥ ३॥
आहोजी परव पजोसनमें।
पजोसनमें पजोसनमें होया महोच्छव शोभाकारी॥ शां०॥ ४॥
आहोजी उन्नीसौ इकसठमें।
इकसठमें इकसठमें वदि भादों चौदस गुरुवारी॥ शां०॥ ५॥
आहोजी मूरति सुखदाई।
सुखदाई सुखदाई फिरी इंदर धजा इकसारी॥ शां०॥ ६॥
आहोजी मुद्रा मनहारी।
मनहारी मनहारी नित्य सेवा करें नरनारी॥ शां०॥ ७॥
आहोजी प्रभु जयकारी।
जयकारी जयकारी जाऊँ वार वार बलिहारी॥ शां०॥ ८॥
आहोजी पूजा गुणकारी।
गुणकारी गुणकारी दुख दोहग दूर निवारी॥ शां०॥ ९॥

आहोजी संपदा सुख पावे ।
सुख पावे सुख पावे जो गावे प्रभुगुण बारी ॥ शां० ॥ १० ॥
आहोजी वल्लभ गुण गावे ।
गुणगावे गुणगावे चित आतम–आनंद धारी ॥ शां० ॥ ११ ॥

सं० १९६१ का अठारहवाँ चौमासा सामानेमें समाप्त कर आप नाभा, मालेरकोटला होते हुए रायकोट पधारे । रायकोटमें एक भी श्वेताम्बर श्रावक नहीं था । सभी स्थानकवासी थे । इस लिए आहार पानीके लिए आपको बड़ी तकलीफ होती थी । तो भी आप एक मास तक इस हेतुसे रहे कि यहाँ किसी न किसी तरह धर्म का वीज वोया जाय और कुछ श्रावक हो जायँ । आपके कष्ट सहन और धर्मोपदेशका शुभ फल भी मिला ।

वहाँसे विहार कर लुधियाने होते हुए और लोगोंको धर्मामृत पिलाते हुए आप सं० १९६२ का उन्नीसवाँ चौमासा करनेके लिए जीरे पधारे ।

वहाँ पंन्यास सुंदरविजयजी, पं० ललितविजयजी और [1]पं० सोहनविजयजी गुजरातसे विहार करते हुए आपके पास

१—ये ओसवाल थे । इनका नाम वसंतराय था । जम्मू घर था । इन्होंने गेंडेरायजी स्थानकवासी साधुके पाससे स. १९६० में सामानामें दीक्षा ली । मगर पीछेसे इनकी स्थानकवासियोंके धर्मसे श्रद्धा उठ गई और हमारे चरित्रनायकके पास दीक्षा लेनेके लिए अम्वाले गये । आपने फर्माया:–"अभी ठहरो ।" कुछ दिनके बाद अज्ञातकारणसे वे वापिस पूज मोहनलालजीके पास दिल्लीमें चले गये । सामानेके शास्त्रार्थके समय ये पूजजीके साथ थे । उस समय फिरसे इनकी इच्छा संवेगी

आये थे। वहीं ईडर (महीकाँठा) के एक गृहस्थ कोदर कालीदास आपके पास दीक्षा लेनेकी अभिलाषासे आये थे। जीराके नायव तेहसीलदार सरदार शेरसिंहजी अक्सर आपके पास तत्वचर्चा और धर्मश्रवण करनेके लिए आया करते थे। इस चौमासेमें आपने पंजावके श्रावकोंकी विज्ञप्तिको ध्यानमें लेकर निनानवे प्रकारी पूजा बनाई।

वहाँ पर स्कूलमें एक फारसीके अध्यापक थे। वे वड़े ही विद्वान, सज्जन और गुणग्राही थे। लोग उन्हें खलीफाजी कहा करते थे। नाम उनका माघीरामजी था। उन्होंने हमारे चरित्रनायककी प्रशंसामें एक गज़ल लिखी थी। वह यहाँ दी जाती है।

वननेकी हुई। मगर वहाँ अपनी इच्छाको पूरी करनेका मौका न देख चुप रहे। वहाँसे सोहनलालजीके साथ पटियाला गये। अवसर देख वहाँसे ये हमारे चरित्रनायकके पास पहुँचे और चरण पकड़ कर वोले कि, मेरा निस्तार कीजिए। आपने कहा,—"तुम थोड़े दिन गुजरातमें तीर्थयात्रा कर आओ। ये तीर्थयात्रार्थ, गुजरातमें आये। पाटणमें १०८ प्रवर्तकजी श्रीकान्तिविजयजी महाराजके दर्शन कर भोयणीमें पं० श्रीललितविजयजी महाराजके पास आये। वहाँसे मुनि श्रीहंसविजयजी महाराजके साथ सिद्धाचलजीकी यात्रा की! मांडलतक उनके साथहीमें रहे। फिर तपस्वीजी श्रीशुभ विजयजीसे सं० १९६३ में दसाडा (गुजरात) गाँवमें संवेग दीक्षा ली। नाम सोहनविजयजी रक्खा। हमारे चरित्रनायकके शिष्य कहलाए। अव आप उपाध्यायजी हो गये हैं।

गज़ल।

वो बेनदल[1] गुरु हैं हमारे जहानमें;
औसाफ़[2] जिनके आ नहीं सकते बयानमें॥ १ ॥
लाए जो मुश्किलात[3] कोई अपनी उनके पास;
पर्दा भरमका दूर करें एक आनमें ॥ २ ॥
लाता है खामा[4] उज्र बुरीदा[5]—ज़बानीका;
जब वस्फ़[6] आ न सकते हैं वहमो गुमानमें ॥ ३ ॥
बनते हैं काम बिगड़े खलायकके रात दिन;
फैज़ आपका है जारी ज़मीनो[9] जमानमें॥ ४ ॥
हादी ओ रहनमा[11] ओ गुरु मेरे आप हैं;
काफ़ी है फ़ख्र मुझको यही खादमानमें ॥ ५ ॥
बूटा जो विजयानंद सूरीजी लगा गये;
सरसब्ज़[12] आपसे रहा वो गुलिस्तानमें[13] ॥ ६ ॥
झड़ते हैं फूल मुँहसे जो करते बखान हैं;
हैं मखज़ने[14]—उलूम अमीरस ज़बानमें ॥ ७ ॥
या रब! है मायीरामकी हरदम यही दुआ;
वल्लभविजय गुरुजी रहें खुश जहानमें ॥ ८ ॥

१ अद्वितीय २–गुण ३–कठिनाइयाँ ४. कलम ५. नोक टूटनेका ६–गुण. (तीसरे पदका भाव यह है—' जब आपके गुण कल्पनामें भी नहीं आ सकते हैं तब कलम कहती है मेरी नोक टूट गई है । इसके द्वारा कविने यह बताया है कि आपके गुण इतने हैं कि वे लिखे नहीं जा सकते।) ७–दुनियाके लोग ८–बख्शिश; कृपा ९–हर समय तमाम पृथ्वी पर १०–उपदेशक ११–मार्ग बतानेवाले १२–हरा भरा १३–बाग १४–विद्याके भंडार.

चौमासा समाप्त होने पर जीरासे विहार कर मुनि महाराज श्रीहीरविजयजी आदि मुनिमंडल सहित आप पुनः रायकोट पधारे। बड़ी धूम धामसे आपका स्वागत हुआ। जैनोंके साथ ही अनेक सनातनी और मुसलमान भी शामिल हुए थे। पंन्यास श्रीसुंदरविजयजी और सोहनविजयजी जीरासे सीधे पट्टी गये। वहीं कोदर कालीदासको उन्होंने सं० १९६२ के मार्गशीर्ष वदी ५ के दिन आपके नामकी दीक्षा दी। नाम उमेदविजयजी रक्खा। हमारे चरित्रनायकने एक मास तक रायकोटहीमें निवास किया। 'लोगस्स' सूत्रपाठके ऊपर ही आप महीनेभर तक विवेचन करते रहे। श्रीयुत दसौंदीरामजीने उस समय एक भजन लिखा था उसे हम यहाँ आत्मानंद जैन पत्रिकासे उद्धृत करते हैं।

भजन।

चाल—क्यों डूबे मँजधार क्षमा है तेरे तरनको।

धन भाग तेरे अय रायकोट! मुनि वल्लभविजय आये॥ अंचली॥
सुन करके सतगुरुका आना, हर्ष सभीने मनमें माना।
भैनी तक बहु पुरुष गुरुके लेनेको धाए॥ १॥ धन भाग०॥
'हीरविजय' गुरु 'वल्लभ' आये, संग 'कपूरविजय' को लाये।
देवीचंदने खोल चौबारा आसन लगवाए॥ २॥ धन०॥
धन चंबामल भाग तुम्हारा, नित होते सतगुरु दीदारा।
खुले मकाँके भाग चरण जो गुरुओंने लाये॥ ३॥ धन०॥

फूली नहीं समाती नगरी, दर्शनको मिल आई सगरी।
मनमोहन छवि देख सभोंके मन आनंद छाये ॥ ४ ॥ धन० ॥
सब भाइयोंने अरज गुजारी, सफल करो गुरु आश हमारी।
दो व्याख्यान सुनाय सभी जन सुननेको आये ॥ ५ ॥ धन० ॥
सतगुरुने व्याख्यान सुनाया, अर्थ सहित सबको समझाया।
ज्ञान झड़ी दई लाय भाग धन उनके जो न्हाये ॥ ६ ॥ धन० ॥
रौनक दिन दिन होती भारी, सुनने आती नगरी सारी।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य श्रावक सबने चित लाये ॥ ७ ॥ धन० ॥
लाला गूजरमल नित आवे, सच्चे दिलसे प्रेम लगावे।
पंडित धरनीधरका कोई दिन खाली नहीं जाये ॥ ८ ॥ धन० ॥
माधोरामको प्रेम है भारी, शादीराम गुरु आज्ञाकारी।
बु_मल चौधरी सुन सुन बलिहारी जाये ॥ ९ ॥ धन० ॥
गंगाराम गुरु मनमें भाये, बारूमल्ल गुरु देख सुहाए।
आशानंद नंदलाल पंडित जीवामल हर्षाये ॥ १० ॥ धन० ॥
अर्जुनदास आनंद हो सुनके, ऋषिराम प्यासे दर्शनके।
मनीराम मुकुंदीलाल नित सत गुरु गुण गाये ॥ ११ ॥ धन० ॥
मल्लूमल्ल गुरुनाम सिमरते, सादिराम चरणों सिर धरते।
डालीराम और रंगीराम गुरु चरणन चितलाए ॥ १२ ॥ धन० ॥
गुद्दामल गुरुका मतवाला, जगतामलको प्रेम है आला।
हो आनंद कपूरचंद जब गुरुदर्शन पाये ॥ १३ ॥ धन० ॥
प्रेममें नगरी हुई मतवारी, सतगुरुपे जाती बलिहारी।
किस किसका करूँ बयान सभी नर मनमें हर्षाये ॥ १३ ॥ धन० ॥

सिफत गुरुकी कथाकी जितनी, बयान करूँ बुद्धि कहाँ इतनी।
मैं मूरख नादान कहाँ मुझसे वरणी जाये ॥ १४ ॥ धन० ॥
धन सतगुरु धन तेरी माया, भूलोंको रस्ता बतलाया।
दास 'दसौंदी' तरेंगे वे नर, सतगुरु जिनध्याये ॥ १५ ॥ धन० ॥

रायकोटसे आप सुनामके लिए रवाना हुए थे; मगर मार्गमें मुनि श्रीसोहनविजयजीके बीमार हो जानेसे, कोटले चले गये और फिर वहाँसे लुधियाने पधारे।

वहाँ जानेपर समाचार मिले कि, रामनगरमें श्रीचारित्रविजयजी महाराज बीमार हैं। आपने तत्काल ही उनकी सेवाके लिए सोहनविजयजी और कस्तूरविजयजीको भेज दिया। श्रीचारित्रविजयजीके आरोग्य होजानेपर ये दोनों फिर वापिस लुधिआनामें आ मिले।

सं. १९६२ का बीसवाँ चौमासा आपने लुधियानेहीमें किया था। यहाँ आपके साथ (१) मुनि महाराज श्रीहीरविजयजी, (२) मुनि श्रीउद्योतविजयजी महाराज (३) श्रीस्वामी सुमतिविजयजी महाराज (४) श्रीसोहनविजयजी महाराज (५) श्रीकपूरविजयी महाराज (६) श्रीकस्तूरविजयजी महाराज और (७) श्रीउमेदविजयजी महाराज थे।

आप अन्यत्र चौमासा करनेके लिए, सं. १९६३ चैत्र सुदी ११ वृहस्पतिवारको, लुधियानेसे विहार करनेवाले थे; मगर क्षेत्रस्पर्शना चौमासेमें लुधियानेकी थी; वहाँके प्रेमी श्रोताओंके पुण्यका जोर था इसलिए आप वहाँसे विहार न कर

सके और चौमासा वहीं करना पड़ा।कारण यह हुआ कि—

चैत्र सुदी १० बुधवारके दिन करीब साढ़े पाँच बजे शामको रतनचंदजी और चुन्नीलालजी नामके दो ढूँढिये साधु, जहाँ हमारे चरित्रनायक ठहरे हुए थे वहाँ गये और सड़क पर खड़े हो गये। वहींसे उन्होंने हमारे चरित्रनायकको पुकारा। जब आपने झरोखेमें आकर नीचेकी तरफ देखा तो वे बोले:— " हम शास्त्रार्थ करनेके लिए आये हैं। तुम यहाँसे विहार मत करना। अगर करोगे तो हारे हुए समझे जाओगे।"

आप—शास्त्रार्थ तुम करोगे या कोई और?

वे—स्वामीजी महाराज श्रीउदयचंद्रजी करेंगे।

आप—इनके साथ तो पहले शास्त्रार्थ हो गया है। उसका फैसला भी प्रकाशित हो चुका है। अब बार बार पीसेको क्या पीसना है? हारे हुओंके साथ शास्त्रार्थ करना ठीक नहीं है; तो भी यदि उदयचंदजीकी तीव्र उत्कंठा है तो जाकर अपने श्रावकोंसे शास्त्रार्थका बंदोबस्त करा लो हम तैयार हैं।

वे—हम क्या श्रावकोंके बँधे हुए हैं?

आप—यदि आप श्रावकोंके बंधे हुए नहीं हैं तो ऊपर आ जाइए और चर्चा कर लीजिए।

वे—हम चोर नहीं हैं, हम तो खुले मैदानमें चर्चा करेंगे।

आप—बड़ी अच्छी बात है। आप पंडितोंको मध्यस्थ नियत कर सभा कीजिए। हमको सूचना मिलते ही हम आ जायँगे।

दोनों चले गये। श्रावकोंको यह बात मालूम हुई। उन्होंने आपको, साग्रह विनती करके, लुधियानेहीमें ठहरा लिया और स्थानकवासी श्रावकोंको सूचना दी कि तुम सभा बुलाओ और शास्त्रार्थकी तैयारी करो। हमने तुम्हारे गुरुओंके कहनेसे अपने गुरुओंको यहीं ठहरा लिया है। मगर फिर स्थानकवासियोंने इस विषयकी कोई चर्चा न की। यह एक चालाकी थी। यदि हमारे चरित्रनायक लुधियानेसे विहार कर जाते तो उन्हें यह कहनेका अवसर मिलता कि, हम शास्त्रार्थ करनेको तैयार थे मगर वल्लभविजयजी चले गये। अस्तु।

होशियारपुरके रईस लाला दौलतरामजी होशियारपुरसे आपके दर्शनार्थ, संघ निकालकर, आये थे। प्रायः पंजावके लोग इस संघमें शरीक हुए थे। यहाँ आपने व्याख्यानमें विशेषावश्यक सूत्रमेंसे गणधरवाद वाँचा था। सैकड़ों अन्य धर्मावलम्बी भी व्याख्यानमें आते थे और आपकी मधुर एवं पाण्डित्यपूर्ण वाणी सुनकर प्रसन्न होते थे।

अभी चौमासा समाप्त नहीं हुआ था कि, आपको ज्वर हो आया; इस हालतमें भी आपने कभी व्याख्यान बंद नहीं किया। आपकी सहनशीलता विलक्षण है।

चौमासा समाप्त होते ही आपने, रुग्ण होते हुए भी, विहार किया, नकोदर पधारे। मुनि श्रीललितविजयजी गुरु महाराजकी बीमारीके समाचार सुनकर व्याकुल हो उठे थे। चौमासा

समाप्त होते ही दो साधुओंके साथ वे बीकानेरसे लंबी लंबी सफरें तै करके गुरु महाराजके चरणोंमें आ हाजिर हुए। धन्य गुरुभक्ति!

जीरेमें हरदयाल नामक एक व्यक्ति थे। वे प्रसिद्ध हकीम थे। कहा जाता है कि उनके पास आये हुए मरीजोंमेंसे नब्बे फी सदी आराम होकर ही जाते थे। खुद हकीमजी और अनेक जीरेके श्रावक आपकी खिदमतमें नकोदर पहुँचे। दो चार रोज हकीमजीने वहीं इलाज किया और आपकी तबीअत कुछ सुधरने लगी तब आपसे जीरा पधारनेका आग्रह किया गया। द्रव्य क्षेत्र, काल, भावका विचार कर आप कुछ साधुओं सहित जीरे पधारे।

जीरेमें हकीमजी आपके शरीरके रोगका इलाज करने लगे और आप अनादि कालसे लगे हुए कर्मरोगका इलाज करनेमें तल्लीन हुए। श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथकी छत्रछायामें रहकर सं० १९६३ के माघ महीनेमें आपने श्रीपार्श्वनाथ प्रभुकी हिन्दी भाषामें पंच कल्याणककी पूजा बनाई।

जब आपमें चल फिर सकनेकी अच्छी शक्ति आ गई तब आप पट्टी, झंडियाला, अमृतसर आदि होते हुए गुजरांवाला पधारे। वहाँ पर स्वर्गीय आचाय महाराज न्यायांभोनिधि श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरिजी (आत्मारामजी) महाराजकी समाधि बनवाई गई थी और उसमें आचार्य महाराजके चरण कमलकी प्रतिष्ठा कराना था। मगर भावी बड़ा

प्रबल है। उस समय समाधिमें प्रतिष्ठा होनेका योग न था, इसी लिए वहाँ प्लेगका प्रचंड रूपसे दौरा शुरू हो गया। शहरमें भगदड़ मच गई। श्रावकोंने बड़े उत्साहसे प्रतिष्ठाकी तैयारी शुरू की थी, उनका उत्साह टूटने लगा। आपने अवसर देखकर श्रावकोंको अभी प्रतिष्ठा न करने के लिए समझाया। श्रावकोंको बडा दुःख हुआ; मगर कोई उपाय नहीं था। लाचार उन्होंने आज्ञा मानी। आप भी वहाँसे पपनाखा होते हुए रामनगर पधारे।

वहाँ आपने श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथकी यात्रा की। वहाँ लाला जगन्नाथ भोलेशाह नाम के एक भक्त श्रावक हैं। उनके पास एक सब्ज पन्नाकी श्रीस्तंभन पार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमा है। वह बड़ी ही भव्य और वर्तमानकालके लिए तो सर्वथा अलभ्य है। उसकी वंदना कर आपने अपना कल्याण किया।

रामनगरसे विहार हुआ। रस्तेमेंसे मुनि श्रीचारित्रविजयजी, मुनि श्रीरविविजयजी और मुनि श्रीललितविजयजी तो गुजरांवाले गये और आप किलेदीदारसिंह पधारे। वहाँसे श्रीसंघ खानगाह डोंगराकी विनती होनेसे खानगाह पधारे। कुछ दिन वहाँ ठहरकर लाहोर पधारे। लाहोर आने पर समाचार मिले कि गुजराँवालामें अब भी प्लेग है। इधर चौमासा भी पास आ गया था इस लिए आप अमृतसरके लिए रवाना हुए। क्योंकि श्रीसंघ अमृतसरकी चौमासेके लिए पहले ही विनती हो चुकी थी।

लाहोरसे आप अमृतसर पधारे। शहरमें बड़ी धूमके साथ आपका जुलूस निकला। सं० १९६४ का इकीसवाँ चौमासा आपने अमृतसरमें किया। आनंदके साथ धर्मध्यानमें समय बीतने लगा। छठ, अट्ठम, बेले, तेले, एकासन, आंबिल आदिक बहुतसी तपस्याएँ हुई। श्रावकोंके हृदय धर्मभावनाओंके आनन्दमें निमग्न हो रहे थे। साधुओंके हृदयोंमें भी श्रावकोंका आनंदोल्लास देख कर प्रसन्नता थी।

इसी चौमासेमें आपके गृहस्थावस्थाके बड़े भ्राता खीमचंद भाई बड़ौदेके श्रीसंघका विनतीपत्र और आचार्य १००८ श्रीविजयकमलसूरिजी महाराजका एवं उपाध्याय श्रीवीरविजयजी महाराजका गुजरातकी तरफ विहार करनेका आदेश पत्र लेकर आये। खीमचंदभाईके पहुँचनेसे साधुमंडलमें प्रसन्नता छा गई। आपके हृदयमें भी आनंदकी लहरी उठे विना न रही। मगर श्रावक मंडलमें उदासी छा गई। उसने विनती की—

"महाराज! आप हमें यहाँ किसके आधार छोड़कर पधारते हैं? हमें तो गुरु महाराज आपहीके भरोसे छोड़कर गये हैं। हम आपको कहीं न जाने देंगे।"

आपने फर्माया—"आप लोग जानते हैं कि मैं उन्नीस बरससे पंजाबमें हूँ। दीक्षा ले कर मैं गुरु महाराजकी चरणसेवामें रहा और उनका देहान्त होने पर भी मैं यहीं विचरण कर रहा हूँ। कई दिनोंसे मैं एक वार सिद्धाचलजी जाकर

दादाकी यात्रा कर आना चाहता था; मगर आप लोगोंके आग्रहही-से इधर ठहरा हुआ हूँ। साधुमंडली यात्रा करनेके लिए उत्सुक है। मुझे उनका भी खयाल करना चाहिए। और अब तो इधर आचार्य महाराज और उपाध्यायजी महाराजका विहार होने वाला है, इस लिए अब आप लोगोंको मैं उनके आश्रयमें छोड़ कर जाता हूँ। तो भी मैं यह वचन देता हूँ कि, एक बार फिर पंजाब लौटकर आये विना न रहूँगा। गुरु महाराजके लगाये हुए इस बगीचेको एक वार फिरसे आकर देखूँगा।"

चौमासा समाप्त होने पर आप गुजरातमें जानेके लिए संवत् १९६४ के मगसर वदी १ बुधवारको अमृतसरसे विहारकर आप तरनतारन पधारे। संध्याके समय जब आप देवसी प्रतिक्रमण समाप्त करके बैठे ही थे कि घासीरामजी और जुगलकिशोरजी नामके स्थानकवासी साधु आपके चरणोंमें आ गिरे और हाथ जोड़कर विनती करने लगे कि,—

"गुरु देव! हमारा उद्धार कीजिए। हमारा जन्म निरर्थक जा रहा है। हमने आत्मकल्याणके लिए घर वार छोड़े हैं; मगर जिस स्थितिमें हम हैं उसमें रह कर, हमारा कल्याण नहीं होगा। हमने सूत्र सिद्धान्तोंका जितना ज्ञान प्राप्त किया है उतनेसे हमें यह विश्वास हो गया है कि, स्थानकवासियोंकी क्रिया शास्त्रानुकूल नहीं है; जैनशास्त्रोंके प्रतिकूल है। इस लिए आप अपने चरणोंमें स्थान देकर हमें सन्मार्ग पर चलाइए।"

आपने फ़र्माया:—" यह सत्य है कि, मनुष्य जन्म वार-

वार नहीं मिलता; इस लिए इसके हरेक क्षणका सदुपयोग करना चाहिए। किसी भी धर्ममें दीक्षित होनेके पहले मनुष्यको चाहिए कि, वह उसकी भली प्रकारसे परीक्षा कर ले। तुम अभी हमारे साथ रहो, जैनशास्त्रोंका अनुशीलन करो और क्रियानुष्ठान सीखो। जब तुम्हें पूरा विश्वास हो जाय,—जब तुम्हारा मन सच्चे धर्म पर हिमालयकी तरह अटल हो जाय और जब हम तुम्हें दीक्षा देनेके पात्र समझेंगे तभी दीक्षा दे देंगे।

उन दोनोंने कहा—" कृपानाथ! हमारा मन हिमालयके समान स्थिर हो गया इसी लिए तो नाभासे दौड़े हुए आपके चरणोंमें आये हैं। अगर ऐसा न होता यदि स्थानकवासी साधु रह कर ही हम सत्य धर्मकी क्रिया कर सकते तो एक दीक्षाको छोड़कर दूसरीको ग्रहण करने न आते। महाराज! कृपा कीजिए और हमें इस बंधनसे मुक्त कीजिए। "

लाला पन्नालालजी जौहरी, लाला महाराजमल, लाला नाथूमल आदि श्रावक आपके दर्शन करने तरनतारन आये हुए थे। वे भी उस समय मौजूद थे। उन्होंने विनती की,—" गुरुदयाल! प्यासेको पानी पिलाना, भूखेको अन्न देना, दुखीका दुःख मिटाना तो धर्म है ही मगर आत्माको मुक्तिके मार्गमें लगाना सबसे बड़ा धर्म है। यह बात आपसे निवेदन करना छोटे मुँह बड़ी बात करना है; मगर इन साधुओंकी व्याकुलता देख-हमसे चुप न रहा गया इसी लिए अर्ज कर दी है। हमें क्षमा

करें और इनको अमृतसरहीमें दीक्षा दें । अमृतसरको भी गुजरात जानेके पहले, इतना विशेष लाभ देते जायँ ।"

आप मुस्कुराये और बोले:—" अच्छा लालाजी ! तुम्हारी ही मनो कामना पूरी हो ।"

यह वाक्य मानों गंभीर घनगर्जन था । इससे दोनों साधुओं और तीनों श्रावकोंके मन-मयूर आनंदसे नाच उठे ।

आप फिरसे अमृतसर पधारे । जब आप अपने साधुओं, श्रावकों और दोनों स्थानकवासी साधुओंके सहित दर्वाजेके पास पहुँचे तब पाँच सात स्थानकवासी श्रावक आकर दोनों साधुओंसे झगड़ा करने लगे । लाला पन्नालालजीको ये समाचार मिले । वे तत्काल ही पुलिस लेकर पहुँचे । पुलिसको आई देख स्थानकवासी श्रावक झगड़ा छोड़ चुपचाप चले गये । आप निर्विघ्नतया मंदिरजीके दर्शन कर लाला महाराजमलजीके मकानमें जा विराजे ।

स्थानकवासियोंने हो हल्ला मचाया और नालिश की कि,— घासीराम नाबालिग जुगलकिशोरको बहका कर ले आया है और यहाँ उसे संवेगी साधु अपना चेला बनाना चाहते हैं । उन्हें इन्होंने लाला महाराजमलके मकानमें बंद कर रक्खा है, बाहर नहीं निकलने देते । यह मकान कटरारामगढियोंमें है । जुगलकिशोरकी माता जैन साध्वी (स्थानकवासी) है और अपने लड़केके वियोगमें व्याकुल हो रही है । अतः लड़का वापिस दिलाया जावे । लड़केको कहीं और जगह न भगा ले जायँ इस लिए उनके लिए वारंट निकाला जाय ।

मजिस्ट्रेटने जुगलकिशोरके नामका वारंट दे दिया। कुछ स्थानकवासी साधु पुलिसको साथ ले आप ठहरे हुए थे वहाँ आये। उस समय वहाँ कोई श्रावक नहीं था। केवल श्रीयुत हीरालाल शर्मा वहाँ थे। उन्होंने मकानका दर्वाजा बंद कर-लिया। पुलिसने दर्वाजा खोलनेके लिए कहा। शर्माजीने कहाः-" लाला पन्नालालजीको और लाला महाराजमलजीको आप बुलावें। वे आयँगे तभी मैं दर्वाजा खोलूँगा।" पुलिसने उन्हें बुलाया और अपने आनेका सबब बता जुगल किशोरको अपने सिपुर्द कर देनेके लिए कहा। उन्होंने दर्वाजा खुलवाकर जुगलकिशोरको उनके सिपुर्द कर दिया।

स्थानकवासी भाई जब जुगलकिशोरको गाडीमें बिठाकर ले जाना चाहते थे तब लाला पन्नालालजीने कहाः-" ऐसा करना उचित नहीं है। उन्हें पैदल ही लेकर जाओ। इसमें जैन नामकी बदनामी है और खास तरहसे स्थानकवासियोंकी बदनामी है।"

उन्होंने उत्तर दियाः-" हम इसे स्थानकवासी साधु नहीं समझते; यह तो तुम्हारा साधु है। हमारी कोई बदनामी इसमें नहीं है।"

ला० पन्ना०-" भावोंसे ये हमारे साधु होते हुए भी बाना अबतक स्थानकवासियोंहीका पहन रहे हैं। इस लिए लोग आपहीको बुरा बतायँगे।"

उन्होंने उत्तर दियाः—" नहीं जी हम कोई उपदेश नहीं सुनना चाहते । "

लालाजी—" जैसी तुम्हारी इच्छा " कहकर आपके पास चले गये । स्थानकवासी जुगलकिशोरको पुलिसकी गाडीमें बिठाकर कोर्टमें ले गये ।

कोर्टने तहकीकातके बाद इस सबूत पर दावा खारिज कर-दिया कि, जुगलकिशोर नाबालिग नहीं है । इस लिए अपनी मर्जीके माफिक काम करनेका उसे हक है ।

बादमें बड़ी धूमधामके साथ उन्हें सं. १९६४ मगसिर सुदी ११ रविवार, ता. १९-१-१९०८ ईस्वीके दिन दीक्षा दी गई घासीरामजीका नाम विज्ञानविजयजी रक्खा गया और आपके वे शिष्य हुए । जुगलरामका नाम विबुधविजयजी कायम हुआ और विमलविजयजीके वे शिष्य हुए ।

दीक्षामहोत्सवके समय ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, आदि सभी मौजूद थे । दीक्षाके आनंदोत्सवमें पं. हीरालालजी शर्माकी सेवाओंसे प्रसन्न होकर उन्हें एक सोनेके कड़ोंकी जोड़ी इना-ममें दी गई थी । इस विषयका सविस्तर वृत्तान्त उत्तरार्द्धमें ' घासीराम जुगलराम प्रकरण ' के हैडिंगसे दिया है ।

उसी दिन आपने ' दीक्षा और शिक्षा ' इस विषय पर एक बड़ा ही प्रभावशाली व्याख्यान दिया था ।

× × × ×

अमृतसरसे विहार करके आप जंडियाला, जालंधर, लुधियाना

होते हुए अंवाले पहुँचे। आप जिस दिन अंवाले पहुँचे थे उसी दिन दिल्लीकी ओरसे विहार करके आचार्य महाराज १००८ श्रीविजयकमलसूरिजी और उपाध्यायजी महाराज श्री १०८ श्रीवीरविजयजी भी अपने साधुमंडल सहित अंवाले आये थे। दोनोंकी शहरके वाहर भेट हो गई। वड़े जुलसके साथ दोनोंका नगरप्रवेश कराया गया। आप चार पाँच रोज वहाँ रहकर वहाँसे दिल्लीकी ओर विहार कर गये। खीमचंदभाईने अब पीछा छोड़ा

आप अंवालेसे विहार करके दिल्ली पधारे। उस समय आपके साथ श्रीविमलविजयजी, श्रीकस्तूरविजयजी, श्रीसोहन विजयजी, श्रीविज्ञानविजयजी और श्रीविबुधविजयजी थे। आपने चाहा था कि, इस साल गुजरातहीमें चौमासा करेंगे और हो सका तो इसी साल नहीं तो अगले साल दादाकी यात्रा जरूर करेंगे।

दिल्लीके संघने निश्चय किया कि, चाहे कुछ भी हो जाय हम आपको इस साल दिल्लीमें ही रक्खेंगे। चिन्तामणि रत्नको पाकर कौन छोड़ना चाहता है?

दोनों ओर संघर्ष था। एक ओर गुरुभक्ति थी, दूसरी तरफ गुजरातके श्रावकोंकी–जिसमें भी खास करके खीमचंद-भाई और वड़ोदाके श्रीसंघकी–विनती, साधुओंका शीघ्र ही गुजरातमें जाकर तीर्थयात्रा करनेका आग्रह और आपका–खुदका–जितनी हो सके उतनी जल्दी करके–दादाकी यात्रा करनेका विचार।

भक्तोंके आग्रहसे आपका विचार ढीला पड़ने लगा था; साधुओंके दिलोंमें भी श्रावकोंकी भक्तिगद्गदकंठसे की गई प्रार्थनाने घर किया था; उनके आग्रह शिथिल होने लग रहे थे। भक्त दो कठिनाइयोंको लग भग पार कर चुके थे। अब केवल तीसरी कठिनाई ही रह गई थी। वह थी गुजरातकी विनती। विनती ही क्यों गुजरातके आपको लेनेके लिए आये हुए प्रतिनिधि और आपके सगे बंधु, खीमचंद भाई। क्योंकि दिल्लीसे विहारमें देरी हुई थी और खीमचंद भाईको दिल्लीके श्रीसंघने लिख दिया था कि महाराज साहिबका चौमासा दील्लीहीमें होगा इस लिए वे घर जाकर फिर दील्ली आ गये थे।

श्रावकोंने खीमचंद भाईसे कहा। खीमचंद भाईने पहले तो हाँ, ना की; मगर अन्तमें उनका दिल भी पसीज गया। उन्होंने श्रीसंघके साथ आकर अर्ज की,—" मैं अपना आग्रह छोड़ता हूँ। बड़ौदेके श्रीसंघको इस वर्ष और शान्ति रखनेके लिए कहूँगा। आप संघको नाराज न करें; विनती स्वीकार कर लें।" आपने विनती स्वीकारी। जयनादसे उपाश्रय गूँज उठा।

× × × ×

जब आपका चौमासा दिल्लीहीमें होना स्थिर हो गया तब एक दिन दिल्लीके श्रावकोंने प्रार्थना की,—" गुरुदयाल! यहाँ से थोड़ी ही दूर पर हस्तिनापुरजी तीर्थ स्थान है। उसमें, आप जानते ही हैं कि, श्रीशान्तिनाथ स्वामी, श्रीकुंथुनाथ स्वामी

और श्रीअरनाथ स्वामीका–तीन तीर्थंकरोंके–च्यवन, गर्भ, दीक्षा और केवल ऐसे–चार कल्याणक, प्रत्येकके, कुल मिलाकर बारह कल्याणक हुए हैं। प्रथम तीर्थंकर श्रीआदीश्वर भगवानको भी, वर्षीतपका पारणा, श्रेयांसकुमारने वहीं करवाया था। उस दिन वैशाख सुदी ३ का दिन था; उस दिनके दानसे श्रेयांस कुमारको अक्षय फलकी प्राप्ति हुई थी। इसी लिए उस तिथिका नाम अक्षय तृतीया या आखा तीज हो गया। अतः यदि आपकी आज्ञा और इच्छा हो तो आप यात्राके लिए पधारें, संघकी भी आपके साथ यात्रा हो जायगी।"

आपने फर्मायाः–"इसके सिवा दूसरी कौनसी बात प्रसन्नताकी होगी? फाल्गुन चौमासा निकट है वह वहीं किया जायगा।"

श्रावक बोलेः—"हम भी अनेक पापके कामोंसे बच जायँगे। क्योंकि होलियोंके दिन तीर्थ स्थानपर बीतेंगे।"

तैयारी हो गई। हमारे चरित्रनायकने अपनी साधुमंडली सहित एक दिन पहले ही विहार किया। दूसरे दिन संघ भी रवाना हुआ और दिल्लीसे ग्यारह माइल पर गाजियाबादमें आपसे जा मिला। दूसरा पड़ाव चौदह माइल पर बेगमाबादमें, और तीसरा पड़ाव तेरह माइल पर मेरठमें हुआ। संघ जिस धर्म शालामें ठहरा वह धर्मशाला पं० गंगारामजी रईस मेरठकी धर्मपत्नी बीबी (श्रीमती) सुंदरकौरने सं० १९६२ में बनवाई है। वहाँ यात्रियोंके लिए सब तरहका

आराम है। वहाँसे रवाना होकर संघ सहित आप मुहाना पहुँचे। यह मेरठसे सत्रह माइल है। अगले दिन संघ हस्तिनापुर पहुँचा और (सं० १९६४ फाल्गुन सुदी १३ सोमवारके दिन) यात्रा कर अपनेको कृतकृत्य मानने लगा।

आपके यात्रार्थ जानेके समाचार सुन बिनोली, खिवाई, तीतरवाड़ा, लुधियाना, अंबाला और बंबई आदि स्थानोंके भी करीब सौ सवा सौ श्रावक श्राविकाएँ यात्रार्थ आ गये थे। स्वर्गीय आचार्य महाराज श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरिजी महाराजकी बनाई हुई सत्रह भेदी पूजा पढ़ाई गई। दूसरे दिन दिल्लीकी श्राविकाओंने साधर्मीवत्सल किया। वहाँ पर हमारे चरित्रनायकने पाँच स्तवन बनाये थे उनमेंसे एक यहाँ उद्धृत किया जाता है।

स्तवन

जय बोलो जय बोलो मेरे प्यारे तीरथकी जय बोलो ॥ अंचलि ॥
हस्तिनापुर तीरथ सारा, कल्याणक हुए जहाँ बारा।
तीर्थंकर तिग मनमें धारा, धाराजी धारा सुखकर्तारा ॥ ती० ॥ १ ॥
शांतिनाथ प्रभु शांतिकारी, कुंथुनाथ जिनवर बलिहारी ।
श्रीअरनाथके जाऊँ वारी, वारी जी वारी वार हजारी ॥ ती० ॥ २ ॥
प्रथम जिनेसर पारणो कीनो, इक्षुरस श्रेयांसे दीनो।
मुक्तिरस बदलेमें लीनो, लीनो जी लीनो निज गुणचीनो ॥ ती० ॥ ३ ॥
उन्नीसौ चौसठके बरसे, दिल्लीको संघ आयो हरसे।
धन आतम जे तीरथ फरसे, फरसे जी फरसे वल्लभ तरसे ॥ ती० ॥ ४ ॥

चैत्र बुदी १ सं. १९६५ को हस्तिनापुरसे आप रवाना हुए। संघ भी भगवानकी और गुरु महाराजकी जय बुलाता हुआ वहाँसे रवाना हुआ।

आप वापिस मेरठ पहुँचे। बिनौली, खिवाई आदिके श्रावकोंकी प्रार्थनासे आपने यमुनापारके ग्रामोंमें विचरण करने और वहाँके निवासियोंको ज्ञानामृत पान करानेका निश्चय किया। अभी चौमासेमें बहुत दिन बाकी थे इसलिए दिल्लीके श्रावकोंने आपसे वापिस दिल्ली चलनेका बहुत अनुरोध न किया। चौमासा बैठनेके कुछ दिन पहले ही दिल्ली पधारनेकी प्रार्थना कर संघ दिल्ली चला गया।

मेरठमें कुल तीन ही घर श्वेतांबर श्रावकोंके हैं, बाकी सभी दिगंबर हैं। इस लिए आप वहाँ विशेष ठहरना नहीं चाहते थे, मगर दिगंबर भाइयोंके आग्रहसे आपको वहाँ ठहरना पड़ा। दिगंबर भाइयोंने आपके दो सार्वजनिक व्याख्यान बी बी सुंदरकौरकी धर्मशालामें करवाये और एक अपनी जैन धर्मशालामें भी करवाया। उस समय दिगंबरोंका रथोत्सव था इसलिए व्याख्यानोंमें और भी विशेष रौनक होती थी।

आप मेरठसे बिनौली पधारे। मेरठ इलाकेमें प्रायः सभी श्रावक दिगंबर हैं। केवल खिवाई और बिनौलीमें कुछ श्वेतांबर श्रावकोंके घर हैं और वे स्वर्गीय आत्मारामजी महाराजके प्रतिबोधित हैं। वहाँ आप रोज व्याख्यान बाँचते थे। इसमें प्रायः दिगंबर श्रावक श्राविकाएँ धर्मोपदेश श्रवण कर लाभ उठाते थे।

यहाँके रईस लाला मुसद्दीलालजीने अपनी दुकानें मंदिर जीके लिए दीं और उन्हींमें मंदिर बनवानेका विचार किया। शुभ मुहूर्तमें श्रीजिनमंदिर बनवाना प्रारंभ हो गया था, वह मंदिर बनकर तैयार हो चुका है। प्रतिष्ठा करानेकी एक बार तैयारी की गई थी, मगर किसी कारणवश उस समय न हो सकी। लाला श्रीचंद्रजी और बाबू कीर्तिप्रसादजी बी. ए. एल एल. बी. आदि लाला मुसद्दीलालजीके सुपुत्रोंकी यही उत्कट अभिलाषा है कि, मंदिरजीका काय जैसे हमारे चरित्रनायककी उपस्थितिमें हुआ है वैसे ही प्रतिष्ठा भी आपहीकी उपस्थितिमें हो। उनका खयाल है कि पहले हमारा काय इसी लिए रुक गया था कि, उस समय आप उपस्थित न थे, न हो सकते थे; क्योंकि उस समय आप गुजरातमें विचरते थे।

उनकी इस भावनाको पूर्ण करनेहीके लिए आपने अभी लाहोरसे विहार करते समय सोचा था कि गुजराँवालामें गुरु महाराज श्रीआत्मारामजी महाराजके समाधिमंदिरकी यात्रा कर पाँच सात दिन गुजराँवालामें ठहर, सीधे मेरठकी तरफ विहार कर देना और यह चौमासा दिल्लीमें या आसपासके किसी क्षेत्रमें विता चामासे बाद मंदिरकी प्रतिष्ठाका प्रबंध कर देना। मगर क्षेत्रस्पर्शना बलवती है! श्रीगुरु महाराजकी कृपासे गुजराँवालामें 'श्रीआत्मानंद जैन गुरुकुल–पंजाब' की स्थापना करनेका प्रबंध हो गया, इस लिए आपको वहीं ठहर जाना पड़ा। गुजराँवाला और बिनौलीका अन्तर लगभग ४०० माइलका है।

संवत् १९६५ के वैशाख सुदी ६ को विनौलीमें, अंबाला शहरसे लाला गंगारामजी श्रीशान्तिनाथ स्वामीकी प्रतिमा ले आये थे। बड़े उत्सवके साथ प्रतिमाजीका नगर प्रवेश कराया गया था। इस उत्सवमें विनौलीके और आसपासके गाँवोंके दिगंबर जैनोंने भी बड़े उत्साहसे भाग लिया था।

उसी दिन गुजराँवालामें आचार्य महाराज श्रीविजयकमल सूरिजी और उपाध्यायजी महाराज श्रीवीरविजयजी आदि मुनिराजोंकी उपस्थितिमें स्वर्गीय आचार्य महाराज श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरीश्वरजी (आत्मारामजी) के समाधि मंदिरमें चरणपादुका स्थापित करनेका उत्सव हुआ था। आपने विनौलीके आनंदको ही गुजराँवालाका आनंद मान लिया था। गुरुभक्तिके उपलक्षमें आपने उस समय जो स्तवन बनाकर भेजे थे उनमेंसे एक हम यहाँ देते हैं—

(देशी–वारनाकी)

वारी जाऊँरे सद्गुरुजी तुम पर वारना जी ॥ अंचली ॥
आतमरामजी नाम धराया, आतमको आराम बताया।
आतमराम समा सुखदाया, अन्तर घटमें धारना जी ॥ वा० ॥१॥
मिथ्यामततम दिनकर जाना, कामज्वर धन्वंतरी माना।
सत् चित् आनंद पदका पाना, सागर लोभ निवारना जी॥वा०॥२॥
बाह्य-निमित्त गुरु उपकारी, कारण मुख्य निजातमधारी।
आतम ही आतमपदकारी, सीधा अर्थ विचारना जी ॥ वा० ॥३॥

घड़ि घड़ि पल पल गुरुजी ध्याऊँ, मनमें वाणीस गुण गाऊँ ।
कायासे निज शीस नमाऊँ, रूप पराया छारना जी ॥ वा० ॥४।
पूर्ण कृपा श्रीगुरु हो जावे, आतम परमातम पद पावे ।
विजयानंद वधाई गावे, आतम वल्लभ तारना जी ॥ वा० ॥ ५ ।

आपने विनौलीसे खिवाईकी तरफ़ विहार किया । अपने साथ मुनि श्रीसोहनविजयजीको रक्खा और दूसरे मुनियोंको दिल्लीकी तरफ़ रवाना कर दिया । वहाँ गुजराँवालासे लाला जगन्नाथजी आपके नामके दो पत्र लेकर आये । उनमेंसे एक १०८ श्रीआचार्य महाराज श्रीविजयकमल सूरिजी तथा उपाध्यायजी महाराज श्रीवीरविजयजीकी तरफ़का था और दूसरा था श्रीसंघ गुजराँवालाकी तरफ़का ।

उनमेंसे श्रीसंघ गुजराँवालाकी नकल—जो हमें प्राप्त हो सकी यहाँ दी जाती है । यह पत्र उर्दूमें लिखा हुआ था ।

ता० ३०–५–१९०८

श्री आत्मानंद जैनश्वेतांबर कमिटी,

गुजराँवाला (पंजाब)

“श्री श्री श्री मुनि महाराज वल्लभविजयजी आदि मुनि महाराज, अजतरफ श्रीसंघ गुजराँवालाकी १०८ दफा वन्दना चरनोंमें कबूल हो । अर्ज यह है कि, इस वक्त ढूँढियोंने दूसरी कौमों-यानी खतरी, बिराहमन, आर्यासमाज वगैराको वहोत भड़काया है । जिसके जवाबमें मवरखा २९ मई को वक्त

७ बजे शामके एक लेक्चर वजरिये मास्टर आत्माराम साकिन अमृतसरके दिलवाया है। जिससे हमारे संघकी यानी जैन-धर्मकी बहुत निंदा यहाँ हुई है। इसलिए ये अमर संघ गुज-राँवालाको बहुत नागवार गुजरा है। अब संघकी जनावके चरनोंमें प्रार्थना ये है के जिस वक्त यह अरीजा खिदमत आलियामें पहोंचे उसी वक्त गुजराँवालाको विहार फर्मावें, क्यों के जिसमें शासनकी बेइज्जती न हो। इस वक्त फौरन् और कामोंको छोड़कर शासनकी उन्नतिकी तरफ खयाल होना चाहिए। इस लिए मुनासिब जानकर आपको तकलीफ दी है। बाकीका हाल बजबानी जगन्नाथके मालूम हो जावेगा। फकत। मुकर्रर ये है के जिस वक्त ये अरीजा पहोंचे उसी वक्त रवाना हो जावें। इस हमारी थोड़ी तेहरीरको हजार दफा खयाल फरमा कर और कबूल करके विहार करें। फकत। विहार गुजराँवालाकी तरफ करके वजरिए तार इत्तला देवें। ताके संघको खुश्नूदीका बाइस हो। फकत।"

(नीचे चार मुखियों के हस्ताक्षर हैं।)

तत्काल ही रवाना होनेके लिए दो तार मिले। उनकी नकलें यहाँ दी जाती हैं।

Gujranwala 30th 8-35 (A. m.)
Musaddilal Piarelal Jaini village Banoli Baraut.
Send muni balabbijeji, with your men to Gujranwala immidiately. Jagannath coming.

Jain community.

(गुजराँवाला ३० वीं, ८-३५ (प्रातःकाल)

मुसद्दीलाल प्यारे लाल जैनी,

मु० वनोली, वड़ौत.

अपने आदमियोंके साथ मुनि वल्लभविजयजीको तत्काल ही गुजराँवाला रवाना करो। जगन्नाथ आ रहा है।

जैन संघ.)

Gujranwala 30th, 16-15 (P. M.)

ShriMuui Ballabbejeji C/o Musaddilal Piarelal Village, Banoli, Baraut.

Start at once Gujranwala great sensation. Shri Kamalbejeji.

(गुंजराँवाला, ३० वीं १६-१५ (सायंकाल)

श्रीमुनि वल्लभविजयजी C/o मुसद्दीलाल प्यारेलाल

मु० वनोली, वडोत.

तत्काल ही रवाना होइए। गुजराँवालामें वड़ी उत्तेजना फैल रही है। श्री कमल विजयजी।)

आपको आचार्य महाराज व उपाध्यायजी महाराजका फिरसे पत्र मिला। उसकी नक़ल यहाँ दी जाति है।

" अत्र श्री गुजराँवाला थी (से) श्रीआचार्य महाराज श्रीविजयकमल सूरिजी तथा वीरविजय आदि साधुना (की) तरफ़थी (से) तत्र श्री विनौली मध्ये मुनि श्रीवल्ल-

भविजयजी आदि जोग, सुखसाता अनुवंदना वंदना वाँचनाजी लखवानुं के (लिखनेका कारण यह है कि) जगन्नाथ मारफत पत्र दिया था। उत्तर आया नहीं. खैर. विशेप लखवानुंके आ पत्र वांचते सार (यह पत्र पढ़ते ही) विहार अत्र गुजराँवाला तरफ कर देनाजी। कारण सब जगन्नाथसे विदित हो गया होगा, तो बी इसारा मात्र जणाया जाता है कि आ वखत अत्रेना ढूँढियाओने तमाम सारा शेहरने (को) अपने पक्षमां (में) कर लिया है और जैनतत्वादर्श तथा अज्ञानतिमिरभास्कर इन दोनों ग्रंथको रद करनेकी वड़ी कोशिश हो रही है। यद्यपि वड़े महाराजने जो जो लिखा है सो सत्य है तथा प्रमाण सहित हैं और पुस्तकों भी मौजूद है तथापि इनोंका पक्ष जादा है। सही सही सिद्ध करना ब्राह्मण लोको रोला पाके (शोर मचाके) करवा देवे तेम जणातुं नथी (ऐसा मालूम नहीं होता) माटे (इसलिए) आ वखत तमारुं (तुम्हारा) जरूर काम छे. (है) तुम्हारी फुरती वहोत है। यकीन है तुम्हारा आनेपर अच्छा फतेह होगा। ओ (और) विचार लांवो छोड़ी (लंबा विचार छोड़ कर) अत्रेथी आवेला श्रावको साथ जरूर विहार करना जी। यद्यपि गरमी है, दूरका मामला है; परन्तु आ वखत एवोज छे (ऐसा ही है) जो कि प्राणतो अर्पण थई जाय (हो जायँ) परन्तु गुरुका वाक्योंने धक्को न लागे, इस लिए जोरमारके दबके लिखा जाता है; वस इतना मात्रसे समझ

लेना जी । तुमो (तुम) गुणवानको ज्यादा क्या लिखनाजी चार साधु जो के दिल्ली हैं उनको दिल्लीकी इजाजत दे देनाजी। तेमज तुमो सोहनविजयजीको साथ लेकर फौरन आवो. एज । जेठ वदी १४ पंजावीः वीर विजय

आज आ वखते एटले (यानी) दिनके छः वजे पर अमृत सरसे वोलाया पंडित आपणा (अपने) ग्रंथोंने (को) रद्द करवानु (का) भाषण दे रहा है। नतीजा क्या आवेगा ते (उसकी) खवर नथी (नहीं) आं सा (?) ढूंढकाओनो पक्षकरी तमाम शहेर उश्केराई गयुं छे (उत्तेजित हो गया है) लखवा समर्थ नथी (लिखनेका सामर्थ्य नहीं है)

ताजा कलम—आ पत्र वाँची तुरत विहार करो अत्रेना माणसो रोकायला छे. (यहाँके आदमी रुके हुए हैं) माटे हाल विनौलीसे चार आदमी साथ लेकर आओ। मुसद्दीलालको कहना अत्रे थी मुसद्दीलालको तार दिया जायगा तथा अंवाले पत्र लिख दिया है। वांके चार आदमी आजायगा । वीजा-वृत्तांत जगन्नाथके मुखसे सुण लेना जी।"

हमारे चरित्र नायकको आचार्यश्रीने और संघने पुनः गुजराँवाला क्यों आग्रह पूर्वक वुलाया इसके कारणका आभास तो पाठकोंको पत्रोंसे हो ही गया होगा; मगर पूरा समझमें नहीं आया होगा, इस लिए उसे संक्षेपमें यहाँ वतला देते हैं।

पाठक यह जानते हैं कि हमारे चरित्रनायकके साथ शास्त्रार्थ करके स्थानकवासी सामानेमें और नाभेमें वुरी तरह

हारे थे। लुधियाने में उन्हें नीचा देखना पड़ा था और अमृतसरमें तो बड़े ही फजीहत हुए थे। इस लिए वे मन ही मन श्वेताम्बरोंसे नाराज थे और बदला लेनेका मौका देख रहे थे; मगर हमारे चरित्रनायककी उपस्थितिमें उन्हें अवसर नहीं मिलता था।

इधर स्थानकवासियोंके मनकी यह हालत थी उधर श्वेतांबर अपने गुरुकी विजयसे प्रसन्न थे। जहाँ तहाँ उत्सव होते थे और आनंदकी बधाइयाँ बजती थीं।

इस तरहकी दशामें सं० १९६५ की वैशाख शुक्ला १० ता. ७ मई सन् १९०८ ईस्वीको गुजराँवालामें बड़ी धूमधामके साथ स्वर्गीय आचार्य महाराज श्री १००८ श्रीविजयानंद सूरिजीकी वेदी-प्रतिष्ठा १०८ श्रीआचार्य महाराज श्रीविजयकमल सूरिजीके हाथसे हुई। उसमें सार्वजनिक–पब्लिक व्याख्यान हुए। व्याख्यानोंमें यह बात आये बिना कैसे रह सकती थी कि आचार्यश्री पहले स्थानकवासी थे? सारे शहरमें श्वेतांबरोंकी प्रशंसाका नया दौर प्रारंभ हुआ।

स्थानकवासी इस समय निर्भय हो गये थे। जिन महात्माके आगे उनको जबान खोलनेका हौसला नहीं पड़ता था वे पंजाबसे रवाना हो चुके थे। उन्होंने बदला लेना स्थिर किया; स्थिर करके भी वे स्वयं मैदानमें आनेकी हिम्मत न कर सके। उन्होंने स्वर्गीय आत्मारामजी महाराजके बनाये हुए अज्ञानतिमिरभास्करके उस हिस्सेका उर्दूमें अनुवाद करके छपवाया, जिसमें हिन्दुग्रं-

थोंमें हिंसा आदिकी बातोंका होना सिद्ध किया गया है। साथ ही गुजराँवालाके हिन्दु वैसे भी उत्तेजित किये गये। इतना ही नहीं, सुना जाता है कि श्वेतांबरोंके साथ शास्त्रार्थ करनेमें, श्वेतांबरोंको नीचा दिखानेका प्रयत्न करनेमें, जो कुछ खर्चा हो वह भी देनेका अभिवचन देकर उन्हें उत्तेजित किया; खर्चा देते भी रहे। गुजराँवालामें शास्त्रार्थकी और नोटिसबाजीकी धूम मच गई।

उस समय हिन्दुओंकी तरफसे पं. भीमसेनजी शर्मा, विद्या-वारिधि पं. ज्वालाप्रसादजी मिश्र और पं. गोकुलचंदजी आदि थे। श्वेतांबरोंकी तरफसे, पं. श्रीललितविजयजी गणि, जलंधरनिवासी यति (पूज) जी श्रीकेशरऋषिजी, और पं. व्रजलालजी शर्मा आदि थे।

श्वेतांबरोंकी तरफसे उपर्युक्त विद्वानोंके और श्रीआचार्य महाराजजी आदि १३ साधुओंके होते हुए भी क्या साधु और क्या श्रावक सबके-दिलोंमें यह समाया हुआ था कि, हमारी जीत वल्लभविजयजीके आये विना न होगी। सबको बड़ी व्याकुलता हो रही थी। उसीका यह परिणाम था कि, श्री आचार्य महाराजको और श्रीउपाध्यायजी महाराजको आपके पास पत्र भेज कर गुजराँवाला आनेके लिये आज्ञा देनी पड़ी!

आचार्य महाराज, उपाध्यायजी महाराज तथा श्रीसंघके पत्रोंसे पाठक भली प्रकार समझ सकते हैं कि, सबकी दृष्टि

हमारे चरित्रनायक पर थी। आप तत्काल ही अर्थात् जेठ-सुदि पंचमीको वहाँसे रवाना हो गये।

जेठका महीना, कड़ाकेकी धूप मानों आकाशसे सूरज आग बरसा रहा है। पशु पक्षी भी व्याकुल होकर सायाका आश्रय ले रहे हैं। लोगोंके लिए घरसे दस बजेके बाद बाहर निकलना जान पर आता है। अमीर खसकी टट्टियाँ लगाये हवादार घरोंमें बैठे भी गरमीसे व्याकुल हो उफ़ ! उफ़ ! कर बार बार नौकरको जल्दी जल्दीसे पंखा खींचनेका तकाजा कर रहे हैं। घरके बाहिर जमीन आगसी तप रही है। नंगे पैर जमीन पर पैर रखना मानों भूभल पर पैर रखना है। ऐसे समयमें हमारे चरित्रनायक गुरुवचनको सत्य प्रमाणित करने, धर्मकी प्रभावना करने, श्रीआचार्य महाराजजी तथा श्रीउपाध्यायजी महाराजकी आज्ञाको पालन करनेके और चतुर्विध संघका मान रखनेके लिए बिनौलीके पास खिवाई गामसे रवाना हो गये। साथमें आपके सुयोग्य शिष्य सोहनविजयजी थे। नंगे पैर दोनों गुरु शिष्य उस भूभलसी भूमि पर चले जा रहे हैं। सूर्य अपनी संपूर्ण शक्ति लगाकर जमीनको जला रहा है, आप धर्मकी खातिर पैदल चले जा रहे हैं। पहले दिन आपने बीस माइलका सफ़र किया।

गाँवमें पहुँचे। लोगोंने देखा कि, आपके पैरोंमें छाले पड़ गये हैं। थक कर शरीर चूर चूर हो गया है। मगर आपको इसका कुछ खयाल नहीं था। आपको सिर्फ एक ही बातका खयाल था कि, मैं किस तरह गुजराँवाला पहुँचूँ।

दूसरे दिन फिर रवाना हुए । गरमी उसी तरह पड़ रही थी । आह ! यही तो आपकी साधु चर्याकी परीक्षा थी । परिसह कैसे शान्तिके साथ सहे जाते हैं इसीका तो यह अमली सवक़ था ! कवि भूधरदासजीने साधुवंदना करते कैसा सुंदर लिखा है—

" सूखें सरोवर जलभरे, सूखें तरंगिणीतोय ।
बाटें बटोही ना चलें, जब घाम गरमी होय ॥
तिस काल मुनिवर तप तपें, गिरिशिखर ठाड़े धीर ।
वे साधु मेरे उर बसो, मेरी हरो पातक पीर ॥

× × × ×

शीतऋतु जोरे अंग सब ही सकोरें तहाँ,
अंगको न मोरें नदी धोरे धीर जे खरे ।
जेठकी झकोरे जहाँ अंडा चील छोरे पशु,
पंछी छाँह लेरे गिरि कोरे तप जे धरे ।
घोर वन घोर घटा चहुँ और डोरे,
ज्यूँ ज्यूँ चलत हिलोरे त्यूँ त्यूँ फोरे बल वे अरे ।
देहनेह तोरें परमारथ भुँ प्रीति जोरें,
ऐसे गुरुओंरे हम हाथ अंजुली करें ॥ २ ॥

आप सवारीमें चढ़ नहीं सकते थे । पैरोंकी रक्षाके लिए जोड़े—कपड़ेके जोड़ेतक—पहन नहीं सकते थे; शरीरको धूपसे बचानेके लिए छत्री नहीं लगा सकते थे; गरमीकी शिद्दतसे सूखते हुए गलेको, किसी कूए, बावड़ी या राहगीरोंके लिए लगी हुई प्याऊसे, पानी पीकर, तर नहीं कर सकते थे । झरने-

के ठंडे पानीसे हलकको गीला नहीं कर सकते थे। नंगे पैर पैदल चलना, धूपमें जलते हुए आगे बढ़ना और प्यास लगने पर किसी वृक्षकी सायामें थोड़ी देर बैठकर गरम पानीसे-जो आप गाँवमेंसे भरकर चले थे—अपना हलक गीला कर लेना इसके सिवा कोई उपाय नहीं था। साधुचर्याके कठोर बंधनमें बँधे हुए-साधुओंके आचारको पूर्ण रूपसे पालते हुए ऐसी गरमीमें,-जेठकी कड़ी धूपमें-यात्रा करना कितना कठिन काम था उसका वर्णन करनेकी हमारी क्षुद्र लेखनीमें शक्ति नहीं है।

इसी तरह कष्ट सहते और पन्द्रह, बीस कभी इससे भी अधिक माइलका सफर करते आप गुजराँवालाकी तरफ चले जा रहे थे। रस्तेमें लोग आपको कहते,-"गुरुदेव! आपके पैर छिल गये हैं। लोहू टपकने लग गया है। आप कुछ समयके लिए आराम कीजिए।" तो आप उत्तर देते,-"श्रावकजी! यह तो पौद्गलिक शरीरका धर्म है। वह अपना धर्म पालता है; पाले। मुझे भी अपना धर्म पालना है। जैन धर्मकी लोग अवहेलना कर रहे हैं। मैं कैसे आराम ले सकता हूँ? मुझे उसी दिन आराम मिलेगा जिस दिन मैं गुजराँवाला पहुँचूँगा और स्वर्गीय गुरु महाराजके वचन सिद्ध कर धर्मकी ध्वजापताका फहराती देखूँगा।" लोग भक्तिभावसे आपके चरण स्पर्श कर साश्रु नयन आपकी ओर देखते हुए मौन हो जाते।

इस स्थितिको देखकर तुलसीदासजीने रामायणमें हनुमा-

नजीके लंका जानेका जो वर्णन किया है वह आँखोंके सामने आ खड़ा होता है। वे लिखते हैं—

चौपाई—जिमि अमोघ रघुपतिके बाना, ताही भाँति चला हनुमाना।
जलनिधि रघुपति दूत विचारी, कह मैनाक होउ श्रमहारी॥

सोरठा—सिंधुवचन सुनि कान, तुरत उठेउ मैनाक तब।
कपि कहँ कीन्ह प्रणाम, बार बार कर जोरिके॥

दोहा—हनूमान तेहि परसि करि, पुनि तेहिं कीन्ह प्रणाम।
रामकाज कीने बिना, मोहि कहाँ विश्राम॥

अमृतसर निवासी लाला हरिचंदजी दुग्गड अभी ता० २२—३—२५ को हमें बंबईमें मिले थे। वे कहते थे कि,—“जब महाराज साहब अमृतसरमें पहुँचे तब उनके पैर सूज रहे थे। उनके पैरों पर हाथ लगानेसे उन्हें कष्ट होता था। हम लोगोंने अर्ज की—“कृपालो! आपके और सोहनविजयजी महाराजके भी पैर सूज रहे हैं। ऐसी दशामें आप आगे बढ़ेंगे तो ज्यादा तकलीफ होगी। आप पाँच सात दिन यहाँ आराम कीजिए। फिर आगे पधारिए। गुजराँवालेमें भी पंच मुकर्रर करके मामला निपटानेकी बात चल रही है।”

आपने फर्माया:—“श्रावकजी! पहले धर्म है, शरीर नहीं। धर्मकी अवहेलनाके सामने शारीरिक कष्ट तुच्छ हैं। मैं गुजराँवाला पहुँचकर ही दम लूँगा। बीचहीमें फैसला हो गया तो बहुत अच्छी बात है।”

दैवयोगसे श्रीसोहनविजयजी महाराजकी आँखोंमें दर्द हो गया। विवश आपको आठ दिन वहीं ठहरना पड़ा। आँखोंका रोग ऐसा नहीं था कि उसकी अवहेलना की जाती। वगैर आँखोंके मार्ग कैसे देखा जा सकता था? खिवाईसे रवाना होनेके बाद आपने अमृतसरके सिवा दूसरी जगह कहीं भी एक रातसे ज्यादा विश्राम नहीं लिया था।

अमृतसरसे विहार कर आप लाहोरमें पहुँचे और उसी दिन शामको वहाँसे रवाना होकर रावीके किनारेपर सिक्खोंकी धर्मशालामें पहुँचे। उस जगह मालूम हुआ कि, मध्यस्थ लोगोंने फैसला दे दिया है और उन्होंने आत्मारामजी महाराजके बनाये हुए ग्रंथको सत्य बताया है। गुजराँवालाकी पूरी कार्रवाई उत्तरार्द्धमें 'गुजराँवालाका शास्त्रार्थ' हेडिंगवाले निबंधमें दी गई है।

आप आषाढ़ सुदी ११ सं. १९६५ के दिन गुजराँवालामें पहुँचे। श्रावकोंने बड़े उत्साहके साथ स्वागत किया और जुलूसके साथ आपको शहरमें ले जाना चाहा। आपने कहा:—"श्रीआचार्य महाराज, श्रीउपाध्यायजी महाराज और श्रीचारित्रविजयजी महाराजसे वृद्ध, बड़े और रत्नाधिक पूज्य यहाँ विराजमान हैं, इस लिए मैं बड़ोंके सामने, जुलूससे जाकर, उपस्थित होना अनुचित समझता हूँ।"

श्रीसंघने आचार्यश्री आदिसे प्रार्थना की। उन्होंने समयानुकूल योग्य उदारता दिखाई और आपको यह कहलाया

कि,—" तुम विनयवान हो, तुम्हारा यही धर्म है; मगर यह मौका ऐसा ही है। तुमने गुरु महाराजके नाम पर प्राणतक न्योछावर किये हैं, लोगोंमें उत्साह वढ़ रहा है, अतः धर्मकी प्रभावनाके लिए और गुरु महाराजकी यशोदुंदुभि चहुँ ओर वज उठे इस लिए, हम तुम्हें आज्ञा देते हैं कि तुम श्रीसंघकी आज्ञाको स्वीकार कर लेना।"

आपने वड़ोंकी आज्ञाको शिरोधार्य कर विवश जूलूससे जाना स्वीकार कर लिया। वड़ी धूमधामके साथ जुलूस निकला। उपर्युक्त तीन महात्माओंके सिवा सभी साधु आपके स्वागतार्थ सामने आये थे इस लिए नगरप्रवेशके समय आपके साथ साधुओंकी एक अच्छी संख्या हो गई थी।

श्रीमंदिरजीमें दर्शन, चैत्यवंदन कर आप उपाश्रयमें पधारे। उस समय श्रीआचार्य महाराज आदि वृद्ध, महात्माओंने भी आपका शास्त्रानुसार उचित स्वागत किया। आपने भी श्री-आचार्य महाराजजी आदिके चरणोंमें विधि पूर्वक वंदना की। दूरसे आये हुए साधु अपने वड़ोंके चरणोंमें किस तरह वंदना किया करते हैं सो देखनेका अवसर श्रीसंघ गुजराँवालाके लिए और वाहरसे आए हुए अन्यान्य भाइयोंके लिए यह पहला ही था। श्रीजिनेश्वरके विनयमार्गको देखकर अनेक भव्योंकी आँखोंसे हर्षाश्रु वह चले। सभीके मुखसे वाह! वाह!! और धन्य! धन्य!! की ध्वनि निकल पड़ी।

श्रीआचार्य महाराज आदिने आपकी पीठपर हर्ष पूर्वक

हाथ फिराया और कहा,–"यदि सच्चे गुरुभक्त हों तो तुम्हारे ही समान हों। तुमने स्वर्गवासी गुरुदेवके इस कथनको,–कि पंजाबकी सम्भाल वल्लभ लेगा, सत्य कर दिखाया है। जाओ! व्याख्यानके पाट पर बैठ कर श्रीसंघको थोड़ासा व्याख्यान सुनाओ! कई दिनोंसे श्रावकोंको तुम्हारी जबानसे जिनवचनामृत पानकरनेका अवसर नहीं मिला है, आज पिलाकर उन्हें धन्य बनाओ।"

आपने बद्धाञ्जलि होकर 'तहत्ति' कहा और व्याख्यान मंडपमें जाकर श्रोताओंको उपदेशामृत पिलाया। जब श्रावकोंको यह मालूम हुआ कि आजसे नित्य प्रति उन्हें व्याख्यान सुननेका सौभाग्य प्राप्त होगा तब उन्होंने, चौबीस महाराजकी जय, श्रीआतमारामजी महाराजकी जय, श्रीमद्विजयकमलसूरि महाराजकी जय! श्रीउपाध्यायजी महाराजकी जय! श्रीचरित्रविजयजी महाराकी जय! श्रीवल्लभविजयजी महाराजकी जय! इस तरह जय ध्वनिके साथ अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

आप कई दिनों तक निरंतर व्याख्यान देते रहे। एक दिन आपने आचार्यश्रीसे निवेदन किया कि, गुजराँवालाके शास्त्रार्थकी कार्रवाईका संग्रह होना आवश्यक है। इस लिए यदि आप व्याख्यानके लिए किन्हीं दूसरे मुनि महाराजको आज्ञा फर्मावें और मुझे इस कार्यको करनेकी आज्ञा फर्मावें तो उत्तम हो।"

आचार्यश्रीने आपकी योग्य प्रार्थनाको स्वीकार किया और व्याख्यानके लिए श्रीललितविजयजीको हुक्म दे दिया।

बीच बीचमें कभी कभी श्रीउपाध्यायजी महाराज और अन्यान्य साधु महाराज भी व्याख्यानकी कृपा करते रहे थे; ज्यादातर व्याख्यानका भार आपके शिष्य रत्न श्रीललित-विजयजी पर ही रहा था। मुख्य कारण इसका यह था कि आचार्य महाराज और उपाध्यायजी महाराजकी तबीअत गरमीके सबबसे जैसी चाहिए वैसी अच्छी नहीं रहती थी; श्रीचारित्रविजयजी महाराज वृद्धावस्थाके कारण असमर्थ थे और अन्य जो साधु थे वे गुजराती होनेके कारण पंजाबमें व्याख्यान नहीं वाँच सकते थे।

श्रीसंघके आग्रहके कारण आचार्यश्रीने पर्युषण पर्वमें कल्प-सूत्रके प्रथम व्याख्यानकी और संवत्सरीके व्याख्यानकी अर्थात् बारसां–कल्पसूत्र मूलमात्रके व्याख्यानकी कृपा की थी; शेष कल्पसूत्रके व्याख्यान दोनों गुरु शिष्योंने यानी आपने और श्रीललितविजयजीने ही समाप्त किये थे।

आपकी कल्पसूत्र वाँचनेकी छटा अजब है। यह स्वर्गीय गुरुदेवकी छटाका अनुकरण है। इसे देखकर मुनि श्रीलब्धिविजयजी (वर्तमानमें श्रीविजयलब्धिसूरिजी) चकित हो गये थे। उन्होंने कहा:–" आपका कल्पसूत्र सुनानेका ढंग बहुत ही बढ़िया है। मैं भी आगेसे इसी ढबसे वाँचा करूँगा। मेरा उद्देश्य आपके व्याख्यान सुननेमें, आपकी व्याख्यान-शैली, सीखना था सो वह उद्देश्य पूर्ण होगया।"

व्याख्यानसे फुर्सत पाकर आपने गुजराँवालामें दो पुस्तकें तैयार कीं। उनमेंसे एकका नाम है—'विशेषनिर्णय' और

दूसरीका नाम है ' भीमज्ञानत्रिंशिका ' पहलीमें संक्षेपसे और दूसरीमें विस्तारके साथ यह सिद्ध किया गया है कि,–वेदादि शास्त्रोंमे गोमेध, नरमेध और अश्वमेधका विधान है और गौ, मनुष्य और घोड़ेका हवन करना चाहिए। इतना ही क्यों वेदादि शास्त्रोंमें मांसभक्षणका भी स्पष्ट विधान है । इन बातोंको सिद्ध करनेके लिए आपने अपनी तरफसे कुछ न लिख कर प्राचीन शास्त्रोंके–वेदों, भाष्यों, सूत्रों, स्मृतियों और उन पर की गई टीकाओंके–वाक्य उद्धृत किये हैं। साथ ही हिन्दुओंके प्रसिद्ध विद्वान पंडित भीमसेनजी, पं० ज्वालाप्रसादजी, लोकमान्य तिलक आदिकी सम्मतियाँ भी–जो शास्त्रोंके आधारपर दी गइ हैं–उद्धृत की गई हैं। ये प्रमाण १८५ ग्रंथों और पत्रोंसे संग्रह किये गये हैं।

सं० १९६५का बाईसवाँ चौमासा आपने गुजराँवालाहीमें आचार्य श्रीविजयकमलसूरिजीके तथा श्रीउपाध्यायजी महाराजके चरणोंमें किया था। उस समय वहाँ कुल चौदह साधु थे। उनके नाम ये हैं,—

(१) आचार्य महाराज श्री १०८ श्रीमद्विजय कमल सूरिजी (२) १०८ श्रीउपाध्यायजी महाराज श्रीवीरविजयजी (३) १०८ श्रीवृद्ध मुनि महाराज श्रीचारित्रविजयजी (४) हमारे चरित्रनायक १०८ मुनि श्रीवल्लभविजयजी महाराज (५) मुनि श्रीअमीविजयजी महाराज (६) मुनि श्रीरविविजयजी महाराज (७) मुनि श्रीहिम्मतविजयजी

महाराज (८) मुनि श्रीविनयविजयजी महाराज (९) मुनि श्रीललितविजयजी महाराज (वर्तमानमें पंन्यास तथा गणि) (१०) मुनि श्रीनयविजयजी महाराज (११) मुनि श्री केसरविजयजी महाराज (१२) मुनि श्रीउत्तमविजयजी महाराज (१३) मुनि श्रीसोहनविजयजी महाराज (वर्तमानमें पंन्यास, गणि, तथा उपाध्याय) (१४) मुनि श्रीलब्धिविजयजी महाराज (वर्तमानमें आचार्य श्रीविजयलब्धि सूरिजी)

× × × ×

(सं० १९६६ से सं० १९७०)

चातुर्मास समाप्त होनेपर श्रीआचार्य महाराज और श्री उपाध्यायजी महाराजकी आज्ञा पाकर आपने गुजराँवालासे विहार किया। अमृतसर, जंडियाला आदि स्थानोंमें होते हुए आप जालंधर पधारे। वहाँ आपने श्रीहीरविजयजी महाराज, श्रीउद्योतविजयजी महाराज और स्वामी श्रीसुमतिविजयजी महाराजके दर्शन किये। वहाँसे रवाना होकर होशियारपुर फगवाड़ा, लुधियाना, अंबाला और दिल्ली आदिके लोगोंको उपदेशामृत पिलाते हुए आप जयपुर पहुँचे।

जयपुरमें बड़े उत्साह और ठाठवाटके साथ आपका स्वागत हुआ। पंजाबसे विहार करते हुए पं. श्रीललितविजयजी भी जयपुर आ मिले। इनके साथ खिवाईके एक ब्राह्मण भी थे। नाम था कृष्णचंद। वे दीक्षा लेनेके लिए आये थे। होशियारपुरनिवासी अच्छर और मच्छर दोनों सगे भाइ ओसवाल नाहर गोत्रीय संयम ग्रहण करनेके इरादेसे कितने ही महीनोंसे आपके पास अभ्यास करते थे।

जयपुरमें खरतरगच्छवालोंका बड़ा जोर था। तपगच्छके साधुओंका टिकाव वहाँ कठिनतासे हो सकता था। मगर जब आप वहाँ पहुँचे हैं तब सभी गच्छवालोंने आपका बड़ा सत्कार किया। आपके पुण्योदयने और आपके एकता वर्द्धक, जैन-धर्मके शुद्ध उपदेशने सभीको आपका भक्त बना दिया। जो एक बार आपकी वाणी सुन लेता वह फिर उसे सुननेके लिए व्याकुल रहता। हरेक कहता,— अपने जीवनमें पहली ही बार मैंने ऐसे मधुर भाषी और सभी गच्छवालोंको अपने अपने गच्छानुसार धर्मक्रिया करते हुए संपसे रहनेका उपदेश देने वाले साधु देखे हैं।

आप ढ़ाई महीने तक जयपुरमें रहे। जब कभी आप विहार करनेको उद्यत होते लोग कहते अभी और थोड़े दिन विराजिए। कौन अमृत पिलानेवालेको जाने देना चाहता है? प्रति दिन मंदिरोंमें पूजा प्रभावना होती थी। आज इस मंदिरमें है तो कल उस मंदिरमें।

पूजाके वक्त एक समा बंध जाता था। जिस समय साधु-मंडली अपने सुरीले कंठोंसे पूजा गाती सभी आनंदमें झूमने लग जाते। पं० श्रीललितविजयजीका गला तो मोहन मंत्र था। इतना मधुर और इतना लोचदार! श्रोता मंत्रमुग्ध सर्पकी भाँति झूमते रहते। तीन चार घंटे इस तरह निकल जाते जैसे दिनभर परिश्रम करनेवाले मनुष्यकी रात एक ही झपकीमें निकल जाती है! पूजाके समय श्वेतांबर श्रावकोंके सिवा दूसरे भी अनेक स्त्रीपुरुष मंदिरमें जमा हो जाते थे।

जब आप विहार करनेका दृढ इरादा कर चुके तब जयपुरके संघने विनती की कि, आपके साथ जो दीक्षा लेनेवाले भाग्यशाली हैं उन्हें यहीं दीक्षा देकर हमें अनुग्रहीत कीजिए। आपने श्रावकोंकी इस विनतीको स्वीकार कर लिया।

संयमलेनेवालोंके वारिसोंको सूचना दी गई। वे आये मगर दीक्षाके उत्सुकोंको वैराग्यमें दृढ देखकर, आज्ञा दे चले गये।

पन्द्रह दिनतक बड़ी धूमधामसे उत्सव हुआ। पंजाब, मारवाड़, मेवाड़, मालवा और गुजरात आदि सभी स्थानोंके श्रावक वहाँ जमा हुए थे। बाहरसे आये हुए लोगोंमें पंजाबियोंकी संख्या अधिक थी। जयपुरके संघने सभी अतिथियोंका अच्छा आदरसत्कार किया था। दीक्षा मोहनवाड़ीमें—जो गलता दर्वाजेके बाहिर है—हुई थी। हजारों नरनारी मोहनवाड़ीमें सवेरेहीसे जाकर जमा हो गये थे। पंजाबी श्रावक दीक्षा लेनेवालोंकी पालकियाँ उठाकर गये थे। दीक्षाके दिन नारियलकी प्रभावना हुई थी। कुल नव हजार नारियल खर्चे हुए थे। दीक्षामहोत्सवका सारा खर्चा जयपुरनिवासी सेठ फूलचंदजी कोठारीकी माता इन्द्रबाईने किया था। दीक्षा सं. १९६५ के चैत्र वदि ५ के दिन हुई थी। अच्छर और मच्छरका नाम क्रमशः विद्याविजयजी और विचारविजयजी रक्खा गया। दोनों हमारे चरित्रनायकके शिष्य हुए। कृष्णचंद्रका नाम तिलकविजयजी रक्खा गया। वे पं० श्रीललितविजयजी महाराजके शिष्य हुए।

जयपुरमें दीनदयालजी तिवारी एक बहुत ही सज्जन पुरुष थे। उन्हें धार्मिक वातोंसे विशेष स्नेह था। वे हरेक मजहबकी वातको समझते और धर्मगुरुओंसे मिलते थे। वे उस समय मुन्सिफ थे। उन्हें ऐसा शौक लगा कि वे हमेशा आपका व्याख्यान सुने विना नहीं रहते। यदि कभी किसी खास कार्यके कारण व्याख्यानके समय नहीं आ सकते थे तो दुपहरको अथवा शामके वक्त आकर उस दिनके व्याख्यानकी वातें संक्षेपमें आपसे पूछ कर पहलेका अनुसंधान कर लेते थे।

सं० १९६५ में लार्ड कर्जनने बंगालको दो भागोंमें विभक्त कर दिया था। इससे बंगालमें बड़ी हल चल मची हुई थी। कई क्रान्तिकारी बंगाली लोग खीजकर षडयंत्रकारी बन गये और सरकारी अफ्सरोंकी हत्याएँ करने लग गये थे। वे रहा करते थे प्रायः सन्यासियों और साधुओंके वेशमें। इस लिए उनपर सरकारी अफ्सरोंकी कड़ी निगाह रहती थी।

एक दिनकी बात है। हमारे चरित्रनायक अपने दो तीन शिष्यों सहित जयपुर स्टेशनके पासवाले मंदिरजीके दर्शन करके वापिस आरहे थे। साथमें जयपुरवाले गुलाबचंद्रजी ढड्ढा एम. ए. के बड़े भाई लक्ष्मीचंद्रजी भी थे। उसी समय किसी गोरे अफ्सरकी बग्घी वहाँसे निकली। उसने साधुओंको देखा। एक तो बंगाली लोग वैसे नंगे सिर ही रहा करते हैं, दूसरे उस समय क्रान्तिकारी बंगाली प्रायः साधुओंके वेशमें रहते थे; गोरा यह जानता नहीं था कि बंगालियोंके

सिवा और भी कई नंगे सिर रहा करते हैं। जैन साधुओंके संबंधमें तो उसे जरासी भी जानकारी न थी। अतः उसने समझ लिया कि ये बंगाली ही हैं। बँगले पर पहुँचकर उसने सूचना दी कि, लक्ष्मीचंद्रजीके यहाँ कुछ बंगाली हैं। वे कौन हैं और क्यों आये हैं? इसकी जाँच करो।

पुलिसने लक्ष्मीचंद्रजीको बुलाया और पूछाः—" तुम्हारे घरपर बंगाली महमान कौन हैं?"

लक्ष्मीचंद्रजीने कहाः—" मेरे घर पर तो कोई बंगाली महमान नहीं है।"

पुलिस अफ्सर बोलाः—" हैं क्यों नहीं? आप उनके साथ स्टेशनसे आ रहे थे तब साहबने आपके साथ उन्हें, देखा था, इतना ही नहीं आपने, साहबसे सलाम भी की थी।"

लक्ष्मीचंद्रजी मुस्कुराये और बोलेः—" ओह! साहबको बड़ा भ्रम हुआ है। जिनके साथ आते हुए साहबने मुझे देखा था वे तो हमारे गुरु महाराज थे। स्टेशनके पास पुगलियोंकी (पुगलिया ओसवालोंका एक गोत्र है) निशियाँ है। उसमें जिन मंदिरके दर्शन करानेके लिए मैं गुरुमहाराजके साथ गया था और उन्हींके साथ वापिस आ रहा था। आप जानते हैं कि, जैनसाधु नंगे सिर ही रहते हैं और उन्हें नंगे सिर देख कर साहबने बंगाली समझ लिया है"

असली बातको समझ कर पुलिस अफ्सर खिल खिला कर हँस पड़ा और लक्ष्मीचंद्रजीसे बोलाः—" आप जाइए मैंने मतलब समझ लिया है।"

पुलिसने साहबको सारी बातें समझा दीं, तो भी उसके दिलसे खटका न निकला। उसने कहा:-"मुमकिन है यही बात सच हो, तो भी सावधान रहना अच्छा है। तुम इस बातका खयाल रखना कि, वे यहाँ क्यों आये हैं? क्या करते हैं? लोगोंको क्या उपदेश देते हैं? कहाँ ठहरे हैं आदि।"

मुन्सिफ महाशय और पुलिस अफ्सरका आपसमें अच्छा स्नेह था। उसने सारी बातें मुन्सिफ साहबसे कहीं। मुन्सिफ साहब हँसे और बोले:-"अच्छी बात है। मैं खुद इसकी जाँच करूँगा। तुम जानते हो कि, मुझे धर्मसे ज्यादा प्रेम है; धर्मकी बातें सुनना मैं बहुत ज्यादा पसंद करता हूँ। वैसे भी कोई बात होगी तो मुझे जाँच तो करनी ही पड़ेगी, इस लिए मैं स्वयं उनके व्याख्यानमें जाऊँगा। यदि वे वास्तविक साधु होंगे तो मुझे धर्मकी प्राप्ति होगी और यदि वे ढोंगी होंगे तो भविष्यमें मुकदमेके समय मुझे कम कठिनता होगी।"

दूसरे दिन सवेरे ही मुन्सिफ साहब व्याख्यानमें चले गये। एक बार लोगोंके दिलमें भय पैदा हुआ। भय इस लिए हुआ कि, उन्होंने लक्ष्मीचंद्रजीके द्वारा सारी बातें सुनी थीं; मगर थोड़ी देरके बाद उनका भय जाता रहा। उन्हें मुन्सिफ साहबके बोल चालसे मालूम हुआ कि, वे किसी बुरे इरादेसे यहाँ नहीं आये हैं। जबतक व्याख्यान होता रहा वे ध्यान-पूर्वक सुनते रहे। अनेक लोग उनकी तरफ एक टक देख

रहे थे। उनके चहरेसे मालूम हुआ कि, उन्हें व्याख्यानमें बड़ा आनंद आ रहा है और वे तल्लीन होकर उसे सुन रहे हैं।

जब व्याख्यान समाप्त हो चुका तब मुन्सिफ साहब बोले:— "मेरी आयु पचास बरससे कुछ ज्यादा ही होगी। बचपन-हीसे मुझे धर्मकी बातें सुननेका शौक है। किसी मजहबका व्याख्यान हो,—धर्मकथा हो मैं यथासाध्य सुननेके लिए जरूर जाता हूँ। ये लोग मुझे अच्छी तरह जानते हैं। मैं गुणग्राही हूँ। जहाँसे गुण मिलता है मैं वहींसे गुणग्रहण करता हूँ। किसीकी प्रशंसा उसके सामने ही करना अनुचित है, तो भी मुझसे यह कहे विना नहीं रहा जाता कि, मुझे आजके व्याख्यानमें जैसा आनंद मिला है वैसा आनंद उम्रमें कभी नहीं मिला; आनंदकी अनुभूति शब्दोंके द्वारा प्रकट नहीं की जा सकती। व्याख्यान क्या कल भी होगा?"

हमारे चरित्रनायकने फर्माया:—"साधुओंका और काम ही क्या है? गृहस्थोंके अन्नजलसे साधुओंका निर्वाह होता है इस लिए साधुओंका कर्त्तव्य है कि, वे बदलेमें गृहस्थोंको उपदेश दें, उन्हें धर्मकार्यमें लगे रहनेकी प्रेरणा करें और उन्हें उनके उद्धारका मार्ग बतावें, उस मार्ग पर चलनेमें उन्हें सहायता दें। इस लिए जब तक हम यहाँ रहेंगे तब तक अपना कर्तव्य करते ही रहेंगे।"

मुन्सिफ साहबने पूछा:—"आप कब तक यहाँ विराजेंगे?"

आपने उत्तर दिया:—"जब तक यहाँके अन्नजल हैं।"

मुन्सिफ साहब नमस्कार करके चले गये। तबसे वे रोज व्याख्यानमें आते थे। एक दिन वे देरसे आये। देखते क्या हैं कि दो पुलिसके मनुष्य श्रोताओंके पीछेकी तरफ बैठे हुए हैं। उन्हें बुलाया और पूछाः—"तुम यहाँ क्यों आये हो?"

उन्होंने उत्तर दियाः—"हाकिमके हुक्मसे।"

मुन्सिफ साहबने कहाः—"तुम आरामसे बैठो। यहाँ तुम्हारी दाल न गलेगी। मैं यहाँ रोज व्याख्यानमें आता हूँ। हमेशा कुछ न कुछ नयापन व्याख्यानमें रहता है। इनका व्याख्यान श्रोताओंकी भलाईके लिए होता है। उनके मनमें किसी किसमका लालच नहीं है। लालच हो ही क्यों? जिन्होंने दुनियाको फानी—नाशमान समझकर इससे किनारा कर लिया है, जो पैसे टकेको कभी स्पर्श नहीं करते। जो अनेक घरोंमेंसे थोड़ी थोड़ी भिक्षा लेकर पेट भरते हैं, जो नंगे पैर फिरते हैं, जो कभी किसी सवारीपर नहीं चढ़ते, जो एक ठिकाने नहीं रहते, जिनके रहनेका कोई नियत स्थान नहीं, जो रमते राम हैं, जो कोई किसी गाँवमें या शहरमें ठहरनेको जगह दे देता है तो वहाँ ठहर जाते हैं, अन्यथा वृक्षके नीचे ही रात गुजार लेते हैं, जो भोजनकी तरह ही वस्त्र भी माँगकर ले आते हैं अर्थात् गृहस्थ अपने लिए कपड़ा लाता है उसमेंसे कुछ बच रहता है तो ले लेते हैं, उनके लिए लाया हुआ कपड़ा कभी नहीं लेते, जो कीमती या भड़कीला कपड़ा नहीं लेते, जो

अपने पास सिर्फ इतनासा सामान रखते हैं जितनेको वे उठाकर ले जा सकते हैं और जो कभी किसी गृहस्थसे अपनी चीजें नहीं उठवाते। इनका धर्म है,—किसी जीवको किसी भी दशामें कष्ट न पहुँचाना। हर समय उनकी भावना रहती है—

'शिवमस्तु सर्वजगतः, परहितनिरता भवंतु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः॥'

इस भावनाको भानेवाला, इस मंत्रकी साधना करनेवाला क्या कभी किसीका विरोधी हो सकता है? यद्यपि इसकी साधना कठिन है तथापि इन महात्माओंने इसको साधा है।"

पुलिसवाले बोलेः—"आप बजा फर्माते हैं। तीन राजसे हम बराबर यहाँ आरहे हैं। हमने इन साधुओंको आपके फर्मानेके अनुसार बिलकुल ही बेलाग और दूसरोंके हितका उपदेश देनेवाले ही देखा है। हमने पहले दिन जब आपको यहाँ बैठे देखा तभी समझ लिया था कि, यहाँ ऐसा वैसा उपदेश कभी न होता होगा। यदि होता तो आप यहाँ हरगिज न आते। इन महात्माओंके शब्दोंमें जादू है। हम इनके उपदेशपर मुग्ध हैं। हमें जाँचके बहाने ही इन महात्माओंका उपदेश सुननेको मिल जाता है।"

मुन्सिफ साहबने कहाः—"बहुत अच्छा करते हो। उपदेशके माफिक कुछ अमल भी किया करो। अमलके विना सुना न सुना एकसा है।"

जिस समय अच्छर मच्छरादिका दीक्षा महोत्सव हो रहा

था उस समय किसी ईर्षालुने सर्कारमें अर्जी दी कि,-जिन लड़कोंको दीक्षा दी जानेवाली है उनके माता पिताको इसकी विल्कुल खवर नहीं है। यह काम चुपके ही चुपके हो रहा है। इस लिए सरकार इसकी जाँच करे। दैवयोगसे वह दर्ख्वास्त मुन्सिफ साहवके पास ही जाँचके लिए पहुँची। उन्होंने उस दर्ख्वास्तको ईर्ष्याका परिणाम समझकर दफ्तर दाखिल करा दिया। उन्हें मालूम था कि, दीक्षामहोत्सव वड़ी धूमधामसे हो रहा है, रोज जुलूस निकलते हैं। सारा शहर इससे वाकिफ है। इतना ही क्यों अच्छर मच्छरके ताऊजी (पिताके वड़े भाई) जयपुरमें आये थे। वे अच्छर मच्छरकी जायदादका प्रवंध स्वयं करके उन्हें दीक्षा लेनेकी आज्ञा दे गये थे। मुन्सिफ साहव भी उस समय मौजूद थे; क्यों कि यह वात व्याख्यानके समय ही हुई थी। मुन्सिफ साहवने पासमें वैठकर दीक्षाकी सारी क्रियाएँ देखी थीं।

हमारे चरित्रनायकने जयपुरसे विहार किया तव वे दो तीन माइल तक साथमें गये थे। और भी सैकड़ों मनुष्य आपको पहुँचाने गये थे।

जिस समय जयपुरमें तीन भाइयोंकी दीक्षाकी तैयारियाँ हो रही थीं उस वक्त अजमेरनिवासी सेठ हीराचंदजी सचेती कुछ अन्य सधर्मी भाइयोंको साथ लेकर हमारे चरित्रनायकके चरणोंमें उपस्थित हुए और अर्ज करने लगे कि-" कृपानिधान हम आपकी खिदमतमें इस लिए हाजिर हुए हैं कि कृपाकर आप हमारी प्रार्थना पर ध्यान दें।

"हम सब सेवक यह प्रार्थना करनेको आये हैं कि आप इन तीनों वैरागियोंको अजमेरमें दीक्षा दें। खास फायदा वहाँ यह होगा कि अजमेरमें स्थानकवासी भाइयोंने कॉन्फरन्सका जलसा कायम किया है। तारीख वही है जो दीक्षाकी है। कॉन्फरन्सके मौके पर हजारों स्त्री पुरुष वहाँ मौजूद होंगे इससे सैंकड़ों गामोंमें घूमकर जो उपकार आप श्रीजी वर्षोंमें कर सकेंगे वह तीन दिनोंमें हो सकेगा।" सचेतीजीने यह भी अर्जकी कि उस मौकेपर हम मूर्तिपूजक संप्रदायकी कॉन्फरन्सका अधिवेशन कायम करनेकी योजना भी करना चाहते हैं, इस कार्यमें हमारे सर्व भाई मददगार हैं और अगर गुरु महाराज अजमेर पधारें तो ४०००० रु० तकका खर्च मैं अकेला करनेको तैयार हूँ।

हमारे चरित्रनायक इसकार्यमें बड़ा लाभ समझते थे मगर जयपुरके श्रीसंघको वचन दे चुके थे। जब जयपुरके श्री-संघको पूछा तो उसने कहाः—"अपने हाथमें आया हीरा कौन दूसरेको दे देता है।" अजमेरके श्रीसंघकी आशा अपूर्ण रह गई। दीक्षा जयपुरमें ही हुई।

जयपुरसे विहार कर आप अजमेर पधारे। बड़े उत्साह और आडंबरके साथ श्रावकोंने आपका नगरप्रवेश कराया। करीब दस रोजतक आप वहाँ विराजे और लोगोंको उपदेशा-मृतका पान कराते रहे।

अजमेरसे विहार करके आप नयेशहर (ब्यावर) पधारे

यहाँके लोगोंने अति उत्साहके साथ आपका स्वागत किया। बड़े भारी जूलूसके साथ लोग आपको उपाश्रयमें ले गये। आपके पधारनेकी खुशीमें लोगोंने वहाँ अठाई महोत्सव शुरू किया। सवेरे लोग व्याख्यान सुनते थे और दुपहरको पूजाका आनंद उठाते थे।

ब्यावरसे आप पिपलीगाँवमें पधारे। वहाँ स्थानकवासियों और मंदिर मार्गियोंके आपसमें फूट थी। आपके उपदेशसे वह मिट गई और दोनों मिलकर रहने लगे।

पिपलीगाँवसे आप मुँडावा होते हुए चंडावल पधारे। वहाँ दो दिनतक लोगोंको उपदेशामृत पिलाकर निहाल किया।

चंडावलसे आप सोजत पधारे। वहाँ पालीके धर्मात्मा सेठ तेजमलजी चाँदमलजी आदि भी आये थे। लोगोंने बड़े उत्साहसे आपका स्वागत किया और आपका उपदेशामृत पी अपनेको कृतकृत्य बनाया।

सोजतसे आप जाडण होते हुए पाली पधारे। वहाँसे गोलवाड़में पंचतीर्थीकी यात्राके लिए पधारे। वरकाणाजी, नाडलाई, नाडोल, घाणेराव, सादड़ीकी यात्रा कर, मुँडारा, बाली, शिवगंज, और सीरोही होते हुए और इन गाँवोंके लोगोंको धर्मामृत पिलाते हुए आप आबूजी पधारे। वरकाणाजीसे आचार्य श्रीविजयकमल सूरिजीके शिष्य श्रीलावण्यविजयजी भी आपके साथ हो गये थे। वे चार सालतक आपके साथ रहकर आपकी सेवा भक्ति करते रहे। आपने भी उन्हें, विद्यादान देकर, विद्वानोंकी पंक्तिमें बिठा दिया।

आबूसे विहार करके आप मढार पधारे। आपके लघु गुरु भ्राता मुनि मोतीविजयजी भी गुजरातकी तरफसे विहार करके यहीं आपकी सेवामें हाजिर हो गये ।

मढारसे विहार करके सं० १९६६ की ज्येष्ठ शुक्ला २ के दिन आप पालनपुर पहुँचे। उमंगोंसे भरे श्रावकोंने आपका कल्पनातीत स्वागत किया । पालनपुरमें साधुओंका सामैया (जुलूस) यही सबसे पहला था, इस कारणसे भी लोगोंमें उत्साह अत्यधिक था ।

नगरप्रवेश बड़ी धूमधामसे कराया। जुलूसमें हजारों नर नारी आये थे। करीब आधे माइलमें जुलूस था। स्त्रियाँ बधाईके गीत गाती थीं और पुरुष जैनधर्मकी जय, आत्मारामजी महाराजकी जय और मुनि वल्लभविजयजी महाराजकी जयके घोषसे आकाश मंडलको गुँजाते थे ।

बड़ोदेके कोठारी जमनादास, खीमचंद भाई आदि लगभग पचास श्रावक आपको बड़ोदेमें चौमासा करनेकी विनती करनेके लिए आबूजी पहुँचे थे; मगर वे आबूजी पहुँचे उसके पहले ही आप दूसरे (अनादराके) रस्ते होकर नीचे उतर गये थे, इसलिए वे सभी आबूजीकी यात्रा करके प्रवेशमहोत्सवके समय पालनपुर आ पहुँचे थे ।

होनी, भवितव्यता, पहलेहीसे कुछ न कुछ चिन्ह प्रकट कर देती है। पालनपुरके संघका ऐसा अपूर्व उत्साह और सामैया देखकर उनको संदेह हुआ कि संभवतः पालनपुरवाले महाराजका विहार कभी न होने देंगे ।

शामको पालनपुरके कई श्रावक वड़ोदावालोंके डेरेपर पहुँचे और हाथ जोड़ कर कहने लगे,—" भाई साहब आप हमारी मदद कीजिए, जिससे हम महाराज साहबसे यहीं चौमासा करनेकी विनतीको स्वीकार करा सकें। महाराज साहबका यहाँ चौमासा होना बहुत जरूरी है। यहाँके संघका बड़ा उपकार होगा। आदि।"

वड़ोदावालोंका संदेह विश्वासमें बदल गया। उन्होंने सलाह की कि खीमचंदभाइ आदि पाँच सात आदमी यहाँ रह जायँ, जो महाराज साहबको यहाँसे विहार कराके ही निकलें। दूसरे अभीसे चले जायँ।

दो दिनके बाद आपने मोतीविजयजी महाराजको वहाँसे विहार करवा दिया। कारण आपने मुनिमंडलके साथ यह स्थिर कर लिया था कि, सबका चौमासा एक ही साथ दादाके चरणोंमें-सिद्धाचलजीमें-हो। धीरे धीरे सभी वहाँ पहुँच जायँगे; मगर ज्ञानी महाराजने तो कुछ और ही देखा था।

चौथके दिन व्याख्यानमें, आपने पंचमीके दिन विहार करनेकी इच्छा प्रकट की और कहा कि, हम भोयणीमें गुरुदेवकी जयन्ती मनाना चाहते हैं। श्रावकोंने साग्रह वहीं की जयन्ती करनेकी विनती की। आपको वह स्वीकारनी पड़ी। श्रावकोंने कहा था आपके विराजनेसे अनेक उपकार होंगे। सो हुए।

करीब बीस बरससे पालनपुरके संघमें दो धड़े हो रहे

थे। पैंतीस घर एक तरफ थे और शेष दूसरी तरफ। झगड़ेको मिटानेके लिए अनेक मुनिराजोंने परिश्रम किया परन्तु कोई फल नहीं हुआ। होता तो तब जब झगड़ेकी काललब्धि समाप्त हो गई होती! अब वह समाप्त हो चुकी थी और उसका यश आपहीको बदा था।

आपने लोगोंको आपसी कलह मेटनेका उपदेश दिया। उपदेशको सुन उनके मन पसीजे। उन्होंने आपको ही न्यायाधीश नियत कर जो प्रतिज्ञापत्र लिख दिया, उसकी नकल यहाँ दी जाती है।

"परम पूज्य १०८ श्रीमहामुनिराज श्रीवल्लभविजयजी महाराज साहब। जोग लि० पालनपुर० तपगच्छके ओसवाल श्रीमाली महाजन समस्त। यहाँ हमारे आपसमें तकरार है। वह बाबत, निकाल करनेके लिए, हमने आप साहबको सौंपी है। इसलिए आप साहब, सबकी हकीकत सुनकर जो फैसला कर देंगे, वह हमको कबूल मंजूर है और उसके मुजिब हम वर्ताव करेंगे। उसमें कसूर नहीं करेंगे। मिति (गुजराती) सं १९६५ का ज्येष्ठ सुदी ४"

यह मूल गुजरातीका अनुवाद है। इसके नीचे करीब नव्वे पुरुषोंके हस्ताक्षर हैं।

आपने जो फैसला दिया उसकी नकल नीचे दी जाती है—

"नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः।

मैं स्वयं यह बताते अत्यंत प्रसन्न हूँ कि पालनपुरमें श्रीजिनेश्वर देवके मनोहर चैत्यमें प्राचीन श्रीजिन प्रतिमाओंका दर्शन भव्य जीवोंको बहुत आनंद देता है। ऐसी ऐसी अद्भुत प्राचीन प्रतिमाएँ यहाँ देखी हैं जैसी अन्य स्थानोंपर कठिनतासे मिल सकती हैं। श्रावक समुदाय भी धर्मका पूर्ण रागी और प्रतापी है। इतना होने पर भी ऐसा मालूम हुआ कि यहाँके मंदिरोंमें जितनी चाहिए उतनी देखरेख नहीं होती, इसलिए प्रसंगवश व्याख्यानमें इसके लिए कुछ कहा गया। जिससे श्रावकोंके हृदय भर आये। मगर उत्तर मिला कि, साहब इसमें कोई खास कारण है। पूछने पर विदित हुआ कि किसी साधारणसी बातपर आपसमें झगड़ा हो गया है। इसका अंत करनेके लिए सूचना दी गई। इससे सर्वानुमतसे यह बात प्रकट की गई की आप सारी बातोंसे वाकिफ होकर जैसी आज्ञा देंगे वैसा ही हम सब करनेके लिए तैयार हैं। इस विषयका पत्र लिख उस पर सबने हस्ताक्षर कर दिये। दोनों पक्षोंके आदमियोंसे जुदा जुदा सारी बातें जान लीं। इसके बाद जो कुछ मैंने उचित समझा वह बताता हूँ।

(१) यद्यपि कुछ बातोंमें कुछ व्यक्तियाँ अपराधी साबित होती हैं; परन्तु समयके फेरसे विरुद्ध धर्मवालोंको हँसी या आलोचनाका मौका न मिले इसी हेतुसे मैं उन्हें अपराधी बताना नहीं चाहता; तथापि पैंतीस घरवालोंने या दूसरे किसीने एकड़ामें (ऐक्यमें) भाग नहीं लिया वे एकड़ामें भाग लेने यानी एकड़ा भरनेके लिए बाध्य हैं।

(२) सभी एकड़ावाले तथा एकड़ासे विपरीत वर्तावबाले तथा पांत्रीसी आदि सभी एकतासे, संपसे बिगड़ता हुआ धार्मिक काम सुधारनेके लिए बाध्य हैं; और आजके बाद जो कोई एकड़ासे विरुद्ध आचरण करेगा उसको जाति इकट्ठी हो जो मुनासिब ठहराव करेगी उसके अनुसार वर्तना पड़ेगा। अर्थात् इस विषयमें जातिको अख्तियार दिया जाता है कि जाति चाहे तो उसे जातिसे अलग कर दे और चाहे तो उससे उसकी योग्यताके अनुसार चाहे जिस खातेके लिए दंड ले, अथवा उसे माफ कर दे।

(३) एकड़ावालोंने, एकड़ासे विपरीत चलनेवालोंने अथवा पांत्रीसीने, किसीने भी मुझसे, अपनी किसी तरहके दुःखकी बात नहीं कही थी; मगर मैंने धर्मकी वृद्धिके बदले हानि होते देख उनसे कहा और मेरे कहनेसे सभीने सच्चे अन्तःकरणसे उद्योगकर मेरे कहनेके माफिक वर्ताव करनेकी मंजूरी दे मुझे ऐसे शुभ काममें भाग लेनेका सम्मान दिया है। मैं आशा करता हूँ कि तुम सभी पालनपुरके निवासी, मंदिर-आम्नायके सुश्रावक अपने वचनको पालनेके लिए और धर्मकी खातिर इस किये हुए ठहरावको सच्चे अंतःकरणसे मान दोगे और अबसे फिर उपर्युक्त विषयमें कभी भी द्वेष नहीं करनेके संबंधमें अपने मनमें प्रतिज्ञा धारण करोगे।

(४) आज स्वर्गवासी गुरु महाराज तपगच्छाचार्य श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरि (आत्मारामजी) महाराज साहबके

स्वर्गवासका दिन होनेसे आप श्रीसंघने महोत्सव प्रारंभ किया है। इसीके दर्मियानमें यह शुभ कार्य हुआ है, इसलिए तुम्हें अपार आनंद होगा और आजका दिन तुम्हारे लिए सुनहरी अक्षरोंमें लिखने योग्य सावित होगा। अस्तु, श्रीवीर संवत् २४३५ श्रीआत्म संवत १४ विक्रम संवत (गुजराती) १९६५. जेठ सुदी ८ गुरुवार।"

यह फैसला गुजराती भाषामें लिखा गया है और इसके अंतमें हमारे चरित्र नायककी सही है।

यह फैसला ऐसा हुआ कि इससे किसीको किसी तरहकी शिकायत न रही। बड़े आनंदके साथ इसका स्वागत किया गया और सभी पक्षवालोंने परस्परमें गले मिलकर इसको आचरणीय स्वरूप दे दिया। स्वर्गीय आत्मारामजी महाराजकी वह अवसान तिथि थी इस लिए उत्सव हो रहा था। इस फैसलेसे उत्सवमें दुगनी शोभा बढ़ गई। उस दिन जब आप शामको प्रतिक्रमण कर चुके तब श्रीसंघने वहीं चौमासा करनेकी अर्ज की। आपने पालीतानेमें चौमासा करनेका इरादा बताया। श्रीसंघ वहीं डटकरके बैठ गया कि जब तक आप चौमासा यहीं करनेकी स्वीकारता न देंगे हम यहाँ से न उठेंगे—

आये हैं तेरे दरपे तो कुछ करके हटेंगे।
या वस्लही हो जायगी या मरके हटेंगे॥

आप इन्कार करते थे। श्रावक हाँ कहलानेके लिए डटे हुए थे। इसी 'हाँ' 'ना' में रात आधीसे भी ज्यादा बीत गई।

उस समय गोदड़शाह नामक एक भाग्यवान श्रावकने, आग्रह और भक्ति विकंपित कंठसे कहाः—

" महाराज साहब ! आप कृपा किजिए और श्रीसंघकी विनती स्वीकार कर लीजिए। मेरा अन्तरात्मा कहता है कि, आपके यहाँ विराजनेसे अनेक उपकार होंगे। यदि आप चौमासा करना इसी वक्त स्वीकार कर लें तो मैं अपना मकान-जो इसी धर्मशालाके मैदानमें सामने दिखाई दे रहा है—देनेको तैयार हूँ। "

वहाँ बैठे हुए सभी श्रावकोंके शरीरमें मानों बिजली दौड़ गई। उन्होंने उच्चस्वरसे कहाः—" गुरु महाराज ! आप इस प्रतिज्ञाको साधारण न समझिए। इस प्रतिज्ञाकी पूर्त्तिसे संघकी इज्जत बढ़ेगी और धर्मशाला वास्तविक धर्मशाला बन जायगी। इस मकानके बिना यह धर्मशाला एक कौड़ीके कामकी भी नहीं है। इस मकान के लिए मुकदमें हुए, संघ दस हजार देनेको तैयार हुआ और अन्तमें संघ बाहर कर देनेकी धमकी भी गोदड़शाहको दी गई; मगर इन्होंने एक भी बात न मानी। आज ये भाई गुरु महाराजके और आपके पुण्य प्रतापसे, बिना ही किसीकी प्रेरणाके उसी मकानको देनेके लिए तैयार हैं। आप ज्ञानी हैं लाभालाभको विचार लें। इस मकानका धर्मशालाके लिए मिलना मानों एक बहुत बड़े कामका सिद्ध होना है। "

गोदड़शाहकी उदारता और श्रावकोंका आग्रह देख, साथके

साधुओंकी सम्मति ले आपने पालनपुरहीमें चौमासा करनेकी सम्मति दे दी।

वह कौनसा उकदा[1] है जो वाँ[2] हो नहीं सकता ?
हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता ?

श्रावकोंकी इच्छा पूर्ण हुई। वे जयजयकार करते हुए अपने अपने घर जाकर मीठी नींदमें सोये। आपने भी आराम किया।

सवेरे ही आपने मुनि श्रीमोतीविजयजीको एक पत्र दिया। उसमें पालनपुरका हाल दरज कर उन्हें वापिस आनेके लिए लिखा था। वे उस समय ऊँझामें थे। ऊँझाके श्रीसंघको ये समाचार मिले। उसने उनसे ऊँझामें ही चौमासा करनेकी विनती की। उन्होंने आपकी आज्ञा लानेके लिए कहा। इस पर वहाँके कुछ मुखिया पालनपुरमें आपके पास गये। यद्यपि आप चाहते थे कि, सभीका चौमासा साथ ही हो, मगर श्रीसंघका आग्रह देखकर आपको इजाजत देनी पड़ी।

खीमचंदभाई आदि वड़ोदेके जो सज्जन हमारे चरित्रनायकको विहार करानेके लिए ठहरे हुए थे, पालनपुरमें यह उत्साह और यह लाभ देख, वंदना कर चले गये।

चौमासा जब पालनपुरहीमें स्थिर हो गया तब आपने मुनि श्रीललितविजयजी महाराजको, विज्ञानविजयजी, विबुधविजयजी, तिलकविजयजी, विद्याविजयजी और विचारविज-

1 कठिन प्रश्न, गाँठ; 2-हल होना, खुलना;

यजीका मॉडलिया योगोद्वहन करानेके लिए, पाँचोंके साथ महेसाने पंन्यासजी श्रीसिद्धिविजयजी महाराजके पास भेजा। पाँचों मुनिराजोंकी वड़ी दीक्षा कराकर मुनि श्रीललित-विजयजी वापिस आपकी सेवामें आ गये। आपके वड़े शिष्य मुनि श्रीविवेकविजयजी महाराज भी अपने शिष्य उमंग-विजयजी सहित आपकी सेवामें पालनपुर आ गये। सारे शह-रमें आनंद ही आनंद छा रहा था।

इस आनंदमें अभिवृद्धि करनेवाली एक वात और हुई। कलकत्तेसे वावू भँवरसिंहजी, दिल्लीनिवासी लाला दलेलसिंह-जीके साथ दीक्षा लेनेकी गरजसे आपके पास आये। आपने उसी समय उनकी माताके पास मुर्शिदावाद तार दिया कि, भँवरसिंह यहाँ दीक्षा लेनेके लिए आया हुआ है। आपका-आपका ही नहीं स्वर्गीय महाराज श्री आत्मारामजी महाराजके संघाड़ेके प्रायः सभी साधुओंका-यह दस्तूर है कि, जव कोई सज्जन आपके पास दीक्षा लेने आते हैं आप तत्काल ही उनके वारिसोंको सूचना दे देते हैं। जव उनके वारिस आते हैं तव दीक्षा लेनेके अभिलाषीको उनके सिपुर्द कर देते हैं और उनसे कह देते हैं कि, इनको सम-झाओ और पूछताछ कर लो। हम तुम्हारी आज्ञाके विना दीक्षा नहीं देंगे। जव उनके कुटुंवसे दीक्षा देनेकी इजाजत मिलती है तभी आप दीक्षा देते हैं। इससे दो लाभ होते हैं। एक तो दीक्षा लेनेवालेकी जाँच हो जाती है कि, वास्तवमें यह वैरागी

है या नहीं दूसरे किसीको यह कहनेका मौका नहीं मिलता कि, महाराज झटसे हरेकको मूँड डालते हैं। अस्तु।

भँवरसिंहजीके भाई और उनकी माता पालनपुर आये। उन्होंने भँवरसिंहजीको बहुत समझाया मगर उनका मन तो दृढ था। वे एकके दो न हुए। आखिर हार कर उनके बड़े भाई तो चले गये। उनकी माताने हर्षविषादपूर्ण हृदयके साथ उन्हें आज्ञा दी। हर्ष इसलिए था कि, आज उनका लाल संसारका त्याग कर स्वपर कल्याणमें लीन होता है। विषाद इसलिए था कि आज उनका लाल उन्हें छोड़ रहा है। भँवरलालजीकी माता और उनके दो छोटे भाई दीक्षा होने तक पालनपुरहीमें रहे।

दीक्षा-महोत्सव बड़े ठाटसे हुआ। सं० १९६६ के आषाढ़ सुदिमें दीक्षा हुई। नाम विचक्षणविजयजी रक्खा गया। हमारे चरित्रनायकके शिष्य हुए।

दीक्षाके समय पालनपुरके नवाब साहब भी आये थे। उन्होंने भँवरलालजीकी मातासे कहाः—"तुम्हारा लड़का फकीर होता है। तुम्हें इसका कुछ दुःख नहीं है।"

उनकी माताने जवाब दियाः—"इसमें दुःख काहेका है? मुझे इस बातकी खुशी है कि मेरा बेटा आज प्रभुके चरणोंमें लीन हुआ है और उसने इस असार संसारको छोड़ दिया है।"

नवाब साहबको खुशी हुई। उन्होंने भी उल्लासके साथ

श्रावकोंके साथ, नव दीक्षित पर वासक्षेप मिश्रित चावल डाले।

आप नित्य व्याख्यान बाँचते थे और उसमें हमेशा इस बात पर जोर दिया करते थे कि—

'पहले ज्ञान और पीछे किरिया, नहिं कोई ज्ञानसमान रे।'

समाजमें ज्ञानका कितना अभाव हो रहा है? ज्ञानके विना आज प्राचीन जैनधर्मकी कैसी हालत हो रही है? करोड़ों मनुष्य जिस धर्मके अनुयायी थे उसी धर्मके आज सिर्फ लाखों अनुयायी ही रह गये हैं। इसका मुख्य कारण है ज्ञानका अभाव। ज्ञानके विना ही धर्मकी बाढ रुक गई है; उदार जैनधर्मके अनुयायी आज संकीर्ण हृदयवाले हो गये हैं। उनकी दूसरोंको अपने धर्ममें मिलानेकी शक्ति नष्ट हो गई है। आदि।

संघ पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा और एक दिन उसने 'आत्मवल्लभ केलवणी फंड' स्थापित किया। पचीस हजार रुपये उसी दिन वहाँ जमा हो गये। आज वह फंड धीरे धीरे बढ़ कर करीब नव्वे हजार का हो गया है। अनेक विद्यार्थी आज इससे लाभ उठा रहे हैं।

पालनपुरमें कई रिवाज भी सुधरे। वहाँ जब कोई अठाइ (आठ दिनके व्रत) करता था तब उसको बिरादरीका एक भारी टेक्स भरना पड़ता था; अर्थात् उसे जाति भोज देना पड़ता था। जातिभोजके खर्चेके डरसे अनेक साधारण स्थितिवाले अठाई जैसे महान तपके करनेसे वंचित रहते थे। आपने उपदेश देकर यह जातिभो-

जका टेक्स बंद करवाया। धनवान लोगोंके लिए यह नियम हो गया कि, वे चाहें तो सधर्मीवात्सल्य करें। इस टेक्सके हट जाने पर उस चौमासेमें पालनपुरमें अनेक अठाइयाँ हुईं।

चौमासा समाप्त होनेमें कुछ ही दिन बाकी थे तब दानवीर, ब्रह्मचर्यव्रतके धारी सेट मोतीलाल मूलजी आपके दर्शन करनेके लिए, राधनरपुसे आये। उनका विचार श्रीसिद्धाचलजीका संघ निकालनेका था। उसमें शामिल होनेके लिए उन्होंने आपसे प्रार्थना की। आपके साथ सेठ मोतीलालजीका भाईकासा संबंध था। राधनपुरमें जब आप दीक्षा लेनेसे पहले और पीछेसे भी गुरु महाराज श्रीहर्षविजयजीके पास अध्ययन करते थे तब सेठ मोतीलालजी भी उन्हीं सद्गुरुके चरणकमलमें बैठकर आपके साथ ही अध्ययन करते थे। दोनोंका, एक गुरुके शिष्य होनेसे, इतना अधिक स्नेह था कि, यथासाध्य दोनों साथ ही रहते और अध्ययनके समय एक यदि गुरु महाराजके दाहिनी तरफ बैठते थे तो दूसरे बाँई तरफ। इस लिए यदि आपकी इच्छा न होती तो भी संघमें जाना स्वीकारना पड़ता; परन्तु यहाँ तो साथके साधुओंकी इच्छानुसार आप पहलेहीसे दादाकी यात्रा करनेके लिए इच्छुक थे, इस लिए संघके साथ चलनेकी सेठ मोतीलालजीकी विनतीको तत्काल ही स्वीकार कर लिया। सेठ प्रसन्न होते हुए चले गये।

इस चौमासेमें आपके साथ (१) तपस्वीजी महाराज

श्रीविवेकविजयजी (२) मुनि श्रीललितविजयजी (३) मुनि श्रीलावण्यविजयजी (४) मुनि श्रीसोहनविजयजी (५) मुनि श्रीविमलविजयजी (६) मुनि श्रीउमंगविजयजी (७) मुनि श्रीविज्ञानविजयजी (८) मुनि श्रीविबुधविजयजी (९) मुनि श्रीतिलकविजयजी (१०) मुनि श्रीविद्याविजयजी (११) मुनि श्रीविचारविजयजी और (१२) मुनि श्रीविचक्षण विजयजी ऐसे बारह साधु थे।

चौमासा समाप्त होने पर वड़ोदानिवासी श्रावक नाथालालपटेलको दीक्षा दी गई। यह शाह खीमचंद दीपचंदके साथ आया था। सं० १९६६ के मगसर (गुजराती कार्त्तिक) वदि दूजके दिन दीक्षा हुई। नाम मित्रविजयजी और महाराज श्रीसोहनविजयजीके शिष्य हुए।

आपने १३ साधुओंके साथ पालनपुरसे विहार किया। ग्रामानुग्राम लोगोंको उपदेशामृत पान कराते हुए आप मेत्राणा श्रीऋषभदेवजी तीर्थ पधारे। वहाँ तीर्थवंदना की। ऊँझासे विहार करके मुनि श्रीमोतीविजयजी महाराज भी संघ सहित वहाँ पधार गये।

ऊँझाका संघ आपके दर्शन और तीर्थयात्रा कर पुनः ऊँझा चला गया। आप विहार करके पंद्रह साधुओं सहित पाटन पहुँचे। बड़ी धूमसे आपका स्वागत हुआ। सारे शहरमें जुलूस घूमा। आप थोड़े दिन तक वहाँ रहे और धर्मोपदेशरूपी अमृत पिलाकर वहाँकी जनताको कृत कृत्य किया।

वहाँके लोगोंका बहुत आग्रह होने पर भी आप विशेष समयतक वहाँ न रह सके। क्योंकि आपने सेठ मोतीलाल मूलजीको उनके संघमें शामिल होनेका वचन दे दिया था। और संघके रवाना होनेका मुहूर्त निकट था।

पाटनसे विहार करके आप राधनपुर पहुँचे। राधनपुरमें उस समय जो उत्साह और आनंद था वह वर्णनातीत है। राधनपुरको इस बातका अभिमान था कि, जिस महान आत्माको उसने हजारों खर्च करके दीक्षित कराया था वह आज जैनसंघके आकाशमें सूर्यकी तरह प्रकाशित हो रहा है; जिस महान आत्मासे उसने आशा की थी कि, वह जैन धर्मकी जयपताका फर्रायगा, उस आत्माने उसकी वह अभिलाषा पूरी की है। जिस महान आत्माको उसने यौवनके उषः कालमें; वासनाओंसे परिपूर्ण प्रभातमें, संयमके समान अमूल्य रत्न देकर उसकी रक्षा करनेके लिए, सहस्रावधि प्रलोभन रूपी लुटेरोंके बीचमें छोड़ दिया था; वही महान् आत्मा विजयी वीरकी भाँति बाईस बरसके बाद संयमरत्नको सुरक्षित लेकर वापिस आया। ऐसे मौके पर राधनपुरवालोंका उत्साहित एवं आनंदित होना स्वाभाविक था। घर घर बाँदनवार बँधे। सारे संघमें आनंद ही आनंद छा रहा।

सं० १९६६ के मिगसर सुदी द्वितियाके दिन संघ जुलूसके साथ रवाना हुआ। और श्रीसंखेश्वर पार्श्वनाथ पहुँचा। तीन दिन तक वहीं रहा। पूजा प्रभावनाएँ हुईं। यहाँ

स्वर्गवासी शांतमूर्त्ति तपस्वीजी महाराज श्री १०८ श्रीथोभण-विजयजी महाराजके शिष्य श्री १०८ श्रीगुणविजयजी आ मिले।

संखेश्वर पार्श्वनाथसे रवाना होकर संघ दसाडा होता हुआ माँडल पहुँचा। माँडलमें संघके आनेसे और उसमें आपके समान उपदेशामृतकी वर्षा करनेवाले महात्माके विराजनेसे संघका हृदय उल्लास समुद्रमें झकोरे खाने लगा। उसने यथोचित संघका आदर–आतिथ्य किया और संघपति सेठ मोतीलाल मूलजीको एक मानपत्र दिया। जबतक संघ रहा आप वहाँ हमेशा व्याख्यान देते रहे और व्याख्यानमें हजारों जैन अजैन आते रहे। यहाँ आपके साथमें पंन्यासजी महाराज श्रीसुंदरविजयजीके शिष्य श्रीजिन विजयजी आ मिले। इस तरह आपके साथ सहस्र भेदी संयमके समान १७ संयमी–साधुसंमिलित हुए। संघ माँडलसे रवाना होकर ऊपरियाला तीर्थ, पाटडी, लखतर, वढवाण और लीमड़ी होता हुआ चूडाराणपुर पहुँचा। वहाँ पंजाबका संघ भी पहुँच गया। पंजाबका संघ श्रीआबू, भोयणी आदि तीर्थोंकी यात्रा करता हुआ खास कर हमारे चरित्रनायकके दर्शनार्थ चूडाराणपुरमें पहुँचा था और सिद्धाचलजी तक राधनपुरके संघके साथ ही रहा।

लींवड़ी दर्वारको जब संघके आनेके समाचार मिले तब उन्होंने कहला भेजा कि मुझे दर्शन दिये विना संघ रवाना न हो। मैं सवेरे ही संघका और संघके साथ आये हुए मुनि

महाराजोंके दर्शनका लाभ उठाऊँगा। यदि संघमें पधारे हुए पंजाबके मुनि महाराजका–जिन्हें खास आमंत्रण देकर संघपति लाये हैं–व्याख्यान होगा तो मैं उसका लाभ भी लेना चाहता हूँ। इस लिए सूचना दीजिए कि, व्याख्यान सवेरे कितने बजे होगा और कहाँ होगा ?

यद्यपि संघ वहाँ एक ही दिन ठहरना चाहता था तथापि दर्बारके आग्रहसे उसे एक दिन अधिक ठहरना पड़ा। दर्बारको सादर संघपतिने कहलाया कि,–आपकी इच्छाको मान देकर संघने कल और ठहरनेका निश्चय किया है। संघ और मुनि महाराज पूरवाईकी धर्मशालामें ठहरे हुए हैं और वहीं गुरु दयाल सवेरे आठ बजे व्याख्यान भी करेंगे।

ठीक व्याख्यान प्रारंभ होनेके समय ही दर्बार सपरिवार आ गये थे। डेढ़ घंटे तक हमारे चरित्रनायकने देवादि तत्त्वके स्वरूपका निष्पक्ष वर्णन किया। उसे सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए और उत्साह पूर्वक हाथ जोड़कर बोले:–" आपका व्याख्यान सुनकर मुझे बड़ा ही आनंद हुआ। मैंने सुना था कि आप स्वर्गवासी आत्मारामजी महाराजके सहवासमें रहकर उत्तीर्ण हुए हैं। आज मैंने जैसा आपको सुना था वैसा ही बल्के उससे भी बढ़कर आपको देखा। आपके वचनामृतका पान करनेकी मेरी अधिक इच्छा थी; परन्तु आप इस समय संघके साथमें हैं इस लिए कुछ विशेष अर्ज नहीं कर सकता; मगर जब आप वापिस पधारें तब आठ दस दिनतक यहाँ विराजकर अवश्यमेव हमें लाभ पहुँचावें। "

आपने फर्माया:—" अगर इधरसे आना हुआ तो अवश्य-मेव आपकी इच्छा पूरी की जायगी।"

दर्बार फिर वंदना कर रवाना हुए। संघपति सेठ मोती-लालजीने दर्बारकी खातिरके लिए दूसरी जगह प्रबंध किया था। वहाँ उनका योग्य सत्कार किया गया।

वहाँसे रवाना होकर संघ बोटाद पहुँचा। जिस दिन आपने बोटादमें प्रवेश किया वह दिन बोटादके लिए चिरस्मरणीय रहेगा। कारण,—बोटादके श्रीसंघको कहींसे एक प्राचीन जिनबिंब प्राप्त हुआ था। श्रीसंघ धूमधामके साथ जिनबिंबको शहरमें लाकर गद्दीपर बिठाना चाहता था; परन्तु स्थानकवा-सियोंके साथ अमुक प्रकारके प्रतिबंध होनेसे उनके मनमें आशंका थी। श्रीसंघके मुखियोंने आपसे आकर प्रार्थना की। आपने उनको हिम्मत बँधाई और कहा,—" तुम कुछ चिन्ता न करो। शासनदेव अपनी सहायता करेंगे। संघके सामैयेके साथ ही अपनी मर्यादानुसार कार्य करो।"

बोटादके श्रीसंघका हौसला बढ़ गया। उसने समारोहके साथ प्रभुका, पालखीमें विराजमानकर, प्रवेश कराया और फिर मंदिरजीमें प्रभुको विराजमान कर दिया। वहाँके लोग कहते हैं कि, जिस समय हम प्रभुके दर्शनार्थ जाते हैं उसी समय हमें महाराज साहब वल्लभविजयजी याद आ जाते हैं।

बोटादसे रवाना होकर संघ लाठीधर पहुँचा। वहाँ पंजाबके संघने राधनपुरके संघको प्रीति भोजन दिया।

लाठीधरसे रवाना होकर पछेगाम, वला आदि गाँवोंमे होता हुआ संघ सं० १९६६ के पोससुदी १० के दिन पालीताने पहुँचा। पालीतानेके श्रीसंघने बड़े समारोहके साथ संघका स्वागत किया। दूसरे दिन शुक्रवार एकादशीके सिद्धियोगमें संघने आनंदपूर्वक दादाकी यात्रा की। उस समय आपने भक्तिभरे हृदयके साथ दादाके गुणगान किये थे। वह स्तुति यहाँ दी जाती है।

(चाल—वारी जाऊँरे साँवरिया।)

दादा आदीश्वर प्रभुजी, मोहे तारनारे, पार उतारनारे ॥
शत्रुंजय मंडन जगस्वामी, अघखंडन पद आतमरामी।
अर्ज करी माँगूँ शिवगामी, आवागमन निवारनारे ॥ दा० ॥ १ ॥
जगतारक अघहारक नामी, टारक मदनके अन्तर्यामी।
पूर्णानंद सुधाके धामी, तारक विरुद सँभारनारे ॥ दा० ॥ २ ॥
अपने जन सब तुमने तारे, सेवक तुमरा अर्जगुजारे।
तारक सेवक विरुद पुकारे, गुण अवगुण न विचारनारे ॥ दा० ॥ ३ ॥
श्रीसिद्धाचल सिद्ध अनंता, कर्म खपा सब हुए भगवंता।
जयजय ऐसे संतमहंता, बलिहारी जाऊँ वारनारे ॥ दा० ॥ ४ ॥
सेवक करुणा कीजे दाता, दीजे प्रभुजी शिवसुख साता।
तुम बिन और कोई नहीं त्राता, तारो करो मुझ सारनारे ॥ दा० ॥ ५ ॥
सूरि जिनवर वीरके (२४३६) साले, ओगणी छासठ विक्रम काले।
आतम पूर्व पोष उजियाले, रुद्र तिथि कवि वारनारे ॥ दा० ॥ ६ ॥
पुण्य उदय प्रभु दर्शन पायो, वल्लभ आतम अति हर्षायो।
रावनपुरसे संघमें आयो, सेठजी मोतीलालनारे ॥ दा० ॥ ७ ॥

संघमें सब मिलाकर सोलह सौ मनुष्य थे। राधनपुरसे पालीताने पहुँचनेमें संघको एक महीना और कुछ दिन लगे थे। संघपति दानवीर मोतीलाल मूलजीने उस मौके पर आपके समक्ष तीर्थमाला स्वीकार की थी। पालीतानेसे संघ लौट गया और आप एक महीनेतक वहीं रहे। ऊँझासे मुनि श्रीमोतीविजयजी महाराजके साथ एक सज्जन दीक्षालेनेके लिए आये थे, उन्हें उनके पिताजीके समक्ष श्रीसिद्धाचलजीकी तलहटीमें आपने सं० १९६६ के माघ सुदी ५ के दिन दीक्षा दी।

मासकल्प समाप्त होने पर आप विहार करके भावनगर पधारे। वहाँ मुनि श्रीमित्रविजयजी और मुनि श्रीउदयविजयजीकी, वड़ी दीक्षा श्रीबालब्रह्मचारी पंन्यासजी श्रीकमलविजयजी महाराजके हाथसे हुई। एक महीने तक आपने वहाँके लोगोंको सुधापान कराया। अठाई महोत्सव आदि अनेक धार्मिक कार्य हुए।

भावनगरसे आप घोघा बंदर पधारे। वहाँ श्रीनवखंडा पार्श्वनाथकी यात्रा की।

वहाँसे विहार करके वरतेज होते हुए आप सिहोर पधारे। समारोहके साथ आपका नगरप्रवेश हुआ। वहाँके लोगोंने उपदेशामृतका पान कर तृप्ति लाभ की। मुनि श्रीमूलचंदजी महाराजके बड़े शिष्य १०८ श्रीगुलाबविजयजी उस समय वहीं विराजमान थे। उनके दर्शन कर आप बहुत प्रसन्न हुए। तीन दिन तक आपने वहाँ निवास किया।

सीहोरसे विहार करके आप वले पधारे । वहाँ तप गच्छ और लौंका गच्छवालोंमें कुछ तनाजा था । उसको मिटानेके लिए आप थोड़े दिनतक वहीं ठहर गये । धोलेराके श्रावकोंने आकर धोलेराको पवित्र करनेके लिए आपसे वड़े आग्रहके साथ विनती की । वलाका झगड़ा मिटाना भी जरूरी था । इस लिए आप दो तीन साधुओंके साथ वहीं रहे और अन्य साधुओंको धोलेराकी तरफ विहार करा दिया । वड़े परिश्रमके वाद आप वलाका तनाजा मिटा सके।

वलासे विहार करके आप धोलेरा पहुँचे । धोलेराके संघमें एक अपूर्व उत्साह था । न केवल श्रावक ही वल्के अन्यान्य धर्मावलंवी भी आपके वचनामृतका पान करनेके लिए वड़े व्याकुल हो रहे थे । आपके स्वागतके उपलक्षमें सारा शहर सजाया गया था । करीव ग्यारह दर्वाजे तैयार किये गये । मुसलमान और हिन्दु भाइयोंने भी इसमें सहायता दी थी । वाजारका श्रृंगार अपनी शोभा निराली ही रखता था । शहरके वाहरसे ही जूलूस शुरू हुआ था । वेंड वाजोंकी मधुर झन्कार और भजन मंडलियोंकी सुरीली तानोंसे सारा शहर मुखरित हो रहा था । वीचवीचमें ' आत्मारामजी महाराजकी जय' 'वल्लभविजयजी महाराजकी जयके नादसे सारा शहर गूँज उठता था । श्राविकाओंकी भक्तिरस परिपूर्ण गहुलियाँ अपनी जुदा ही फवन रखती थीं । जव जुलूस उपाश्रयमें पहुँचा और आपने पाट पर विराजकर उपदेश

दिया तब सब वाह वाह करने लगे । सार्वभौम जैनधर्मका उपदेश सुनकर सभी कहने लगे, हमने अपनी उम्रमें ऐसा उपदेश आज पहले ही सुना है और इस शहरने सबसे पहले आपहीका ऐसा स्वागत किया है । अठाई महोत्सव पूजा प्रभावनादि अनेक धर्मकार्य हुए । जब तक आप वहाँ रहे हमेशा उपदेशामृतकी वर्षा करते रहे । अनेक अजैन और जैन उस अमृतको पीकर तृप्त होते रहे ।

धोलेरासे विहार करके आप खंभात पहुँचे । सेठ पोपट भाई अमरचंद आदि खंभातके श्रीसंघने आपका आशातीत स्वागत किया । आपने भी आठ दिन वहाँ रह, उनके आत्माको उपदेशामृत पिलाकर तृप्त किया । पोपटभाईने पाली तानेमें आपको टोपी पहने स्वर्गीय आचार्य महाराजके साथ सं० १९४३ में जब उनका चौमासा पालीतानेमें था, देखा था । तेईस वरसमें परिवर्तित अपूर्व रूप देखकर पोपटभाईकी आँखोंसे हर्षाश्रु बहने लगे । इक्कीस वरस पहले जो एक साधारण भाविक आत्मा था वही आज एक महापुरुष है, यह देख कर उन्हें आल्हाद हुआ । इस विचारने उन्हें परम संतुष्ट किया कि आत्माओंको ऐसे महान जैन धर्म ही बना सकता है । उन्होंने संघको इकट्ठाकर आपसे वहीं चौमासा करनेकी विनती की; परन्तु क्षेत्रस्पर्शना वहाँ की न थी, इस लिए आप वहाँ चौमासा न कर सके । कारण, खीमचंद भाई और वड़ोदेके दूसरे श्रावक आपसे वड़ोदेमें चौमासा करनेकी

विनती करने आये थे; अमृतसरसे ही वड़ोदेका संघ आपसे विनती कर रहा था इस लिए आपने उनकी विनतीको स्वीकार कर लिया।

खंभातसे विहार करके आप नार, पेटलाद, वोरसद, छानी, होते हुए और लोगोंको उपदेशामृत पिलाते हुए सं. १९६७ का चौवीसवाँ चौमासा करनेके लिए वड़ोदे पधारे। वड़ोदावालोंके दिलोंमें वड़ा उत्साह था, वड़ा अभिमान था कि आज उन्हींके शहरका एक वच्चा, वह वच्चा जिसने वड़ोदेके अंदर सूर्यके प्रथम दर्शन किये थे, जिसका शरीर वड़ोदेके अन्नजलसे परिपुष्ट हुआ था और जिसको वड़ोदेने पाल पोसकर वड़ा किया था, वही वड़ोदेका वच्चा आज महात्मा होकर, समस्त पंजाव, राजपूताना तथा काठियावाड़में अपने नामका डंका वजाता, अपने गुरुकी जयध्वनिसे आकाशमंडलको गुँजवाता, जैनधर्मकी ध्वजापताका फर्राता और अपने मातापिताको धन्य धन्य कहलाता हुआ, वापिस वड़ोदेमें आया है। खीमचंद भाईके आनंदकी तो सीमा ही नहीं थी। सं० १९६७ के वैशाख सुदी १० गुरुवारके दिन वड़े समारोहके साथ आपका प्रवेश महोत्सव हुआ। कालकी वलिहारी है। एक दिन वह था कि, आप इसी वड़ोदेसे छिपकर भागते थे, एक दिन ऐसा आया कि, वड़े उत्साहके साथ वड़ोदेने आपको सिर आँखोंपर उठा लिया। इसको देवगुरुकी कृपा कहिए, भाग्योदय कहिए या

और किसी नामसे पुकारिए। भक्त प्रवर तुलसीदासजीने ठीक ही कहा है—

मूकं करोति वाचालं, पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।

यत्कृपा तमहं वंदे, परमानंदमाधवम्[1] ॥

उस साल आपके साथ निम्न लिखित उन्नीस साधु थे १ मुनि श्रीमोतीविजयजी, २ मुनि श्रीगुणविजयजी, ३ मुनि श्री विवेकविजयजी, ४ मुनि श्रीरूपविजयजी, ५ मुनि श्रीउत्तमविजयजी, ६ मुनि श्रीललितविजयजी, ७ मुनि श्रीलावण्यविजयजी, ८ मुनि श्रीसोहनविजयजी, ९ मुनि श्रीविमलविजयजी, १० मुनि श्रीउमंगविजयजी, ११ मुनि श्रीजिनविजयजी, १२ मुनि श्रीविज्ञानविजयजी, १३ मुनि श्रीविबुधविजयजी, १४ मुनि श्रीतिलकविजयजी, १५ मुनि श्रीविद्याविजयजी, १६ मुनि श्रीविचारविजयजी १७ मुनि श्रीविचक्षणविजयजी, १८ मुनि श्रीमित्रविजयजी, १९ मुनि श्रीउदयविजयजी।

इनमेंसे मुनि श्रीमोतीविजयजी आपके गुरुभ्राता थे, मुनि श्रीउत्तमविजयजी मुनि श्रीमोतीविजयजीके शिष्य; श्री उदयविजयजी श्रीउत्तमविजयजीके शिष्य; श्रीगुणविजयजी स्वर्गीय श्रीथोभणविजयजी महाराजके शिष्य; मुनि श्रीरूपविजयजी उपाध्यायजी महाराज श्रीवीरविजयजीके शिष्य; मुनि

१–जिसकी कृपासे गूँगा वाचाल हो जाता है और पाँगला गिरिको–पर्वतको लाँघ जाता है मैं उस परमानंद स्वरूप परमात्माको नमस्कार करता हूँ।

श्रीलावण्यविजयजी आचार्य महाराज १०८ श्रीविजयकमलसूरि जीके शिष्य और मुनि श्रीजिनविजयजी पंन्यासजी महाराज श्रीसुंदरविजयजीके शिष्य थे; बाकी आपहीका, शिष्य प्रशिप्यादि, परिवार था। बड़े योगमें प्रवेश कराया। पालनपुरकी तरह बड़ोदेमें भी अठाई करनेवाले पर जातिभोजका टेक्स था। वह आपके उपदेशसे बंद हो गया। पर्युषणपर्वमें श्रीमहावीर स्वामीके जन्म-महिमावाले दिन, कोठीपोलकी रहनेवाली श्रीमती प्रधानबाईकी तरफसे हर साल नोकारसी होती थी। उसमें सबजी काममें लाई जाती थी। आपके उपदेशसे उसका इस्तेमाल—उपयोग बंद हुआ। आपके व्याख्यानोंकी तो बड़ी धूम थी। जिन्होंने आपकी बचपनमें कर्णमधुर तोतली बोली सुनकर जितनी प्रसन्नता लाभ की थी, वे ही अब आपकी कर्णमधुर, हृदयमें धर्मज्योति जगानेवाली, ज्ञानगंभीर वाणी सुनकर दंग रह जाते थे और उससे सौगुनी प्रसन्नता एवं तृप्ति लाभ करते थे। चौमासा बड़े आनंदसे समाप्त हुआ।

इस चौमासेमें खीमचंद भाईने सोचा,—यदि छगन दीक्षित न हुआ होता और विवाह-शादीका प्रसंग आता तो मुझे उस समय उचित खर्च करना ही पड़ता, तब इस समय भी मैं, छगनके, नहीं मेरे कुलदीपकके,—वल्लभविजयजी महाराजके यहाँ विराजते हुए, इनके दर्शनार्थ जो भाई बहिन आवें उनकी यथाशक्ति सेवाभक्ति करके सधर्मीवात्सल्यका लाभ क्यों न उठाऊँ? संघके सामने उन्होंने अपनी इच्छा

प्रकट की। संघने एकहीके सिरपर बोझा डालना अनुचित समझा; क्योंकि ऐसा करनेसे प्रचलित मर्यादामें बाधा पड़ती थी और यह बाधा भविष्यमें कठिनता उपस्थित कर सकती थी। संघने उनकी विनती अस्वीकार की। इससे उनको दुःख हुआ।

उन्होंने कुछ देरके बाद श्रीसंघसे विनती की,—" यदि संघ इस प्रार्थनाको स्वीकार नहीं कर सकता है तो इतनी कृपा तो अवश्य करे कि, पंजाबसे जो भाई बहिन दर्शनार्थ आवें उनकी सेवाभक्तिका कार्य तो मुझे सौंप दे। "

श्रीसंघने यह बात सानंद स्वीकार कर ली। खीमचंद भाईने बड़े उत्साह और आनंदके साथ, पंजाबी भाई बहिनों की, तन, मन और धनसे सेवा की। आप पंजाबके प्यारे हैं, पंजाबसे आये आपको दो बरस बीत चुके थे, तीर्थयात्राका भी कार्य गुरुदर्शनके साथ ही हो सकता था और गुरुका गृहस्थ घर देखनेकी इच्छासे भी इस साल पंजाबी अधिक संख्यामें आये थे। उनके लिए बड़ोदा और आपका (खीमचंद भाईका) घर तीर्थरूप हो गया था। खीमचंद भाईने ऐसी भक्ति की कि पंजाब आज भी उसे स्मरण करता है और अनुकरणीय समझता है।

चौमासा समाप्त होने पर शाह खीमचंद दीपचंद और शाह चुन्नीलाल त्रिभुवनदास-मामा भानेज दोनोंने मिलकर कावी व गंधारका संघ निकाला। पादरा, मासर होता हुआ संघ

कावी तीर्थ पर पहुँचा। यात्रा कर आपने संघके साथ परमानंद प्राप्त किया। यहाँ पर आपने इकीस प्रकारकी पूजा रची। यहाँ सासू वहूके दो मंदिर हैं। वे बड़े ही सुंदर और आकर्षक हैं। तीन दिन वहाँ ठहरकर संघ रवाना हुआ और गंधार पहुचा।

'दिननके फेरतें सुमेरु होत माटीको'

कविका यह कथन अक्षरशः गंधारके लिए चरितार्थ होता है। तीन सौ वरस पहले जिस गंधारमें लाखोंकी वस्ती थी उसीमें आज पचीस पचासकी वस्ती है। जिसमें हजारों मनोहर महल अटारियाँ थे उसीमें अब २०,२५ झौंपड़े रह गये हैं। जो स्थान सायंसंध्या मंदिरोंके घंट-नादसे मुखरित हो उठता था वहीं आज एक मंदिरका घंटा भी कठिनतासे वजता है। जिस गंधारको श्रीहीरविजय सूरिके समान प्रभावक पुरुषोंने कभी पावन किया था और उसमें दिव्य उपदेश दिया था एवं जिस उपदेशकी प्रतिध्वनि अकबरके समान महान सम्राट्के कानोंतक पहुँची थी वहीं आज मुनिराजोंके ठहरनेतकका ठोर ठिकाना नहीं है। आज गंधारका ध्वंसावशेषमात्र रह गया है; एक जिनालयमात्र वहाँ सिर ऊँचा किए गंधारकी प्राचीन स्मृतिको लेकर खड़ा है।

गंधारकी यात्रा करके संघ भरूच पहुँचा। भरूचवालोंने आपका वड़ा स्वागत किया। संघ यहाँसे वड़ोदे चला गया। आपने यहाँ पंन्यासजी श्रीसिद्धिविजयजी महाराजके दर्शनकर तृप्ति लाभ की। तीन रोजतक आप उन्हींकी सेवामें रहे।

भरूचसे विहार करके आप झगड़िया तीर्थपर पधारे। आपके साथ पंन्यासजी श्रीसिद्धिविजयजीके शिष्य मुनि श्रीमेघविजयजी भी झगड़ियाजी तक आये थे। यात्रा करके आपने सूरतकी तरफ़ विहार किया और वे वापिस भरूच चले गये।

बड़े समारोहके साथ आपका सूरतमें नगर प्रवेश हुआ। करीब दो घंटे आप छापरियासेरीमें विराजे। उसी समय प्रवर्तकजी १०८ श्रीकान्तिविजयजी महाराज और मुनि श्री १०८ श्री हंसविजयजी महाराज एवं पंन्यासजी श्री १०८ श्रीसंपत्तिविजयजी महाराज सपरिवार वहाँ पधारे। आपने तीनों महात्माओंके चरणकमलमें सादर वंदना करके अपने आपको धन्य माना।

हमारे चरित्रनायक, कान्तिविजयजी महाराज और हंसविजयजी महाराज तीनों ही प्रभावक पुरुष हैं और तीनोंको ही अपनी गोदमें खिलानेका मान बड़ोदेको है। तीनों एक साथमें जब जुलूसके साथ रवाना हुए हैं उस समयका आनंद अद्वितीय था। लोगोंमें भी अभूतपूर्व उत्साह था। जुलूस जब गोपीपुरेमें पहुँचा तब उस समयमें पंन्यास और वर्तमानमें आचार्य श्री १०८ श्रीआनंदसागरजी महाराज एवं अन्यान्य साधु महात्मा भी—जो उस समय उस उपाश्रयमें विराजमान थे—शामिल हो गये। इस जुलूसमें करीब ४० साधु महाराज और करीब इतनी ही साध्वियाँजी महाराज थीं।



आचार्य श्रीमद्विजयवल्लभ सूरिजी महाराज.
मुनि श्री लावण्यविजयजी आदि साधुमंडलसहित (मियागाममें) पृ. २२७.
मनोरंजन प्रेस, बम्बई नं. ४

जिस जुलूसमें करीब अस्सी साधु साध्वियाँ हों उसमें श्रावक श्राविकाएँ कितने होंगे इसका अनुमान सहजहीमें किया जा सकता है। आप बड़े चोटेके उपाश्रयमें ठहरे। धर्मोपदेश दिया। वहाँ कुछ दिन रहनेके बाद गोपीपुराके श्रावकोंकी विनतीसे आप मोहनलालजी महाराजके नामसे मशहूर गोपीपुराके उपाश्रयमें जाकर ठहरे। वहीं आपने पालीनिवासी–जो थोड़े बरसोंसे बड़ोदेहीमें आ रहे थे–सुखराजजीको सं० १९६७ के फागन वदि छठके दिन दीक्षा दी। नाम समुद्रविजयजी रक्खा। श्रीसोहनविजयजीके शिष्य हुए।

सूरतसे, पालीताने चौमासा करनेके इरादेसे, आपने विहार किया। भावी प्रबल! आपको बीचहीमें रुकना पड़ा। मियागाँवमें आपका सं० १९६८ का पचीसवाँ चौमासा हुआ।

मियागाँववालोंके और कठोरवालोंके आपसमें कुछ तनाजा था। उसको मिटानेके लिए आपने उपदेश दिया। मियागामवालोंने आपको न्यायाधीश नियतकर आपके फ़ैसलेको स्वीकार करनेका सं० १९६८ के कार्तिक शुक्ला १३ के दिन एक प्रतिज्ञापत्र लिख दिया। तदनुसार आपने जो फ़ैसला दिया वह यहाँ दिया जाता है—

वंदे वीरम्।

(१) श्रीमहावीर स्वामी तथा श्रीगुरु महाराज श्रीमद्विजयानंदसूरि आत्मारामजी महाराजको नमस्कार करके प्रकट करता हूँ कि, आज चौमासी चौदस है। इस लिए किसी भी

तरहका वैर-विरोध यदि शान्त हो जाय तो चौंमासी प्रतिक्रमण सफल हुआ माना जाय।

(२) प्रति वर्ष पर्युषणके दिनोंमें वाँचा जाता है कि, उदायन राजाने, अपने अपराधीको राज्य देकरके भी जब चंडप्रद्योतने क्षमापना स्वीकार करी तभी उन्होंने अपना सांवत्सरिक प्रतिक्रमण सफल माना।

(३) इस झगडे़में तो ऐसी कोई बात नहीं है कि जिससे किसीको कुछ देना पडे़। केवल मानरूपी तलवारको म्यानमें रखनेहीका काम है। और वह दोनों पक्षोंके योग्य है। कारण यह झगड़ा दोनों तरफकी खींचतानके कारण ही जातिमें एक गड़बड़ी रूप हो गया है। आशा है कि उदायनराजाका दृष्टान्त ध्यानमें रख, दोनों पक्ष अपने मनको शान्त कर श्रीजिनेश्वर देवकी आज्ञाके आराधक बनेंगे।

(४) मैं साधु कहलाता हूँ। जातिके झगडे़में हाथ डालना या उसमें किसी तरहका दखल देना साधुताको शोभा नहीं देता। मगर दीर्घ दृष्टिसे विचार करने पर अन्तमें, धर्मसंबंधी कार्योंमें बाधा पड़नेकी संभावना देख, पारस्परिक वैर-विरोध कम हो इस हेतुसे और पंचोंकी तरफ़के नेता दस आदमियोंकी—जिनका हस्ताक्षर युक्त इकरारनामा मेरे पास है—प्रबल इच्छा और प्रेरणासे, इस विषयको मुझे अपने हाथमें लेना पड़ा है।

(५) यह बात निःसंदेह है कि जहाँ दो पक्ष होते हैं वहाँ फैसला देनेवालेका फैसला, दोनों पक्षोंकी धारणाके अनुसार

होना असंभव है। तो भी दोनों-पक्ष उसको माननेकी प्रतिज्ञा कर लेते हैं इस लिए वह फैसला किसी दूसरे रूपमें उतर कम ज्यादा प्रमाणमें दोनों पक्षोंको संतोप देनेवाला होता है। इस विपयमें भी जहाँतक हो सका इसी तरह किया गया है। इस लिए आशा है कि दोनों पक्ष संतोप धारण कर क्षुद्र वातोंको अपने दिलोंमेंसे निकाल देंगे।

(६) इसमें कोई शक नहीं है कि, वह आदमी जिसके लिए यह वखेड़ा खड़ा हुआ है वास्तवमें अपराधी है और सजाके लायक है। कारण दोनों पक्षोंकी तरफसे और चुने हुए आदमियोंकी वातोंसे–फिर वे चाहे कोई अपेक्षा ग्रहण करें–करनेवाले आदमीका कार्य अनुचित तो समझा जाता ही है। और जव अनुचित कार्य हो गया तव उसका करनेवाला अपराधी हो ही चुका। अपराधीको यथोचित दंड मिले यह एक प्रकारकी नीति ही है। मगर अपराधीके पुण्यवलसे आज पर्वका दिन आ गया है।

(७) पर्वके दिन सजा पाये हुए अपराधियोंको मुक्त कर देना, ऐसा एक शास्त्रका नियम है। और उसके अनुसार श्रीहेमचंद्रसूरि महाराजके उपदेशसे महाराजा कुमारपालने और श्रीहीरविजयसूरि महाराजके उपदेशसे वादशाह अकवरने, जो कुछ किया, उसको सभी जैन जानते हैं। इस लिए आज पर्वके दिन अपराधीको किसी भी तरहकी सजा देना मैं उचित नहीं समझता, वल्कें अपराधीको सजासे मुक्त करना उचित

समझता हूँ । और इसी लिए मैं अपराधीको मुक्त हुआ प्रकट करता हूँ ।

(८) अदालतको भी ऐसी सत्ता होती है कि अपराध सावित हो जाने पर भी यदि अदालतकी दयादृष्टि हो जाय तो वह अपराधीको अपराधकी क्षमा दे सकती है ।

(९) ऐसा होने पर भी अपराधी अपनी खुशीसे जाति भोज देनेको तैयार है । यह बात चुने हुए दस आदमियोंके कहनेसे मालूम होती है; इस लिए मैं इतना परिवर्तन करना उचित समझता हूँ कि दो की जगह एक ही जातिभोजसे सभी भाई सन्तुष्ट हों और दूसरे जातिभोजमें जितनी रकम खर्च होनेवाली हो उतनी रकम यदि श्रीसंभवनाथजीके मंदिरके जीर्णोद्धारमें दी जाय तो इह लोक और पर लोक दोनों साधे समझे जायँ । मगर इस कामको राजी खुशीका समझना चाहिए, किसी तरहकी सजा या दंडके रूपमें नहीं ।

(१०) बाईके भरणपोपणके लिए यदि वह अपनी भलाई समझ अपने पतिके और पंचायतके अनुसार वर्ताव करे तो उसका बंदोवस्त पंचायतको योग्य रीतिसे करना कराना चाहिए । इस कामको दोशी वृजलाल सेठ, कस्तूरचंद सेठ और जिणोरवाले वृजलाल दीपचंदको, अभी सौंपना योग्य मालूम होता है । क्योंकि तीनों व्यक्तियाँ वृद्ध हैं और जातिके रीतिरिवाजोंसे भली प्रकार परिचित हैं इस लिए कोई अनुचित कार्य नहीं करेंगे । मगर बाई यदि ऐसा न करे और

कोर्ट आदिकी शरण ले तो, फिर पंचायतको उसमें दखल देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। कोर्टकी इच्छा हो वैसा हुक्म करे।

(११) छोकरा छोटा है इस लिए उसकी तरफ स्वभावतः सबका ध्यान जाता है। समय अपना काम किये जाता है। क्या होगा इस बातकी किसीको भी खबर नहीं है; तो भी पानीके पहले पाल बाँधना उचित ही मालूम होता है। यदि छोकरा अपने बापके पास रहे तो सौतेली माँ उसके साथ कैसा बर्ताव करेगी यह बात संदेहास्पद है। माँके पास रहनेपर, योग्य उम्रका होनेपर, किस रंगमें उतर जायगा सो कुछ कहा नहीं जा सकता। इस लिए छोकरा योग्य उम्रका हो तब उसे सुशिक्षा मिले और उसका जीवन न बिगड़े इसलिए उसके दादाको—जिसके नामसे यह झगड़ा खड़ा हुआ कहलाता है—चाहिए कि वह कमसे कम एक हजार रुपये, किसी बैंकमें सेठ नेमचंद पीतांबर, मगनलाल पीतांबर और झणोरवाले खूबचंद पानाचंद इन तीनोंके साथ मिल, अपने नाम सहित जमा करादे कि, जिससे उनके व्याजसे छोकरेको शिक्षा मिलती रहे। यदि व्याजसे काम न चले तो भले मूलमेंसे भी खर्चा किया जाय। अभिप्राय यह कि लड़केको सुशिक्षा देनेके लिए चारों आदमी पूरा ध्यान दें। दैव-योगसे लड़का यदि शिक्षा प्राप्त करने योग्य न बने तो उपर्युक्त रकम, सारी जातिमेंसे यानी सारे संभा (?)—समुदायमेंसे

जो लड़का मेट्रिकमें पहले नंबर पास हो उसे आगेका अभ्यास करनेके लिए मदद की तरह दी जाय। मगर उस लड़केको धर्मका साधारण ज्ञान अवश्य होना चाहिए। इसी तरह उसे धर्मपर श्रद्धा भी होनी चाहिए। इति।

ताजा कलम—मैं पहले कह चुका हूँ कि यह फैसला कानूनकी तरह नहीं माना जाय, इस बातकी मैं यहाँ फिरसे याद दिलाता हूँ। श्रीवीर संवत् २४३८ श्रीआत्मसंवत् १६ विक्रम संवत् १९६८ कार्तिक सुदी १४ रविवार ता. ५ नवंबर सन् १९११.

दस्तखत—श्रीजैनसंघका दास मुनि वल्लभविजय। ”

मियागाँवके जागीरदार प्रायः आपके दर्शनार्थ आया करते और धर्म चर्चा करके आनंद लाभ करते थे। मियागाँवमें पहले एक जैनपाठशाला चलती थी। वह आपसी कलहके कारण बंद हो गई थी। उसे भी आपने फिर शुरू करवाई। पाठशालाका खर्चा हमेशा चलता रहे इसके लिए वहाँके कपासके व्यापारियोंपर कुछ लागा लगा दिया। उपाध्यायजी श्रीवीरविजयजी महाराजकी प्रेरणासे आपने रतलाम शहरके श्रीसंघकी इच्छानुसार ऋषिमंडलकी और नंदीश्वर द्वीपकी पूजा रची। इस प्रकार धार्मिक कार्य संपादन करते और लोगोंको धर्मामृत पिलाते आपका वह चौमासा आनंद पूर्वक समाप्त हुआ।

मियागामसे विहार करके आप सुरवाड़े पधारे। आपके

उपदेशामृतका पान करनेके लिए यहाँ अनेक अन्य धर्मावलंबी मांसमदिराका उपभोग करनेवाले भी आया करते थे। उनके हृदयोंपर आपके उपदेशने पूरा असर किया और अनेकोंने मांस मदिराकी, आपके सामने ही, प्रतिज्ञा लेली।

सुरवाड़ेसे विहार करके आप वणछरा पधारे। वहाँ उस इलाकेके ७० ग्रामोंके दशा श्रीमालियोंमें जो फूट थी वह आपके उपदेशसे दूर हुई और उन लोगोंने आपके उपदेशसे कई सामाजिक कुरितियोंको भी दूर कर दिया।

कन्याविक्रयकी भयंकर और घातक चाल जैन समाजमें प्रायः देखी जाती है। इसके भयंकर परिणाम भी प्रायः हुए हैं और होते हैं मगर बहुत कम धर्मोपदेशक और अन्यान्य मुनिराज इस ओर लक्ष देते हैं। आपने इसपर खास लक्ष्य दिया था और देते हैं। आपके उपदेशसे यह घातक प्रथा कई स्थानोंसे उठ गई है। वणछरामें भी इस प्रथाका और इसके साथ ही, जिन अनेक बुरे रिवाजोंका जोर था वे सभी, बंद हो गये या उनमें परिवर्तन हो गया। आपके उपदेशसे वणछरामें मिले हुए दशा श्रीमालियोंके पंचोंने जो सुधार किये उनकी नकल यहाँ दी जाती है।

" संवत् १९६८ का कार्तिक वुदी ४ शुक्रवार श्रीदशा ओसवालके पंच समस्त नीचे हस्ताक्षर करनेवाले मौजे वणछरा मुकामपर ठहराव करते हैं। वे नीचे प्रमाणे।

(१) हमारी जातिमें कन्याविक्रयका रिवाज पहलेसे है वह आजतक कायम रहा। इसके लिए श्रीमुनि महाराज श्री श्री

श्रीवल्लभविजयजीके उपदेशसे हमारे परिणामोंमें परिवर्तन हुआ। इस लिए उस रिवाजको बंद करनेके लिए हम आतुर होकर महाराज साहबके रूबरू बाधा (प्रतिज्ञा) लेनेको तैयार हुए हैं।

(२) विशेष हम पाटन अहमदाबाद आदि परदेशोंमें कन्याएँ देते थे। वे भी--अभीसे कन्याओंको बाहर देना बंद करते हैं।* इतना होकर भी यदि कोई जातिकी इच्छाके विरुद्ध होकर अपराध करेगा तो वह आदमी जातिबाहर समझा जायगा। उसके साथ कोई किसी भी तरह का व्यवहार न करे।

(३) ब्याहके समय तीन दिनतक 'गौरव'[1] जिमाने का और चौथे दिन 'वरोठी'[2] जिमानेका ठहराव था, उसके स्थानमें यह ठहराव किया जाता है कि, एक दिन 'गौरव' करना और एक दिन 'वरोठी' करना। वरोठी कन्याके बापके घर ही हो और उसके लिए वरवाले १०१) रु. कन्याके बापको दे दें।" †

यहाँ श्रीधरणेंद्रपार्श्वनाथजीकी अलौकिक मूर्तिके दर्शन

---

* इसका मतलब यह है कि बाहर गामवाले रुपयोंका लालच देकर कन्याएँ ले जाते थे जिसके कारण कन्याविक्रयका अधिक जोर हो गया था। दूसरा शहरों वाले कन्या ले तो जाते हैं परंतु देते नहीं हैं जिससे अपने समुदायकी कन्या वहाँ चली जाती है और अपने लड़के कुँवारे रह जाते हैं। यह भी एक कारण था।

१-वरात जिमाना; २--वरकी तरफसे बेटीवालोंको जिमाना;

† दो और भी ठहराव हैं, मगर वे अनुपयोगी समझ कर छोड़ दिये गये हैं।

कर आपको आनंद हुआ। तीन दिन पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्यादिका ठाठ होता रहा।

वणछरेसे विहार करके आप पाछियापुर पधारे। वहाँके श्रीसंघने आपके उपदेशसे एक अठाई महोत्सव किया।

पाछियापुरसे विहारकर अन्यान्य ग्रामोंमें विचरण करते, अज्ञानांधकारमें डूबे हुए श्रावकोंको निकालकर धर्म ज्ञानके प्रकाशमें रखते, और आहारपानी आदिके अनेक तरहके परिसह सहते हुए आप सीनोर पधारे। बीचमें अनेक गाँव ऐसे आये जिनमें श्रावक बसते थे; मगर वे नहीं जानते थे कि, वे श्रावक क्यों कहलाते हैं? उनका धर्म क्या है? उनके देव कौन हैं? उनके गुरु कौन हैं और वे कैसे होते हैं? जब वे अपनेको तथा अपने गुरुको ही नहीं पहचानते थे तब वे यह तो जान ही कैसे सकते थे कि उन्हें आहारपानी कैसे दिया जाता है? इस लिए आपको एक दो बार आहारपानी बिना भी रहना पड़ा। यह जानकर पाठकोंको दुःख हुए बिना न रहेगा कि, गुजरात जैसे प्रदेशमें—जहाँ सैकड़ों साधु मुनिराज विहार करते हैं—ऐसे गाँव भी हैं जिनके अंदर हमारे मुनि महाराज कभी नहीं जाते। इसका मुख्य कारण यह बताया जाता है कि उन गाँवोंमें साधुओंके लिए योग्य व्यवस्था नहीं हैं। अर्थात् वे पक्की सड़कोंसे दूर हैं; आहारपानीके लिए साधु मुनिराजोंको तकलीफ़ होती है। राजपूताना, पंजाब, दक्षिण, मध्यप्रान्त, बंगाल और संयुक्त प्रान्त आदिके क़स्बों और

गाँवोंके श्रावकोंको यह जानकर संतोष हुए विना न रहेगा कि, वे ही ऐसे नहीं हैं जिन्हें साधु मुनिराजोंके दर्शन दुर्लभ हैं, वल्के गुजरातमें भी—जिसके श्रावकोंको वे लोग भाग्यमान वताते हैं—ऐसे श्रावक हैं जिन्हें उन्हींकी तरह साधु मुनिराजोंके दर्शन नहीं मिलते। साधु महाराजोंके ऐसे स्थानोंमें विहार नहीं करनेसे जैन समाजकी एक वहुत वड़ी हानि हो रही है। वह हानि है उसके संख्यावलकी। वे लोग मर्दुमशुमारीमें अपने आपको जैन न वताकर हिन्दु वताते हैं और उनके हिन्दु वतानेसे जैनोंकी इतनी संख्या कम हो जाती है। अस्तु।

सीनोरमें आपका व्याख्यान सुननेके लिए अजैन भी आते थे। वहाँ एक मुसलमानके हृदय पर आपके उपदेशने ऐसा प्रभाव डाला कि, उसने आपके पास मांसत्यागकी प्रतिज्ञा लेली। वह एक परम श्रद्धावान श्रावककी तरह रोज आपके व्याख्यानमें आता था। इतना ही नहीं वह कई गाँवों तक आपके साथ भी गया था।

सीनोरसे विहार करके आप कोरल पधारे। कोरलके श्रीसंघके अन्तराय कर्मका पर्दा उस दिन अनेक वरसोंके वाद आपके पधारनेसे फटा! वहाँके लोगोंका कथन था कि, अठारह वरसके वाद आपहीने अपने चरणकमलसे कोरलको पवित्र किया है। अठारह वरस पहले वहाँ प्रतिष्ठा हुई थी तव एक मुनि महाराज पधारे थे। श्रीसंघने वड़े उत्साहके साथ

अठाई महोत्सव किया। मंडपमें आप उपदेशामृत बरसाते थे और उसको पान करनेके लिए झुंडके झुंड जैन और अजैन नरनारी आते थे। आस पासके गाँवोंके भी अनेक लोग उस अमृतको पीने वहाँ आते थे।

कोरलसे विहार करके लीलापुर, मेथी आदि कई जुदे जुदे गावोंमें विचरते हुए आप डभोई पधारे, क्योंकि डभोईके श्रीसंघका बड़ा आग्रह था। एक मासतक आप डभोईमें वचनामृत बरसा वड़ोदेके लिए रवाना हुए और डभोईके संघ सहित वड़ोदे पहुँचे। वड़ोदे जानेका हेतु एक मुनिसम्मलेन स्थापित करने की इच्छा थी।

'साधु' 'मुनि' 'संयति' 'यति' 'संवेगी' इन नामोंमें और इनकी मुद्रामें असाधारण शक्ति है। इनके आगे राजा महाराजा नतमस्तक होते हैं; अमीर उम्रा सिर झुकाते हैं; सेठ साहूकार, धनी गरीब भक्ति भावसे चरणरज मस्तक पर चढ़ाते हैं और वड़े वड़े जालिम भी सम्मानसे आँखें नीची कर लेते हैं।

इस अनेक गुणान्वित अकेले साधु शब्दमें और उसकी मुद्रामें जब इतनी महिमा है; इतनी शक्ति है तब इनके धारक,– साधु नाम और वेषको अपने गुणोंसे अलंकृत करनेवाले जीवमें– मनुष्यमें कितनी शक्ति होगी इसका अंदाजा पाठक सहजहीमें लगा सकते हैं।

मगर अब यह बात इस पंचम कालमें–इस कलिकालमें

केवल एक मधुर स्वप्नसी रह गई है । आज इनकी शक्ति छिन्न भिन्न प्रायः हो गई है; आज इनमें वह शक्ति नहीं रही है कि सिंहासनसे राजा उतर पड़ें, सेठ साहूकार भक्तिभावसे चरणोंमें गिर पड़ें । पंचमकाल का प्रभाव–ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, अहंमन्यता, ज्ञान न होते हुए भी महाज्ञानी होनेका आडंबर, दूसरोंकी उन्नतिसे जलन आदि–साधुओं पर भी पड़े बिना न रहे; जैनसाधुओंमें भी इसने धीरे धीरे पैर फैलाना शुरू किया । इस बातको हमारे चरित्रनायकने देखा । आपने सोचा, अब साधुओंमें,–प्रत्येक साधुमें,–प्राचीनकालके तेज, त्याग और तपस्याकी कमी हो गई है । इस कमीकी यदि पूर्ति न की जायगी तो साधुताका निर्वाह असाध्य साधना हो जायगी । अनेक दिनतक आप इस विषयका विचार करते रहे । अन्तमें आप इस निर्णय पर आये कि, साधुओंके संगठनसे यह शक्ति अक्षुण्ण रक्खी जा सकती है । तदनुसार आपने अपने माननीय वृद्ध पुरुष आचार्य श्रीविजयकमलसूरिजी महाराज; उपाध्यायजी श्रीवीरविजयजीमहाराज प्रवर्तकजी श्रीकान्तिविजयजी महाराज तथा मुनि श्रीहंसविजयजी महाराज, आदिकी सम्मतिसे 'मुनिसम्मेलन' स्थापित करनेकी योजना की । आपने सोचा इस समय स्वर्गीय गुरु महाराज श्रीआत्मारामजी महाराजके संघाड़ेका ही सम्मेलन और संगठन करना आवश्यक है यदि हम सफलता पूर्वक दो तीन वरस यह कार्य कर सकेंगे तो दूसरे संघाड़ेवाले

स्वयमेव अपना संगठन कर लेंगे; या अवसर देखकर अपना दायरा बड़ा कर दिया जायगा । इस विचारको परिणत करनेके लिए आपने जो पत्र साधुओंके पास भेजा, उसकी पूरी नकल यहाँ दी जाती है ।

ॐ अर्ह !

श्री १००८श्री मद्विजयानंद सूरिभ्यो नमो नमः ।

चरणकरणधारिमुनिभ्यो नमो नमः ।

श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरि सद्गुरुके सन्तानीय सर्व मुनिमंडलके पाद–पद्मोंमें मुनिचरणोंके दास वल्लभविजयकी सविनय प्रार्थना है कि,–शास्त्रकारोंने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावानुसार उत्सर्गापवाद, विधिप्रतिपेधादि प्रतिपादन किया है सो आप महात्माओंको सुविदित ही है ।

आजकल समय कैसा है और समयानुसार अपना कर्तव्य क्या है सो भी आप महात्माओंसे छिपाहुआ नहीं है । सोते हुओंको जगाना उचित कहा जाता है मगर जागतोंको जगानेका प्रयास करना मूर्खताके सिवा अन्य कुछ नहीं कहा जाता है । तो भी जो कुछ मेरे मनमें आया है आप महात्माओंके चरणोंमें जाहिर कर देता हूँ और आशा करता हूँ कि, आप महात्मा मेरी मूर्खताका खयाल न कर तत्त्व दृष्टिकी ओर खयाल करेंगे ।

श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरि सद्गुरु–जो अपने परमोपकारी हो चुके हैं और जिनके उपकारोंका बदला जन्म जन्ममें

नहीं दिया जासकता है—श्रीमन्महावीर स्वामी शासन नाय
की स्तवना करते हुए फर्माते हैं।

" कोटि वदन कोटि जीभसुरें, कोटि सागर पर्यंत।
गुण गाउँ तोरे भक्तिसुंरे तो तुम ऋणका न अन्त। "

इसी प्रकार इन सद्गुरुके ऋणका भी अन्त नहीं हो सकता
इन परमोपकारी महात्माके स्वर्गारोहणके अनन्तर आज पर
कोई ऐसा समय प्राप्त नहीं हुआ है जैसा कि उनकी हयाति
कभी कभी कहीं कहीं सम्मेलनका हो सकता था
अब शासन देवता और गुरु महाराजकी कृपासे वह सम
निकट आया नजर आता है, इस लिए दिल चाहता है f
श्रीगुरुमहाराजजीके यावत् साधु हैं, सबका कहीं न क
एकत्र होना होवे तो अपूर्व लाभ प्राप्त होवे। जिन मह
त्माओंके सुदर्शनका लाभ इस मुनिचरणोंके दासको नहीं हु
है सो होवे और परस्पर आनंद प्राप्त होवे। इसमें शक नहीं
हम तुम आनंदगुरुके सन्तानीय हैं। वहाँ निरानंदको अ
काश ही नहीं है; तथापि आजकलके समयानुसार एव
सम्मेलनसे अत्यानंद की प्राप्तिका संभव है।

शासन देवताकी कृपासे और श्रीसद्गुरुमहाराजकी कृपा
आजकलके समयानुसार जितना समुदाय और संप त
ज्ञान क्रियादि गुण श्रीगुरुमहाराजजीके परिवारका लोगो
मुखसे सुना जाता है उतना अन्य किसीका भी नहीं सुन
जाता है तो एकत्र सम्मेलनेसे श्रीगुरुमहाराजजीकी अवर्णनी

महिमाकी वृद्धि और लोगोंके भावोंकी वृद्धिका भी लाभ होवेगा। आपके एकत्र होनेसे अन्य भी आपका अनुकरण करेंगे तो भी एक गुरु महाराजजीके नामका जयकार होनेका संभव है। इत्यादि अनेक लाभोंको विचार कर यह प्रार्थनापत्र आपकी सेवामें भेजा गया है। आशा की जाती है कि इसको आप योग्य मान देवेंगे। इति। श्रीवीर संवत् २४३८ श्रीआत्म-संवत् १६ फाल्गुन वदी १२ बुधवार।

हस्ताक्षर—सर्व मुनियोंके चरणोंका दास, वल्लभविजय।

दासकी राय।

मेरी समझ मूजिब यह कार्य बहुत ही शीघ्र होना चाहिए; क्योंकि इस समय प्रायः बहुतसे महात्मा आसपासमें निकट प्रायः विचर रहे हैं। इस लिए यदि आप सब महात्माओंको अनुकूल हो तो ज्येष्ठ सुदी ५–६–७ के तीन दिन सम्मेलन और अष्टमीको सर्व मिल श्रीगुरुजी महाराजजीकी तिथिका आराधन कर आनंदकी लहरें लूटें।

इस कामके लिए इस समय वीरक्षेत्र (वड़ोदा) मेरी समझमें क्षेत्र ठीक मालूम देता है। आगे आप सर्व महात्माओंको जो समय और क्षेत्र अधिक अनुकूल मालूम देवे और जहाँ सर्व महात्माओंका दिल खुश हो वही क्षेत्र और समय नियत किया जावे। यह दास हर तरहसे तैयार है। परन्तु यह कार्य होना तो जरूर ही चाहिए। यही दासकी अन्तिम प्रार्थना है।"

द: मुनिचरणोंका दास—वल्लभविजय।

इसमें जिन महात्माओंने सम्मति दी उनके नाम और सम्मतियाँ भी यहाँ उद्धृत कर दिये जाते हैं।

(१) ऊपरका लिखा अति–उत्तम है। इस लिए सर्व मुनियोंको एकत्र होना मुनासिब है। हम आवेगें वास्ते तुम भी जरूर आवो।

कमलविजय द० खुद।

(२) सर्व स्वसमुदायके मुनियोंका एक जगह मिलना अच्छा है। फायदा दिखलाता है। हम भी हाजिर होवेगें।

द: वीरविजय।

(३) मुनि सम्मेलनकी खास आवश्यकता है। उसमें अनेक लाभ गर्भित हैं। इस लिए उस प्रसंगपर हाजिर होनेको हम भी खुशी हैं।

लि० हंसविजय।

(४) मुनि संपतविजय, ऊपर लिखे अनुसार ठीक है।

(५) मुनि श्रीवल्लभविजयजी महाराजके लिखे माफिक मुनिमंडलका सम्मेलन होनेमें अनेक लाभ गर्भित हैं। इस लिए सम्मेलन होनेकी खास जरूरत है। ऐसा हम अन्तःकरण पूर्वक चाहते हैं और उस अवसर पर हम आनेमें खुश हैं। मुनिमंडलके सम्मेलनके लिए डभोई विशेष अनुकूल होगी, ऐसा हमें मालूम होता है। यदि बड़ोदेमें होगा तो भी हमें कोई बाधा नहीं है।

मु० कांति विजय द० पोते
ल० अमृत विजय द० पोते

सम्मेलनका उत्सव प्रारंभ होनेमें अभी देरी थी। अतः जिन मुनिराजोंने सम्मेलनमें, दूर होनेके कारण, शरीक होनेमें असमर्थता प्रकट की थी उनके नामसे जो पत्र प्रेषित किया गया उसकी अक्षरशः नक़ल नीचे दी जाती है,—

" वड़ोदा,

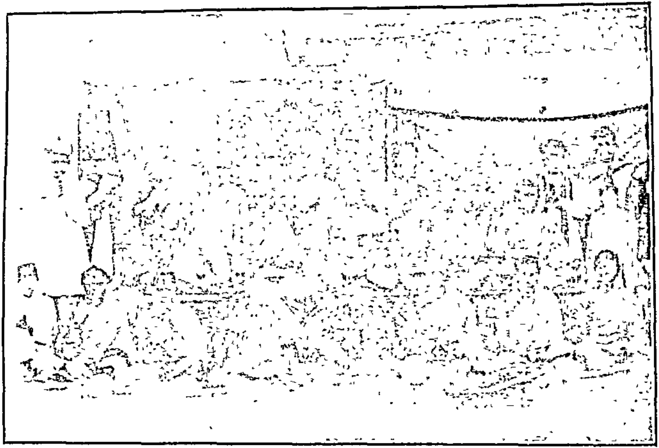
श्री १०८ श्री आचार्य महाराजजी श्री १०८ श्रीविजय कमल सूरि, श्री १०८ श्रीप्रवर्तकजी महाराज श्रीकांतिविजयजी श्री १०८ श्री मुनि महाराज श्रीहंसविजयजी आदि साधु ३७ की तरफ़से तत्र योग्य अनुवंदना वंदनाके साथ मालूम होवे यहाँ सुख साता है आपकी सुखसाताके समाचार देना। विशेष स्वर्गवासी गुरु महाराजजी श्री १००८ श्रीमद्विजयानंदसूरि (आत्मारामजी) महाराजजीके प्रतापसे साधुओंका एकत्र मिलना हुआ है। दूरका फ़ासला और गरमीकी मोसम होनेसे आपका पधारना नहीं बन सका सो अमर लाचारी है। तथापि आपके ध्यानमें जो जो बातें साधु समुदायको उपकारी मालूम होवें जिससे कि श्रीगुरुमहाराजजीके समुदायमें एकता और तरक्की होवे वे ताकीदसे लिख भेजें ताके श्री १०८ श्रीउपाध्यायजी महाराजजी श्रीवीरविजयजीके पधारने पर उन सब बातोंपर विचार कर कोई बंधारण किया जावे। जिससे कि, साधुओंको अपने कर्तव्यमें प्रायः सुगमता होवे। इति

दृःमुनिचरणोंका दास वल्लभविजयकी त्रिकाल वंदना स्वीकारनीजी, कृपादृष्टि विशेष रखनी जी।"

इस पत्रकी नकलें मुनि महाराज श्री जयविजयजी, अमरविजयजी, मोहनविजयजी, हीरविजयजी, सुमतिविजयजी, मोतीविजयजी, माणकविजयजी और अमीविजजीके पास भेजी गई थीं।

विज्ञप्तिके अनुसार करीव पचास साधु वड़ोदेमें एकत्रित हुए और सम्मेलनमें जो कार्रवाई हुई उसका पूरा वर्णन इस ग्रंथके उत्तरार्द्धमें दे दिया गया है। पाठक उत्तरार्द्धके ५२ वें पृष्ठमें इसे पढ़ लेवें।

इस सम्मेलनकी बातको सुनकर अनेकोंके दिलोंमें जलन पैदा हुई; खास तरहसे हमारे चरित्र नायककी प्रशंसासे कई लोगोंके दिल ईर्ष्यासे परिपूर्ण हो गये। उस समय शिवजी और लालनको लेकर समाजमें वड़ी हलचल मची हुई थी। कई इनके पक्षमें और कई विपक्षमें। शिवजी और लालनपर यह दोष लगाया गया था कि, इन लोगोंने सिद्धाचलजी पर अपने भक्तोंसे अपनी पूजा कराई थी। सिद्धाचलके समान पुण्यतीर्थ पर इन लोगोंने यदि अपनी पूजा कराई हो तो इनके वरावर दोषपात्र दूसरा नहीं है। इस बातको दोनों दल मानते थे। मगर मतभेद होनेका कारण यह था कि, एक दल कहता था इन्होंने अपनी पूजा कराई है; दूसरा कहता था इस वातका प्रमाण चाहिए। आचार्य श्रीविजयकमल सूरिजी प्रथमपक्षमें थे। लोगोंने इससे फायदा उठाकर सम्मेलन भंग करनेका



१००८ आचार्यमहाराज श्रीमद्विजयवल्लभ सूरिजी महाराज
(डभोई में) पृ. २४५.

मनोरंजन प्रेस, बम्बई नं. ४.

प्रयत्न किया; उन्होंने आचार्यश्रीको समझाया कि, मुनि वल्लभविजयजी और प्रवर्तक श्रीकान्तिविजयजी उनलोगोंके (शिवजीलालनके) पक्षमें हैं ।

आचार्यश्रीने हमारे चरित्रनायकसे और प्रवर्तकजी महाराजसे पूछा तब उन दोनों महात्माओंने कहा, यह बात बिल्कुल झूठ है । जहाँ आप हैं वहीं हम भी हैं ।

यह मामला यहीं पर समाप्त हो गया । सभापतिकी हैसियतसे दिये हुए व्याख्यानमें आचार्यश्रीने आपकी बड़ी प्रशंसा की । द्वेषी लोगोंके हृदयोंमें ईर्ष्याग्नि द्विगुण वेगसे प्रज्वलित हो उठी । वे तो वल्लभविजयजीको आचार्यश्रीकी निगाहसे गिराना चाहते थे, मगर बात उल्टी हो गई । आचार्यश्रीकी निगाहमें आपकी इज्जत, कमसे कम उस समय, दुगनी हो गई । उन लोगोंने सम्मेलनको विध्वंस और आपको नीचा दिखानेका दृढ निश्चय कर लिया । सच है—

औरनको उत्कर्ष जग; देखि सकत नहीं नीच ।

आप बड़ोदेसे विहार करके डभोई पधारे और आचार्य महाराज श्री १०८ श्रीविजयकमलसूरिजीकी आज्ञानुसार सं० १९६९ छब्बीसवाँ चौमासा आपने डभोईमें किया । इस चौमासेमें आपके साथ सोलह साधु थे । आपके उपदेशसे वहाँ कई शुभ काम हुए । दो तीन अठाई महोत्सव भी हुए । कई साधुओंने बृहद् योगोद्वहन भी किया । चौमासा समाप्त होने

पर आप डभोईसे विहार करके डभोईके आस पासके गामोंमें विचरते हुए मियागाम पधारे।

१०८ श्रीहंसविजयजी महाराजके पास, नांदोदके एक सज्जन—जो 'वक्षी वकील' के नामसे प्रख्यात हैं,—नांदोद चलनेकी, नांदोद महाराजकी तरफसे, विनती करने के लिए आये। उन सज्जनका राज्यमें वड़ा मान था और वे मुनि महाराज श्रीहंसविजयजी पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। दर्शन और प्रार्थना कर उनके चले जानेपर पानेथासे श्रीहंसविजयजी महाराजने आपको लिखा—"+ + + अब नांदोद जानेका समय है। यदि आप पधारेंगे तो वहुत अच्छा होगा। यदि मुझे साथ रखनेकी इच्छा होगी तो मैं भी चलूँगा। कारण वहाँ बहुतसे लाभ होनेकी संभावना है। वहाँसे वक्षी वकील—जिनकी राज्यमें पूर्ण सत्तासी है—विनती करनेके लिए प्रताप नगरमें और वाघोरियामें आये थे। वहाँ श्रावकोंका एक भी घर नहीं है। वे कहते थे कि, वहाँ हमारी जातिके बनियोंके वहुतसे घर हैं। और मुझे श्रावकके समान ही समझिए। इस-तरह बहुत आग्रह कर गये हैं। यदि आपका नक्की हो तो वहाँसे निमंत्रणपत्रिका आनेकी भी संभावना है। उसमें आप वहाँके अनेक नेताओंके हस्ताक्षर देख सकेंगे + + + +"

एक दूसरे पत्रमें आप और लिखते हैं,—"+ + + आपके लिखनेसे, हम, उमरवामें पटेलको दूसरी पूजा पढ़ाना था तो भी, तीन पूजाएँ ही पढ़ाकर, आपके साथ प्रतिक्रमण

करनेके लिए, यहाँ पर पहुँच गये हैं। आप कहीं न रुककर आज ही यहाँ आजायँ तो अच्छा है। कारण नांदोदसे वकीके भाई आये थे। वे आपके लिए दो दिन ठहर कर कल गये हैं। आज डेप्युटेशनके तौर पर बहुतसे लोग आनेवाले हैं इस लिए कहीं ठहरना नहीं।"

श्रीहंसविजयजी महाराजकी सूचनानुसार आप मियागामसे रवाना हुए और प्रतापनगरमें आपके साथ उनकी भेट हुई। नांदोदके राजाका दीवान वहीं आपके स्वागतार्थ आया था।

वहाँसे मुनि महाराज श्री १०८ श्रीहंसविजयजी पंन्यासजी महाराज श्रीसंपतविजयजी और आप नांदोदके लिए रवाना हुए। आपके साथ पाँच सात साधु दूसरे भी थे। नांदोदसे करीब आध माइल जब आप रहे होंगे तब नांदोद महाराजका सारा राजसी लवाजमा १०८ श्रीहंसविजयजी महाराज तथा आपके स्वागतार्थ आया। छोटेसे कस्बेमें जितनी अच्छी तरहसे स्वागत हो सकता था उतनी ही अच्छी तरहसे स्वागत हुआ। स्वागतके जुलूसमें डभोईका संघ भी अपनी भजनमंडली सहित शामिल हो गया था। इससे जुलूसकी शोभा और भी ज्यादा बढ़ गई थी।

नांदोदके राजाने व्याख्यानके लिए एक खास मंडप बनवाया था। सारे नांदोदमें फिरकर जुलूस वहाँ समाप्त हो गया। नांदोदके राजाने तीनों महात्माओंको और अन्यान्य मुनिराजोंको सादर अभिवंदन किया। मुनिराजोंको ऊँचे आसनपर

बिठाया और राजा अन्यान्य श्रोताओंके साथ दरीपर ही बैठ गये। उनके सेवकोंने उनके लिए गद्दी बिछाई थी उसको उन्होंने हटवा दी और कहाः—"सन्तोंके दर्बारमें सभी समान हैं। यहाँ ऊँच नीचका भेद नहीं है।" धन्य हैं ऐसे विचार-शील और नम्र राजा।

पाट पर विराजने पर श्रीहंसविजयजी महाराजने सुललित भाषामें मंगलाचरण कर गुरूका स्वरूप समझाया। उसके बाद उन्होंने हमारे चरित्रनायकसे व्याख्यान देनेके लिए कहा। आपने उत्तराध्ययनके तीसरे अध्ययनकी इस पहली गाथाका उच्चारण कर व्याख्यान प्रारंभ कियाः—

चत्तारी परमंगाणी, दुल्लहाणीह जन्तुणो।
माणु सत्तं सुई सद्धा, संजमम्मीय वीरियं॥ *

मनुष्यता क्या है? वह कैसे प्राप्त हो सकती है? ज्ञान क्या है? उसका उपयोग क्या है? श्रद्धा क्या है? उसके होनेसे क्या नफ़ा है? संयम क्या है और उसमें किस प्रकार आत्म-शक्तिका विकास होता है?,–किया जाता है? लगातार आठ दिनतक आप इसी श्लोकपर व्याख्यान देते रहे। तीन घंटेतक रोज व्याख्यान होता था। मगर लोग इतने तल्लीन होते थे कि, तीन घंटे तीन मिनिटके समान निकल जाते थे।

* संसारमें जन्तुओंके लिए–जीवोंके लिए–चार परम अंग–साधन दुर्लभ हैं। वे चार परम साधन ये हैं–मनुष्यत्त्व, श्रुति–ज्ञान, श्रवण–श्रद्धा और संयममें वीर्यको प्रस्फुटित करना।

राजा व्याख्यानोंको सुनकर बहुत खुश हुए। एक दिन उन्होंने हाथ जोड़कर भक्तिपूर्ण स्वरमें कहा:–"गुरु दयाल! मेरी उम्रमें यह पहला ही अवसर है कि, मैंने इतनी देरतक बैठकर व्याख्यान सुना है। मैंने अनेक व्याख्यान सुने हैं मगर आजतक इतने मधुर इतने गंभीर, इतने हृदयग्राही और साथ ही इतने मनको लगाये रखनेवाले व्याख्यान नहीं सुने थे। आज मैं कृतकृत्य हो गया।"

डभोईका संघ अपने साथ एक प्रतिमाजी लाया था। अतः आठ दिनतक दुपहरको हमेशा वहाँ पूजा पढ़ाई जाती थी। आठ दिनतक रहकर वहाँसे आपने विहार किया।

गुजराती समाचार पत्रोंमें आपके व्याख्यानोंकी धूम मच गई। वड़ोदा नरेशके कानोंतक ये समाचार पहुँचे। उन्होंने डॉक्टर बालाभाई मगनलालकी मारफत मुनि श्रीहंसविजयजी महाराजको तथा आपको आमंत्रण दिया। दोनों प्रसन्नतापूर्वक वड़ोदा नरेशका आमंत्रण स्वीकार कर वड़ोदे पधारे। बड़े समारोहके साथ दोनों महात्माओंका वड़ोदेमें स्वागत हुआ। आत्मानंद प्रकाशने लिखा है,–"इस समय श्रीमान् महाराज हंसविजयजी साहबका तथा विद्वान् मुनिराज श्रीवल्लभविजयजीका आगमन खास गायकवाड सरकारके निमंत्रणसे हुआ था, इस लिए, श्रीमान् महाराजाकी तबीअत बराबर न थी तो भी श्रीमंत सरकार राजमहलमें इन मुनिराजोंसे मिले थे। उस समय मुनि महाराज श्रीहंसविजयजी साहबने प्रसंगानुसार बोध

दिया था। उसे सुनकर महाराजा साहब बहुत प्रसन्न हुए थे और उन्होंने सार्वजनिक व्याख्यान देनेके लिए आग्रह किया था। तदनुसार हमारे चरित्रनायकके दो व्याख्यान हुए थे। एकका विषय था 'धर्मतत्त्व' और दूसरेका था 'सार्वजनिक धर्म' ये व्याख्यान ता० ९ और १६ मार्च सन् १९१२ ईस्वी रविवारको शामके समय न्यायमंदिरमें हुए थे। इस न्याय-मंदिरमें सार्वजानिक व्याख्यान देनेका सौभाग्य उन्हींको प्राप्त होता है जो बहुत बड़े वक्ता समझे जाते हैं। व्याख्यान इस ग्रंथके उत्तरार्द्धमें प्रकाशित हो चुके हैं। सभापतिके पद पर शान्तमूर्ति मुनि श्रीहंसविजयजी महाराज विराजे थे।

इन व्याख्यानोंमें दोनों महात्माओंके साथके साधुओंके अलावा। पंन्यासजी श्रीसिद्धविजयजी महाराजके तथा पं० श्री-आनंदसागरजी महाराजके साधु भी थे। साधुओंकी संख्या सब मिलाकर ३५ थी। वड़ोदेके जो बड़े बड़े आदमी शामिल हुए थे उनमेंसे कुछ मुख्य मुख्यके नाम यहाँ दिये जाते हैं।

श्री हिं० वा. आनंदराव गायकवाड, दी० ब० समर्थ साहब, श्री रा. रा. सम्पतराव गायकवाड, श्री अवचितराव गायकवाड, राय बहादुर हरगोविन्ददास द्वारकादास काँटावाला, श्री रा. रा. नृसिंहराव घोरपडे, श्री बाबोजीराव राजशिर्के, रा. रा. चिमनलाल सामलदास, राय बहादुर लक्ष्मीलाल दौलतराम, रा. रा. रामचंद्र दिनकर फडके, केप्टन बल्देवप्रसाद, मे० नवाब नसरुद्दीन साहब, मि० सारंगपाणि जज, मि० अब्बास

तैयवजी जज, तर्क वाचस्पति पंडित वद्रीनाथ शास्त्री, मि०आंवे-गाँवकर, और मि० लाल भाई जौहरी, पाटनके सुप्रसिद्ध वकील लेहरु भाई आदि।

व्याख्यान प्रारंभ होनेके पहले श्रीयुत लालभाई जौहरीने आपका संक्षेपमें परिचय देते हुए कहा था कि—" आपकी विद्वत्ता और साधुताके संबंधमें विशेष कहना सोनेपर मुलम्मा चढ़ाना है। जिस प्रकार अपने महाराजा साहबकी न्याय शासन और प्रजाप्रियता आदि श्रेष्ठगुणों द्वारा संसार भरमें फैलनेवाली निर्मल कीर्तिका हमें अभिमान है इसी तरह मुनि श्रीवल्लभविजयजी महाराजकी जन्मभूमि वड़ोदा होनेसे आपके निर्मल चरित्र और परोपकारी जीवन पर भी हमें अभिमान है।"

दूसरे व्याख्यानके समय एक वात वडी मजेदार हुई। व्याख्यानमें लोगोंको आनंद आरहा था। सूर्यास्त होनेमें सिर्फ एक घंटा रह गया था। आप वोलेः—" आप जानते हैं कि जैन साधु रातमें अन्नोदक नहीं लेते; न वे किसीके घर जाकर खाते हैं और न किसी गृहस्थका लाकर दिया हुआ ही खाते हैं। इस लिए मैं अपना व्याख्यान शीघ्र ही समाप्त कर दूँगा। अन्यथा देर होनेसे साधुओंको भूखा रहना पड़ेगा। मैंने तो आज एकासन किया है, मगर दूसरोंको तो भोजन करना है।"

श्रीमान संपतराव गायकवाड़ वोलेः—" महाराज हम

प्यासे हैं, अभी तृप्ति नहीं हुई। आप हमें उपदेशामृत पिलाइए। हम साधुओंके जानेको रस्ता कर देते हैं। ”

रस्ता कर दिया गया। कुछ साधु चले गये और कुछ वहीं रह गये।

\+ + + +

दो तीन सालसे वंबईका संघ आपसे वंबईमें चौमासा करनेकी विनती कर रहा था। इस साल संघने विशेष आग्रहके साथ विनती की। आपने उसको स्वीकार कर लिया।

सूरत आदि स्थानोंमें होते हुए और लोगोंको उपदेशामृत पिलाते हुए आप दादर पधारे। वहाँ हेमचंद अमरचंदके वँगलेमें ठहरे। वंवईके लोग जवसे आप विरार पधारे तभीसे आपके दर्शनार्थ आने लग गये थे। दादरसे तो वहुत ही ज्यादा आने लगे। तीन रात दादर ठहरकर आप भायखाला पधारे। एक रात वहाँ रहकर वड़े भारी जुलूसके साथ जेठ सुदी ३ सं० १९७० के दिन वंवईमें, वड़े समारोहके साथ, प्रवेश किया। सामैयेमें करीव दसके, जुदा जुदा मंडलोंकी तरफसे, वेंड वाजे आये थे। हजारों नर नारी आपके साथमें थे।

उस चौमासेमें आपके साथ १६ मुनिराज थे। उनके नाम ये हैं (१) तपस्वीजी महाराज श्रीविवेकविजयजी (२) श्रीसोहनवि० (३) श्रीविमलवि० (४) श्रीकस्तूरवि० सद्गत १०८ श्रीउद्योत विजयजी महाराजके शिष्य। (५) श्रीउमंगवि० (६) श्रीविज्ञानवि० (७) श्रीविबुधवि० (८)

श्रीविद्यावि० (९) श्रीविचारवि० (१०) श्रीविचक्षणवि० (११) श्रीमित्रवि० (१२) श्रीसमुद्रवि० (१३) श्रीसागरवि० ये सब आपके ही परिवारके थे। इनके उपरांत शांतमूर्ति १०८ श्रीहंसविजयजी महाराजके शिष्य दौलत विजयजी अपने शिष्य श्रीधर्म वि० और प्रशिष्य श्रीकपूरवि० सहित आपके साथहीमें थे। इस तरह कुल १६ साधु थे।

लालबागके उपाश्रयमें पहुँचकर आपने जो उपदेश दिया था उसे सुनकर सभी एक स्वरसे बोल उठे कि, जैसी प्रशंसा सुनते थे उससे भी बढ़कर प्रशंसा करने योग्य आपकी व्याख्यानशैली है।

ज्येष्ठसुदी ८ के दिन स्वर्गीय गुरुदेव श्रीआत्मारामजी महाराजकी जयन्तीपर आपने जो व्याख्यान दिया था उसमें गुरुदेवका चरित्र वर्णन करनेके पहले कहा था—"व्याख्यानका या महात्माओंके चरित्र सुनानेका मूल्य तभी होता है जब महात्माओंके पद्चिन्हों पर चलनेका प्रयत्न किया जाता है। एक कानसे सुनना और दूसरे कानसे निकाल देना इससे कोई व्यावहारिक लाभ नहीं। महात्माओंके चरित्र हमें अपने साध्यको सिद्ध करनेमें बहुत बड़ी सहायता देते हैं। जंगलमें रस्ता भूले हुए आदमीको जैसे आदमीके पद्चिन्ह सरल मार्ग पर पहुँचा देते हैं, वैसे ही संसार रूपी जंगलमें भटकते हुए लोगोंको, महात्माओंके चरित्रोंसे सत्य और सरल मार्ग मिल जाता है और वे सीधा मोक्षका रस्ता पकड़ लेते हैं। मैं

आशा करता हूँ कि, गुरुदेवका चरित्रश्रवण तुम्हें भववंधनसे मुक्त होनेमें मददगार होगा।"

इसके बाद आपने गुरुदेवका जीवन संक्षेपमें सुनाकर उपसंहार करते हुए कहा थाः—"महाराजके चरित्रसे साधु और श्रावक वहुत कुछ सीख सकते हैं। महाराजश्रीके विहारका प्रमाण, उनकी उपदेश करनेकी रीति, स्वतंत्र और सत्य भाषण, जगत्के मान और कीर्तिकी आश्चर्यकारक उपेक्षा, अन्य धर्मावलंवियोंको, लड़ाई झगड़ा किये वगैर अपनी वात समझानेकी और उनके हृदयोंपर प्रभाव डालनेकी रीति, और जैन कौममें शान्ति रखनेकी अपूर्व शक्ति आदि गुण साधुओंके लिए अनुकरणीय हैं। यदि साधु अभी समझानेकी जो रीति है उससे भी उत्तम रीतिके साथ दूसरे धर्मवालोंको समझावें और अपने धर्ममें शामिल करें तो जैनियोंकी संख्यामें ज्यादती हो सकती है। श्रावकोंको भी ध्यानमें रखना चाहिए कि गुरुदेवने वचपनहीमें, जव दुनियाको, नापायदार-असार समझा तव तत्काल ही छोड़ दिया। इस लिए श्रावकोंको भी यह नियम कर लेना चाहिए कि वे सत्यको ही श्रेष्ठ और अपना समझें, अपनेको ही सत्य और श्रेष्ठ न मान वैठें। सभी हमेशा धर्ममें प्रवृत्ति रक्खें। धनवान सदा गरीवोंके दुःख दूर करनेका खयाल रक्खें। प्रत्येकका कर्तव्य है कि, वह धर्मकाममें आगे आवे और यथासाध्य कलहसे दूर रहे।"

सं० १९७० के आषाढ़ महीनेमें माँगरोल जैन सभा की तरफ़से एक सार्वजनिक सभा लालवागमें बुलाई गई थी। उसका विषय था–' सात क्षेत्रोंमें पोषक क्षेत्र कौनसा है?' इसमें आपने यह सिद्ध किया है कि, श्रावक क्षेत्र ही सबका पोषक है इस लिए पहले इसको परिपुष्ट करना आवश्यक है। यदि यह परिपुष्ट होगा तो अन्य छहों क्षेत्रोंका इसके द्वारा पोषण हो सकेगा। पूरा व्याख्यान उत्तरार्द्धमें दिया गया है।

इस चौमासेमें अठाई महोत्सव, शान्ति स्नात्र, पूजा प्रभावना आदि धर्म कार्य अच्छे हुए। उपधान भी हुए। उपधानमें यह विशेषता थी कि, किसीके सिर किसी तरहका कर नहीं था। गरीव अमीर सब एक दृष्टिसे देखे जाते थे। क्रिया करानेवाले साधुओंको क्रियाएँ करा देनेके सिवा और किसी बातसे मतलब नहीं था।

जमाना है नाम मेरा तो, सबको दिखा दूँगा।
जो तालीमसे भागेंगे, नाम उनका मिटा दूँगा॥

संसारमें शिक्षाके विना किसीका काम नहीं चल सकता; न धर्म सध सकता है और न व्यवहार ही। वर्तमानमें तो इसकी आवश्यकता अत्यधिक बढ़ गई है। चारों तरफ़ शिक्षाकी पुकार है। जमाना विकासकी तरफ आगे बढ़ता जा रहा है। धर्म और वर्तमान सभ्यतामें बड़ा भारी संघर्ष हो रहा है। आधुनिक सभ्यताका जोर इतना अधिक हो गया है कि, धर्म

त्राहि त्राहि पुकार उठा है । ऐसी दशामें धर्मकी रक्षाके लिए इस बातकी हदसे ज्यादा जरूरत है कि आधुनिक सभ्यताका पाठ पढ़नेवालोंको साथ ही धार्मिक पाठ भी पढ़ाये जायँ; धर्मका वास्तविक स्वरूप आधुनिक सभ्यताकी आँखोंमें दिखाया जाय जिससे लोग इस बातको भली भाँति समझ जायँ कि, धर्म और आधुनिक सभ्यतामें कितना अन्तर है ? वे समझ जायँ कि जितना अन्तर सूर्य और जुगनूमें है; जितना अन्तर प्रकाश और अंधकारमें है; जितना अंतर सोने और पीतलमें है; जितना अन्तर गुलाब और गूलरके फूलोंमें है उतना ही अन्तर धर्ममें,—जैनधर्ममें,—मनुष्य धर्ममें और स्वार्थपर वर्तमान सभ्यतामें है । यह बात हमारे चरित्रनायकने भली भाँतिसे बंबईके श्रावकोंके हृदयमें बिठा दी । श्रावकोंने भी इस बातको कार्यरूपमें परिणत करनेका प्रयत्न प्रारंभ किया । समाचार पत्रोंमें इस बातके प्रकाशित होनेपर अनेक मुनिमहाराजाओंने भी आपके पास प्रशंसाके पत्र भेजे थे । उनमेंसे एक यहाँ उद्धृत किया जाता है ।

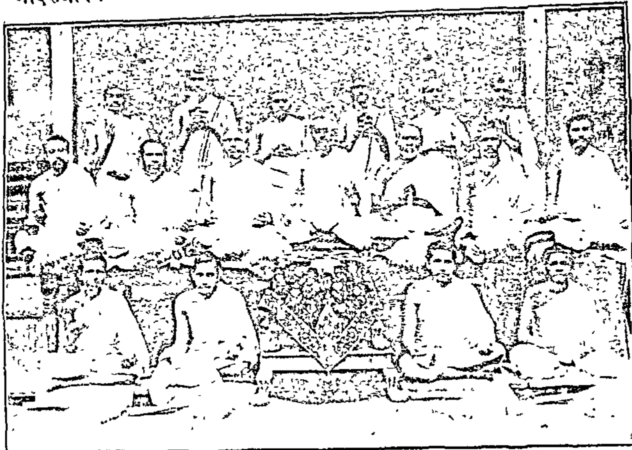
२४३९ ता. ३०–७–१३

१८

मु० अंबाला सिटी

२४३९ वंदे वीरम्

आ० १८



तपगच्छाचार्य श्रीमद्विजयवल्लभ सूरिजी महाराज मुनिमंडलसहित बम्बई में।

पृ. २५७.

अनेक मुनिगण विभूषित, मुनिगणसेवित चरणकमल श्रीमान् श्रीमुनि वल्लभविजयजी महाराज योग्य सेवक लब्धिकी वंदना मंजूर हो। बाद प्रयोजन पत्र लिखनेका आपकी सुख-साताके समाचार विदित होवें यही है; क्योंकि बिना इस पत्र लिखनके आपका समाचार दुर्लभ समझा गया सो यकीन है पूरण होगा।

सुखसाताके समाचारातिरिक्त धर्मोन्नति किस प्रकार हो रही है यह भी शिष्यद्वारा लिखानेकी कृपा करनी। जैनमें वल्लभविजयजी महाराज और जैन प्रगति शीर्षक लेखके पढ़नेसे मालूम हुआ कि, गुरु महाराजकी यादगारामें बंबईमें भी कोई निशानी जरूर होगी; क्यों न हो आप जैसे सत् गुरु चरण सर्वस्व जावें और उन परमोपकारीका नाम कयामत तक न भुलाने लायक सहस्र नवीनोंको फलदायक न हो तो फिर किसके जानेसे होगा? यदि हमारे संप्रदायिक इस संप्रदायके नेतामें किस्की परम भक्ति है ऐसा खयाल करें तो आप पर प्राण न्योछावरकरके कार्यको भी अकिंचित्कर समझने लगें यह मेरा पूर्ण विश्वास है।

समाचार देते रहना विहारके सबबसे नाहीं मैं कोई पत्र लिख सका और नाहीं आपका चलो इतना काल सुषुप्तिमें ही समझ लूँगा अब जागृतिका समय है। द० ल० वि०"

इस तरह सं० १९७० का आपका सत्ताईसवाँ चौमासा बंबईमें हुआ।

× × × ×

(सं. १९७१ से ७५ तक.)

चौमासा समाप्त होनेपर आपने विहारकी तैयारी की। समाजमें खलवली मच गई। धनी गरीव सभी तरहके श्रावक आकर आपसे दूसरा चौमासा भी बंबईहीमें करनेकी विनती करने लगे, और कहने लगे कि,–" आपने जिस नवीन भावनाका अर्थात् कॉलेजोंमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके लिए, वर्तमान–शिक्षाके साथ ही धर्मकी शिक्षा भी दी जा सके ऐसा प्रबंध करनेका जो उपदेश दिया है उसको कार्यरूपमें परिणत करानेके लिए आपका यहाँ होना आवश्यक है।" यह जिकर व्याख्यानके समयका है।

बंबईके श्रीसंघकी प्रेरणासे आपने श्रीपंचपरमेष्ठीकी पूजा तैयार की थी। उसी रोज लालबागमें बड़ी धूमधामके साथ पूजा पढ़ाई जानेवाली थी। इस लिए दुपहरके वक्त पूजामें आनेके लिए सभी भाई वहनोंसे कहा गया

सेठ हेमचंद भाईने पूजाका सारा खर्च दिया था। पंचपरमेष्ठीके १०८ गुणके अनुसार सामग्रीकी १०८ थालियाँ तैयार की गई थीं। छत्तीस स्नात्री बने थे जो थाली लिए साक्षात् इन्द्रके समान सुशोभित होते थे। स्नात्रियोंमें सेठ हेमचंद भाई, सेठ देवकरण मूलजी, सेठ मोतीलाल मूलजी, सेठ नगीनभाई मंछूभाई, सेठ लल्लूभाई गुलावचंद, सेठ गोविंदजी खुशाल, जौहरी मणिलाल सूरजमल, मोती-चंदजी कापडिया सॉलिसिटर आदि बंबईके प्रतिष्ठित धर्मात्मा गृहस्थ थे। इससे भी पूजाका आनंद अत्यधिक बढ़ गया था।

पढ़ानेवाले थे मास्टर प्राणसुखलाल गवैया और सूरतवाले विजयचंद भाई आदि। सुरीले कंठोंने सभीके ऊपर जादूसा कर रक्खा था। भाईचंद भाई पहलवान और मंगू भाई दोनों श्रावक नृत्यकर अपनी प्रभुभक्ति प्रदर्शित कर रहे थे। उस वक्त ऐसा समा बँधा हुआ था, ऐसी तल्लीनता थी, जैसी रावणकी अष्टापद गिरि पर थी। इस आनंदको बंबईनिवासी आजतक स्मरण करते हैं।

अवसरके जानकार सद्व्रत सेठ नगीनभाई मंछूभाई बोलेः— "कृपानाथ! इस प्रकारकी पूजा, इस प्रकारके–सेठ देवकरण भाई जैसे––इतने स्नात्री और इसप्रकारका आनंद मेरे जीवनमें मैंन पहलीही वार देखा है। इस आनंदके कर्ता और ऐसे सौभाग्यका दिन दिखानेवाले आप ही हैं। ऐसा आनंददान कर आप विहार करनेकी वात करते हैं, इससे हमारे हृदयमें चोट पहुँचती है। आप अभी, कमसे कम अगले चौमासे तक यहाँसे विहार करनेका नाम न लें। इतनी हमारी प्रार्थना स्वीकार करें। आपके विराजनेसे श्रीसंघका उत्साह, और भी बढ़ेगा और आपके उपदेशसे उसने जो महान कार्य करना स्थिर किया है उसको भी पूरा कर सकेगा।"

वोलते वोलते नगीन भाईका दिल भर आया। जीवदयाप्रचारक सभाके मंत्री सेठ लल्लूभाईने थोड़े परन्तु ऐसे मार्मिक शब्दोंमें आपसे चौमासा वहीं करनेकी प्रार्थना

की कि उनके साथ ही प्रायः सभी भाई बहिन,—जो उस समय वहाँ उपस्थित थे और जिनकी संख्या लगभग तीन हज़ार थी,—गद्गद स्वरमें बोल उठे,—" महाराज ! आप दयालु हैं । हम पर दया करें और एक चौमासेकी भिक्षा तो अवश्यमेव देवें । आपके रहनेसे हमे अपूर्व लाभ होगा । "

आपने भी विचार कर देखा तो विदित हुआ कि, इस समय श्रावक उत्साहमें हैं, इस लिए वे अवश्यमेव कोई न कोई संस्था—धार्मिक संस्था—क़ायम कर सकेंगे । इस लिए अच्छा जैसी श्रीसंघकी इच्छा कह कर वहीं चौमासा करनेकी सम्मति दे दी ।

कुछ दिनके बाद एक संस्था स्थापित करना निश्चित हुआ । इस बातका विचार होने लगा कि, संस्थाका नाम क्या रक्खा जाय ? किसीने आपका नाम, किसीने स्वर्गीय आचार्य महाराजका नाम और किसीने संयुक्त नाम संस्थाके नामके साथ साथ रखनेकी सूचना दी ।

हमारे चरित्रनायकने स्पष्ट शब्दोंमें कहाः—" मैं संस्थाके साथ अपना नाम जोड़नेकी अनुमति तो किसी भी दशामें नहीं दे सकता । रही गुरु देवका नाम जोड़नेकी बात, सो इसके लिए यद्यपि मुझे किसी तरहका विरोध नहीं है; गुरु-देवके नामसे कोई भी संस्था कायम हो इसके लिए मुझे अत्यंत खुशी है; तथापि मैं यह कहे विना नहीं रह सकता कि संस्थाके नामके साथ अमुक व्यक्ति विशेषका नाम जुड़

जानेसे उस संस्थाकी सार्वदेशिकता नष्ट हो जाती है; वह एक पक्षकी रह जाती है और उसका परिणाम यह होता है कि, वह थोड़े ही दिनोंमें बंद हो जाती है। अतः ऐसा नाम रक्खा जाय, जिसको सभी मानें और जिससे संस्थाकी सार्वदेशिकता नष्ट न हो।"

इस बातको सबने माना और संस्थाका नाम 'श्रीमहावीर जैन विद्यालय' रक्खा गया। विद्यालयके लिए ५०१३०) रु० का चंदा भी हो गया।

सं० १९७१ के ज्येष्ठ सुदी ८ के दिन आपके सभापतित्वमें स्वर्गीय आचार्य महाराज श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरिजीकी जयंती मनाई गई थी। इस जयंतीमें आपने जो व्याख्यान दिया था वह अपूर्व है। उसे पढ़नेवालेके हृदयमें स्वर्गीय गुरु महाराजके प्रति श्रद्धा हुए विना नहीं रहती। वह व्याख्यान उत्तरार्द्धमें दिया गया है।

चौमासेमें अनेक तपस्याएँ हुईं। आनंद पूर्वक सं० १९७१ का अठाइसवाँ चौमासा बंबईमें समाप्त कर आपने सूरतकी तरफ विहार किया।

मार्गमें जीवोंको जिन धर्मामृत पिलाते हुए आप वगवाड़ा पधारे। इस इलाकेके कई गाँवोंमें मारवाड़ी और गुजराती श्रावकोंकी जुदा जुदा बस्ती है। जब कोई जातीय कार्य होता है तब सभी वगवाड़ेहीमें जमा होते हैं। इस इलाकेके श्रावकोंने यहीं एक भव्य जिनालय बनवा रक्खा है। मूल-

नायक अजितनाथ प्रभु विराजमान हैं। यात्रा-दर्शन करने योग्य है। यह स्टेशन उदवाड़ेसे ३-४ माइल और वापीसे ५-६ माइल है। आप पन्द्रह दिन तक वहाँ विराजे और लोगोंको शिक्षाप्रचारका उपदेश दिया।

लोगोंने आपसे प्रार्थना की,—"आप यहीं चौमासा करनेकी कृपा करें। हम यहाँ एक विद्यालय और छात्रालय बनवायँगे।"

आपने वहीं चौमासा करनेका विचार किया। मगर सूरतसे सेठ नगीन कपूरचंद जौहरीकी धर्म पत्नी अपने पुत्र और मुनीमको साथमें लेकर सूरत पधारनेकी विनती करने आई हुई थीं; क्योंकि माघ महीनेमें उद्यापन करना चाहती थीं। इस लिए उन्होंने अधिक आग्रहपूर्वक प्रार्थना की कि, आप उद्यापन होते ही वापिस यहाँ पधार जायँ और यहाँके लोगोकी मनोकामना पूरी करें। हो सका तो हम लोग चौमासेमें अन्यथा पर्युपणोंमें तो अवश्यमेव यहीं आयँगे। संभव है और भी भाई बहिन आवें।

वगवाड़ेके लोगोंने सोचा कि, ऐसे ऐसे सेठ अगर यहाँ आकर रहेंगे या दर्शनार्थ आवेंगे तो हमें भी कुछ लाभ हुए विना न रहेगा। इस लिए उन्होंने भी विनती की,—"आप आनंदसे सूरत पधारें। हम भी अपने इलाकेके सभी मुखिया भाइयोंको जमा कर सलाह कर लेते हैं। फिर आपके पास

विनती करनेके लिए सूरत आवेंगे। आप कृपा करके सूरतसे आगे न पधारें।

आपने फर्मायाः—" अच्छी बात है। फाल्गुन तक मैं तुम्हारी राह देखूँगा, फिर मेरी इच्छा।"

आप वगवाड़ेसे विहार कर वलसाड, पारडी, बिलीमोरा नवसारी आदि छोटे बड़े गाँवोंमें होते उपदेशामृत वरसाते और धर्मका जयजयकार कराते हुए सूरत पधारे। सूरत में बड़े समारोहके साथ आपका नगरप्रवेश हुआ।

महा वदी ५ सं १९७१ के दिन सूरतकी गोपीपुरा-वाली श्रावककी नई धर्मशालामें जौहरी नगीनचंद कपूर चंदकी तरफसे उद्यापन निमित्त शांतिस्नात्र पूजा थी। साधु साध्वी और श्रावक श्राविकाओंसे उपाश्रय भरा हुआ था। वयो वृद्ध पंन्यासजी महाराज (सांप्रत आचार्य महाराज १०८ श्रीसिद्धिविजयजी भी विराजमान थे। उस समय हमारे चरित्रनायकने स्त्रीशिक्षाके संबंधमें एक प्रभावोत्पादक व्याख्यान दिया था और असहाय श्राविकाओंके लिए एक श्राविका श्रम खोलनेकी आवश्यकता बताई थी। इस व्याख्यानका यह प्रभाव हुआ कि, वहीं आश्रम स्थापित करना निश्चित हो गया और उसके लिए साढ़े चार हजार रुपये उसी समय जमा हो गये। उस व्याख्यानका कुछ उपयोगी अंश हम आत्मानंदप्रकाशसे उद्धृत करते हैं:—

" सात क्षेत्रोंमें चार क्षेत्र (साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका) साधक हैं और तीन क्षेत्र (जिन प्रतिमा, जिन-मंदिर और ज्ञान) साध्य हैं। जैन समाजमें साध्य क्षेत्रोंकी प्रभावना उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है; परन्तु साधक क्षेत्र प्रति दिन क्षीण होते जा रहे हैं। उनमें भी श्रावक और श्राविका दो क्षेत्र जो दूसरे पाँच क्षेत्रोंके पोषक हैं उनकी क्षीणता अत्यधिक हो रही है। सभी मानते हैं और यह सच भी है कि, जैन बहुत ज्यादा धन खर्चते हैं; परन्तु हम दुखी होती हुई अनाथ स्त्रियोंका विचार करेंगे तो मालूम होगा कि वे बहुत ज्यादा दुखी हैं। उनके दुःख मिटानेके लिए जैनोंने कभी विचार नहीं किया। आजकल हरेक जातिने आश्रम खोले हैं और उनमें सैकड़ों अनाथ स्त्रियाँ-जो निकम्मी दुःखमें अपना जीवन बिताती थीं—अपना कर्त्तव्य पालनेके लिए तैयार हो रही हैं; मगर जैन समाजमें जो अनाथ अबलाएँ हैं उनके दिन किसी साधनके न होनेसे दुःखमें बीत रहे हैं। खेदकी बात है कि संघने अबतक इस तरफ ध्यान नहीं दिया। उजमणे, स्नात्र महोत्सव आदि ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी प्राप्तिके साधन हैं। इनसे जैसे अपना साध्य सिद्ध हो सकता है वैसे ही ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी आराधनके लिए अनाथ अबलाओंके साधनके लिए भी कुछ प्रबंध होना आवश्यक है।"

बंबईके श्रावकोंकी विनतीसे पं० जी महाराज श्रीललित-

विजयजीको महावीर जैनविद्यालयकी स्थापना करानेके लिए आपने सूरतसे बंबई भेजा और आप बगवाड़ेके दिये वचनको याद कर सूरतमें विराजे । परन्तु वहाँ कुछ होता नजर न आनेसे आपने जब सूरतसे विहार करनेकी इच्छा की तब सूरतके श्रावकोंने बड़े ही आग्रहके साथ चौमासा वहीं अर्थात् सूरतहीमें करनेकी विनती की । आपने देश कालका विचार कर चौमासा वहीं करना स्वीकार कर लिया ।

जब वहीं चौमासा करना स्थिर हो गया तब आपने सूरतके आस पासके गाँवोंके लोगोंको धर्मामृत पिलाना स्थिर कर सूरतसे विहार किया ।

आप विहार कर अनेक भव्य जीवों पर उपकार करते हुए सूरतके आस पास गाँवोंमें—जहाँ अनेक वर्षोंसे मुनिराजोंके दर्शन या विहार नहीं होते हैं—विचरण करते और अज्ञ जीवोंको प्रतिबोध करते हुए नवसारी और नवसारीसे कालियावाड़ होकर सीसोदरे पधारे । सीसोदरेमें—पालीतानेकी दुर्घटनाके कारण दुखियोंको मदद देनेके लिए उस समय कुछ चंदा हुआ था । वह अहमदाबाद भेज दिया गया था । उसको लेकर वहाँके लोगोंमें कुछ तनाजा हो रहा था । आपने उसे उपदेश देकर मिटाया ।

सीसोदरा गाममें आपके पास पंजाबमें पधारनेका विनतीपत्र आया और अंबालानिवासी लाला गंगारामजी ऑनरेरी मजिस्ट्रेट आदि पंजाबके श्रावक भी आये । लालाजी

वगैरा पंजाबी भाइयोंको आपने उचित उपदेश और आश्वासन देकर विदा किया और एक विज्ञप्ति पंजाब श्रीसंघके नाम प्रकाशित कराई। वह यहाँ दी जाती है:—

"सकल श्रीसंघ पंजाबको जवाब।

श्रीवीतरागाय नमः।

सकल श्रीसंघ पंजाब योग्य धर्म लाभके साथ विदित हो कि, यहाँ सुख साता है धर्म ध्यानमें उद्यम रखना। आपकी तरफसे प्रार्थना पत्र तथा लाला गंगारामजी आदि श्रावक समुदाय मिले। समाचार ज्ञात हुए। आप फिक्र न करें। स्वर्गवासी, प्रातःस्मरणीय गुरु महाराज श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरि (आत्मारामजी) महाराजकी आज्ञाका बराबर पालन किया जायगा। चाहे आप विज्ञप्ति करें चाहे न करें। हमारा उस तरफ आनेका परिपूर्ण भाव है। देरी केवल इसी बातकी समझें कि श्रीगिरनारजीकी यात्रा अभी तक हुई नहीं है। श्रीनेमिनाथ स्वामीकी यात्रा होते ही उसी तरफ विहार समझ लीजिए।"

सीसोदरेमें व्याख्यानानन्तर विनती करते हुए पंजाबी भाइयोंमेंसे लाहोरनिवासी लाला मानकचंदने एक भजन—जो खास विनतीके लिये ही बनाकर लाये थे—इस तरह रोते हुए डुसके भर भर कर सुनाया कि जितने बाई भाई उस वक्त मौजूद थे सबकी आँखोंमें पानी भर आया। करुणार्द्र चेता हमारे चरित्रनायककी आँखें भी करुणारससे भीग गईं। सी-

सोदरावाले इस दृश्यको अबतक याद कर रहे हैं। हम चाहते थे कि उस भजनका आनंद हमारे वाचक वृंदको मिल-जावे इस हेतु और खास करके सीसोदरा निवासियोंको याद दिलानेकी खातिर हम उसे यहाँ उद्धृत कर देते मगर खेद है कि, वह हमें प्राप्त न हो सका।

सीसोदरेसे विहार कर आप अष्टगाँव नामक गाममें पधारे। वहाँ भी सीसोदरेके कारण फूट हो रही थी। आपने उसे मिटाई और वहाँका संघ, जो फूटके कारण, एकत्र 'सधर्मी वात्सल्य' जीमता न था सो जीमने लगा। वहाँ कोई जिनालय नहीं था, इस लिए आपके उपदेशसे वहाँके लोगोंने एक जिनालय बनाना स्थिर कर चंदा जमा करना शुरू किया। अष्टगाँवसे विहार कर सातम नामा गाममें कुछ रोज ठहर कर आप टाँकल गाममें पधारे। टाँकल गाममें भी कोई जिनालय नहीं था। आपने उपदेश देकर मंदिरके लिए चंदा करवाया।

टाँकलसे नोगामा होकर करचलिया पधारे। वहाँ श्राव-कोंके करीब पैंतीस घर हैं। तो भी किसी कारण वश कोई जिनमंदिर नहीं बन सका था। आपने उन्हें समझा बुझाकर मंदिर बनवानेके लिए तैयार किया। मंदिर नहीं बनानेका जो खास कारण गुजरातीके आत्मानंद प्रकाशमें प्रकाशित हुआ उसका अक्षरशः अनुवाद हम यहाँ देते हैं,—

"करचलियाके पास करीब एक कोसके फासले पर वाणियावाड़ नामका एक छोटासा गाँव है। वनियेका एक

भी घर नहीं है; किन्तु वहाँ जिनालय है इससे और उसके वाणियावाड नामसे साबित होता है कि, वहाँ पहले बनियों-की बहुत ज्यादा वस्ती होगी। मंदिरमें मूलनायक श्रीसंभ-वनाथ स्वामीकी प्रतिमा है। उनकी पलांठी (पाटली) पर इस अभिप्रायका एक लेख है कि, यह प्रतिमा नगधराके श्रीसंघने ब्यारामें भराई थी। इससे भी साबित होता है कि नगधरामें (?) श्रावक थे वे वहाँ रहते थे और इसी लिए उस मुहल्लेका नाम वाणियावाड़ हुआ था। कालांतरसे वहाँ धीरे धीर वस्ती कम होने लगी। वह यहाँ तक कम हुई कि वहाँपर बनियेका तो क्या किसी दूसरे उच्च वर्णवालेका घर भी नहीं रहा। थोड़ेसे घर वहाँ हलकी जातियोंके हैं। वे नहींके समान ही हैं।

पास ही होनेसे कर चलियाका श्रीसंध उपर्युक्त मंदिरकी सम्भाल रखता था। करचलियाके श्रीसंघको आसपासके श्राव कोंने कई बार कहा कि तुम प्रतिमाजीको अपने गाँवमें ले आओ; मगर कुछ प्रचलित दंतकथाओंके कारण उनकी हिम्मत चलती न थी। कहा जाता है कि, सं० १९२५ में एक श्रीपूज्यजी आये थे उन्होंने करचलियाके एक मुखिया श्राव कको कहा कि, प्रतिमाजाको करचलियेमें ले चलो। वह राजी हो गया। इस लिए श्रीपूज्यजीने प्रतिमाजीको गादीसे उठा कर म्यानेमें पधराया और म्याना करचलियाकी तरफ़ रवाना हुआ। वाणियावाड़से करचलिया आते मार्गमें एक छोटीसी

नदी है। उसमें हमेशा पानी रहता है। म्यानेवाले जब नदी-के बीचमें पहुँचे तब उनके पेटमें ऐसा जोरका दर्द हुआ कि, उनके लिए खड़ा रहना कठिन हो गया। उनकी आँखोंके आगे अंधेरा छागया। इससे वे एक कदम भी आगे न बढ़ सके। श्रीपूज्यजीको जब यह बात कही गई तब उन्होंने कहा,—"पीछे लौट जाओ।" पीछे फिरनेको उद्यत होते ही उनका दर्द जाता रहा और उन्हें आँखोंसे भी दिखाई देने लगा। तब श्रीपूज्यजीने कहाः—" अधिष्ठाताकी मरजी करचलिया जानेकी नहीं है।" सं० १९२६ में पुनः प्रभुको गद्दी पर स्थापित किया।

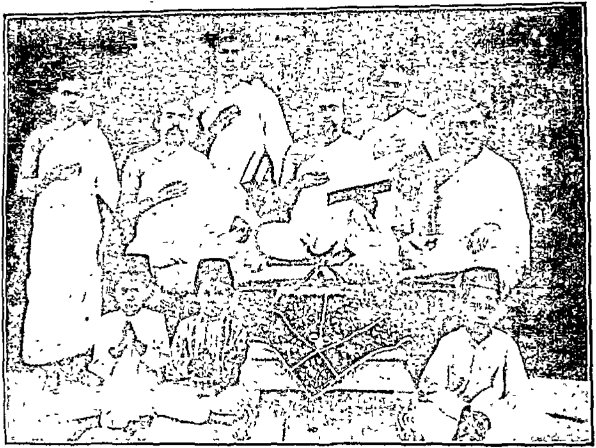
बीचमें फिर सलाह हुई कि, प्रभुको करचलियेमें ले आवें। संघने वाणियावाड़में जाकर चिट्ठियाँ डाल कर एक कुमारी कन्यासे निकलवाई; मगर संतोषजनक उत्तर न मिला। इत्यादि बातोंके कारण लोगोंके मनमें संदेह रहता था। + × × × उनके पुण्योदयसे मुनि श्री १०५ वल्लभविजयजी महाराजका उस तरफ पधारना हुआ। साठ साठ बरसकी आयुवाले कहते हैं कि, आजतक इधर किन्हीं मुनि महाराजका विहार नहीं हुआ था। पहली ही बार इधर पधारनेकी इन महाराजने दया की है। सत्य है यदि इधर मुनि महाराजोंका विहार होता तो यहाँके लोग लहसन, प्याज वगैरा अभक्ष खाने लग गये हैं सो न खाते। महाराजने उन्हें समझा कर उनसे अभक्ष्यका त्याग करवाया है। अस्सी फी सदीने अभक्ष्यका

त्याग कर दिया है। जो रहे हैं वे भी संभवतः शीघ्र ही कर देंगे। × × × × आपके उपदेशसे करचलियेके लोगोंने फिरसे निश्चित कर लिया कि वाणियावाड़से प्रभुको यहाँ लाकर पधराना और जो आशातना होती है उसे बंद करना। आपने फर्माया कि, हम विधिसहित प्रार्थना करेंगे, यदि करचलियेमें पधारनेकी अधिष्ठाताकी मरजी न होगी तो प्रतिमाजी स्थानसे उठेंगे ही नहीं।

सं. १९७२ के वैशाख सुदी ६ का मुहूर्त्त स्थिर हुआ। × × × × × विधि सहित, धूमधामके साथ प्रभुको रथमें विराजमान कर करचलियेमें ले आये। उस समय लोगोंमें अपूर्व उत्साह था। महाराजके प्रतापसे श्रावक श्राविकाओंको पूजा, दर्शन, भक्ति आदिका लाभ मिलने लगा। इससे वहाँके श्रावक आपका अत्यंत उपकार मानने लगे। × × × × × × × × ”

करचलियेसे विहार कर आप बुहारी आदि स्थानोंके लोगोंको धर्मामृत पिलाते हुए सं. १९७२ का उन्तीसवाँ चौमासा करनेके लिए सूरत पधारे और गोपीपुरेके उपाश्रयमें विराजे। उस समय आपके साथ (१) मुनि श्रीविमलविजयजी (२) मुनि श्रीविबुधविजयजी (३) मुनि श्रीतिलकविजयजी (४) मुनि श्रीविचक्षणविजयजी (५) मुनि श्रीमित्रविजयजी ऐसे पाँच साधु थे।

चौमासा बड़े आनंदसे धर्मध्यानमें समाप्त हुआ।



१००८ आचार्य श्रीमद्विजयवल्लभ सूरिजी महाराज सूरतमें   पृ. २७१.

मनोरंजन प्रेस, बम्बई नं. ४.

शान्त मूर्ति मुनि महाराज श्रीहंसाविजयजीका आपके पास एक पत्र अया था उसके उत्तरमें आपने जो पत्र लिखा था, उसमेंका सर्वोपयोगी भाग यहाँ उद्धृत किया जाता है: —

" + + + अपने लोग गफलतमें रह जाते हैं। यह सारा ही प्रताप अशिक्षाका है। यह आप जानते ही हैं। यदि एक भी अच्छा सुशिक्षित ऊँचे दर्जेका श्रावक हो तो सभी काम अच्छी तरह हो सकते हैं; मगर अफ्सोस इस बात का है कि, लाखों श्रावकोंमें एक भी ऐसा नहीं है जिसका प्रभाव चाहिए वैसा, प्रत्येक स्थानके श्रावकों पर पड़ सके। ऐसा होनेपर भी लोगोंकी नींद नहीं टूटती। यह दशा शोचनीय है। हजारों लाखों रुपयोंकी आहुति प्रति वर्ष बाजे गाजे राग रंग और मेवामिष्टान्न उड़ानेमें होती हैं। मगर शिक्षाके नाम तो बस भगवानकानाम ही है। अब तो आप जैसे प्रतापी पुरुषोंका इस तरफ ध्यान जाय और निरंतर चारों तरफसे यह उपदेश होने लगे कि, अमुक कार्य तुम्हें करना ही पड़ेगा, तो संभव है हमारे लिए कभी सिर उठाकर देखनेका समय आ जाय अन्य था, अभी तो मुँहपर तमाचा मारकर लाल मुँह रखने जैसी बात हो रही है। इस बातको आप मुझसे अधिक जानते हैं। आपको विशेष लिखना मानों सरस्वतीको पढ़ाने बैठना है।"

महेसानेके श्रावकोंने एक शिक्षाकी योजना तैयार करके आपके पास भेजी थी। उसके उत्तरमें आपने जो सम्मति दी थी, वह यहाँ उद्धृत की जाती है:—

" तुम्हारी योजना देखी। इसमें कोई संदेह नहीं कि, वह बहुत ही अच्छी और लाभदायक है। मगर पहले ऐसे शिक्षक उत्पन्न करनेकी आवश्यकता है कि, जो छोटी उम्रके विद्यार्थियोंके हृदय तुम्हारी योजनाके अनुसार बना सकें। शिक्षक सदाचारी और धर्मप्रेमी होंगे तो वे विद्यार्थियोंको भली प्रकार तैयार कर सकेंगे। मगर जहाँ शिक्षक लोभी हों, एक जगह बीस मिलते हों और दूसरी जगह पचीस मिल सकते हों तो पहली जगहको तत्काल ही छोड़ कर चले जाने वाले हों; स्वच्छंदता पूर्वक व्यवहार करनेवाले हों, जहाँ शिक्षक होकर आये हों वहाँ समुदायमें मेलकी जगह विरोध कराते हों; ऐसे शिक्षकोंका विद्यार्थियों और उनके मातापिताके दिलों पर कैसा प्रभाव पड़ता है सो बात विचारणीय है। इस लिए यदि तुम वास्तविक सुधार चाहते हो तो पहले सच्चे शिक्षक तैयार करो × × × + + + शिक्षकोंके बिना तुम चाहे कैसे ही नियम तैयार करो वे सर्वथा निरुपयोगी हैं; क्योंकि विद्यार्थियोंको किस मार्ग पर चलाना यह बात सदा शिक्षकोंहीके हाथमें रहती है। × × + × + तुम्हारा आशय और प्रयास बहुत ही अच्छा और अनुमोदन करने लायक है। "

उपर्युक्त विचारोंसे पाठकोंको पता चलेगा कि, शिक्षाके विषयमें आपके विचार कैसे हैं ? जैन समाजको शिक्षित बनानेकी आपके हृदयमें कितनी लगन है।

सूरतसे विहार कर विचरते हुए आप पोससुदी १२ के

दिन खंभात पधारे। समारोहके साथ आपका स्वागत हुआ। वहाँ आप नई धर्मशाला (उपाश्रय) में ठहरे। वहाँ आपकी गृहस्थावस्थाकी भानजी श्रीमती चंचलवहिनको माघ वदि ६ सं० १९७२ के दिन वड़े समारोहके साथ दीक्षा दी। नाम चंद्रश्रीजी रक्खा। साध्वी देवश्रीजीकी शिष्या हुई।

खंभातसे विहार कर आप धोलेरा पधारे। वहाँसे मुनि श्रीविलासविजयजी और साध्वीजी श्रीचंद्रश्रीजीको पं० महाराज श्रीसोहनविजयजीने वड़ी दीक्षा दी।

धोलेरासे विहार कर ग्रामानुग्राम विचरते और लोगोंको धर्मामृत पिलाते हुए आप दादाकी चरण वंदना करने पालीताने पधारे।

पालीतानेसे विहार कर आप विचरते हुए जूनागढ़ पधारे वहाँ वड़े समारोहके साथ आपका सामैया हुआ। उस समय आपके साथ पन्द्रह साधु थे। उनके नाम ये हैं (१) पं० श्रीसोहनवि० (२) श्रीललितवि० (३) श्रीविमलवि० (४) श्रीविबुधवि० (५) श्रीतिलकवि० (६) श्रीविद्यावि० (७) श्रीविचारवि० (८) श्रीविचक्षणावि० (९) श्रीमित्रावि० (१०) श्रीसमुद्रवि० (११) श्रीविलासवि० और (१२) श्रीप्रभावि० ये सव आपहीके परिवारके हैं। इनके उपरांत (१३) श्रीविनयवि० (१४) श्रीकेसरवि० ये दोनों १०८ श्रीउपाध्यायजी महाराज श्रीवीरविजयजीके शिष्य और (१५) १०८ श्रीउद्योतविजयजी महाराजके शिष्य श्री कस्तूर विजयजी थे।

आनंद पूर्वक बाल ब्रह्मचारी श्रीनेमिनाथ भगवान की यात्रा की। बारह दिन तक आप वहाँ विराजे। तीन सार्व-जनिक व्याख्यान भी हुए। एक महावीरजयंती पर, दूसरा सरकारी हाइ स्कूलमें और तीसरा वीसा श्रीमाली जैन बोर्डिंगके पारितोषिक-वितरणकी सभामें।

बंबईके जैन मूर्तिपूजक समाजमें सेठ देवकरण मूलजी विशेष प्रसिद्ध हैं। हमारे चरित्रनायकके वे अनन्य भक्त हैं। उनको हमारे चरित्रनायकने ता. ३-५-१६ के दिन एक पत्र लिखा था और उसमें आपने शिक्षाप्रचारमें खास तरहसे धन खर्चनेका उपदेश दिया था। उसके उत्तरमें ता. ५-५-१६ को उन्होंने लिखा थाः—"++++ मुझे आपने शिक्षाप्रचारके लिए जो कुछ लिखा है वह सर्वथा योग्य है। वर्त्तमान समय अनेक दलीलें देकर शिक्षाकी आवश्यकताको प्रमाणित कर रहा है। मैं अब जो कुछ शिक्षाप्रचारका कार्य करना चाहता हूँ, वह आपकी सलाहसे ही करूँगा। मेरी गरीब जन्मभूमि सौराष्ट्रके जैनियोंके साथ मेरी पूर्ण सहानुभूति है; क्योंकि शिक्षाके अभावसे उनकी स्थिति बहुत ही दयाजनक है। आपकी आज्ञाके अनुसार जुदा जुदा स्थानोंमें थोड़ी थोड़ी रकम न खर्च, जहाँ शिक्षाका सर्वथा अभाव है वहीं इकट्ठी खर्चूंगा। आपके पास आकर आपकी सलाहके अनुसार यथायोग्य करनेकी इच्छा है।

"++++ वनथलीमें शीतलनाथ प्रभुके पाट महोत्स-

वका सुनहरी दिन जेठ सुदी ६ का है। उस समय वनथलीमें जयंती करनेकी इच्छा है। उस समय आप समग्र पूज्य मुनिवरोंकी उपस्थिति होगी तो मैं और वनथलीका संघ विशेष रूपसे धर्मकी उन्नति कर सकेंगे। + × + + + "

आपका विश्वास है कि, जैन धर्मकी उन्नति तबतक न होगी जबतक सारे जैनियोंका कोई अच्छा संगठन न होगा। इस विचारके अनुसार ही आपने श्री जैनश्वेतांबर कॉन्फरंसमें पंजाबके श्रीसंघको शामिल होनेका उपदेश दिया और उसके अनुसार ही पीछेसे भी आप जहाँ तहाँ इस कॉन्फरंसको दृढ बनानेका उपदेश देते रहे हैं।

सं० १९७२ चैत्र वदी ४, ५, ६ के दिन बंबईमें उपर्युक्त कॉन्फारसका अधिवेशन हुआ था। उस समय आपने स्वागत समिति (Reception committee) के मंत्रीके पास सहानुभूति प्रदर्शक एक पत्र भेजा था और उसमें दो बातों पर कॉन्फरेंसको खास ध्यान देनेके लिए लिखा था। पहली बात यह थी कि,—कॉन्फरेंसको जितना हो सके उतना, अपनी सारी शक्ति लगा कर, शिक्षाप्रचारका कार्य करना चाहिए। दूसरी बात यह थी कि,—कॉन्फरंसको झगड़ेकी बातोंसे सदा दूर रहना चाहिए।

कॉन्फरेंस समाप्त होनेके बाद श्रीयुत मोतीचंद गिरधर लाल कापडिया सोलिसिटरने भावनगरसे हमारे चरित्रनाय-

कके पास जो पत्र भेजा था उसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं,—

" आपका पत्र कॉन्फरंसमें ढड्ढाजीने सारा पढ़ा था। उसे सुनकर सबको प्रसन्नता हुई थी। + + + + +

" + + + + आपकी कृपासे कॉन्फरंसका कार्य पूर्ण हुआ। नींव मजबूत बनी। आगे पालनपुर जानेकी इच्छा है। पालनपुर आपका क्षेत्र है। आप पर वहाँके लोगोंकी बड़ी भक्ति है। हम सभी चाहते हैं कि पालनपुरमें, कॉन्फरंसके समय, आप उपस्थित होंगे। + + +

" + + + + आपने विद्यालयके कार्यसे हमें एक सबक सिखलाया है कि, दृढ मनसे काम किया जाय तो सब कुछ मिल जाता है। कॉन्फरंसके समयमें दूसरी बार उसका अनुभव हुआ है। यदि आपके समान सर्वत्र विशाल विचार हों तो उदय शीघ्र ही दिखाई दे। अनेक कठिनाइयोंके बीचमें कार्य करना है। काम धीरे धीरे आगे बढ़ेगा। + + + + "

आपने जब जूनागढ़से विहार किया तब वहाँका जैनसंघ ही नहीं अन्यान्य धर्मावलंबी भी उदास थे। सब चाहते थे कि आप वहीं चौमासा करें; किन्तु आप जामनगरकी तरफ जानेका इरादा रखते थे, इस लिए आपने पंन्यासजी महाराज श्रीललितविजयजीको तो पहले ही रवाना कर दिया था फिर आपने भी विहार किया। और वनथली पहुँचे।

जेठसुदी ६ सं० १९७३ के दिन वनथलीमें शीतलनाथ

प्रभुकी प्रतिष्ठा महोत्सवकी सालगिरह थी। हमारे चरित्रनायकके सभापतित्वमें उत्सव हुआ। शिक्षाके विषयमें आपका उपदेश हुआ। उसमें सेठ देवकरण मूलजीने पचास हजार रुपये जूनागढ़के 'श्रीवीशा श्रीमाली जैनबोर्डिंगहाउस' को दिये। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि,-यदि सौराष्ट्रके जैन इस बोर्डिंगके लिए पचीस हजार रुपये जमा करेंगे तो वे पचास हजार रुपये और भी देंगे।

वनथलीसे जामनगर जानेके लिये विहार करके आप छत्रासा गाममें पधारे। वहाँ आपके साथके एक मुनि महाराजकी तबीअत खराब हो गई। इस लिए उनका इलाज कराने फिरसे जूनागढ़ जाना पड़ा। चौमासेके दिन निकट आ गये थे, इस लिए आपने जामनगर जानेका विचार छोड़ दिया और वैरावलके श्रीसंघकी विनती स्वीकार कर ली। कुछ साधुओंका, आपने, वैरावलकी तरफ़, विहार भी करवा दिया।

क्षेत्रस्पर्शना प्रबल होती है। जहाँकी होती है वहीं मनुष्यको -चाहे वह महान हो या साधारण-जाना और रहना पड़ता है। स्पर्शना जूनागढ़की थी, फिर आप वहाँसे अन्यत्र जा कैसे सकते थे? रुग्ण मुनिजीकी तबीअत और भी ज्यादा खराब हो गई। जूनागढ़का संघ तो पहलेहीसे यह चाहता था कि, आपका चौमासा वहीं हो, अब तो विशेप आग्रहके साथ उसने विनती की कि, आप यहीं चौमासा करना स्वीकार करें। मुनि महाराज जबतक नीरोग न होंगे तबतक हम आपको यहाँसे विहार न

करने देंगे। परिस्थिति देखकर आपने वहीं चौमासा करना स्थिर कर लिया।

जब वैरावलवालोंको यह बात मालूम हुई, वे बड़े उदास हुए। वहाँके कुछ श्रावकोंने आकर वैरावलमें किन्हीं महात्माको चौमासेके लिए भेजनेकी विनती की। आपने उनकी विनतीको स्वीकार कर पं० सोहनविजयजी महाराजको वहाँ चौमासा करनेके लिए भेज दिया। उनके साथ मुनि श्रीविद्याविजयजी महाराज, मुनि श्रीविचारविजयजी महाराज, और मुनि श्रीसमुद्रविजयजी महाराजको भेज दिया।

आपने सं० १९७२ का तीसवाँ चौमासा जूनागढ़में किया।

आपके साथ (१) मुनि श्रीविमलविजयजी महाराज (२) मुनि श्रीकस्तूरविजयजी महाराज (३) मुनि श्रीविबुधविजयजी महाराज (४) मुनि श्रीविचक्षणविजयजी महाराज ऐसे चार साधु थे।

इस चौमासेमें धार्मिक क्रियाएँ पूजा प्रभावनाएँ, अठाई, एकासन, व्रत, छठ, अट्ठम आदि अच्छे हुए थे।

बंबईके श्रीजीवदया ज्ञानप्रसारक फंडकी तरफ़से वहाँ ता० २-६-१६ को एक सार्वजनिक सभा हुई थी। उस सभाके सभापतिका स्थान आपने सुशोभित किया था।

ता० १६-६-१६ का लिखा हुआ जैनशासनके संपादकका आपके पास एक पत्र आया था। उसमें लिखा था कि,—" आप बालकोंको सुशिक्षित बनानेके लिए इतना परि-



१००८ आचार्य महाराज श्रीमद्विजयवल्लभसूरिजी पंजाब काठियावाडके श्री संघ तथा विनयविजयजी म०
आदि मुनिमंडलसहित (गिरनार तीर्थपर) पृ. २७८.

श्रम करते हैं इसके लिए बालक आपके अनन्य ऋणि हैं और उसमें मेरा भी हिस्सा है।"

सेठ देवकरण मूलजीको उनकी उदारताके उपलक्षमें बंबईमें एक मानपत्र दिया गया था। उसके बाद ता०२–८–१६ को उन्होंने हमारे चरित्रनायकके पास एक पत्र भेजा था। उसको हम यहाँ देते हैं,—

" × × × × × बंबईमें मेरे प्रेमी ज्ञातिबंधुओंने मुझे मानपत्र दिया था। उसके संबंधमें आपका एक उपदेशप्रद और स्तुतिपात्र तार हमारी ज्ञातिके प्रमुख पाटलिया पानाचंद झीणाभाईके पास आया था। वह सभामें पढ़कर सुनाया गया था। उसके लिए, मैं आपका अन्तःकरणपूर्वक, जो कभी भूला न जाय ऐसा, उपकार मानता हूँ और आप पवित्र गुरु महाराजको अभिवंदन करता हूँ।

विशेष यह है कि, मैंने अपने गरीब जातिभाइयोंके हितके लिए जो कुछ थोड़ीसी सखावत की है, वह आपके पवित्र उपदेशके कारण ही की है। इस लिए वास्तविक मानके योग्य तो आप हैं, मैं नहीं।

जूनागढ़ बोर्डिंगके लिए श्रीमहावीर जैनविद्यालयकी तरह, देशकी स्थितिको देखकर आप उत्तम कार्यक्रमकी योजना कर देंगे ऐसी आशा है।"

पाठक जानते ही हैं कि, हमारे चरित्रनायकके जीवनका

मुख्य ध्येय, मुक्तिसाधनसे दूसरे नंबरका यदि कोई है तो वह शिक्षाप्रचार ही है। जहाँ कहीं जाते हैं और जहाँ कहीं आप चौमासा करते हैं वहीं पाठशाला पुस्तकालय आदि ज्ञानके साधन लोगोंके लिए उपस्थित किये विना नहीं रहते।

जूनागढ़में भी आपके उपदेशसे दो संस्थाएँ कायम हुईं। एकका नाम है 'श्रीआत्मानंद जैनलायब्रेरी' और दूसरीका नाम है 'जैनस्त्रीशिक्षण शाला' इन संस्थाओंकी उद्घाटन क्रिया ता. २५–९–१६ के दिन आपहीके हाथसे हुई थी। लायब्रेरीके लिए संघने चंदा एकत्रित किया था और शाला डॉक्टर त्रिभुनवदास मोतीचंदके पुत्र सेठ प्रभुदास तथा छोटालालने, अपने स्वर्गीय बंधु जगजीवनदासके स्मरणार्थ, १००००) दस हजार रुपये देकर स्थापित करवाई थी। शालाका खर्चा इन्हीं दस हजारके व्याजसे चलता है।

चौमासा समाप्त होने आया तब जामनगर श्रीसंघने विनती की कि–चौमासेमें हमारे अन्तरायके उदयसे आप न पधार सके; मगर अब जरूर पधारनेकी कृपा करें।

हमारे चरित्रनायक जबसे पंजाबको छोड़ आये तबसे पंजाबका श्रीसंघ बहुत व्याकुल था। पंजाबमें मुनियोंके अभाव श्रावक लोग पूर्णरूपसे धर्माराधन नहीं कर सकते थे। इस लिए हमारे चरित्रनायकके पास पंजाबमें पधारनेकी विनती करने जानेके लिए श्रीआत्मानंद जैनसभा अंबालाके सभापतिकी तरफ़से पंजाबके प्रत्येक शहरके संघके पास जो

पत्र भेजा गया था, उसका उपयोगी अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं,—

भारत वर्षके बीचमें, वल्लभ दीनदयाल।
जिस नगरीमें जा रहें, करते उसे निहाल॥

".+++++ करीब नौ साल हुए हैं, जबसे श्री श्री मुनि महाराज श्रीवल्लभविजयजी महाराज पंजाबसे गुजरातकी ओर पधारे तबसे उनके पश्चात् ही लगभग दूसरे सब मुनिराज भी पंजाबसे गुजरातकी ओर पधार गये हैं। इस नौ सालके अवसरमें साधु मुनिराजोंके पंजाबमें न होनेसे धर्मोन्नतिमें जो कुछ बाधा पड़ी है वह सब आप महानुभावों-पर विदित ही है। कई बार पंजाबकी तरफसे अलग अलग मुनिराजोंकी सेवामें पंजाब पधारनेकी विनती की गई; मुनि-राज श्रीवल्लभविजयजी और उनके शिष्योंके सिवाय अन्य सभी मुनिराजोंका यही संकल्प मालूम हुआ कि, वे पंजाब-में नहीं पधारेंगे। मुनिराज श्रीवल्लभविजयजीकी सेवामें भी उस तरफ़के लोगोंकी विनती प्रायः अधिक हुआ करती है और उनका प्रभाव पड़ता रहता है। इस लिए उनको पंजाब पधारनेमें देर और बाधा हो जाती है।+++ पंजाबकी दशाका ध्यान करके, विना मुनिराजोंके, कैसी हानि हो रही है यह सोचके, अंबालेके श्रीसंघने यह सलाह की है कि,— पंजाबके हरेक शहरके कुछ मुखिया भाई इकट्ठे होकर जूना-गढ़ जायँगे और पंजाबमें पधारनेकी विनती करेंगे ते

आशा है कि महाराजजी अपने शिष्यों सहित पंजावको शीघ्र ही पवित्र करेंगे + + + + + + ”

तदनुसार पंजाव संघके करीव एक सौ मुखिया आपके पास विनती करनेके लिए जूनागढ़ आये । आप कार्तिक सुदी १५ से ही गिरनार पर विराजमान थे । संघ मार्गशीर्ष वदी प्रथम ४ को आपके चरणोंमें उपस्थित हुआ । उस दिन पूजा, यात्रा, प्रभावनादि कर, दूसरे दिन संघने व्याख्यानके वाद जिस आधीनता, नम्रता और भक्तिपूर्ण हृदयके साथ पंजावमें पधारनेकी आपसे प्रार्थना की, उसको देख सुनकर समस्त उपस्थित सज्जन आनंदाश्रुसे अपने नेत्रोंको तर किये विना न रह सके अनेकोंके तो उन अश्रुओंने कपोलोंको भी प्लावित कर दिया ।

वंवईके श्रीसंघकी भी कई दिनोंसे साग्रह विनती हो रही थी । इस लिए आपने फर्मायाः—“ यदि वंवईमें कोई धर्म और संघकी उन्नतिका कार्य मेरे जानेसे होनेकी संभावना होगी तो मैं पहले वंवई जाऊँगा और वहाँसे सीधा फिर पंजावकी तरफ विहार करूँगा । अव मुझे पंजावमें आया ही समझो । ”

मार्गशीर्ष वदि ५ को आप जूनागढ़में पधारे और ६ को वहाँसे वैरावलकी तरफ़ विहार किया ।

लोग आपको मार्गमें अनेक स्थानोंपर ठहरनेके लिए आग्रह करते थे; परन्तु वैरावलमें उपधानकी क्रिया हो रही थी,

मालाका मुहूर्त नजदीक था, इस लिए आप कहीं न ठहरकर सीधे वेरावल पधारे।

वेरावलमें बड़े समारोहके साथ आपका सामैया हुआ। कहा जाता है कि, वेरावलमें ऐसी धूम और ऐसे उत्साहके साथ इसके पहले किन्हींका सामैया नहीं हुआ था। बाजारकी सारी दुकानें सजाई गई थीं और शहर भरमें ध्वजा पताकाएँ लगवाई गई थीं। थोड़ी थोड़ी दूर पर गुहलियाँ (स्वागतगीत) गाई गई थीं। आपको कई लोगोंने सच्चे मोतियोंसे वधाया था।

आपके वेरावलमें पहुँचते ही मालाका महोत्सव प्रारंभ हो गया था। समवसरणकी और नंदीश्वरद्वीपकी रचना हुई थी। रथयात्रा भी बड़े ठाठसे हुई। उपधानकी माला पहननेके समय सच्चे मोतियोंसे साथिया पूरा गया और मोहरोंसे ज्ञानपूजा हुई।

आपके उपदेशसे वेरावलमें दो संस्थाएँ स्थापित हुई। एकका नाम है 'श्रीआत्मानंदजैनस्त्रीशिक्षणशाला' और दूसरीका नाम है 'श्रीआत्मानंदजैनऔषधालय' ये संस्थाएँ महा सुदी १० सं० १९७२ के दिन स्थापित हुई थीं। उस समय शालाके लिए स्वर्गीय सेठ कालिदास अमरसीकी विधवाने दस हजार रुपये और वेरावलकी श्राविकाओंने चार हजार रुपये दिये थे।

औषधालयके लिए आपहीकी खास प्रेरणासे तीस हजार

रुपये सेठ कल्याणजी खुशालने, अपने स्वर्गवासी पुत्र गुलाबचंदके स्मरणार्थ, दिये थे। उस औषधालयसे केवल जैन ही नहीं बल्के जैनेतर भी लाभ उठा सकते हैं।

आपने बंबईमें स्थापित महावीर जैन विद्यालयके लिए भी उपदेश देकर सहायता भिजवाई थी।

वैरावलसे विहारकर आप माँगरोल पधारे। माँगरोलमें अठाई महोत्सवादि हुए। माँगरोलमें अहमदाबादके श्रीयुत मोहनलाल मगनलाल जौहरीका एक पत्र आया था। उसमें लिखा था:—" किसी जिनालयमें, मूलनायकजीके सिवाय, सौ डेढ़ सौ वरस पहलेसे कोई प्रतिमाजी विराजमान हों उनको (प्रतिमाजीको) किसी ऐसे दूसरे मंदिरमें या किसी दूसरे तीर्थमें स्थापित करने दे सकते हैं या नहीं जिसमें लोग विशेषरूपसे दर्शनका लाभ उठा सकें। इस विषयमें आपका जो अभिप्राय हो लिख भेजनेकी कृपा करें।"

इसके उत्तरमें आपने भावनगरसे लिखा था:—" + + + हमारी सम्मतिमें यह कार्य बहुत ही उत्तम है। खुशीसे दे सकते हैं। जब जरूरतके माफिक मूलनायक भी—जिनके नामहीसे मंदिरादि सभी कार्य हुए होते हैं—एक जगहसे उठाकर दूसरी जगह, जहाँ विशेष उत्तम और अधिक भक्ति द्वारा अधिक लोगोंको लाभ हो,—दिये गये हैं, तब मूलनायकके सिवायकी तो बात ही क्या है? तुमको याद होगा कि उनासे, कावीसे, खंभातसे ऐसे अनेक स्थलोंसे दूसरी जगह, तुम लिखते

हो उसी तरह, प्रतिमाजी दिये गये हैं। वर्त्तमानमें, हमारी समझमें तो, नवीन प्रतिमाएँ वनवानेकी अपेक्षा प्राचीन प्रतिमाओंको पूजाके स्थानमें रखवाना और आशातना बंद करना विशेप उत्तम है। फिर जैसी जिसकी इच्छा। "

वेरावलके औपधालयके लिए आपने धोराजीके एक जैन डॉक्टर श्रीयुत शेपकरणजीको नियुक्त करनेकी वात कही और उन्हें वैरावल जानेके लिए लिखा। उसके उत्तरमें उन्होंने वहाँ जानेमें अपनेको असमर्थ वता लिखा है:—" जैन जातिके लिए जैसा आपका प्रयत्न है, वैसा ही उच्च प्रयास यदि दूसरे साधु करें तो हम लोग वहुत अच्छी स्थितिमें पहुँच जायँ। इस लिए सभी साधुओंके अन्तःकरणमें आपही कीसी इच्छा प्रकट हो, यह मेरी आन्तरिक अभिलापा है। "

माँगरोलसे आप वापिस वैरावल पधारे। वैरावलसे सिद्धाचलजीकी यात्राके लिए संघ निकला। आप संघके साथ उना, द्वीपवंदर, महुआ, दाठा, तालध्वजगिरि आदिकी यात्रा करते हुए पालीताने पधारे और दादाकी यात्रा की।

वहाँपर आपके पास वंवईके गौड़ीजीके उपाश्रयके संघका चौमासेके लिए जो विनतीपत्र आया था, उसकी नकल यहाँ दी जाती है। उसको पढ़नेसे पाठकोंको यह भी विदित होगा कि साधुओंको श्रावक पत्र किस तरह लिखा करते हैं? उन्हें उपमाएँ किस प्रकारकी दी जाती हैं? इनमें कुछ विशेपण ऐसे भी हैं जिनका, भापाकी दृष्टिसे, कुछ अर्थ नहीं होता; तो भी

श्रावकोंके भक्तिपूर्ण हृदयोंसे वे निकले हैं इस लिए वे ज्योंके त्यों रक्खे गये हैं।

स्वस्ति श्रीपार्श्वजिनं प्रणम्य श्रीपालीताणा नगरे सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्र पवित्रगात्रान्, अनेक शास्त्रोपदेशाभ्याससद्विद्या समुत्कृष्टपात्रान्, विनयविवेकचातुरीचमत्कृतान्, चतुरनरनिकरान्, सद्धर्मध्यान भावनादवरक प्रवेक निष्पंदित निजशुद्धमनोविकारान्, अनेकतर्कव्याकरणछंदोलंकारादुर्वापविद्खंडितपरमसमयपंडितारवर्वगर्वपर्वतशिखरान् निजप्रतापैश्वर्य्याद्रीर्यगांभीर्यवीर्याश्रयीनखंडलान्, स्वानिर्मलयशःकर्पूरधवलितपरिमथितपरिमथितभुवनभागान्, कूर्पकंदर्पसर्पदर्पप्रमथनप्रदर्शितरतिभोगनिर्वियोगान्, श्रीजिनशासनप्रभावकान्, नैकाभिनववज्रकुमारावतारान्, समुद्धतसद्धर्मभारान्, चतुर्विंशतितीर्थंकरपरमदेवपादारविंदमकरंदान्, सावधानमतोमधुपान्, रंजितानेकसानुपान्, एवमादिगुणगणगारिष्ठान्, सर्वत्रसदालब्धप्रतिष्ठापरमपूज्यार्चनीयान्, चारित्रपात्रचूडामणीन्, कुमत्यंधकारनभोमणीन्, सरस्वतीकण्ठाभरणान्, अनेकगुणशोभितसाधुमंडलीसुशोभितान्, रागद्वेषनिवारकान्, शत्रुमित्रसमधारकान्, परोपकारिशिरोमणीन्, परमपूज्यपरमगुरून्, सभाभामनीभालस्थलातिलकायमान्, सर्वगुणालंकृत मुनि महाराज श्री श्री १०८ श्री मुनिराज महाराज वल्लभविजयजी महाराज आदि ठाणा विगेरे, बंबई बंदरसे लिखी सकल संघकी १००८ बार वंदना दिन प्रति हमेशा सेवामें अवधा-

रिएगा। विशेष सविनय निवेदन है कि हमारा, समस्त संघका ऐसा अभिप्राय है कि, आप चातुर्मास करनेके लिए यहाँ श्रीगौडीजी महाराजके उपाश्रयमें पधारें।

[इस पत्रके नीचे बंबईके करीब दो सौ मुखियाओंके हस्ताक्षर हैं।]

पालीतानेसे वेरावलका संघ वापिस गया और आप भावनगरके श्रीसंघकी विनतीको स्वीकारकर महा सुदी १५ संवत् १९७२ के दिन भावनगर पधारे। संघने गुरुभक्ति दिखानेके लिए बड़े ठाठसे सामैया किया। आप 'मारवाड़ीकावंडा' के नामसे प्रसिद्ध उपश्रयमें ठहरे। वहाँ आपका एक सार्वजनिक व्याख्यान हुआ था। उसका विषय था 'वर्तमानमें हमें किसकी आवश्यकता है?' आपके इस व्याख्यानसे जैनेतर लोग भी बहुत प्रसन्न हुए थे और वे प्रायः जबतक आप वहाँ रहे तबतक सदा व्याख्यानमें आया करते थे। दूसरा भाषण आपने जैन बोर्डिंग हाउसके विद्यार्थियोंके सामने दिया था।

यहाँ एक महत्वकी बात हुई थी। जीरेके लालाशंकरलालजी जैनी नवलखा ओसवाल और उनकी धर्मपत्नी सौभाग्यवती बहिन भागवंती, दोनोंको ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किये तीन बरस हो चुके थे। बहिन भागवंतीको दीक्षा ग्रहण करनेकी इच्छा हुई। उनके पति लाला शंकरलालजीने हमारे चरित्रनायकसे अपनी पत्नीको दीक्षा देनेकी प्रार्थना की। संघने दीक्षाकी तैयाँरियाँ कीं। बड़ी धूम धामसे फाल्गुन

वदी ११ सं० १९७३ के दिन श्रीदादासाहबकी वाडीके मंदिरके चौकमें श्रीचतुर्विध संघके सामने हमारे चरित्रनायकने वहिन भाग्यवंतीको विधिविधान सहित दीक्षा दी। नाम चंपकश्रीजी रक्खा। देवश्रीजी महाराजकी शिष्याश्रीहेमश्रीजी-की वे शिष्या हुई।

लाला शंकरलालजीकी दीक्षा ग्रहण करनेकी इच्छा थी; परन्तु पैरमें कष्ट होनेके कारण विहार करनेमें असमर्थ होनेसे उन्होंने घरमें ही यथाशक्ति धर्माराधन करते हुए रहना स्थिर किया। आजतक वे अपनी वृत्तिमें दृढ हैं और पंजाबके जैन समुदायमें ब्रह्मचारीजीके उपनामसे सुप्रसिद्ध हैं।

दीक्षालेनेवाली बहिनके पास उस समय जो जेवर था उसे बिकवाकर उसके पाँच सौ रुपये भिन्न भिन्न संस्थाओंको दानमें दे दिये गये। दीक्षामहोत्सवमें जो खर्च हुआ था, वह सभी लाला शंकरलालने किया था। वे घरके सुखी और परिवार-वाले हैं। मातृभक्तिके कारण आप घरमें कुछ समय व्यतीत करते हैं शेष समय तीर्थयात्रा और साधुदर्शनमें विताते हैं। धन्य है ऐसे दीक्षा दिलानेवालोंको! ऐसी दीक्षाएँ और ऐसे महोत्सव अत्यधिक प्रशंसनीय हैं।

दीक्षा देनेके बाद हमारे चरित्रनायकने एक घंटेतक व्याख्यान दिया और उसमें समझाया कि,—चारित्र क्या है? चारित्रसे क्या लाभ हैं? उससे आत्मोन्नति कैसे होती है? समाजका उद्धार कैसे होता है? चारित्रलेनेवालेका क्या कर्त्तव्य

है ? चारित्रका पालन कैसे करना चाहिए ? नव दीक्षितको अपनेसे दीक्षापर्यायमें बड़े साधुओंके साथ और बड़ोंको नव दीक्षितके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए ? आदि।

आपको चौमासा करने बंबई जाना। था बंबईका संघ आपको बंबई शीघ्र पधारनेकी, आग्रहपूर्वक, विनती कर रहा था, इस लिए आपने फाल्गुन वदी १३ के दिन भावनगरसे विहार किया।

आप अन्य अपनेसे दीक्षापर्यायमें बड़े मुनि महाराजोंके साथ मिलकर बड़ी प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। अन्य मुनि महाराज भी आपसे उसी तरहका स्नेह रखते हैं। जब आप पालीताने पधारे थे तब वहाँ मुनि श्रीकेवलविजयजी महाराजसे मिलने गये थे। मगर उस समय वे पडिलेहण कर रहे थे इस लिए आपसे बात न कर सके। आप वापिस लौट गये। यह बात पालीतानेसे विहार करते समयकी है। जब आप भावनगर पहुँचे तब उपर्युक्त मुनि महाराजका जो पत्र आया उसको हम यहाँ देते हैं,—

"+ + + + आप हमारे पास आये मगर हम आपसे बात न कर सके कारण हम उस समय पडिलेहणमें थे। पडिलेहणमें कीसीसे नहीं बोलना ऐसा हमारा नियम है। इस लिए हम आपको खमाते हैं। बोले होते तो अगले रोज धीका खाना बंध हो जाता तो क्या था ? मगर हमारी भूल हुई है। गुनाह माफ करना। और अब तो आप पंजाबकी तरफ जानेवाले हैं,

इस लिए कब मिलना होगा ? आप विहारमें जतनपूर्वक रहना। आपने गिरनारमें चौमासा किया यह बहुत ही उत्तम काम किया; क्योंकि उस क्षेत्रमें रहना बहुत ही कठिन काम है। आप ऐसे विहार करते हैं इसके लिए आपको धन्यवाद है।"

भावनगरसे विहार कर ग्रामानुग्राम विचरते हुए और अमृत वर्षा करते हुए आप खंभात पधारे। एक साधुकी कुछ तबीअत नरम हो जानेके कारण कुछ दिन यहाँ आपको ठहरना पड़ा।

पाटनके पास चारूप नामका एक गाँव है। उसमें एक शामलाजी पार्श्वनाथका मंदिर और उसके साथमें धर्मशाला है। उनके लिए पाटनके श्रीसंघके और चारूप गाँवके लोगोंमे कुछ झगड़ा पड़ गया था। उस झगड़ेको आपसमें मिटानेके लिए पंच मुकर्रर हुए। मगर पंचने श्रीसंघकी धारणासे विरुद्ध फैसला दिया। उसके विरुद्ध पाटनके बंबईमें रहनेवाले श्रीसंघने आन्दोलन प्रारंभ किया। हमारे चरित्रनायकके पास भी उसने पंचका फैसला भेजा और सम्मति चाही। आपने तटस्थ वृत्तिसे जो उत्तम सम्मति दी, वह अमूल्य है। इससे पाठकोंको यह भी विदित होगा कि, आप एकताके कैसे हिमायती हैं ? कैसे चारों तरफका विचार कर अपनी सम्मति देते हैं ? खंभातसे आपने जिस पत्रद्वारा अपनी सम्मति प्रकट की थी वह पत्र यहाँ दिया जाता है।

"+ + + पंचका फैसला आदि पढ़कर हर्ष और शोक

दोनों हुए। हर्ष इस लिए कि आपसमें विरोध बढ़ना और फिजूल खर्चका होना रुक गया है और जैनों तथा जैनेतरोंमें संभव है कि, अमुक हदतक आपसमें भ्रातृभाव कायम हो जायगा। शोक इस लिए हुआ कि, जैनोंके लिए ऐसा कार्य करनेका प्रसंग आया जो उन्हें नहीं शोभता। अस्तु। समयकी बलिहारी है। यह बात भी इतिहास प्रसिद्ध पाटणके लिए ज्ञानियोंने देख रक्खी थी।

तुम पंचके फैसलेके विषयमें मेरी सलाह माँगते हो, इस विषयमें मेरी तो यही सलाह है कि, अब तुम जो कुछ काम करना चाहते हो वह मोतीचंद कापडिया सॉलिसिटर आदि जैनधर्मके पक्के हिमायती और कानूनके जाननेवालोंकी सलाह लेकर करना। आशा है तुम्हें जरूर सफलता होगी। मगर, यदि तुम सिर्फ कानूनके जाननेवालोंहीकी सलाह लोगे तो वे तुम्हें अपनी जेबें भरनेका ही रस्ता बतायँगे। मेरी ऐसी मान्यता है। तुम्हारे भेजे हुए पंचनामेको पढ़ते ही मालूम हो जाता है कि, उसको लिखते समय जैनधर्मके जाननेवाले किसी कानूनदाँकी सलाह नहीं ली गई थी। यदि ली जाती तो यह लाइन उसमें और लिखी जाती कि, धर्ममें बाधा न पड़े इस प्रकारके फैसलेके लिए हम बँधते हैं।

जब अपने यानी जैनसंघके नेताओंने लिख दिया और फैसला करनेका अधिकार भी जैनसंघके एक प्रसिद्ध पुरुषको दिया तब हमें अब ऐसा ही मार्ग लेना चाहिए जिससे उनके

सम्मानकी रक्षा हो। अपने यानी पाटनके एक नेताके अपमानमें अपना ही अपमान समझना चाहिए। इस लिए फैसलेके संबंधमें विशेष कुछ न करके फकत उससे भविष्यमें जिस हानिकी संभावना है उसको रोकनेका प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए मोतीचंद भाई जैसे किसी कानूनके जानकारसे सलाह लेकर फैसला देनेवाले सेठसे पूछा जाय कि,—आपने जो फैसला दिया है वह दोनों पक्षोंका विरोध रोकनेके लिए अपनी इच्छानुसार दिया है या जैनधर्मके शास्त्रानुसार दिया है? इसी तरह यह फैसला वर्तमानके लिए ही दिया है या भविष्यके लिए भी इसका उपयोग हो सकता है? इन दोनों बातोंका स्पष्टीकरण आपके फैसलेमें नहीं है इसी लिए आपसे पूछा गया है। आशा है तत्काल ही उत्तर देकर आप जैन संघको संतुष्ट करेंगे।

मेरी समझमें पाटनका श्रीसंघ इतना करे, संघ ही नहीं श्वेतांबर जैन कॉन्फरेंस और जैन एसोसिएशन ऑफ इण्डियाकी तरफसे भी यह कार्य हो तो फैसलेकी रजिस्ट्री होनेसे जो भय है वह मिट जाय।

अच्छी तरह विचार करके कार्य करना। बहुत जल्दी न करना। जल्दबाजीसे पाटणके श्रीसंघमें दोदल हो जानेकी संभावना है। इस लिए इस बातका खास ध्यान रखना कि जैन संघमें आपसहीमें फूट न पड़ जाय। फूट होते देर न न लगेगी मगर एक होते बरसों बीत जायँगे। अतः इस

बातको लक्षमें रखना कि,–कहीं बकरी निकालते ऊँट न घुस जाय।"

खंभातसे विहार कर आप वड़ोदे पधारे। प्रवर्तकजी महाराज श्रीकान्तिविजयजी भी वहीं विराजते थे। वहाँ महावीर जयन्तीपर आपने बहुत ही बढ़िया भाषण दिया था। उसमें आपने बताया था कि, जयन्ती हमारे यहाँ प्राचीन कालसे मनाई जाती है। पंच कल्याणकका यह रूपान्तर है। यात्रा पंचाशकमें पूज्यपाद हरिभद्रसूरि महाराजने 'जय कल्याणक' उत्सव मनाना बताया है। यह 'जय कल्याणक' ही जयन्तीके नामसे प्रसिद्ध हुआ है। फिर आपने भगवानके चरित्रसे हम क्या सीख सकते हैं सो बताया। वीर शब्दका बहुत ही सुंदर विवेचन किया। अन्तमें आपने कहा,–"वीरताके कार्य कर हमें वीरपुत्र नाम सार्थक करना चाहिए। यदि हम वीरताके कार्य न करें तो उनके चरित्रसे हमें कोई लाभ नहीं है। यदि हम वीरताका गुण प्रकट करेंगे, वीरताका गुण प्रकट करनेके लिए वीरकी उपासना करेंगे, तो सेव्य सेवक भाव मिटकर हम अवश्यमेव वीरके समान कर्मोंको नाश करनेके लिए वीर हो सकेंगे।"

उसी समय आपने 'भगवान महावीरकी आज्ञाएँ' इस शीर्षकके नीचे कुछ उपदेश प्रकाशित करवाये थे। वे जीवनको उत्कृष्ट बनानेके लिए परमौषध हैं। हरेकको चाहिए कि, वह आइनेमें मढ़ाकर इन उपदेशोंको रक्खे और अपने जीवनको उत्तम बनावे। हम उन्हें यहाँ उद्धृत करते हैं,—

"१.—तत्वज्ञानका अभ्यास करो और विचारोंको निर्मल बनानेका प्रयत्न करो ।

२—इस बातका निर्णय करो कि जीवनमें छोड़ने योग्य क्या है ? स्वीकार करने योग्य क्या है और जानने योग्य क्या है ?

३—अपनी शक्तिका विचार करो और शक्तिके अनुसार उन्नतिक्रममें आगे बढ़ो ।

४—आत्मविश्वास रक्खो । किसीके सहारे न रहो । तुम्हारा उद्धार केवल तुम्हारे ही विचार, पुरुषार्थ और उद्योगके आधीन है ।

५—मान अथवा इस लोक या परलोककी आशा रक्खे विना जितना श्रेष्ठ काम कर सकते हो करो । हम क्या कर सकते हैं ? ऐसे निकम्मे विचार न करो । प्रमादमें जीवन न बिताओ !

६—यदि गृहस्थ धर्म अथवा साधु धर्मके मार्गमें द्रव्य और भावसे शक्तिके अनुसार प्रयाण करोगे तो मुक्तिपुरीमें पहुँचे विना न रहोगे" ।

प्रवर्तकजी महाराज श्रीकान्तिविजयजी और हमारे चरित्रनायक दोनोंसे एक ही साथ बंबईमें चौमासा करनेकी विनती करनेके लिए सेठ देवकरुण मूलजी, सेठ मोतीलाल मूलजी आदि कई मुखिया श्रावक बड़ोदे आये । प्रवर्तकजी महाराजसे आपने भी साग्रह विनती की कि,—" आप बंबईकी

विनतीको अवश्यमेव स्वीकार कर लें। आपकी छत्रछायामें अनेक कार्य होंगे। बड़े कार्यमें आप जैसे बड़ोंकी खास आवश्यकता है।"

प्रवर्तकजी महाराजने बंबईकी विनतीको स्वीकार कर लिया।

दोनों महात्मा बड़ोदेसे विहार कर ग्रामानुग्राम विचरते हुए क्रमशः झघडियाजी तीर्थकी यात्रा कर सूरत पधारे। सूरतके सामैयेके आडंबरका तो कहना ही क्या?

कुछ रोज सूरत ठहरे बाद विहार करके नवसारी, बिलामोरा, पारडी, वलसाड आदि नगरोंमें व्याख्यानोंका लाभ देते हुए जेठ वदि ११ सं० १९७४ के दिन मलाड पधारे। वहाँ दो दिन तक स्वामीवात्सल्य और पूजाएँ हुए। उनमें करीब पन्द्रह सौ श्रावक श्राविकाएँ सम्मिलित हुए थे।

वहाँसे ज्येष्ठ सुदी २ के दिन सान्ताक्रूज पधारे। वहाँ भी दो साधर्मी वात्सल्य और दो पूजाएँ हुए थे। महात्माओंके पधारनेकी खुशीमें महावीर जैनविद्यालयको भी एक हजारकी भेट मिली थी।

वहाँसे विहार कर जेठसुदी ४ के दिन सवेरे ही दादर पधारे। वहाँ भी उस दिन पूजा और साधर्मीवात्सल्य हुए। संध्याको विहार कर भायखाला पधारे। रातभर वहीं रहे। दूसरे दिन सवेरे ही जुलूसके साथ सपरिवार दोनों महात्माओंका नगरप्रवेश हुआ। हजारों लोग जुलूसमें थे।

जुलूसमें करीब ३५ तो बेंड बाजे थे। जिस समय जुलूस

गोड़ीजीके मंदिरमें पहुँचा उस समय पाँच हजार श्रावक श्राविकाएँ थे। एक मारवाड़ी श्रावकने नारियलोंकी प्रभावना की थी। उसमें पाँच हजार नारियल खर्च हुए थे। कइयोंने दोनों महात्माओंको सच्चे मोतियोंसे वधाया था।

इस चौमासेमें प्रवर्त्तकजी महाराज श्रीकान्तिविजयजी महाराज, हमारे चरित्रनायक, मुनि श्रीचतुरविजयजी महाराज, मुनि श्रीलाभविजयजी महाराज, पं० श्रीसोहनविजयजी महाराज, मुनि श्रीविमलविजयजी महाराज, मुनि श्रीकस्तूरविजयजी महाराज, मुनि श्रीउमंगविजयजी महाराज, मुनि श्रीमेघविजयजी महाराज, मुनि श्रीजिनविजयजी महाराज, मुनि श्रीविज्ञानविजयजी महाराज, मुनि श्रीविद्याविजयजी महाराज, मुनि श्रीविचारविजयजी महाराज, मुनि श्रीपुण्यविजयजी महाराज, मुनि श्रीसमुद्रविजयजी महाराज और मुनि श्रीसागरविजयजी महाराज थे। चौमासा श्रीगोड़ीजी महाराजके उपाश्रयमें हुआ था।

व्याख्यान हमारे चरित्रनायक ही अक्सर वाँचते थे। आप प्रवर्तकजी महाराजसे प्रायः कहा करते थे,—"कृपानाथ। आप भी व्याख्यानकी कृपा किया कीजिए।"

प्रवर्त्तकजी महाराज मुस्कुराकर फर्माते:—"भाई गुरु महाराजका खजाना तो तुम्हारे ही पास है। उसमेंसे लोगोंको खुले हाथों क्यों नहीं बाँटते रहते। हमें तो बहुत ही थोड़ी पूँजी मिली थी, उसे हमारे पास संग्रहीत रहने दो।"

आप भी मुस्कुराकर विनम्र शब्दोंमें कहते:—" गुरुमहाराजकी थोड़ी सम्पत्ति मिलि इससे क्या हो गया ? आपकी भी तो सम्पत्ति अखूट है। उसमेंसे ही कुछ उदारता कर दिया कीजिए। लोगोंमें बँटेगी उसमेंसे थोड़ा हिस्सा मुझे भी मिल जायगा।"

प्रवर्त्तकजी महाराज फर्माते:—" तुमसे बातोंमें कौन जीत सकता है ? "

आप कहते:—" आप जैसे गुरु जन ही तो, मुझ जैसे, अपने छोटोंका, जीतनेका लोभ दिखा कर, हौंसला बढ़ाते हैं और उन्हें आगे लाते हैं।

एक दिन हमारे चरित्रनायकके साथ अनेक श्रावक भी मिल गये। सबने मिलकर प्रवर्तकजी महाराजसे आग्रह पूर्वक विनती की कि, आप अवश्यमेव उपदेशामृत पिलाकर हमें कृतार्थ करें। प्रवर्त्तकजी महाराजने बहुत 'नहीं' 'नहीं' किया; मगर हमारे चरित्रनायक भी आग्रह करके बैठ गये कि, मैं आज बिलकुल व्याख्यान नहीं बाँचूँगा। आपहीको कृपा करनी होगी।"

आखिर प्रवर्त्तकजी महाराज उपदेश देनेके लिए गद्दी पर आकर विराजे। हमारे चरित्रनायक भी, दाहिनी तरफ नीचे की तरफ पाटपर इसी तरह विनम्र भावसे बैठ गये जैसे आप स्वर्गीय आचार्य महाराजके पास व्याख्यानके समय बैठा करते थे; या यह कहिए कि, शिष्य जैसे गुरुके साथ व्याख्यानके समय बैठता है।

प्रवर्तकजी महाराजने मंगलाचरण करके फर्माया:—"गुरुमहाराजका खजाना तो (आपको बताकर) इनके पास है। (हँसकर) इन्होंने मेरी कीमत करनेके लिए मुझे यहाँ ला बिठाया है।" सभी हँसने लगे। फिर प्रवर्तकजी महाराजने व्याख्यान फर्माया।

चौमासे भरमें करीब महीने सवा महीनेतक प्रवर्तकजी महाराजने व्याख्यान बाँचा था। प्रवर्तकजी महाराजकी स्मरण शक्ति बड़ी प्रबल है। सांसारिक अनुभव और ऐतिहासिक घटनाओंका खजाना जैसा इन महात्माके पास है वैसा किसीके पास नहीं है। हमारे चरित्रनायकपर तो इनका इतना प्रेम है जितना पिताका अपने एक गुणसंपन्न पुत्रपर होता है। यदि कोई आपपर किसी तरहका आक्षेप करता है तो इनके अन्तःकरणमें ऐसा ही आघात लगता है जैसा अपने प्रिय पुत्रपर करनेसे होता है।

यहाँ हम एक दो उदाहरण देंगे। एक बार छाणीमें अमुकने प्रवर्तकजी महाराजसे कहा:—"आपको वल्लभविजयजीने भ्रमा रक्खा है। वास्तवमें अमुक बात ऐसी है। आदि।"

प्रवर्त्तकजी महाराजने फर्माया:—"मैं वल्लभविजयजीको तुमसे ज्यादा जानता हूँ। उन्हें बचपनहीसे मैं पहचानता हूँ। उनके गुण अवगुणसे, तुम्हारी अपेक्षा अधिक, मैं परिचित हूँ।"

वे बोले:—"आपका तो उनपर मोह है।"

प्रवर्त्तकजी महाराजने फर्माया:—" मोहसे भी अधिक है। उनकी और मेरी आत्माओंका ऐसा ही संबंध है जैसा नाखून और उँगलीका है। "

एक वार किसी विरोधीने ' पंजाव महासभाके ' विषयको लेकर हमारे चरित्रनायकपर आक्षेप किया । उस समय प्रवर्त्तकजी महाराजने पंन्यासजी श्रीललितविजयजीको एक पत्र लिखा था। उसमेंका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

" × × × इन उडती हुई गप्पोंके आधार किसी वातका आन्दोलन करनेसे क्या धर्मात्माओंको धर्मवृद्धिका लाभ होगा ? × × × × और अब मुनि वल्लभविजयजी महाराज गुजरात देशके सुखदाई विहारको छोड़, कष्टदायक क्षेत्रोंमें फिर धर्मोपदेश देते हैं। क्या इसमें इनका कोई स्वार्थ है ? × × × × विना कारण कई उनसे जुदाई रखनेवाले अनुचित हमले करते हैं। उन्हें अपने कर्मबंधनका विचार करना चाहिए। साधु तो समाधि रसमें मग्न हो यही उनके लिए हितकारी है।

मैं पंजावमें था तब श्रीगुरु महाराज स्वर्गवासी नहीं हुए थे। वे निज श्रीमुखसे फर्माते थे,—" मेरे वाद गुजराती साधु, मेरे बोये हुए धर्मवागकी रक्षा करनेवाले, गुजरातमें जा वापिस कष्टकारी क्षेत्रमें आएँगे यह विश्वास मुझे नहीं है। मगर वल्लभ तू छोटी उम्रका है । तुझपर मुझे विश्वास है। तू पंजावके धर्मक्षेत्रको पुष्ट करना। तू आयगा तो तेरा शिष्य परिवार भी आयगा । पहले श्री १००८ श्री बूटेरायजी

महाराजने धर्मका वगीचा वोया उसकी हमने सपरिवार रक्षा की। अव हमारे पीछे तुझपर आशा है। गुजरातमें जा, दाल चावल ओसामणमें न पड़, जरा कष्ट उठा,कर इस देशमें सपरिवार आओगे और निराधार क्षेत्रमें अमृतवृष्टि करोगे तो महालाभ होगा। गुजरातमें मुनि महाराजोंकी कमी नहीं है। जहाँ कमी है उस क्षेत्रमें वृष्टि करनेसे महालाभ होगा।" वे श्री १००८ गुरुवचनको शिरोधार्य कर, विकट भूमिमें कष्ट उठाकर फिरते हैं। हमारे जैसे तो एक भी, गुरु महाराजके वगीचेमें जलवृष्टिके लिए नहीं जाते हैं। केवल वल्लभविजयजी ही, 'सुखिया' विहार छोड़, विकट स्थानोंमें विचरण करते हैं। उनपर लोग क्यों आक्रमण करते हैं? इसको मैं नहीं समझ सकता। जिनको अमुक अच्छा नहीं लगता हो उन्हें अनेक उपाय करके भी अमुकपर स्नेह उत्पन्न करानेका प्रयत्न सर्वथा निष्फल है। + + + + "

पाठक उपर्युक्त उदाहरणोंसे भली भाँति समझ सकते हैं कि, हमारे चरित्रनायकपर प्रवर्त्तकजी महाराजका कितना स्नेह है।

पाठक जानते हैं कि लड़का चाहे कितनाही संसारमें पूज्य हो जावे तो भी पिताके हृदयमें तो वह हमेशा उनका प्रिय पुत्र ही रहता है। और जव कभी पुत्र किसी उत्तरदायित्वका भार लेता है तव पिता पुत्रको उपदेशके वचन कहे विना नहीं रहते और पुत्र उन्हें सिर आँखोंपर चढ़ाता है। ठीक यही

बात प्रवर्त्तकजी महाराज और हमारे चरित्रनायकके संबंधमें है। इसके लिए हम पाठकोंको प्रवर्त्तकजी महाराजका वह पत्र पढ़नेका अनुरोध करते हैं जो हमारे चरिनायकके पास सं० १९८१ में आचार्य पद प्रदानके समय, आया था। पत्र पदवी प्रदानके विवरणमें दिया जायगा।

हमारे चरिनायक भी प्रवर्त्तकजी महाराजके प्रति ऐसे ही भाव रखते हैं जैसे एक आज्ञापालक पुत्र अपने पिताके प्रति रखता है और उनकी हरेक आज्ञाको मानता है। इसके हम दो उदाहरण देंगे।

पाठक जानते हैं कि, सं० १९५७ में हमारे चरित्रनायकको पदवी प्रदान करनेके लिए पंजाबका सारा संघ और प्रायः सभी साधु तैयार थे; मगर प्रवर्त्तकजी महाराजकी यह इच्छा न थी। हमारे चरित्रनायकने आपकी इच्छा-परोक्ष आज्ञाको सिर आँखोंपर चढ़ाया और पदवी न ली।

इसी बंबईके चौमासेमें आप खरतर गच्छवालोंके साथ शास्त्रार्थमें न उतरे। इसका कारण, जहाँतक हमें पता चला है, आपकी इच्छासे बढ़कर प्रवर्त्तकजी महाराजकी आज्ञा थी।

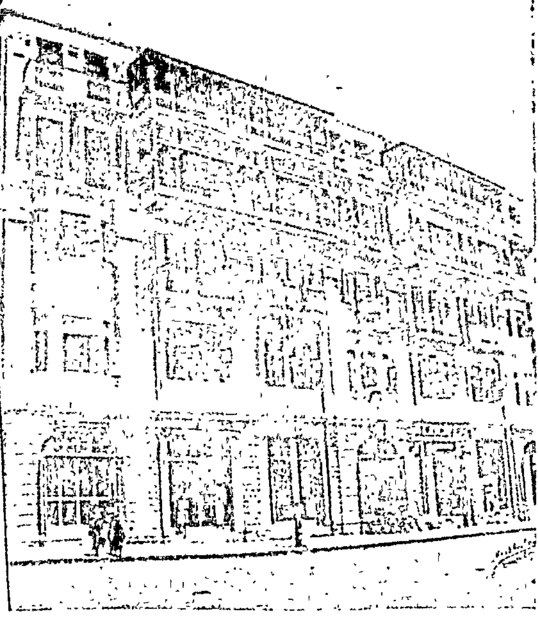
\+ + + + +

इस चौमासेमें दो भाद्रपद थे खरतर गच्छके मुनि श्रीमणिसागरजी महाराजने उस समय इस बातकी चर्चा प्रारंभ की कि, चौमासा पहले भाद्रपदमें होना चाहिए। खरतर गच्छ और अंचलगच्छवालोंकी तरफ़से हेंडबिल निकलने प्रारंभ हुए।

जिन महात्माने पंजाबमें स्थानकवासियोंसे शास्त्रार्थ करके विजयका डंका बजाया था उनसे सभी इस बातकी आशा रखते थे कि, वे इन हैंडबिलोंका जवाब देते; मगर हमारे चरित्रनायकने कभी कलम न उठाई। आप जानते थे कि इस काग़ज़ी घोड़ोंकी दौड़का परिणाम सिवा शक्तिका अपव्ययके दूसरा कुछ होनेवाला नहीं है। एक दिन कई श्रावकोंने आपसे आग्रह पूर्वक इस बातको अपने हाथमें लेनेकी विनती की। उनको आपने जो उत्तर दिया था, उसे हम उपयोगी समझ कर यहाँ दे देते हैं:—

" तुम सभी जानते हो कि, आजकल जमाना जुदा प्रकारका है। लोग एकता चाहते हैं; अपने हकोंके लिए प्रयत्न करते हैं; हिन्दु मुसलमान एक मत हो रहे हैं; अंग्रेज, पारसी, मुसलमान और हिन्दु शामिल होते हैं। इस तरह दुनिया आगे बढ़ती जा रही है। ऐसे समयमें भी, खेदके साथ कहना पड़ता है कि, कुछ विचित्र स्वभावके मनुष्य, उनमें भी खास कर जैन, दस कदम पीछे हटनेका प्रयत्न कर रहे हैं।

सैकड़ों वर्षोंसे जो रीति चली आरही है और जिसके लिए एक पक्ष हो गया है उसके लिए मैं नहीं चाहता कि, आपसमें, विवाद कर प्रेमका—चाहे वह बाहरी ही क्यों न हो—नाश किया जाय। अपनी प्रचलित पद्धतिके अनुसार व्यवहार करके भी यदि सभी प्रेमके साथ रहेंगे तो कोई न कोई सार्वजनिक काम कर सकेंगे। इस हेतुहीसे वर्तमानमें मैं यथासाध्य ऐसा ही मार्ग



महावीर जैनविद्यालयभवन (सड़ककी तरफका दृश्य). पृ. ३०२.

मनोरंजन प्रेस, बम्बई नं. ४.

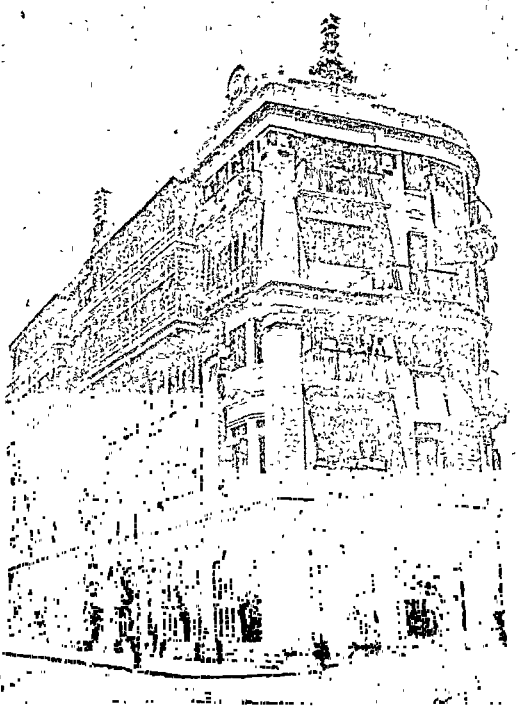
मगर शास्त्रार्थकी कोई बात स्थिर न हुई और सभीने अपनी अपनी समाचारीके अनुसार पर्युषण किये ।

इस चौमासेमें तीन कार्य खास उल्लेखनीय हुए थे (१) महावीरजैनविद्यालयके मकानके लिए करीब एक लाख रुपयेका चंदा हुआ था । (२) बाहरके छोटे छोटे गाँवोंमें जो मंदिर हैं औ पुराने हो गये हैं उनके जीर्णोद्धारके लिए भी अच्छी रकम जमा हुई थी । (३) पाटनके जैनसंघने पाटनके बोर्डिंग हाउसके लिए करीब एक लाख रुपये जमा किये थे ।

महात्माओंके प्रभावसे पूजा प्रभावना, अठाई महोत्सव, इत्यादि धार्मिक कार्य भी बहुतसे हुए थे । बंबईके लोग कहते हैं कि, इन दोनों महात्माओंके विराजनेसे बंबईमें जितनी धर्मकी प्रभावना हुई थी उतनी उसके पहले कभी भी नहीं हुई थी । १०८ श्री प्र. जीम. पर आपके पूज्य भावको और उनके आपके प्रति प्रेमभावको देख लोग शतमुखसे प्रशंसा किया करते थे ।

कोटवाले श्रावकोंकी विनंतीसे आपने पं० श्रीसोहनविजयजी, मुनि श्रीसागरविजयजी और मुनि श्रीसमुद्रविजयजीको कोटमें चौमासा करनेके लिए भेज दिया ।

हमारे चरित्रनायक खास करके महावीर जैनविद्यालयकी नींवको मजबूत बनानेके लिए पधारे थे; मगर पर्युषण तक कुछ भी कार्य न हो सका था । आखिरमें कोटमें पं०जी महाराज



विद्याभुवन (साइड व्ह्यू). पृ. २०४.

श्रीसोहनविजयजीके प्रयत्नसे २५००० का चंदा हुआ। गोड़ीजीमें ये समाचार पहुँचे। वहाँ भी रकमें भरी जाने लगीं और इस तरह महावीर जैन विद्यालयके लिए एक लाखका चंदा हो गया।

इस तरह सं० १९७४ का इकतीसवाँ चौमासा बंबईमें समाप्त कर आपने प्रवर्तकजी महाराजके साथ ही सं० १९७४ के माघ सुदी १३ शनिवारके दिन गोड़ीजीके उपाश्रयसे विहार किया। भायखाला पधारे। आपने बंबईके चौमासेमें पंचतीर्थी पूजा बनाई थी। वह पूजा यहाँ पढ़ाई गई। करीब दो हजार स्त्री पुरुषोंने लाभ उठाया।

हमारे चरित्रनायकने अब सीधे पंजाबकी तरफ़ विहार करना स्थिर कर लिया था इस लिए, भायखलामें, प्रवर्तकजी महाराजसे विदा ग्रहण कर अपने परिवार सहित आपने वहाँसे विहार किया और ग्रामानुग्राम उपदेशामृतकी वर्षा करते हुए कहीं भी अधिक स्थिरता न कर पंजाब पहुँचनेकी धुनमें आगे ही बढ़ते चले। परन्तु स्पर्शना बलवती होती है। आपको विचार आया कि मार्गमें ही १०८ श्री मुनि महाराज शांतमूर्ति श्रीहंसविजयजी महाराजजीके दर्शन कर लेवें और उनसे मिलकर जावें तो ठीक होगा। दूर चले जानेके बाद इन वृद्ध महात्माके दर्शन दुर्लभ हो जायँगे। मनका साक्षी मन होता है!

इधर आपके मनमें यह विचार आया उधर उन महात्माका, शान्तमूर्ति मुनि श्री १०८ श्रीहंसविजयजी महाराजका,-

आया कि, आपको पंजाब जाना है इस लिए आप शीघ्रताके साथ आगे बढ़े जारहे हैं, मगर हमसे मिले बिना आगे न जावें। जिन्दगीका भरोसा नहीं है। आज है कल नहीं। फिर मिलना हो न हो, इस लिए अवश्यमेव मिल कर जानेका विचार रक्खें।

आप तो पहले ही विचार कर रहे थे, अब महात्माका आदेश मिल गया, आप सच्चे देव श्रीसुमतिनाथ स्वामीके तीर्थपर–मातर गाँवमें महात्माके चरणोंमें जा हाजिर हुए। एक साथ देव और गुरु दोनोंके दर्शनोंका लाभ मिला।

आप चाहते थे कि, वहाँसे आगे विहार कर जायँ; मगर हंसविजयजी महाराजने फर्माया कि, मुझे अहमदाबाद जाना है। वहाँकी विनती है, इस लिए अहमदाबाद तक आप हमारे साथ ही चलें। आप अबतक अहमदाबाद गये भी नहीं हैं। बीचमें अहमदाबादकी यात्राको छोड़कर जाना अच्छा नहीं है। हमारे चरित्रनायक, महात्माकी आज्ञाको आनंद पूर्वक मान कर, उनके साथ ही अहमदाबाद पधारे।

अहमदाबादके लूणसावाड़ेके श्रावकोंने बड़ी धूमधामसे दोनों महात्माओंका स्वागत किया। जुलूस जब जवेरीवाड़ेमें पहुँचा तब अहमदाबादके प्रसिद्ध सेठ लालभाई तथा मणिभाईकी माता गंगा बहिनने श्रीहंसविजयजी महाराजसे प्रार्थना की कि,–"आप शहरको छोड़कर एकान्तमें कहाँ जाते हैं? यहीं ठहरिए।"

श्रीहंसविजयजी महाराजने फर्मायाः–" वहाँके श्रावकोंकी पहलेहीसे विनती है। इस लिए हम वहीं जायँगे।"

गंगामाता बोलीः–" अच्छी बात है। आप कुछ दिनोंके वास्ते लूणसावाड़ेमें पधारिए और वल्लभविजयजी महाराजको यहीं ठहरनेकी आज्ञा दे दीजिए।"

श्रीहंसविजयजी महाराजकी आज्ञासे हमारे चरित्रनायक वहीं उजमबाईकी धर्मशालामें ठहर गये। कुछ दिनोंके बाद आपने वहाँसे विहार करनेकी तैयारी की; मगर विहार न कर सके। अहमदाबादके श्रावकोंकी, आग्रह और भक्तिभावपूर्ण हृदयके साथ की गई विनतीसे और खास कर श्रीहंसविजयजी महाराजकी इच्छा तथा आज्ञाके कारण आपको चौमासा वहींका स्वीकार करना पड़ा।

उदयपुर (मेवाड)के लोग भी आपसे चौमासेकी विनती करने आये थे; परन्तु आप जा नहीं सकते थे इस लिए आपने पंन्यासजी श्रीसोहनविजयजी, मुनि श्रीउमंगविजयजी, मुनि श्रीमित्रविजयजी, मुनि श्रीसमुद्रविजयजी, मुनि श्रीसागरविजयजी और मुनि श्रीरविविजयजी ऐसे छःसाधुओंको चौमासा करनेके लिए उदयपुर भेज दिया और आप वहीं अहमदाबादहीमें उजमबाईकी धर्मशालामें चातुर्मासार्थ ठहर गये।

उस समय यद्यपि व्यापार अच्छा चमक रहा था, व्यापारी लोगोंके पास पैसा भी अच्छा था तथापि अन्यान्य लोग विशेष दरिद्री होते जा रहे थे। कारण बाजारमें चीजोंकी कीमत बढ़ती थी उसका असर साधारण हालतवाले और गरीबोंपर होता था। क्योंकि चीजोंकी बढ़ी हुई कीमत उन्हें ही देनी

पड़ती थी । इस लिए जहाँ एक तरफ बहुतसे धनी बनते जा रहे थे वहीं दूसरी तरफ बहुतसे गरीब बनते जा रहे थे । अहमदाबादके समान व्यापार प्रधान शहरमें भी ऐसे आदमियोंकी कमी नहीं थी । कई हमारे चरित्रनायकके पास आते थे और अपनी दुःख कथा सुनाते थे । मगर अच्छे खानदानके होनेसे वे किसीके सामने हाथ पसारते शर्माते थे । उन लोगोंको रोजगारकी आवश्यकता थी । वे किसीसे भीख लेना नहीं चाहते थे कई तो ऐसे आते थे जो नौकरी करनेमें भी अपना अपमान समझते थे ।

इस कठिनाईको दूर करने और कुलीन कुटुंबके लोगोंका दुःख मिटानेके लिए आपने एक उद्योगशाला स्थापित करनेका उपदेश दिया । लोगोंका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ । कई इस काममें यथासाध्य मदद देनेको भी तैयार हो गये ।

संसारमें धनिक लोगोंका प्रभाव बहुत होता है । साधारण लोग हरेक काम करनेके पहले धनिकोंका मुख देखते हैं और ये उसमें कुछ रकम देते हैं तभी वे लोग भी उस तरफ हाथ बढ़ाते हैं । वे हमेशा अपनेको निःसत्व समझते हैं और उनका विश्वास होता है कि धनिक लोगोंकी सहायताके विना उनका काम जरासा भी न होगा । इसी भावनाने भारतका नाश किया है ।

पर्युषणोंके दिनोंमें, जब प्रायः सभी धनिक और साधारण स्थितिके लोग मौजूद थे, आपने फर्माया,—" भव्य श्रावको !

इस समय धनकी गंगा वह रही है। समयके परिवर्तनने तुम्हारे हाथोंमें बहुतसी दौलत दी है। इसका सदुपयोग कर लो। धनका सदुपयोग ही,–यानी गरिबोंकी भलाईके लिए खर्चा हुआ धन ही,–परलोकमें साथ जाता है। दूसरा नहीं। मैं असमर्थ सधर्मी भाइयोंको सहायता देना ही सच्चा साधर्मीवात्सल्य समझता हूँ। अतः पर्युषणोंके अन्तिम दिन तक जो कुछ करना है कर लो। अन्यथा पछताओगे और कहोगे हमने धनका सदुपयोग नहीं किया।"

श्रावकोंने कहाः–" महाराज साहिब! आपका फर्माना योग्य है; मगर इस वक्त नगरसेठ यहाँ हाजिर नहीं हैं, वरना इसी वक्त कार्य प्रारंभ हो जाता।"

आपने कहाः–" तुम शूरू कर दो सेठजीके आने पर उनको सूचना कर देना।"

जवाब मिलाः–" आपका कहना दुरुस्त है, मगर हमारे इस शहरका यह रिवाज है कि नगरसेठके बिना, कोई भी ऐसे बड़े किसी भी धर्मकार्यको शुरू नहीं कर सकता है।"

आपने कहाः–" बहुत अच्छा।"

दुपहरके व्याख्यानमें सेठजी आये। उन्हें सारी बात समझाई गई। सेठजीने जवाब दियाः–" महाराज! यहाँ तो कोई गरीब नहीं है। सभीके पास अच्छा पैसा है। यदि आपके पास कभी कोई गरीब आवे तो मेरे पास भेज देना। एक हजार आदमियोंको तो मैं धंदेमें लगा दूँगा। विशेष आयँगे तो देख लिया जायगा।

यद्यपि आप जानते थे कि आत्माभिमानी उच्च कुलीन गरीब इनकी मिलमें जाकर मजूरी करना हरगिज पसंद न करेंगे; मगर विशेष लाभ न देख आप चुप रहे। यह काम योंहीं रह गया।

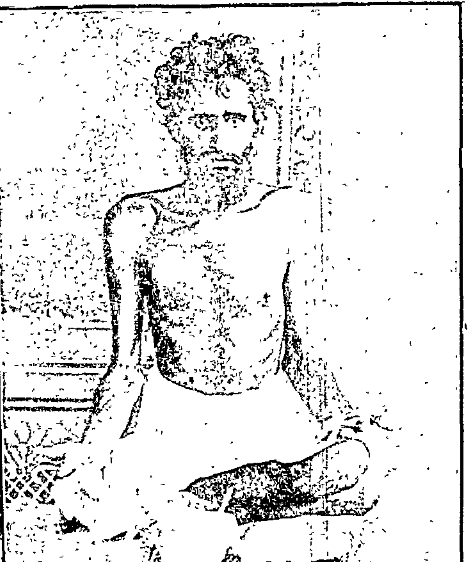
महात्माकी वाणी पर किसीने ध्यान नहीं दिया। समय आया। संवत्सरीके पारणेवाले दिन महात्माकी वाणी सच्ची हुई। बाजार बदल गया और अनेक लखपतियोंकी गाड़ियाँ तेजीके साथ दरिद्रताके गढ्ढेमें गिरती हुई दिखाई दीं। वे पछताये मगर तब क्या हो सकता था?

" गया वक्त फिर हाथ आता नहीं।"

तपस्वी[1] गुण विजयजी महाराजने पर्युपण पर्वमें १५ उपवासकी तपस्या की थी। लोगोंके हृदय भक्ति भावसे

१–तपस्वी गुणविजयजी सद्गत श्रीजयविजयजी महाराज–जो स्वर्गीय १००८ श्री विजयानंद सूरि (आत्मारामजी) महाराजके शिष्य थे–के शिष्य हैं। आपमें तपस्याका गुण अलौकिक है। बड़ी बड़ी तपस्याओंमें भी ये साधुकी सारी क्रियाओंमें सावधान रहते हैं। दिनभर जाप करते रहते हैं और रातमें भी प्रायः दो दो बजे उठकर जाप करने लगते हैं और सवेरे तक जाप करते ही रहते हैं। उपवासका पारणा करनेके लिए अभिग्रह पूर्वक आहार पानी भी अपने आपही ले आते हैं। अहमदाबादके चौमासेहीसे ये हमारे चरित्रनायकके साथ ही रहते हैं।

वाली, खुडाला, बीकानेर और अंबाला शहर इतने चौमासोंमें इन्होंने नवकारकी तपस्या की है। नवकारकी तपस्यामें जिस पदके जितने अक्षर होते हैं उस पदके उतने ही उपवास किये जाते हैं। वालीमें अन्तिम दो पदोंके सत्रह उपवास और दो स्थानोंमें अन्तिम तीन पदोंके २५ उपवास एक साथ ही करते रहे थे। अर्थात् पहले पदके सात उपवास करके एक दिन पारणा–भोजन–किया। फिर दूसरे पदके



अद्वितीय तपस्वी. पृ. ३११

मनोरंजन प्रेस, बम्बई नं. ४.

उमड़ रहे थे; उस समय एक दिन व्याख्यानमें टीप–चंदा- लिखी जाने लगी। आपने पूछाः–"यह चंदा किस लिए किया जाता है?"

श्रावकोंने उत्तर दियाः—"साहिब! तपस्वीजी महाराजकी तपस्याकी निर्विघ्न समाप्तिके उपलक्षमें अठाई महोत्सव किया जायगा।"

पाँच उपवास करके पारणा, फिर तीसरे पदके सात उपवास करके पारणा, चौथे पदके सात उपवासका पारणा, पाँचवें पदके नौ उपवासका पारणा और छठे पदके आठ उपवासका पारणा करके ७, ८ और ९ वें पदके ८+८+९ कुल पचीस एक साथ ही करते रहे। इस तरह कुल ६८ उपवास किये, उनमें पारणा केवल छः ही बार किया।

सिद्धि तपके ४५ उपवास होते हैं। वे इस तरह किये जाते हैं, एक उपवासका पारणा करके फिर दो उपवास करना, दोका पारणा करके तीन करना, इस तरह नौ उपवास तक क्रमशः बढ़ना। सादड़ी और शहर लाहोरमें इन्होंने यह सिद्धि तप किया। सादड़ीमें इस तपको पूर्ण करनेके बाद एक साथ इकीस उपवास किये थे और लाहोरमें सिद्धि तपके अन्तिम आठ और नौ उपवास मिलाकर सत्रह उपवास एक साथ किये थे।

अंबालेके चामासे बाद हमारे चरित्रनायक जब सामानेकी प्रतिष्ठा कराके मालेर-कोटला पधारे थ तब वहाँ इन्होंने चैत्र कृष्णा ८ से तेले तेलेके पारनेसे वरसी तप प्रारंभ किया। विहारमें भी यह तप जारी ही रहा। अर्थात् तेले तेले ही पारणा करते रहे। इस बरसी तपके चालू रहने पर भी होशियारपुरके पर्युषणोंमें इन्होंने सोलह उपवास एक साथ कर डाले।

पर्युषणके बाद हमारे चरित्रनायक जब काँगड़ाकी यात्रा करने पधारे तब ये भी साथ थे। इस पहाड़ियोंके विकट विहारमें भी ये तेले तेले ही पारणा करते थे। दस दस और पन्द्रह पन्द्रह माइलका विहार होता था ऐसी दशामें भी ये अपनी उपधि–कपड़े, पुस्तक, पात्रे आदि सब चीजें–अपने आप ही उठाते रहे, कभी

आप—" क्या इसकी खास जरूरत है ? "

श्रावक—" हमारे शहरमें रिवाज है कि, जिस उपाश्रयमें अधिक तपस्या हो उस उपाश्रयमें आनेजानेवालोंका फर्ज है कि, वे चंदा करके पासके जिन मंदिरमें अठाई महोत्सव करें ।"

आप—" यह तो बड़ी ही अच्छी बात है । प्रभु भक्तिके बराबर और श्रेष्ठ बात क्या होगी ? भक्ति करना आपका कर्त्तव्य है; मगर जो मार्ग आपने ग्रहण किया है वह मुझे बिलकुल पसंद नहीं है । मैं नहीं चाहता कि, मेरे साथके साधुओंकी तपस्याके लिए इस तरहसे अठाई महोत्सव होवे ।"

श्रावकोंनें जरा घबराहटके साथ पूछाः—" साहिब ! आपका आशय हम नहीं समझे । "

अपनी उपधि किसी दूसरेको न दी । इतनी तपस्याएँ और ऐसा विहार करके भी कभी किसीसे वैयावच्च नहीं कराई । बलिहारी है इस तपस्याकी !

वैशाख सुदी ३ (अक्षय तृतीया) के दिन अठाईके साथ, इस बरसी तपका ' जंडियालागुरु ' नामक गाँवमें, श्रीऋषभदेव स्वामीकी छत्रछायामें इन्होंने आनंद पूर्वक पारणा किया । बीचमें फाल्गुन चौमासेकी अठाइ की थी और चैत्रकी ओलीमें नौ उपवास किये थे ।

इस साल, यानी सं. १९८२ का, इनका चौमासा हमारे चरित्रनायकके साथ ही गुजराँवालेमें है । यहाँ नौ नौ उपवास पूर्वक एक एक पदकी आराधना इस प्रकार नव पदजीकी ८१ उपवाससे आराधना करनी शुरू की है । बीचबीचमें और आसोज सुदी पूर्णिमाके बाद जो छूटी छूटी तपस्या होगी वह जुदा । ज्येष्ठ सुदी ५ से तपस्या शुरू की है और कार्त्तिकी पूर्णिमातक तपस्या चलती रहेगी । यह तपस्वीजीवन धन्य है !

आप—"भाग्यशालीयो! शक्तिके होते हुए भी रुपया रुपया आठ आठ आने माँग कर अठाई महोत्सव कराना क्या शोभा देता है? ऐसे महोत्सवसे न करना ही अच्छा है। जो लोग भक्तिवश अपने घरबार छोड़कर यहाँ आते हैं उन्हें रोकनेका यह रस्ता है। यहाँ जितने मौजूद हैं उनमेंसे एक भी तुम्हें धनिक दिखाई देता है? बड़ी बड़ी मिलोंवाले और पेढ़ियोंवाले तो भूले चूके ही व्याख्यानमें आते हैं और वे भी पर्युषणोंमें। हमेशा आनेवाले तो साधारण स्थितिके ही श्रावक हैं। इस तरह बार बार चंदा होनेसे कई तो व्याख्यानमें आते ही डरते हैं। वे सोचते हैं व्याख्यानमें जायँगे और कहीं कोई चंदेकी फर्द आ जायगी तो शर्मके मारे उसमें कुछ न कुछ लिखना ही पड़ेगा। इससे तो न जाना ही अच्छा है।"

श्रावक—"साहिब! आपका फर्माना बिलकुल ठीक है; परन्तु किया क्या जाय? काम तो करना ही पड़ता है और सेठिये आते नहीं; इस लिए चंदेके सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं है।"

आप—"इसी लिए तो मैं ऐसे कार्यको आवश्यक नहीं समझता और न ऐसे आठ आठ आनेके चंदेको ही पसंद करता हूँ। हाँ यदि आपको यह काम करना ही हो तो उपाश्रयके बड़े बड़े सेठोंके यहाँ जाकर अच्छी रकमें ले आओ और अठाई महोत्सव कर अपना मनोरथ पूर्ण करो।"

एक—"महाराज! सेठ तो वे ही हैं जिनमेंसे एकने

उस दिन सधर्मी भाइयोंके उद्धारके विषयमें उत्तर दिया था। वे अपनी खुशीसे चाहे हजारों खर्च देंगे मगर हमारे जैसोंके माँगने पर तो वे एक रुपया देनेमें भी सौ नुक्स निकालेंगे।

आप—" तो फिर संतोष कर लो, या आपने उपाश्रयका ममत्व छोड़कर जो श्रावक यहाँ व्याख्यान सुनने आते हैं उनसे सलाह करके काम करो। मैं कह देता हूँ कि, चंदा बिलकुल न करना। यदि तुम्हारी सम्मति हो और जौहरी भोगीलाल (मंगलभाई) कीकाभटकी पोलवाले पूँजाभाई आदि भाग्यवान बैठे हैं, इनकी इच्छा हो तो, ये एक एक दिनकी पूजा आदिका खर्चा स्वीकार कर लें। आठ भाग्यवानोंके मिलजानेसे अठाई महोत्सव आनंदसे हो सकता है। अपनी अपनी पूजाकी सामग्री अपने आप इच्छानुसार उत्साह पूर्वक मँगवा लेंगे। स्नात्री आदि भी हरेककी पूजामें उनके घरके आ जायँगे। मैं समझता हूँ इस तरह हरेक को अधिक आनंद प्राप्त होगा।

इस बातको सुनकर मंगलभाई, पूँजाभाई आदि भाग्यवानोंने बड़े आनंदके साथ एक एक दिन स्वीकार कर लिया। श्रीमहावीरस्वामीके मंदिरमें अठाई महोत्सव धारणासे भी अधिक उत्साह और आनंदके साथ हुआ।

उपर्युक्त घटनासे पाठक समझ सकते हैं कि, आपके हृदयमें सामान्य स्थितिवालोंके लिए कितना खयाल है; आप

इस वातकी कितनी सावधानी रखते हैं कि, कोई ऐसी वात न वने जिससे सामान्य स्थितिके लोगोंके दिलोंमें उपाश्रयमें आते झिझकन पैदा हो और वे धर्मध्यानसे वंचित रहें।

अहमदावादका चौमासा सदा स्मरण रहे इस हेतुसे आपने शान्त मूर्ति १०८ श्री हंसविजयजी महाराजके परम भक्त सुशिष्य पंन्यासजी महाराज श्री संपत्तिविजयजीकी प्रेरणासे अन्तिम तीर्थंकर भगवान श्रीमहावीर स्वामीकी पंच-कल्याणक पूजा वनाई थी। उस चौमासेमें आपके साथ तेरह साधु थे उन के नाम ये हैं (१) मुनि श्रीमोतीविजयजी (२) मुनि श्रीविवेकविजयजी (३) मुनि श्रीकीर्तिविजयजी पंडित (४) मुनि श्रीउत्तमविजयजी (५) मुनि श्रीललितविज-यजी (६) मुनि श्रीनायकविजयजी (७) मुनि श्रीकस्तूर विजयजी (८) मुनि श्रीकीर्तिविजयजी (९) मुनि श्रीविज्ञान-विजयजी (१०) मुनि श्रीतिलकविजयजी (११) मुनि-श्रीविद्याविजयजी (१२) मुनि श्रीविचारविजयजी (१३) मुनि श्रीउदयविजयजी।

अहमदावादमें आपके पास वीकानेरके श्रीसंघका वड़ा ही भक्तिपूर्ण एक विनतीपत्र आयाथा उसे हम यहां उद्धृत करते हैं,—

"+ + + आपके दर्शनोंकी अभिलापा वहुत वरसोंसे लग रही है; मगर हमलोगोंके अभाग्य और अन्तराय कर्मके कारण आपका आना इधर कभी नहीं हुआ। पंजाव और गुजरातके अहो भाग्य हैं जो आप सत्पुरुषोंका हर वक्त—

विचरना रहता है। आप जैसे सतगुरुओंके दर्शन हम कर्मचारी लोगोंके लिए अति दुर्लभ हैं। मगर अब आशा है कि, आप नजदीक विराजमान हैं और पंजाबकी तरफ पधारनेकी सुनी है इस लिए विनयपूर्वक प्रार्थना है कि, अबका चौमासा बीकानेरमें कृपा करके अवश्यमेव कीजिएगा, ताके हम लोगोंका भी जन्म सफल हो। आप सद्गुरुओंका भी फ़र्ज है कि इस मरुधर देशमें कठिन परिश्रम उठाके पधारें और अज्ञान जीवोंका उद्धार कर जैन शासनकी उन्नति करें। और महाराज श्री श्री श्री देवश्रीजी आदि ठाणा आठसे यहाँ विराजमान हैं। धर्मका उद्धार अच्छा हो रहा है। इनको भी यहाँ रहनेकी इजाजत फ़र्मावें। यहाँ इनके विराजनेसे बहुत उपकार होगा। आपके पधारनेकी सूचना जल्दी फ़र्मावें ताके हमारा मन प्रफुल्लित हो।"

यहीं सं० १९७५ के कार्तिक सुदी ९ का लिखा हुआ राजपूताना जैन श्वेतांबर प्रान्तिक कॉन्फरेंसके मंत्रिका एक छपा हुआ पत्र आपके पास आया था। उसको हम यहाँ देते हैं। इस तरहके पत्र, उक्त सभाके फलौधीके एक प्रस्तावके आधारपर, समस्त मुनिराजोंके पास भेजे गये थे। अन्यान्य मुनिराजोंने राजपूतानाके जैनोंकी पुकार सुनकर कुछ किया या नहीं सो हम कुछ नहीं जानते मगर हमारे चरित्रनायकने जो कुछ किया है उसे हम आगे देंगे। पत्रमें यह लिखा था:—

" पूज्य वर्य,

श्री रा० जै० श्वे० प्रा० कान्फरेन्सका प्रथम अधिवेशन मिती आसोज सुदि ९–१० सम्वत १९७५ को श्रीपार्श्वनाथ स्वामीके तीर्थ पर अर्थात् फलोधी (मारवाड़) में, स्वर्गीय राय बाबू बद्रीदासजी बहादुर मुकीम कलकत्ता निवासीके सुपुत्र बाबू राजकुमारसिंहजीकी अध्यक्षतामें हुवा, जिसमें अन्यान्य प्रस्तावोंके साथ ही साथ निम्नोक्त प्रस्ताव भी सर्व सम्मत्यानुसार पास हुआ।

" यह कान्फरेन्स धर्म प्रचार तथा नैतिक सुधारके लिये मुनि महाराजाओंका इस राजपूताना प्रान्तमें विचरना अति आवश्यक समझती है। मुनि महाराजाओंका तथा साध्वियोंका इस प्रान्तकी ओर कम ध्यान देखकर खेद प्रकट करती हुई उनसे सविनय प्रार्थना करती है कि शासनोन्नतिके लिये मुनि गण इस प्रान्तमें कठिन परिसह होते हुवे भी विचरें।"

पूज्यवर्य! यह पत्र राजपूतानेके संघकी ओरसे आपकी सेवामें भेजा जाता है और राजपूतानानिवासी सर्व संघके विचार तथा इच्छा प्रकट करता है।

पूज्यवर्यसे यह बात छिपी नहीं होगी कि समस्त भारतकी जैन जातिका लगभग एक तिहाई भाग इसी प्रान्तमें रहता है और मुख्य करके श्वेताम्बर जैनियोंका तो यह प्रान्त घर ही है। जैनियोंमें सबसे बड़ी ओसवाल जातिका–जो

आज प्रायः सर्व ही प्रान्तोंमें पाई जाती है—यह जन्म स्थान ही है। किसी कालमें तो इस प्रान्तके ग्राम २ में मुनिराजों तथा साध्वियोंका चातुर्मास तथा विहार हुवा करता था, पर खेदके साथ लिखना पड़ता है कि अर्वाचीन कालमें जैन जातिके इस बड़े भागकी ओरसे हमारे परम पूज्य, धर्मनेता मुनिगण उदासीन ही हो बैठे हैं। जहाँ गुजरात प्रान्तके एक एक नगरमें बीस २ मुनिगण चातुर्मास करते हैं, जहाँके छोटे २ ग्राम निवासी भी मुनिगणोंके सदुपदेशसे भरे हुवे अमृत बचनोंका सदैव पान करते हैं, वहाँ यह जैन श्वेताम्बर जातिका घर न जाने किस हीन कर्मोदयसे मुनिगणों द्वारा केवली भगवानके तारनेवाले वचनोंसे निरा वंचित ही रहता है। ग्रामोंका तो कहना ही क्या बड़े २ नगर भी मुनिगणोंके चातुर्माससे बरसों खाली रह जाते हैं।

पूज्यवर्य जिनशासनके लिये इसका नतीजा अति अहितकर हुआ है। संघमेंसे भक्ति, श्रद्धा, तथा धार्मिक ज्ञान दिन प्रति दिन कम होता जाता है। जैनधर्मके तत्वोंसे तो लोग अनभिज्ञ ही हो गये हैं। कई जिन मंदिर अपूज, बेसम्भाल पड़े हैं। धर्मसे प्रेम तथा धर्मश्रद्धा कम होते जाते हैं। स्वधर्मी वात्सल्य, लोकसेवा, धर्मप्रचार, परोपकार इत्यादि सम्यक्त्वके गुणोंका दिन २ ह्रास हो रहा है। धर्म कार्योंमें पैसा खच नहीं होता वरन् उसके विपरीत पाप कार्योंमें पैसा दिल खोल खर्च किया जाता है। धर्मानुसार

आचरण नहीं रहा। कहाँ तक लिखा जावे सब कुछ दिन प्रति दिन भ्रष्ट होता जाता है। अहिंसा व्रत (दया) को तो इस प्रान्तके लोग यहाँ तक भूल गये हैं कि, अपनी छोटी २ कन्याओंको ब्याह कर उन पर अथवा उनके बालक पति पर अल्पायुहीमें इस कराल कालका आक्रमण कराते हैं। या बूढ़ोंके साथ छोटी २ कन्याओंको बाँधकर उन वे समझ कन्याओंके लिये वैधव्यको आमंत्रण देते हैं। दयालु मुनिगण! यदि आप एक दफा मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टको देखें तो आपको ज्ञात होगा कि इस प्रान्तमें इस दयाधर्मी ओसवाल जातिका क्या हाल हो रहा है? प्रति एक सौ सोहागिन स्त्रीयोंके साथ पाँच सौ विधवा स्त्रियोंकी ओसत आती है। जिनमेंसे कईकी तो उदरपूर्ति तथा लगभग सबहीकी धार्मिक शिक्षाका कोई उचित प्रबन्ध नहीं है। पूज्य वर्य! यह ऐसी बात नहीं है कि जिस तरफ करुणा सागर मुनिगणोंका ध्यान न आकर्पित हो। विधवाओंकी अधिक संख्या होनेसे केवल जैनियोंकी संख्या ही कम नहीं होती पर आजकलका समय देखते हुवे जातिके चारित्र पतनका भी भय होता है। जहाँ चारों ओर विलास प्रियता, ऐश-आराम इत्यादि पश्चिमी सभ्यताका दौर दौरा है, जहाँ जातिमें प्रत्येक हर्षके अवसर पर पतित चारित्र वेश्याका मान है, जहाँ धनके मदमें, शिक्षाके अभाव में, तथा पंचायतियोंकी अशक्तिके कारण कुचरित्र मनुष्योंकी संख्या

बढ़ती है, धार्मिक ज्ञान तथा धर्मके तत्वों पर जहाँ जागृत श्रद्धा है ही नहीं, जहाँ पुरुष अपनी आखिरी मंजिलमें अर्थात् वृद्धावस्थामें भी एक कम उम्रकी भोली कन्याके साथ शादी करनेसे बाज़ नहीं रहते हैं । तथा एकके बाद एक इस तरहसे तीन चार विवाह करते हैं, ऐसी दशामें इन बाल विधवाओंकी बड़ी संख्याके लिये अपने सतीत्व धमका पालन करना दिन प्रति दिन कठिन होता जाता है। पूज्य वर्य ! कमसे कम इस जड़वादके प्रतिरोधके लिये, कुचारित्र पुरुषोंकी संख्या घटानेके लिये, अल्पायुमें युवकोंकी प्राण रक्षाके लिये प्रसूतिके समय अल्पायु होनेके कारण माताओं-के मरनेको अथवा जन्म रोगिणी होकर सर्वदाके लिये दुःखों के पात्र होने से रोकने के लिये आप अहिंसा धर्म का प्रचार कर सकते हैं। यदि पशु पक्षी तक जैन दयाके तथा मुनिगणों-की हिमायतके पात्र हों तो क्या अभागे मनुष्य और विशेष कर परमात्मा वीरहीके उपासक इस दया या हिमायतके पात्र नहीं। कमसे कम शासनको जीवित रखनेके हेतु मुनिगण-को इस ओर ध्यान देना चाहिये । पूज्य वर्य, सन् १९०१ से १९११ तक अर्थात् केवल १० वर्षकी अवधिमें इस प्रान्तमें २ प्रति शत जैनी कम हो गये हैं और कई रियासतोंमें तो १५ से २० प्रति शत जैनियोंकी संख्या घट गई है। जहाँ प्रत्येक जैनीको धार्मिक ज्ञान अथवा सांसारिक ज्ञानके लिये शिक्षित होना चाहिये उसके विपरीत

लगभग आधे पुरुष और ९८ प्रति शतक स्त्रीयाँ तो केवल निरक्षर ही हैं। जहाँ संयमी जीवन व्यतीत करते हुए जैनियोंको दीर्घायु होना चाहिये वहाँ असंयमी जीवनके कारण हमारी ओसत आयु केवल २५ वर्षकी ही रह गई है। जहाँ पूर्व कालमें हमारे धनी अपनी लक्ष्मी खर्च करके आबूके दिलवाड़ेके जैसे मंदिर वनवाते थे वहाँ आज हमारे धनिकोंका द्रव्य विलास प्रियतामें खर्च होजानेके कारण अपनी जातिके वालकोंकी शिक्षाके लिये भी नहीं मिलता। कहाँ तक कहा जावे। हमारा नैतिक जीवन दिन दिन विगड़ता जा रहा है।

पूज्य वर्य! इन उपरोक्त त्रुटियोंको दूर करनेके लिये मुनिगणके उपदेश तथा प्रयासकी वहुत आवश्यकता है। मुनिगण अपने चारित्र वलसे शिक्षा प्रचारके लिये, जिससे अन्य सव रोग दूर हो जाते हैं, वहुत कुछ कर सकते हैं। राजपूतानेके घर घरमें शिक्षाका प्रचार करा देना मुनिगणके लिये दुर्लभ नहीं है। जव हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि धार्मिक महोत्सवोंके लिये मुनिगणके उपदेशसे हजारों रुपये व्यय हो जाते हैं तो हम ये कल्पना नहीं कर सकते कि शिक्षाप्रचारके लिये जिस पर हमारा धर्म, कर्म और सारा जीवन ही निर्भर है उनके प्रयास निष्फल हों। सत्य तो यह है कि त्यागियोंके उपदेशका प्रभाव अतुलनीय होता है।

पूज्य वर्य, यदि मुनिगण इस प्रान्तको आजकलकी

भाँति छोड ही देंगें तो शासनको बड़ा नुकसान पहुँचेगा। इस जैन धर्मकी हानि और जातिके ह्रासका उत्तर दायित्व आप पूज्योंके सिर ही रहेगा। कारण आप धर्मनेता हैं, धर्मरक्षक हैं, धर्मगुरु है, संघके लिये गोपाल हैं। और ऐसी दशा में उत्तर दायित्व सिवाय मुनिगणके किस पर हो सकता है?

पूज्य वर्य, यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्रमें परिसह बहुत हैं। इस क्षेत्रमें गर्मी बहुत पड़ती है। वालू रेतमें पैर जलते हैं कई गाँवोंमें समय पर आहार तो दूर रहा पानी तक की जोगवाई नहीं मिलती। श्रावकोंमें आदर भक्ति नहीं इत्यादि अनेक बातें इस प्रांतके विषयमें कही जा सकती हैं। पर पूज्यवर्य क्या यह परिसह कानोंमें कीलियाँ ठोके जानेसे, अथवा वियावान जंगलमें, शीत उष्णमें ध्यानावस्थामें खड़े रहनेसे अथवा सर्पसे डसे जाने अथवा कपाल पर अग्नि जलाई जानेसे भी अधिक कठिन है। परमात्मा महावीर आदर्श हैं, मोक्ष उद्देश है, सांसारिक दुख सामने हैं तो क्या उन मुनिवरोंको कि जिन्होंने कञ्चन, कामिनी तथा अन्य संसारी सुखोंका त्याग करके चारित्र अंगीकार किया है उन्हें स्वयं मोक्ष जानेसे तथा श्रीसंघके कल्याणके लिये प्रयास करनेसे कोई परिसह रोक सकता है? कदापि नहीं। पूज्य वर्य यदि मुनि-थोड़ीसी देरके लिये अपने उद्देश तथा प्रभुके वचनों और संघके कल्याणकी ओर ध्यान दें तो हमें विश्वास है कि वे इस प्रान्तसे ऐसे उदासीन रह ही नहीं सकते जैसे वे इस समय हैं।

पूज्यवर्य केवल संतानके संसारी सुखके लिये युद्धमें लाखों पुरुष अपने प्राण त्याग रहे हैं तो क्या सारी जाति को मोक्षमार्ग पर लेजानेको हमारे त्यागी मुनिवर सामान्य परिसहोंसे भय भीत होकर इस प्रान्तमें आने तथा विचरनेसे हिच किचावेंगे ऐसी हमें कदापि आशा नहीं है। पूर्वकालमें इस प्रान्तमें मुनिगण विचरते थे और अब भी स्थानकवासी साधु विचरते हैं। तो क्या आप लोगोंके लिये विचरना इस प्रान्तमें अधिक दुष्कर है?

पूज्यवर्य शासनोन्नतिके लिये, धर्मकी रक्षाके लिये, जैन जातिको वास्तविक जैन जाति फिरसे बनानेके लिये मुनिवरोंके कठिन परिश्रमकी आवश्यक्ता है। इस लिये राजपूतानेके श्रीसंघकी इस कॉन्फरेन्सके द्वारा आपसे सविनय प्रार्थना है कि इस चातुर्मासके समाप्त होने पर इस तरफ पधारनेकी कृपा करें और इस प्रान्तके ग्राम २ व नगर २ को सवज्ञके वचनोंसे गुँजावें और लोगोंमें धर्मके प्रति जाग्रत श्रद्धा उत्पन्न करके कि जो उन्हें सत्य मार्ग पर चलनेको मजबूर करे, श्रीसंघका तथा संसारका कल्याण करें। यह भी सविनय प्रार्थना है कि इस कल्याणकारी कार्यके लिये किसी ग्रामसे निमंत्रण आनेकी बाट न देखें।

पूज्यवर्य, अग्निमें सोनेकी, संकटमें वीरधीरकी और परिसहमें धर्म दृढताकी परीक्षा होती है॥ इत्यलम्॥

१०८ शान्तमूर्ति श्रीहंसविजयजी महाराज साहिबने पंन्या-

सजी महाराज श्रीसंपत्तिविजयजी और अपने शिष्य प्रशिष्यादि परिवार सहित कुछ समय तक लूणसावाड़ेके श्रावकों को उपदेशामृत पिलाकर शहरमें ही पाँजरापोलके उपाश्रयमें पधारनेकी कृपा की थी, जिससे परस्पर, एक दूसरे उपाश्रयमें, आनाजाना मिलना सुगमतासे हो सकता था। व्याख्यानादि कार्यके सबब हमेशा तो नहीं; किन्तु प्रायः तिथियोंके दिन हमारे चरित्र नायक सपरिवार इन महात्माकी सेवामें हाजिर हो जाते थे। कभी कभी हंसविजयजी महाराज साहिब भी धर्मशालामें पधारकर अपने बाल बच्चोंकी खबर लेलिया करते थे। दोनों महात्माओंके, अर्थात् श्रीहंसयिजयजी महाराजके और हमारे चरित्रनायकके, हृदयोंमें यह आनंद था कि एक ही शहरमें जन्मे हुए हम दोनों मुनियोंका, एक ही शहरमें यह पहला और शायद अन्तिम भी चौमासा है। यह चौमासा धन्य है!

प्रवर्त्तकजी महाराज श्री १०८ श्री कान्तिविजयजी और शान्त मूर्ति मुनिराज १०८ श्रीहंसविजयजी महाराज इन दोनोंका जन्म स्थान भी बड़ोदा है। और ये दोनों महात्मा भी प्रभाविक पुरुष हैं। हमारे चरित्रनायकके हृदयमें इन महात्माओंके लिए अत्यंत पूज्य भाव है और इन महात्माओंके हृदयोंमें भी आपके लिए अति स्नेह और आदरके भाव हैं।

प्रवर्त्तकजी महाराजके साथ आपने सं० १९७४ का चौमासा बंबईमें किया था और हंसविजयजी महाराजके

साथ सं० १९७५ का चौमासा अहमदावादमें किया और आनंदकी अभिवृद्धि की। बड़ोदेको इस बातका गर्व है कि उसने मुनि श्रीहंसविजयजी महाराज, प्रवर्तकजी श्रीकान्तिविजयजी महाराज और आप जैसे, महान और प्रभाविक तीन आत्माओंको जैन समाजकी सेवाके लिए भेट किया है।

पंन्यासजी महाराज श्रीसंपत्तिविजयजीकी अति कृपाका यह फल हुआ कि, उन्होंने अहमदावादके चौमासेमें हमारे चरित्रनायकके सुशिष्य मुनि श्रीललितविजयजी तथा विद्याविजयजीको महानिशीथका और अन्यान्य शिष्योंको अन्यान्य योगोद्वहन कराये थे।

इस प्रकार सं० १९७५ का बत्तीसवाँ चौमासा आपने अहमदावादमें समाप्त किया। अहमदावादसे मार्गशीर्ष वदी ३ के दिन आपने विहार किया। शान्त मूर्ति मुनिमहाराज श्रीहंसविजयजी और पंन्यासजी महाराज श्रीसंपतविजयजी भी, आपकी अपने प्रति अकृत्रिम श्रद्धा देखकर, नरोडा गाँवतक आपके साथ ही पधारे थे। अनेक श्रावक श्राविकाएँ भी साथमें गये थे। नरोड़ामें अहमदावादके आये हुए श्रीसंघने आपकी बनाई पंचतीर्थी पूजा पढ़ाकर साधर्मी वात्सल्य किया था।

नरोड़ासे श्रीहंसविजयजी महाराज और पंन्यासजी श्रीसंपतविजयजी महाराज वापिस अहमदावाद पधार गये थे

और आप वलाद कोवां आदि स्थानोंमें होते हुए मार्गशीर्ष १० के दिन पानसरमें पधारे थे। वहाँ भी अहमदावादके श्रावकोंने आकर दो दिनतक पूजा प्रभावनाएँ की थीं और आपके प्रति अपनी अप्रतिम भक्ति बताई थी।

पानसरसे विहार कर मार्गशीर्ष वदी १३ के दिन आप भोयणी पधारे। वहाँ भी अनेक स्थानोंके श्रावक आपके दर्शनार्थ आये थे।

भोयणीसे पंन्यासजी महाराज श्रीसिद्धिविजयजीके दर्शनार्थ आप महेसाणे पधारे। आपने पंन्यासजी महाराजके दर्शन कर और पंन्यासजी महाराजने आपको स्नेह पूर्ण हृदयसे योग्य सत्कार देकर प्रसन्नता प्रकट की। आपका विचार विसनगर, वडनगर होकर तारंगाजी जानेका था; परन्तु पालनपुरके आये हुए श्रावकोंके अत्यंत आग्रहसे आपने पालनपुर होकर तारंगाजी पधारना स्थिर किया।

महेसानेसे आपने विसनगरकी तरफ़ विहार किया। महेसानेसे तीन कोसके फासले पर एक गाँव है वहाँ रातको आप आराम कर रहे थे। पाटन श्रीसंघके अनेक मुखिया रातको ग्यारह वजे वहाँ आये और उन्होंने आग्रह किया कि आप ज़वतक पाटन पधारनेकी स्वीकारता न देंगे तवतक हम यहाँसे नहीं उठेंगे। अन्तमें रातको बारह वजे आपको पाटनजानेकी स्वीकारता देनी पड़ी। पालनपुर जाना उस समय बंद रहा।

वहाँसे विहारकर दो दिन विसनगरमें विराजे । विसनगरके श्रीसंघकी भक्ति और उत्साह देखकर आपने फर्माया था कि,–"यदि पंजाब न जाना होता और गुजरातहीमें रहना होता तो यहीं चौमासा करता।"

विसनगरसे विहार कर आप पाटन पधारे। बड़े समारोहके साथ आपका स्वागत हुआ। पाँच दिन तक पूजा प्रभावनादि करके संघने अपनी भक्ति प्रदर्शित की । श्रीसंघने आपसे वहीं चौमासा करनेकी विनती की; परन्तु आपको पंजाबमें जानेकी शीघ्रता थी इस लिए ५ दिनतक वहाँ निवासकर आपने विहार करने की तैयारी की । तब पाटनके अधिकारियों और नगरवासियोंकी तरफसे आपको सार्वजनिक व्याख्यान देने की विनती की गई । इस लिए आपको दो दिन तक और रहना पड़ा। आपने 'दानधर्म' इस विषय पर ऐसा प्रभावशाली व्याख्यान दिया कि अधिकारियों और प्रजाके दिल पसीज उठे। उन्होंने उसी समय दुष्काल पीडितोंके लिए सात हजार रुपयोंका चंदा कर लिया।

सूबा साहबने वहीं कहा था कि,—करीब एक लाख रुपये तक दुष्काल पीडितोंके लिए जमाकर पाटन निवासियोंको अपनी महाराजके प्रति जो भक्ति है उसे प्रदर्शित करना चाहिए । और उनके पवित्र उपदेशको आचारणमें लाकर अपना जन्म सफल करना चाहिए ।

पंन्यासजी महाराज श्रीअजितसागरजी महाराजने सभामें

कहा था कि,—"मुनि श्रीवल्लभविजयजीके पाटनमें आनेसे मुझे अत्यंत संतोष और आनंद हुआ है।"

मुनि महाराज श्रीललितविजयजीने उपदेश दिया था कि, चारूपके कारण पाटणनिवासियोंमें जो अव्यवस्था हो गई है उसे मिटा देना चाहिए।

सभाके समाप्त होनेपर पाटनके सूवा साहवने और अन्यान्य अधिकारी वर्गने आपके पधारनेसे पाटन निवासियों पर जो उपकार हुआ है उसके लिए आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट की थी।

पाटनसे विहार कर आप चारूप पधारे। करीव ३००—४०० जैन जैनेतर सज्जन आपके साथ गये थे। वहाँ पंचकल्याणककी पूजा पढ़ाई गई थी। प्रतिमाजीके विराजनेके लिए कोइ उत्तम सिंहासन नहीं था आपके उपदेशसे करीव चार सौ रुपये वहीं जमा हो गये थे।

चारूपसे विहार कर आप मेत्राणे पधारे। वहाँ पालनपुरका संघ आपके सामने आया।

मेत्राणेसे विहारकर आप जगाणे पधारे। वहाँ उपाध्यायजी महाराज श्रीवीरविजयजीके कालधर्म प्राप्त होनेके समाचार मिले। शोक सभा की गई और पालनपुरके संघने पंचकल्याणककी पूजा पढ़ाई।

जगाणेसे विहार कर पोस वदी १० के दिन आप पालनपुर पधारे। पालनपुरके श्रीसंघने वड़े उत्साहके साथ आपका स्वागत किया।

वहाँ आपने तीन प्रसिद्ध आचार्योंकी मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करवाई। ये मूर्तियाँ आचार्य श्रीसोमसुंदर सूरिजी, जगद्गुरु, श्रीहीरविजय सूरिजी और आचार्य श्रीमद्विजयानंद सूरिजीकी थीं। मूर्तियाँ मुनि श्रीहंसविजयजी महाराजके उपदेशसे तैयार हुई थीं। और श्रीपल्लविया पार्श्वनाथजीके मंदिरमें स्थापित की गई थीं। अट्ठाईस दिन तक महोत्सव होता रहा।

व्यावहारिक विद्याके साथ ही धार्मिक विद्या भी विद्यार्थियोंको मिले इस हेतुसे आपने वहाँ एक बोर्डिंग खोलनेका श्रावकोंको उपदेश दिया। चंदा शुरू हुआ। हजारों रु. जमा हुए। बोर्डिंग खुला। उसका नाम पालनपुर जैनविद्यालय रक्खा गया। इस समय पन्द्रह वीस विद्यार्थी उससे लाभ उठा रहे हैं। करीब सत्तर हजारका उसका फंड है।

पालनपुरसे आपने तारंगाजी तीर्थकी यात्राके लिए विहार किया। तारंगाजीकी यात्रा कर कुंभारियाजीको पधारे और वहाँकी यात्रा कर सीधे आबूजी पधारे। आबू और अचलगढ़की यात्राकर, वहाँके संसार प्रसिद्ध मंदिरोंके दर्शन कर रोहिडेके रस्ते लोटाणा, नाँदिया वगैरहकी यात्रा करते हुए बामणवाड पधारे। वहाँ प्रभु महावीरकी यात्रा की और वहाँके चंडकोसिया, कानोंसे कीलियोंका निकालना, पहाड़का फटना, आदिकी पहिचानके लिए स्थापित दृश्योंको देखते हुए और वीर परमात्माके अलौकिक गुणोंका स्मरण करते हुए। आप पिंडवाडे पधारे।

पिंडवाडेमें कई बरसोंसे श्रावकोंके आपसमें झगड़ा चल रहा था, मंदिरका प्रबंध भी यथोचित नहीं था; मंदिरका धन कई दबाये बैठे थे। आपने सबको समझा कर झगड़ा मिटाया। बरसोंका मनोमालिन्य आपके उपदेशरूपी जलके प्रवाहसे धुल गया। जिन लोगोंने धन दबाया था उन लोगोंने भी अपने भविष्यका विचार कर धन वापिस मंदिरमें दे दिया। वहाँसे चलकर आपने कई अन्यान्य तीर्थोंकी यात्रा करते हुए नाणा बेड़ाके रास्ते हो कर बीजापुरके पास राता महावीरकी अपूर्व यात्रा करनेका निश्चय कर लिया।

जिस दिन आप बेड़ासे रवना हुए उसी दिन बेड़ा गाँवकी एक बरात बीजापुरसे बेड़ा आनेवाली थी। उस तरफ लुटेरे, भील, मीणे आदि बहुत हैं। वे गाँवसे आने जानेवालोंकी खबर रक्खा करते हैं। बरातके रवाना होनेके समाचार भी उन्हें मिले। वे तैयार हो कर उस जगह पहुँचे जहाँ उन्हें लूटनेका मौका मिलता है। बेड़ा और बीजापुरके बीचमें करीब दो मील पर एक नाला है। उसीमें ये लोग यात्रियोंको लूटा करते हैं। लुटेरे पहुँचे। बरात अभी तक वहाँ पहुँची न थी। उन लोगोंको बड़ी खीझ चढ़ रही थी। वे इधर उधर ताकने लग रहे थे। इतनेहीमें हमारे चरित्रनायक, श्रीउमंगविजयजी, तपस्वी श्रीगुणविजयजी, श्रीविद्याविजयजी, और श्रीविचारविजयजी ऐसे चार साधु, पाड़ी (सीरोही) के लक्ष्मीचंद हंसाजी श्रावक

और एक सिपाही तथा वोलावी सहित वहाँ जा पहुँचे ।
लुटेरोंने आकर सबको घेर लिया। आपने उनसे कहाः—"हम साधु हैं। हमारे पास कुछ नहीं है।" आदि। मगर उन्हें तो उस समय क्रोध आ रहा था आप पर परिसह होनेका भविष्य था इस लिए उन्होंने कुछ नहीं सुना।

वे बोलेः—"शीघ्र ही जो कुछ है वह रख दो, वरना मार पीटकर हम ले जायँगे।"

रोहीडेके श्रीसंघका भेजा हुआ आबूजीसे एक राजपूत सिपाही आपके साथ आया था। लुटेरोंकी वात सुन कर उसे गुस्सा आया। वह तलवार निकालने को तैयार हुआ। एक लुटेरेने उसे देखा। उसने उसके सिरमें छुरीका आघात किया। वह वेवस होकर जमीनपर आरहा। लुटेरोंने उसकी तलवार और उसके कपड़े छीन लिये।

हमारे चरित्र नायकने एक एक करके अपनी सभी चीजें दे दीं। दूसरे साधुओंने भी अपने स्थापनाचार्य, पुस्तकें, पात्रे, वस्त्रादि रख दिये और कपड़े भी उतार दिये। लुटेरोंने पुस्तकें और पात्रोंके सिवा सब कुछ ले लिया। उमंगविजयजीके और तपस्वीजीके तो स्थापनाचार्य भी ले गये। जब वे जाने लगे तब तपस्वीजीने उनसे पुस्तकें व पात्रे बाँधनेके लिए कुछ कपड़ा माँगा। लुटेरोंने दो फटेसे टुकड़े दे दिये। साधुओंने उसीमें पुस्तकें व पात्रे बाँध लिए। जाते समय लक्ष्मीचंद हंसाजीके पाससे भी जो कुछ था ले

गये। जाते हुए मुनि श्रीविद्याविजयजी, मुनि श्रीविचारविजयजी, और लक्ष्मीचंदपर चोट भी करते गये।

जब वे चले गये तब हमारे चरित्रनायकने सिपाहीकी तरफ़ ध्यान दिया। देखा,—उसके सिरसे खून निकल रहा है और वह वेहोश पड़ा है। समयको विचार हमारे चरित्रनायकने तर्पणीमें पानी था, वह सिपाहीके सिरपर डाला। उसने आँखें खोलीं और कहाः—"महाराज! आपने मुझे बचा लिया। वरना यहाँ मेरा कौन था!"

आप बोलेः—"तुम किसी तरहकी चिन्ता न करो। हम सब तुम्हारे ही हैं।"

सिपाहीको बड़ा आश्वासन मिला। वह बोलाः—"क्यों न हो? आप जीवदया प्रतिपालक कहलाते हैं; आपने यह प्रत्यक्ष बता दिया कि आप साक्षात् दयाकी मूर्ति हैं!"

आपने कहाः—"मनुष्य दयालु तो हमेशा ही कहलाते हैं; परन्तु वास्तविक दया तो वही है जो समय पड़े काम आती है।"

पाठक स्वतः कष्टमें पड़े हुए भी दुःखमें पड़े हुएको सहायता देना कितने मनुष्य करते हैं?

सर्दीकी मौसिम थी। ठंडी हवा चल रही थी। तीरकी तरह वह शरीरमें घुस जाती थी। आपके और दूसरे साधुओंके पहननेके लिए केवल एक चोलपट्टा था। लुटेरोंने नंगापन ढका रहे इस हेतुसे उसे लिया न था। ऐसी दशामें आप

बीजापुर पहुँचे। सिपाही भी धीरे धीरे आपके साथ ही चला गया। क्षत्रिय बच्चा था इसी लिए सिरमें छुरीका जख्म लगने और रक्त बहने पर भी, वहाँतक चलनेकी हिम्मत कर सका। अगर कोई दूसरा होता तो जगहसे हिलता तक नहीं।

जिस समय आप बीजापुर पहुँचे घड़ीमें करीब बारह बज चुके थे। इस प्रकारके वस्त्रहीन, मात्र चोलपट्टा धारियोंको गाँवमें आते देख लोगोंको आश्चर्य हुआ। जब आप गाँवके निकट रस्ते पर चल रहे थे, तब बंबईकी सेठ चंदाजी खुशालचंदकी पेढीवाले सेठ जवेरचंदजीने दूरसे आपको देखा और पहिचान लिया। आपका बंबईमें चौमासा हुआ तभीसे सेठ आपको पहिचानते थे और आपकी चरणसेवा करनेमें अपना अहो भाग्य समझते थे। आपको ऐसी हालतमें देखकर पहले तो वे दिग्मूढसे हो रहे। उन्हें क्षण भरके लिए संदेह हुआ कि ये हमारे गुरुमहाराज ही हैं या कोई और। मगर दूसरे ही क्षण वे आपके चरणोंमें गिरे और भक्ति गद्गद कण्ठसे बोलेः—"गुरु देव! आपकी यह दशा?"

आप मुस्कुराये और बोलेः—"कर्म सब कुछ कर सकता है। उपाश्रय बताओ। वहीं सब हाल सुनायँगे।

सेठने आपको उपाश्रयमें लेजाकर उतारा। घरोंमेंसे उसी वक्त जाकर वे कपड़ा ले आये। आवश्यकतानुसार आपने और साधुओंने कपड़ा लिया। बादमें साधु आहार पानी ले आये। आहारपानीके बाद श्रावकोंने हाल पूछा। आपने संक्षेपमें सारी घटना सुना दी।

वहाँके लोग आपके उपदेशोंसे धर्म भावमें और परोपकारक कार्यमें लीन हुए। अज्ञानकी विशेषताके कारण वहाँ आठ बरसोंसे दो धड़े चले आ रहे थे। आपने दोनों धड़ोंको समझाकर एक किया। ये धड़े फिर न हों और ज्ञानका प्रचार हो इस हेतुसे आपने वहाँ एक पाठशाला स्थापित करवाई। वह अबतक अच्छी दशामें चल रही है।

बीजापुरमें आप पन्द्रह दिनतक रहे। इतने अर्सेमें मुनि श्रीविद्याविजयजी और मुनि श्रीविचारविजयजी भी राजी हो गये।

इस दुखद घटनाको सुनकर मुनि श्रीललितविजयजी महाराज अपने शिष्य मुनि श्रीप्रभाविजयजीको साथमें लिए, डबल विहार कर, आपकी सेवामें, बीजापुरहीमें आ उपस्थित हुए। ये बीजापुरसे होशियारपुरके चौमासे तक आपकी सेवामें ही रहे। बंबई श्रीसंघके अति आग्रहसे, आपने इन्हें यह सोचकर बंबई चौमासा करनेके लिए भेजा कि, इनके जानेसे संघको तो प्रसन्नता होगी ही साथ ही बंबईके 'महावीर जैनविद्यालय' को भी मदद मिलेगी। गुरुदेवकी आज्ञा शिरोधार्य कर लंबी लंबी सफरें करते इन्होंने सं० १९८१ का चौमासा बंबईमें किया। स्पर्शना बलवती होती है। ये चौमासा समाप्त होने पर विहार करके वलसाडतक पहुँचे थे; परन्तु बंबई श्रीसंघके आग्रहसे और गुरुदेवकी आज्ञासे ये वापिस बंबई आये और सं० १९८२ का चौमासा भी बंबईमें ही किया।

आपके साथमें जो सिपाही था उसकी बीजापुरके श्रीसंघने अच्छी तरहसे चिकित्सा करवाई थी । पन्द्रह दिनके बाद वह भी राजी हो कर बीजापुरके संघका उपकार मानता हुआ अपने घर चला गया ।

बीजापुरसे विहार कर आप सेवाड़ी पधारे । वहाँ पाँच दिनतक ठहरे । लोगोंको धर्मामृत पिला कृतकृत्य किया । करीब सोलह वरसोंसे वहाँ धड़े बंदी हो रही थी । आपने लोगोंको समझा कर उस धड़े बदाका तोड़ा ।

सेवाड़ी और लुणावेके बीचमें एक रमगर नामका गाँव है। उसके जागीरदारने आपकी प्रशंसा सुनी थी। उनके दिलमें भी आपके वचनामृतपानकी इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने सेवाड़ी आकर आग्रह पूर्वक अपने गाँवमें आनेकी आपसे विनती की । आप वहाँ पधारे । सेवाड़ीसे बहुतसे आदमी आपके साथ गये थे और लुणावेसे बहुतसे आदमी आपके सामने आये थे । जागीरदारके यहाँ इतनी जगह न थी कि वे उन सबको बिठा सकते इस लिए उन्होंने नदीके किनारे वट वृक्षके नीचे एक पाट बिछवा दिया । हमारे चरित्रनायक उस पर विराजे और जागीरदार एवं सभी श्रावक नदीकी रेतीमें बैठ गये । उस समय ऐसा मालूम होता था मानों जंगलमें समव सरणकी रचना हुई है । जंगलमें मंगल पुण्यवानोंके पदार्पणसे ही होता है । आपके श्रीमुखसे व्याख्यान सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए । दयाधर्मका उनपर अच्छा प्रभाव पड़ा ।

वहाँसे आप लुणावा पधारे। आपने वहाँके लोगोंको दयाधर्मका उपदेश दे निहाल किया । वहाँ किसी कारण वश छः बरसोंसे दो धड़े हो रहे थे। वहाँकी धड़े बंदी तोड़ी और एकताका अमृत पिला कर सभीको सनाथ किया। वहाँ पाठशाला स्थापित करनेके लिए एक फंड भी हुआ।

× × × ×

आपके लुट जानेकी बात समस्त भारतमें पवनकी तरह फैल गई थी। श्रावक व्याकुल हो उठे। गोडवाड़के हजारों लोग आपकी सुखसाता पूछने आये । हजारों ही श्रावकोंके तार और पत्र खेद प्रकाशित करनेवाले आये। जो लोग आपकी सुख साता पूछनेके लिए आये थे उनमेंसे कुछ मुख्य मुख्यके नाम यहाँ दिये जाते हैं।

कलकत्तेसे सेठ सुमेरमलजी सुराणा आदि बीकानेरसे लखमीचंद्रजी कोचर नेमिचंदजी कोचर आदि। पालीसे चाँदमलजी छाजेड़ आदि। बड़ौदा, पालनपुर, अजमेर, सोजत, ब्यावर आदि स्थानोंसे भी अनेक सज्जन आये थे उनके मुखियोंके नाम प्राप्त न हो सके। पंजाबमें लुधियानेसे लाला हुक्मीचंदजी, बाबू हुक्मीचंदजी आदि अंबालेसे लाला गंगारामजी आदि। जामनगरसे सेठ मोतीचंद हेमराज आदि। गुजराँवाला, होशियारपुर, कसूर लाहोर आदि, पंजाबके अन्यान्य शहरोंके श्रावक भी कोई किसी गाँवमें और कोई किसी गाँवमें दर्शन करनेको और साता पूछनेको आते रहे। इस वक्तका दृश्य देखकर

लोगोंको प्रभु महावीर स्वामीके उपसर्गकी समाप्तिमें इंद्र, राजा, महाराजादि सुखसाता पूछने आये थे,—पर्युषणोंमें हर वरस यह वात सुनते हैं,—वही वात याद आगई थी। समस्त गोडवाड़के ५२ गाँवोंके भी प्रायः श्रावक आपके पास वीजापुर, सेवाड़ी और लुणावेमें आये थे।

जोधपुर महाराजा साहबके पास भी कई तार इस मजमूनके गये कि,—हमारे परम पूज्य गुरु आपके राज्यमें लुट गये हैं। इस लिए हम लोगोंके जी वड़े दुखी हुए हैं। आशा है आपके राज्यमें पवित्र महात्माओंको कष्ट पहुँचानेवालोंका आप उचित प्रवंध करेंगे।

उस समय जोधपुरका प्रवंध सर प्रतापसिंहजीके हाथमें था। इन तारोंसे उनको वहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपने विश्वासु आदमियोंसे पूछाः—" ये ऐसे कान हैं जिनके लुट जानेसे सारे हिन्दुस्थानमें तेहलका मच गया है ?"

उन्होंने हाथ जोड़ कर अर्ज कीः—" गरीव परवर ! जैनियोंके लिए तो वे एक अद्वितीय महापुरुष हैं। उनके लुट जानेसे लोगोंके दिलोंमें जो चोट पहुँची है उसका दर्द वतानेकी हममें शक्ति नहीं है।"

सर प्रतापसिंहजीने उसी समय पुलिसको हुक्म दिया कि, वह लुटेरोंको तत्काल ही गिरफ्तार करे। वड़ी कोशिशके वाद पुलिस एक आदमीको गिरफ्तार कर सकी। वह सरकारी

गवाह और भेदिया बन गया। उसने सभीको पकड़ा दिया लुटेरोंको पूरी पूरी तहकीकात करके उचित सजा दी गई।

× × × ×

आप चौमासा सादड़ीहीमें करें, इस बातकी विनती करनेके लिए सादड़ीके श्रावक आये थे। बीजापुरसे वे आपके साथ ही साथ आरहे थे। लुणावेमें उनका बहुत आग्रह देखकर आपके शिष्य मुनि श्रीललितविजयजीने प्रार्थना की कि, जब इन लोगोंका इतना आग्रह है तब इनकी विनती पर भी विचार करना चाहिए। उस समय आप मौन रहे मगर बालीसे आपने यह सोचकर ललितविजयजी आदि ५ साधुओंको पालीके लिए रवाना कर दिया कि, यदि ये साथमें रहेंगे तो, श्रावकोंका आग्रह देखकर ये भी आग्रह करने लग जायँगे।

श्रावकोंका अत्यंत आग्रह देखकर आप एक दिनके लिए बालीसे सादड़ी पधारे। दूसरे दिन श्रावक जमा होकर आपके पास आये और आग्रह पूर्वक विनती करने लगे कि चौमासा यहाँ कीजिए।

आपने फर्माया:—"बीकानेर चौमासा करनेके लिए सेठ सुमेरमलजी आदि बहुत बरसोंसे आग्रह कर रहे हैं। वहाँ कुछ विशेष काम होनेकी भी आशा की जाती है। फिर पंजाबमें जाना है। पंजाबका श्रीसंघ बराबर पाँच बरससे विनती कर रहा है। हर चौमासेमें, पंजाबके दसबीस मुख्य

मुख्य श्रावक आते हैं और पंजाबमें विहार करनेका आग्रह करते हैं। ”

श्रावक बोलेः—“ पंजाब और बीकानेरके श्रावक ही क्या आपको विशेष प्रिय हैं ? हमारी तो आप ऐसी उपेक्षा करते हैं मानों हम श्रावक ही नहीं हैं, हमें अपने धर्मका और अपने गुरुओंका राग ही नहीं हैं। ”

आप बोलेः—“ आप लोगोंका यह आग्रह ही बताता है कि, आप देवगुरुके अत्यंत भक्त हैं; इतना होनेपर भी मुझसे यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि आप अविद्याके पोषक हैं । आप ज्ञानप्रचारका उद्योग नहीं करते । ज्ञानप्रचारके बिना इस भक्तिका विशेष उपयोग नहीं होता। पंजाबके श्रावक ज्ञानप्रचारका उद्योग करते हैं; बीकानेरमें उद्योग जारी है । इसी लिए वहाँ जानेकी इच्छा होती है। मुझे अपनी भक्ति करानेसे विद्या प्रचार कराना, सभीको धर्मज्ञान कराना ज्यादा अच्छा लगता है। अगर तुम भी विद्या प्रचारका उद्योग करो तो मैं यहीं चौमासा करनेके लिए तैयार हूँ। मेरे लिए तो सभी स्थान और सभी श्रावक एकसे हैं; होना चाहिए धर्मज्ञानका उद्योत। ”

श्रावकोंने प्रसन्नतासे उत्तर दियाः—“ हम आपकी आज्ञा पालनेको तैयार हैं। बतलाइए हम क्या करें ? ”

आपने फर्मायाः—“ गोडवाडमें एक महा विद्यालय स्थापित करो । गोडवाडके सभी गाँवोंमें उसकी शाखाकी तरह एक

एक पाठशाला खोलो और उनमें अपने बच्चोंको पढ़ाना शुरू करो।"

सभी श्रावक उठ कर नीचे आये; क्योंकि हमारे चरित्र-नायक पहली मंजिलमें ठहरे हुए थे, उन्होंने बहुत देरतक सलाह मसलहत की, एक चिट्ठा बनाया। उसमें रकमें भरी गईं। करीब साठ हजार लिखे गये। फिर वे ऊपर आये और आपके सामने हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। एकने आपको चिट्ठा बताया और कहाः—"गुरुमहाराज! अभी इतनीसी रकम हुई है। एक लाख तक सादडीका चंदा हो जायगा। दूसरे गाँवोंसे भी इतना ही हो जायगा। आशा है आप अब यहीं चौमासा करनेकी कृपा करेंगे।"

आप श्रावकोंका इतना उत्साह देखकर प्रसन्न हुए और बोले 'तथास्तु'।

श्रावक लोग खुशीसे उछल पड़े और 'केशरियानाथकी जय' 'जैनधर्मकी जय' 'गुरु महाराजकी जय' 'वल्लभ-विजयजी महाराजकी जय' बुलाते हुए अपने अपने घर चले गये।

आपने पं० श्रीसोहनविजयजी एवं मुनिश्री ललितविजय-जीको पाली पत्र लिखा कि—"सादड़ीके श्रीसंघने मारवा-ड़का अज्ञानांधकार दूर करनेका बीड़ा उठाया है। एक लाखकी रकम सादड़ीसे हम पूरी कर देंगे ऐसी बोली श्रीसं-घने की है। साठ हजार तो लिखे जा चुके हैं। इस उत्साहके

मुजिब एक लाख यहाँ होनेकी संभावना है । अधिक हो
तो भी आश्चर्य नहीं । साथमें यहाँके मुखिया पंचोंने यह
स्वीकार कर लिया है कि, गोडवाडके प्रति ग्राममें हम
साथ चलेंगे और उनको समझावेंगे । आपकी कृपासे उ
इच्छानुसार विद्योन्नतिके लिए दश लाखकी रकम गो
मेंसे इकट्ठी हो जानेकी हम उम्मीद करते हैं । इस प्रव
उत्साह यहाँके श्रीसंघका देखकर मेरा विचार यहीं
साका करनेका हो गया है । इस लिए तुम आगे
बढ़ना । कुछ दिन वहाँके श्रीसंघको उपदेश सुनाकर
विहार करके, यहाँ वापिस आ जाना "

बीकानेरवालोंको पूर्ण आशा थी कि, इस बार उ
चौमासा बीकानेरहीमें होगा; मगर जब उन्होंने सा
चौमासा होनेकी बात सुनी तब उन्हें जरा दुःख हुआ
स्वाभाविक है कि, मनुष्यकी जब आशा भंग होती है तब
दुःख हुए विना नहीं रहता । वह आशा भले बहुत ब
या बहुत छोटी । सेठ सुमेरमलजी अपने वृद्ध पिता
अन्यान्य दस बारह श्रावकों सहित बीकानेरहीमें चौ
करने और अभीसे बीकानेरकी तरफ़ विहार करनेकी
विनती करनेके लिए आये मगर सादड़ीमें जब उन्होंने
कोंका आग्रह, उत्साह और विद्याप्रचारके लिए इतना
देखा तो वे चुप हो रहे और आपसे हाथ जो
बोलेः—" गुरुदेव आपके यहीं चौमासा करनेसे मेरा

शुभ आकांक्षाओंका किला विध्वंस हो रहा है; तो भी मुझसे यह कहे विना नहीं रहा जाता कि आपके यहाँ चौमासा करनेसे जितना धर्मज्ञानका प्रचार और धर्मका उद्योत होगा उतना वहाँ करनेसे नहीं । ”

आपने फ़र्माया:—“ आप समझदार हैं । जहाँ धर्मका विशेष उद्योत हो वहीं पर रहना मेरा कर्तव्य है; मेरे जीवनसे धर्मकी जितनी सेवा हो उतना ही जीवन में अपना सफल समझता हूँ । क्षेत्र स्पर्शना हुई तो अगले बरस में चौमासा बीकानेरहीमें करूँगा । ”

सादड़ीसे दो साधुओं और कुछ श्रावकोंको साथमें लेकर आपने वैशाख सुदी २ सं० १९७६ के दिन विहार किया । तेज धूप मारवाड़की तपी हुई धरती ऐसेमें आप गोडवाडका उद्धार करनेके लिए घाणेराव, आदि गाँवोंमें विहार करते और लोगोंको धर्मामृत पिलाकर गोडवाड महाविद्यालयके लिए फंड जमा करनेका उपदेश देते हुए खिवाणदी जेठ सुदी १ के दिन पधारे । वहाँ केवल दो व्यक्तियोंने रकम भरी, फिर चंदा होना रुक गया । कारण यह था कि वहाँ आपसमें कुछ टंटा था । और उस टंटेके कारण धीरे धीरे वहाँ पाँच धडे हो गये थे ।

हमारे चरित्रनायकने उन्हें टंटा मिटानेका उपदेश देना प्रारंभ किया । सबके मन धीरे धीरे अपनी भूलको समझकर पसीजने लगे ।

स्वर्गीय गुरु महाराज श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरि-जीकी जयन्तीका दिन आया। आपने उस दिन इस तरहसे उपदेश दिया; इस तरहसे सबको उनकी भूलें बताई कि, उसी समय वे सभी गले मिल गये और इस मजमूनका प्रतिज्ञापत्र हमारे चरित्रनायकको लिख दिया कि, आप हमें जो फैसला देंगे उसे हम सभी स्वीकार करेंगे।

अपने दो दिनतक खाने पीनेकी परवाह किये बिना सबकी अच्छी तरहसे जाँच करके जो फैसला दिया था उसकी नकल यहाँ दी जाती है।

फैसला।

श्रीवीर परमात्मने नमः।

सकल श्रीसंघ–महाजन–खीवाणदी निवासी योग्य, वल्लभविजयकी तरफसे धर्मलाभके साथ सूचना दी जाती है कि, क्षेत्र फरसना वश विचरते हुए जेठ सुदी १ शुक्र-वारको आपके शहरमें मेरा आना हुआ। परिचयसे मालूम हुआ कि आपके शहरमें बहुत अरसेसे कुसंप चलता है जिसकी वजहसे आपके यहाँ छोटे मोटे कई धड़े पड़ गये हैं। उपदेश द्वारा आपको कुसंप हटाना सूचित किया गया। आपके हृदयोंमें संप कर लेना उचितसा मालूम हो गया। आप लोगोंने एक प्रार्थना पत्र लिखकर सबके हस्ताक्षर करा, मुझे सपुर्द कर दिया कि आप जो आज्ञा फरमावें हम सब मंजूर करेंगे। जिसपर वड़ी तडके–सा अनोपचंदजी गुलाबजी,

सा गुलाबचंद मोतीजी, सा मना गोबाजी, सा अनोपचंद पुनमचंदजी, और छोटी चार तडोंके सा खूमाजी भाणाजी, सा फोजाजी उमाजी, सा भूताजी तलोकाजी और सा इंदुजी गुलाबजी। कुल आठ आदमी मुकर्रर किये गये। इनको जुदा जुदा बुलाकर जो जो दरियाफ्त करना मुनासिब समझा गया किया गया । कहीं किसी बातके लिए और किसी आदमीकी जरूरत पड़ी तो ऊपर लिखे मुसम्मातके बताये आदमीको भी साथमें शामिल किया गया मगर कार्रवाई सब मुकर्रर किये आदमियोंके नामसे ही की गई । सबके इजहार लिखतबंद करके उसपर उनके दस्तखत कराये गये ।

अब इन सब इजहारोंसे और बातचीतसे जो कुछ मेरी समझमें आया, उस मुजिब मैं आप लोगोंको सूचना करता हूँ । आप यदि अपनी की हुई लिखित प्रतिज्ञापर बराबर कायम रहकर इसका पालन करेंगे तो आप सुखी होंगे आपके बालबच्चे सुखी होंगे और धर्मकी वृद्धि होगी ।

इस पुराने करीब तीस वर्षके कुसंपका मूलकारण भादरवा सुदी पंचमीको प्रति वर्ष श्रीमंदिरजी पर धजा चढ़ाई जाती है । उसपर साथिया निकालनेका है चौवटिये कहते हैं कदीमी हमारा साथिया प्रथम निकलता आया है । हम ही निकालेंगे । शहर दारोंका कहना है जो घी आदिकी बोलीसे धजा चढ़ावे उसका साथिया पहला होना चाहिये बादमें चौवटिया खुशीसे करे । हमारा कोई उजर नहीं है; मगर इनका साथिया पहला होनेसे

कोई बोली नहीं देता । इस हालतमें मंदिरजीकी आमदनीमें हानि होती है । दर असल बात विचारी जावे तो कुछ भी सार नहीं पाया जाता है। पहला किया तो क्या, पीछे किया तो क्या और अगर ना भी किया तो क्या? मगर परस्पर बात ममत्व पर चढ़ गई।

यहाँ तक कि अदालती मामला हो गया। पहला फैसला गामवालोंके हक़में हो गया। उसपर चौवटियेने अगली अदालतका शरण लिया, जिसमें चौवटियेका हक़ कायम किया गया। उसपर गामवालोंने अपील की; मगर वो खारिज हो गई। जिससे चौवटियेका जोर बढ़ गया। गामवाले लाचार चुप चाप बैठ गये। मगर अंदरला द्वेष न गया, जिससे दिन प्रति दिन विरोध बढ़ता ही गया और उसीकी शाखा प्रतिशाखा रूप एककी दो और दोकी चार यूँ कई तड़ें पड़ गईं हालां कि और और तड़ें पड़नेमें और ही और कारण हुए हैं।

परंतु पोलमें पोल वाला हिसाब प्रथम तड़ पड़नेसे कोई किसीको न तो कह सकता था और न कोई किसीका मानता था, तब फिर तड़मेंसे तड़ निकले तो कोई आश्चर्य नहीं। अदालतकी तर्फसे जो कुछ आखिरी फैसला हुआ है, धर्मशास्त्र और जैनधर्मके रीति रिवाजसे बिलकुल गलत है। अदालतने इस बातकी तहकीकात करनेकी कोशिश करनेकी महेरबानी नहीं की अगर की जाती तो उम्मीद है, जो फैसला दिया गया है, कभी भी न दिया जाता।

अस्तु मजबूर कोर्टकी आज्ञाको मान देना ही पड़ा, ताहम भी झघड़ा—कुसंप—कायमका कायम ही रहा इस लिए मद्दे नजर कुसंपको काटनेके लिए यही रास्ता दुरुस्त है कि

(१) मंदिरजीकी आमदनीकी खातर मंदिरजीको मान देकर चौवटियेका साथिया बोलीवालेके साथियेके बाद कायम किया जाता है; बशरते कि पाँच रुपयेसे कमकी बोली न होनी चाहिये। अगर पाँचसे कमकी बोली होगी या किसीकी बोली न होगी तो उस वक्त चौवटिया ही पहला साथिया करेगा। इस हालतमें मंदिरजीकी आमदनीकी हानिकी शिकायत भी न रहेगी और कोर्टकी आज्ञाका अपमान भी न होगा और श्रीसंघमें हमेशहके लिए शांति बनी रहेगी।

(२) जब कभी गामसाई काम होवे तब चौवटियेका ही सांबेला होवे, परंतु जब कभी एक कोई आदमी अपने घरका उत्सवादि करे, ऐसे मौकेपर घरधनीका ही सांबेला होना मुनासिब है। हाँ अगर अपनी खुशीसे चौवटिया साथमें दूसरा सांबेला करना चाहे तो कोई हरजकी बात नहीं, मगर मुख्यता घरधनीके सांबेलेकी ही होगी।

(३) कुडालका लड्डु—लाण आदिकी कार्रवाइ किसीके स्थानपर करनेके बदले आयंदाको धर्मशाला आदि पंचायती मकानमें बदस्तूर की जावे।

(४) भाँगकी रसम धर्मसे और इन्सानियतसे खिलाफ होनेसे बिलकुल उड़ा दी जाती है। बुरी रसमकी जड़को काट देना ही मुनासिब है।

(५) मंदिरजीका स्टेट-पोता (भंडार) एकट्ठाही रहे जुदा जुदा कोई अपने पास रखने न पावे। उसके इंतजामके लिए चार आदमियोंके पास चार कुंजियाँ रहनी चाहिये। जिनके नाम सा १ केसरीमल नेमाजी २ सा अनोपचंद गुलावजी ३ सा गुलाबचंद मोतीजी ४ और सा चमनाजी मतापजी।

हमेशहके श्रीमंदिरजीके कामके लिए वारह मेम्वर कायम किये जाते हैं, जिनके नाम १ सा भूताजी तिलोक जी २ सा केसरी मल नेमाजी ३ सा अनोपचंद गुलावजी ४ सा गुलावचंद मोतीजी ५ सा रकवाजी वरधाजी ६ सा हंसाजी फताजी ७ सा खुमा जी भाणाजी ८ सा अनोपंचद पुनमचंदजी ९ सा चमनाजी मतापजी १० सा कस्तूरचंद सवाजी ११ सा कपूरचंद जेठाजी १२ सा सेनाजी सवाजी इन वारहोंमेंसे एक एक जना एक एक महीना देख रेख रखे इस तरह वारह जने एक वर्ष पूरा करें, वर्ष पूरा होनेपर वारांही मेंवर एकठे होकर वर्षभरका हिसाव कर वाकी निकाल देवें और वारां ही जने उसपर अपने दस्तखत करें। रोजका खर्च हिसाव वगैरह लिखनेका काम अगर मेंवर खुद कर सके तो जरूरत नहीं वरना एक विश्वासु आदमी नौकर रखकर उससे काम करावे और रोजका रोज जिस मेंवरकी वारी हो नामा देखकर अपने दस्तखत कर देवे। महीना पूरा होनेपर जिस मेंवरको काम सोंपा जावे। उसका नाम लिखकर अपने दस्तखत कर देवे। इसी तरह

काम लेनेवाला मेंबर भी जिस मेंबरसे चार्ज लेवे उसका नाम लिखकर अपने दस्तखत कर देवे।

खर्चके लिए एक सौ रुपयेतक बाहर कोथलीमें जमा रहे और जिस मेंबरकी बारी हो जरूरतके वक्त पचास रुपये तकका खर्च बिना किसीको पूछे वो कर सकेगा।

अगर इससे अधिक खर्चका काम आ पड़े तो बारां मेंबरोंमेंसे जितने मेंबर उस वक्त शहरमें हाजर हों उनसे सलाह कर कर सकेगा, परंतु जितने मेंबर हाजर हों और जिनकी सलाहसे काम किया जावे उनके दस्तखत सहित कुल कार्रवाई क्या क्या काम और कितने कितने खर्चकी मंजूरी दी गई सब लिख लेना चाहिये।

जिस मेंबरकी बारीमें जो कोई काम अधूरा रहे वो काम अगले अगले मेंबरको करना होगा। जरूरत जितनी माजी मेंबरकी या और किसी मेंबरकी या मेंबर सिवायके किसी अन्य योग्य पुरुषका सलाह ले सकेगा।

उनसे किसी अमरकी मदद भी ले सकेगा, मगर जोखमदारी बारीवाले मेंबरकी होगी। दस्तखत वगैरह उसीके मंजूर किये जायँगे।

(५) भूताजी तिलोकजीके यहाँ रखी हुई रकमकी तपास करनेसे मालूम होता है कि उन्होंने मय ब्याजके चूकती रकम श्रीऋषभदेवजी, कंठी बनवाकर, चढ़ा दी है, थोड़ी रकम बची थी सो भंडारमें देदी है।

किसके नामसे वहाँ जमा हुई है, उसकी तसल्लीके लिए रसीद वो मंगवा देवे। अगर रसीदमें इनका अकेलेका नाम होवे तो वो चीज उनकी समझी जावे और सौंपी हुई रकम पूरी कर देवे। तहकीकात करनेसे कुछ ऐसाभी मालूम देता है कि कंठीका नाम लिया जाता है मगर बात कुछ और होनी चाहिये।

रकम सौंपी गई उस वक्त सब एकठे थे पीछेसे जुदा पड़नेकी वजहसे यह बात आगे लाई जाती है, सो मैं इस बातको मान नहीं सकता तो भी औरोंको पूछनेकी जरूरत न समझकर भूताजीने यह काम किया। इसकी बाबत सबके मानकी खातर मैं सूचना देता हूँ कि, भूताजी श्रीमंदिरजीमें एक पूजा पढ़ा देवे।

व्याजकी बाबत सुना जाता है तुम्हारे गाम खीवाणदीमें छ आनेका रिवाज है, अगर यह रिवाज ठीक सत्य होवे तो भूताजी बाकी व्याजकी रकम दे देवें। क्योंकि इन्होंने पाँच आनेके व्याजसे रकम पूरी की है।

(७) किरणीया चामरकी बाबत मूल गुन्हेगारके मौजूद न होनेसे उसके वारिसको और खासकरके उसकी ओर तको चाहिये कि वो पाँच रुपये नकद देदेवे और एक पूजा पढ़ा देवे।

(८) सुश्रावको रामचंद्रजीक मैं अपनी तरफसे सफाई और शांतिके निमित्त एक पूजा पढ़ानेकी सूचना करता हूँ।

क्योंकि तहकीकातसे मालूम होता है कि, आगे कई वक्त मुखी तरीके आप काम करते रहे तो संभव है किसी वक्त किसीका दिल दुखाया हो तो अपनी और उनकी सबकी सफाईके निमित्त इस उत्तम कामका आपको अवश्य सादर स्वीकार करना होगा मिति जेठ सुदी ९ शनिवार १९७५*

हस्ताक्षर मुनि वल्लभविजय ।

सर्व मंगल मांगल्यं सर्व कल्याण कारणं
प्रधानं सर्व धर्माणां जैनं जयति शासनं ॥ १ ॥

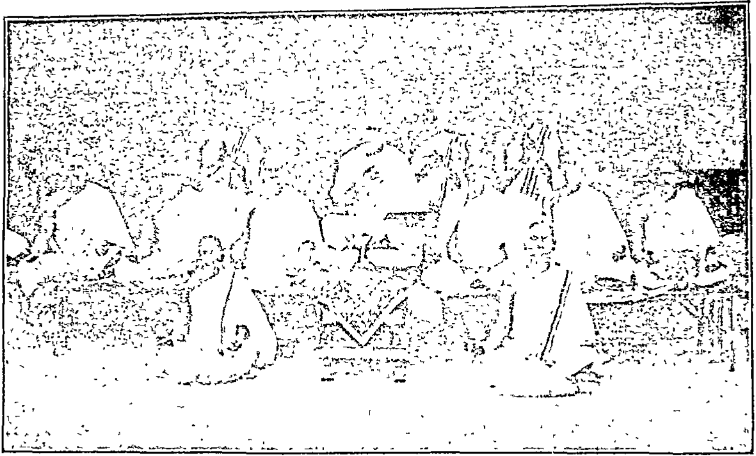
ता. क.—श्री मंदिरजीके जो मेंवर वारा कायम किये गए हैं फिलहाल तीन सालके लिए समझने वादमें अगर गामको वदलनेकी जरूरत पड़े गामकी रायसे वदल सकते हैं ।

इंदु गुलावजी वाला तडकी खरेलकी जो रकम वाईसकी निकलती है वदस्तूर भर देवे और रसीद ले लेवे ।

इत्यलम् ।

खिवाणदी पहुँचनेसे पहले आप विहार करते हुए जव नाडलाई पधारे थे तव वहाँ जोधपुरके एक अधिकारी वाबू मोतीलालजी साहिव—जो जिलेमें दौरा करने निकले थे—आपकी प्रशंसा सुनकर आपके दर्शनार्थ आये। आपके उच्च विचार सुनकर वे वहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा:—" जवसे आपने जोधपुर स्टेटमें पदार्पण किया है तभीसे इस स्टेटमें

* यह संवत् गुजराती समझना जो दीवालीके अगले रोज कार्तिक सुदि १ से शुरू होता है।



१००८ आचार्य महाराज श्रीमद्विजयवल्लभ सूरिजी (वालीमें)

पृ. ३५१.

विद्याप्रचारकी चर्चा विशेष बढ़ गई है। आप मारवाड़में विद्या-देवीकी पधरामनी करनेके लिए इतना परिश्रम कर रहे हैं इसके लिए हम आपको धन्यवाद देते हैं।"

जब आप वापिस सादड़ी चौमासेके लिये पधारे तब उपर्युक्त अधिकारी महाशय वहाँ भी आये उन्होंने आपको कहाः—"आप प्रयत्न करके जितनी रकम विद्याप्रचारके लिए गोडवाडमें जमा करेंगे उतनी रकम आपको जोधपुर राज्यसे मिले इस बातकी कोशिशकर आपका काम दृढ बनाया जायगा। उन्होंने आपसे अपने अनुभवकी बात कही थी और बताया था कि, यह काम कैसे अच्छी तरह चल सकेगा ? और कौन कौनसे साधन कहाँ कहाँसे मिल सकेंगे ?"

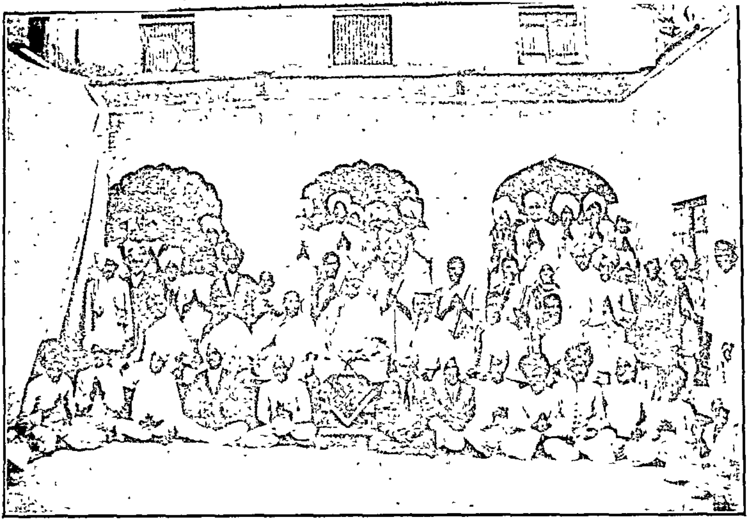
खिवाणदिसे विहार कर पोमावा, शिवगंज आदि गाम और शहरोंमें उपदेश देते हुए चौमासा निकट आनेसे आप सादड़ी आते हुए वाली गाममें पधारे। जब आप वालीमें थे तब वालीके श्रीसंघने आपसे विनती की कि, यदि आप यहीं चौमासा करें तो हम गोडवाड़ विद्यालयके लिए एक लाख रुपये यहाँ जमा कर सकते हैं, * मगर आप सादड़ीमें चौमासा

* गोडवाड (जोधपुर राज्य) और सीरोही राज्यके गामोंमें ओसवाल और पोरवाड महाजन इतने मालदार हैं कि यदि वे चाहें और उदारता करें तो एक एक गामवाले एक एक विद्यालय खड़ा कर सकें; परंतु एक तो इनको ऐसा विद्याका प्रेम नहीं है जैसा कि पैसेका प्रेम है। दूसरा योग्य साधुओंका उपदेश नहीं। बस नाककी खातिर विवाह शादियोंमें और जीमणवारोंमें प्रति वर्ष प्रति गाममें हजारों ही नहीं बलकि लाखोंका पानी कर देते हैं! शासन देवता इनको सद्बुद्धि देवे!

करना स्थिर कर चुके थे इस लिए वहाँ चौमासा करनेकी स्वीकारता न दे सके। तब श्रीसंघ वालोंने अन्य मुनि महाराजोंको, चौमासा वालीमें करनेका, आदेश देनेकी विनती की। आपने अपने शिष्य पंन्यासजी महाराज श्रीसोहनविजयजी मुनि श्रीललितविजयजी, मुनि श्रीउमंगविजयजी, मुनि श्रीविद्याविजयजी और मुनि श्रीसागरविजयजीको वालीमें चौमासा करनेकी आज्ञा दी। पाँचों मुनिराजोंने आपकी आज्ञानुसार वालीमें चौमासा किया था। आप वालीसे सादड़ी पधारे। सादड़ीके चौमासेमें आपकी सेवामें तपस्वीजी गुणविजयजी, विचारविजयजी, समुद्रविजयजी और प्रभाविजयजी चार साधु थे।

सादड़ीमें बड़े आनंदसे चौमासा बीतने लगा। सादड़ी, वाणेराव, वाली, लाठारा, पोमावा आदि गामोंका करीब ढाई लाख रुपयेसे ज्यादा सारा चंदा लिखा गया था। जिसमें वालीका भी उस समयतक साठ हजारका चंदा लिखा जा चुका था और सादड़ीका तो लाखसे भी ऊपर हो गया था।

आपका चौमासा सादडीहीमें होनेसे आपने वहाँके श्रावकोंको 'श्वेतांबर जैन कॉन्फरेंस' का जलसा करानेका उपदेश दिया। तदनुसार कॉन्फरेंसको आमंत्रण दिया गया। बड़े उत्साहके साथ चौमासा समाप्त होनेपर पोस सुद, २,३,४ को सादड़ीमें कॉन्फरेंसका जलसा हुआ। उसके सभापति होशियारपुरनिवासी लाला गुज्जरमल्लजी नाहर गोत्रीय ओसवालके प्रपुत्र लाला दौलतरामजी हुए थे। उस कॉन्फरेंसमें



आचार्य श्रीमद्विजयवल्लभ सूरिजी महाराज (बाली मारवाड़में)

पृ. ३५४.

आंपने जो व्याख्यान दिया था वह बड़े ही महत्त्वका था। उसमें आपने निम्न लिखित विषयोंपर प्रकाश डाला था—

(१) मेरा विचार और अधिकार (२) कॉन्फरेंसकी आवश्यकता (३) शान्तिकी योजना (४) विद्याकी खामी दूर करो (५) कॉलेजकी आशा (६) गुजराती भाइयोंकी आशा छोड़ दो (७) महाजन डाकू मत बनो (८) वीतरागकी दुकानके सच्चे मुनीम (९) कर्त्तव्यपरायण होना चाहिए (१०) आत्मा ही परमात्मा है (११) एकता और उदारताकी आवश्यकता (१२) पाठशाला–विद्यालय–स्कूल–कॉलेजसे फायदा।

यह पूरा व्याख्यान उत्तरार्द्धमें दिया गया है। कॉन्फरेंसने आपको धन्यवाद देनेका जो प्रस्ताव सर्व सम्मतिसे पास किया था उसकी नकल यहाँ दी जाती है—

" परम पूज्य मुनि राज श्रीवल्लभविजयजी महाराज मारवाड़-गोडवाड प्रांतका उद्धार करनेके लिए उसमें शिक्षाका प्रचार करनेका अत्यंत कठिन परिश्रम कर रहे हैं। यह कार्य कॉन्फरेंसके मुख्य उद्देश्यको अमलमें लानेवाला है, इस लिए उसके साथ कॉन्फरेंस पूर्ण सहानुभूति बताती है और महाराजश्रीका अन्तःकरण पूर्वक उपकार मानती है। तथा मुनि महाराजोंसे विनती करती है कि, वे भी इसी तरह शिक्षाके प्रश्नको अपने हाथमें लें। "

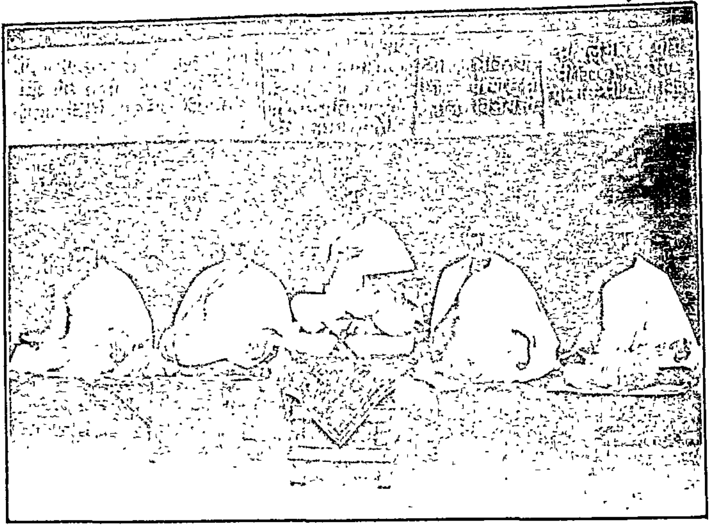
यहाँ आपसे आचार्य पद स्वीकारनेके लिये आग्रह किया

गया था; मगर आपने इन्कार कर दिया। वालीमें पं० जी श्रीसोहनविजयजी महाराजके पास मुनि श्रीललितविजयजी, मुनि श्रीउमंगविजयजी और मुनि श्रीविद्याविजयजीने भगवती सूत्रका योगोद्वहन किया था। उन्हें पंन्यास पदवी देना था इस लिए सं० १९७६ का तेतीसवाँ चौमासा सादड़ीमें समाप्त कर आप वाली पधारे। वालीमें बड़े समारोहके साथ आपका नगर प्रवेश हुआ।

वहाँ मार्गशीर्ष वदि २ के दिन श्रीयुत कपूरचंदजी और गुलाबचंदजी वालीनिवासी ओसवालको हमारे चरित्रनायकने दीक्षा दी। दोनोंके नाम क्रमशः देवेन्द्रविजयजी और उपेन्द्रविजयजी रक्खा गया। पहले उमंगविजयजी महाराजके और दूसरे विद्याविजयजी महाराजके शिष्य हुए।

मार्गशीर्ष वदि ५ के दिन मुनि श्रीललितविजयजी महाराज, मुनि श्रीउमंगविजयजी महाराज और मुनि श्रीविद्याविजयजी महाराज तीनोंको गणि और पंन्यास पद, पंन्यासजी श्रीसोहनविजयजी गणिने प्रदान किये। उसी दिनसे तीनों महात्मा पंन्यास कहलाने लगे। इस तरह आपके परिवारमें चारों पंजाबी पंन्यास बने। वालीके ओसवालों और पोरवाडोंमें तीन तड़ें थीं। वे कभी परस्पर साधर्मी वात्सल्यमें भी शामिल नहीं होते थे। इस अवसर पर हमारे चरित्रनायकके उपदेशसे तीनों साधर्मीवात्सल्यमें एकत्र हुए।

यहाँसे आप वापिस सादड़ी पधार गये; क्योंकि सादड़ीमें



वालीमें पंन्यास पदवी। पृ. ३५४.

मनोरंजन प्रेस, बंबई नं. ४.

कॉन्फरेंसका जलसा होनेवाला था । वह हुआ उसका वर्णन ऊपर दिया जाचुका है ।

सादड़ीके चौमासेमें पर्युषण समाप्त होने पर झगड़ियेसे मुनि श्रीज्ञानसुंदरजी महाराजका एक पत्र सादड़ीके श्रावकोंके नाम आया था । उसकी नकल उपयोगी समझ यहाँ दी जाती है । " + + + + + अधिक हर्ष इस बातका है कि, आपके वहाँ पूज्यपाद, व्याख्यानशिरोमणि, पंडितमुकुटमणि, शासनदीपक, ज्ञानप्रचारक, नीतिवर्द्धक, वादिमानमर्दक शान्त्यादि अनेक शुभ गुणगणालङ्कृत श्री श्री १००८ श्री श्रीजगद्वल्लभविजयजी महाराज सपरिवार विराजमान हैं सो आपके पूर्व प्रबल पुण्योदयसे मानों मरु देशमें कल्पवृक्षका ही आगमन हुआ है । जिसके फलका आप लोगोंने अच्छे उत्साहके साथ आस्वादन किया है । उन महात्माकी जय-ध्वनि आज भारत भूमिमें गूँज रही है, उस ध्वनिका नाद भव्यात्मा श्रवण करते हैं और उनका हृदयकमल विकसित हो जाता है ।

" स्वल्प समयके पहले जगत्प्रसिद्ध, जगतोपकारी श्रीमद्विजयानंद सूरीश्वरजी महाराज मरुस्थलादि अनेक देशोंमें अज्ञानतिमिरका नाशकर ज्ञानका बीज बो गये थे । उन्हीं आचार्यके चरण कमल निवासी महात्मा, उसी ज्ञान वृक्षको पल्लवित करनेके लिए आपके यहाँ पधारे हैं । उन्होंने आपके यहाँ ही नहीं बल्के अन्य भी बहुतसे स्थानोंमें, सूर्यकी माफिक

ज्ञानका प्रकाश किया है, उससे सुविद्याके कमल खिलते हैं और भव्य भ्रमर उनकी सुगंधका आस्वादन करते हैं।

" आज जैन समाजमें हजारों, लाखों ही नहीं बल्के करोड़ों रुपये धर्मके नामसे खर्च होते हैं; परन्तु समयानुसार शासनको लाभ पहुँचानेके कार्यमें बहुत ही कम रुपया खर्चा जाता है। मगर वल्लभविजयजी महाराजका प्रयत्न उच्च कोटिका है। आपकी विशालदृष्टिका विचार जैन कौमको बड़ा भारी फ़ायदा पहुँचानेवाला है। उसके महत्वका वर्णन करना हमारी लेखिनीके बाहर है।

" आप लोगोंको भी धन्यवाद है कि आप लोग ऐसे महात्माओंके अमृत समान उपदेशसे अपनी चंचल लक्ष्मीका उपयोग शासन सेवामें करते हैं। आशा है आप इसी तरह अपना उत्साह बढ़ाते रहेंगे। शास्त्रकारोंने सभी दानोंमें ज्ञानदान श्रेष्ठ बतलाया है।

" मरुस्थलादि कुछ देशोंमें आधुनिक अल्पज्ञ लोगोंकी वृत्ति प्रायः ऐसी भी दिखाई देती है कि, कार्यके आरंभमें तो उनके दिलोंमें बड़ा भारी उत्साह होता है, उसी उत्साहमें यदि कार्य प्रारंभ हो जाता है तो वह पूरा हो जाता है; परन्तु कार्यमें विलंब होता है तो कई महाशय अनेक प्रकारके विकल्प तथा जातिभेदके मतभेद लाकर डाल देते हैं और कार्यमें विघ्न कर देते हैं।

" आप लोग तो महात्मा पुरुषोंके पदपङ्कजमें निवास

करनेवाले हैं, इस लिए विश्वास है कि कार्य निर्विघ्नतया पूरा होगा। शासनदेव सहायता देंगे।

"मैं एक पामर प्राणी, अल्पज्ञ, पृथ्वीको भारभूत गृहस्थोंके मुफ्तमें टुकड़े खानेवाला हूँ। महा मुनिराजश्रीके इस कार्यका वार वार अनुमोदन करता हूँ। और आपसे भी निवेदन करता हूँ कि इस कामको आप महाराजश्रीके चातुर्मास हैं वहीं तक प्रारंभ करा दें और मनुष्य भवको सफल करें।

श्रीमहाराज साहबको हमारी सविनय वंदना अर्ज करें।"

इसी तरह पंजाबके श्रीसंघका एक पत्र आया था। इसमें आपसे पंजाबमें पधारनेकी विनती दुखे हुए सच्चे दिलसे की गई है। उस प्रेम-पंजाबियोंके परमप्रेम-का दिग्दर्शन कराने के लिये उसको भी यहाँ उद्धृत करना उचित समझा गया है।

" मेरे परम प्यारे श्रीगुरु महाराजजी, सेवकोंकी वंदना १००८ वार मंजूर हो। साहबजी क्या वह दिन भूल गये जो गुरु महाराजका वचन था। गुरु महाराजका अगर वचन ज्यादा है तो एकदम पंजाबकी तरफ विहार करो अगर आरामसे संयमकी पालना करना है तो गुजरातमें आनंद लो। याद रक्खो जबतक पंजाबमें न आओगे तबतक महाराजके सच्चे सेवक न होओगे। इधर कुगुरुका जोर हो रहा है। जगह जगह लेकचर दे रहे हैं। क्या सूरजका यह काम है कि एक जगह ठहरे और बाकी जगह पर अंधेरा रक्खे। वहाँ उल्लुओं-

को मौज करने दे। सेवकोंका कोई वचन खराब हो तो माफी माँगते हैं। दुश्मनोंके जगह जगह साधु संत हैं। यहाँ हम देख देख कर तरस रहे हैं। बहतर तो यह है कि रोटी गुजरातमें खाई हो तो पानी पंजाबमें आकर पीओ। हम अनाथोंको शरण दो।"

इसी चौमासेमें आसपुर (मेवाड़) के श्रावक श्रीयुत चंपालाल निहालचंद तारावतने आपसे सात प्रश्न पूछे थे। आपने उनके जो उत्तर दिये थे वे और प्रश्न उपयोगी समझ कर यहाँ दिये जाते हैं।

प्रश्न।

१—स्नान किये विना श्रावक प्रतिष्ठित प्रतिमाकी वासक्षेपसे पूजा कर सकता है या नहीं? और ऋषिमंडल स्तोत्र एवं जाप शुद्ध वस्त्र पहनकर कर सकता है या नहीं?

२—आर्द्रानक्षत्र बैठने पर आमका त्याग किया जाता है। यह गुजरातकी अपेक्षासे त्याग है कि पंजाबमें भी आर्द्राके बाद आमका त्याग कर देना पड़ता है? आर्द्राके बाद कलमी (हापूस, पायरी, लंगड़ा, मालदा आदि जो तराशकर खाये जाते हैं ऐसे) आम खाये जा सकते हैं या नहीं। आर्द्राके पहले भी जिस श्रावकको सचित्का त्याग हो अथवा एकासना हो वह आमका रस खा सकता है या नहीं?

३—यदि कोई पूर्णतया बारह व्रत न पाल सकता हो तो

वो यथाशक्ति पालनेके लिए वारह व्रत धारण कर सकता है या नहीं ?

४–मंदिरके उपयोगके लिए केशर, चंदन, सोना चाँदीके वरक, इतर, धूप आदि पदार्थ वेचने हों तो वे पदार्थ दूसरोंकी अपेक्षा कम नफा लेकर वेचना चाहिए या मुद्दल दाम लेकर वेचना चाहिए ?

५–श्रावक साध्वीजी महाराजको वंदना किस तरह करे ?

६–पर्युषणोंमें साध्वीजी महाराज कल्पसूत्र वाँच सकती हैं या नहीं ? श्रावक साध्वीजीके पास उपाश्रयमें सुननेके लिए जा सकता है या नहीं ?

७–प्रसूतिका (सुवावड़ी) का घर जुदा हो; प्रसूति कर्म करानेवाली भी दूसरी हो; ऐसी दशामें जो स्त्री जुदा मकानमें भोजन वनाकर प्रसूतिकाको ऊँचेसे भोजन दे, उससे स्पर्श न करे तो उसको कितना सूतक लगता है ? और जो एक दफा प्रसूतिकाको स्पर्श कर ले उसको कितने दिनका सूतक लगे ?

उत्तर।

(१) वासक्षेपसे अधर ऊँचे हाथसे पूजन करनेमें और स्तोत्रादिके जाप करनेमें स्नानकी जरूरत नहीं समझी जाती है।

(२) जिस देशमें आर्द्रा पहले केरी (आम) का प्रचार होता है उसी देशके लिए आर्द्रा समझना चाहिए। जिस देशमें

वस्तु होती ही पीछे है वहाँके लिए यह प्रतिबंध नहीं माना जाता है। मूल मुद्दा आर्द्रा होनेपर वर्षा आदिके कारण पाकी केरीमें–पकेहुए आममें जीव पड़ जाते हैं, रस चलित हो जाता है, जिससे अभक्ष्य समझकर पूर्व पुरुषोंने उस देशके लिए यह मर्यादा बाँधी है। इसी तरह और देशोंमें भी उस २ देशकी स्थिति हवापानी–वगैरहका विचारकर अकसर जिस समयमें विगड़ जाती हो उस समयसे बिलकुल त्याग कर देना योग्य है। यदि कोई संतोष करके उससे पहले ही त्याग कर लेवे तो अच्छी बात है; परंतु यह गुजरातका कायदा सर्व देशपर लागू करना न्याय नहीं कहा जाता और न लोक मंजूर ही करते हैं।

पंजाबका तो हमें अनुभव है, वहाँ तो आर्द्राके बादमें भी कितने अरसे बाद ही केरी पकती है। गुजरात देशका अनुभव तो प्रथमसे ही था। मारवाड़ देशका अनुभव इस वर्षमें प्रायः पूर्ण रूपसे हुआ है। आर्द्रातक तो कहीं केरी पकी हुई नजर भी नहीं आती थी। आर्द्राके बाद गाड़के गाड़े ही आते दिखलाई देते थे। कितनेक लोग आर्द्रापर नियमके लिए कहने लगे तो कितनेक भाइयोंने जवाब दिया कि, अभी केरी आई तो है ही नहीं, खाई नहीं, मुखको लगाई नहीं और विगड़ कहाँसे गई? हमसे तो ऐसा नियम नहीं हो सकता। हाँ जो लोग गुजरातसे केरी मँगाते हैं उनको आर्द्रा होनेपर गुजरातकी केरीका तो अवश्य ही त्याग कर देना योग्य है। और वाकीके

लिए द्रव्य क्षेत्र काल भाव देखकर जिससे रस चलित का दोप न लगे वैसे उपयोग रखना चाहिये।

कलमी और कच्चीके लिए भी प्रवृत्ति दोप न हो जावे इस लिये विवेक रखना ही योग्य है। तात्पर्य इस त्यागमें केरीसे मतलब नहीं है, किन्तु रसचलित हो जानेसे--विगड़ जानेसे जीवोत्पत्ति हो जानेसे अभक्ष्यसे मतलव है। गुजरात देशमें भी आर्द्रातक खानेका जो प्रचार है सो वहुत करके आर्द्रा वाद केरीमें विगाड़ होता है इस लिए परंतु किसी समय हवा पानीके कारण आर्द्रा पहले भी विगाड़ हो जाता है, तव विवेकी लोग आर्द्रासे पहले ही त्याग कर लेते हैं। सचित्तका त्यागी मिश्र दोप न लगे इस कारण रस निकाले बाद दो घड़ी होनेसे वापर सकता है। दो घड़ीसे पहले नहीं। जैसे साधु साध्वी दो घड़ी होनेके बाद गोचरीमें लेते हैं। इसी तरह एकासणेमें भी समझ लेना। हाँ जिसने लीलोतरी (सवजी) का त्याग-किया हो उसको रस भी वापरना योग्य नहीं है। इसी तरह पके हुए केलेके लिए भी समझ लेना कि, जिसको तिथिके रोज सवजीका त्याग हो वो केला भी नहीं खा सकता है। जिसने नियम करते हुए खुला रखा हो उसका अखतियार है। गुजरातमें इसी वास्ते कितनेक लीलोतरीका नियम करते हुए पाकी केरी पाके केले की छूट रखते हैं। साधु साध्वियोंके योगोद्वहनके दिनोंमें और श्रावक श्राविकाओंके उपधानके दिनोंमें अचित्त होने-

पर भी लीला शाक मनाई होनेसे केरीका रस और पाका केला नहीं लिया जाता है।

(३) श्रावक यथा शक्ति बारां व्रत ले सकता है। इसका खुलासा प्रातः स्मरणीय स्वर्गवासी गुरु महाराज जैनाचार्य श्रीमद्विजयानंदसूरि (आत्मारामजी) महाराजने श्रीतत्व-निर्णयप्रासाद नामा पुस्तकमें (स्तंभ २८ पृष्ठ ४४६) किया है देख लेना।

(४) बने वहाँतक मुद्दल भावसे देना उचित है। यदि न बन सके तो थोडा नफा लेकर देनेमें हरकत नहीं समझी जाती है। क्यों-कि उसने देवद्रव्यका फायदा ही किया है नुकसान नहीं। जो चीज बजारमें एक रुपैयेमें मिलती थी उसके बदलेमें चौदह आनेमें दी, प्रत्यक्ष उसने दो आनेका बचाव किया, उसको बुरा किया कौन कह सकता है? खास करके झवेरी लोगोंको यह काम बहुत दफा पड़ता है। श्रीमंदिरजीमें भगवानके मुकुट-कुंडल-हार-जडाऊ आंगी वगैरहमें हीरा-पन्ना-माणक-मोति आदि झवेरातकी चीजें मुद्दल भावसे-या अमुक थोड़ासा नफा लेकर और आखिरमें चोक्खी-उत्तम चीज बाजारके भावसे झवेरी लोग देते हैं और खरीदते भी हैं। और झवेरी लोग प्रायः श्रावक होते हैं, यह बात तो निर्विवाद है। मतलब उसकी भावना मंदिरजीकी चीजके बिगाड़नेकी या नुकसान करनेकी नहीं है। इस लिए हरकत नहीं है; परंतु जो उसके मनमें खोट होगी तो उसने मंदिरको समझा ही नहीं है; उसको तो दोष ही दोष है।

(५) अब्भुठिओ खामकर वंदना करनेका रिवाज मालूम नहीं देता है परंतु खड़े खड़े हाथ जोड़कर थोभवंदना करनेका और सुख साता पूछनेका प्रचार तो गुजरात आदि देशोंमें नजर आता है।

(६) छेद सूत्रांतर्गत होनेसे कल्पसूत्र वाँचना साध्वी को योग्य नहीं है। मुख्यतया तो साध्वीको व्याख्यान वाँचने-का ही अधिकार नहीं है। यदि किसी कारणवश वाँचना हो तो पुरुषकी पर्षदा किनारेपर एक तरफ बैठे और बाइयाँ साध्वी के सामने बैठें। और साध्वी नीचे अपने आसन पर ही बैठ-कर सुनावे तो सुना सकती है। ऐसा स्वर्गवासी गुरु महाराजसे सुना याद है और तपागच्छकी साध्वियोंमें कहीं कहीं ऐसा रिवाज सुनाई और दिखाई भी देता है। भाषाका कल्पसूत्र यदि साध्वीजी बाइयोंको सुनावे और दूसरा कोई योग न होनेसे पूर्वोक्त रीतिसे श्रावक भी सुनना चाहें तो सुन सकते हैं।

(७) खाना पकानेवालीको सूतक नहीं लगता बश-रते तुम्हारे लिखे मुजिब प्रसूताके साथ लगा होवे तो स्नाना-दिसे शुद्ध होनेसे दोष हट जाता है।

× × × ×

सादड़ीमें श्वेतांबर कॉन्फरेंसका जलसा जब समाप्त हो चुका तब शिवगंजके सेठ गोमराज फतेहचंद आये। ये गोडवाड़के एक प्रसिद्ध व्यापारी हैं। बंबई और रंगूनमें इनकी पेढ़ियाँ हैं। मुख्यतया इनका कपूरका रोजगार है। ये वंदनाकर आपके

सामने बैठ गये और हाथ जोड़कर बोले:—" महाराज साहब मैं केसरियाजीका संघ निकालना चाहता हूँ; आप दयाकर सपरिवार संघमें पधारनेकी कृपा करें।"

आपने फर्माया:—" तीर्थ यात्रा करना बहुत ही अच्छा काम है; इससे मन ज्यादा पवित्र होता है; अशुभ आस्रव रुकते हैं; निर्जरा भी होती है जिससे मोक्षका मार्ग बहुत सरल हो जाता है; तो भी मैं इस समय गोडवाड़से बाहिर नहीं जा सकता। गोडवाड़में विद्याप्रचार करनेका कार्य मेरे हाथमें है, गोडवाड़में व्यवस्थित रूपसे जबतक विद्या प्रचारका कार्य प्रारंभ न हो जाय तबतक इस प्रान्तको छोड़नेकी मेरी इच्छा नहीं है। भविष्यमें तो ज्ञानी महाराजने जो देखा होगा वही होगा।"

सेठने अत्यंत आग्रहके साथ प्रार्थना की और कहा:—" आप कृपा कर अवश्य पधारें। मैं इस काममें यथासाध्य मदद करूँगा। १०००० दस हजार रुपये इसके फंडमें दूँगा और दूसरोंसे भी अच्छी मदद कराऊँगा।"

आप बोले:—" इसका अर्थ क्या यह नहीं होता कि, तुम दस हजार रुपये इस फंडमें मुझे लेजानेकी फीस देना चाहते हो। ऐसी फीस लेकर मैं कहीं नहीं जाऊँगा।"

सेठ बड़े चक्करमें पड़े। उनका चहरा उदास हो गया। वे करुण कण्ठमें बोले:—" गुरुदेव। हम लोग ऐसे अर्थ निकालना कुछ नहीं जानते; अगर भूल हुई हो तो क्षमा करें।

मगर मैं आपसे यह स्पष्ट निवेदन कर देता हूँ कि, यदि आप नहीं पधारेंगे तो संघ भी नहीं निकालूँगा। ”

सेठके बोलनेकी भावभंगी और उनकी आकृतिका परिवर्तन यह बताते थे कि, वे दुखी हैं और महाराज साहबसे, बच्चेकी तरह रूठने लग रहे हैं। कहावत प्रसिद्ध है:—

भक्ताधीन भगवान।

आपने गोमराजजीकी बात मान ली। वे प्रसन्न होकर शिव गंज चले गये।

कहावत प्रसिद्ध है '<u>श्रेयांसि बहु विघ्नानि</u>' श्रेष्ठ कार्योंमें अनेक विघ्न आते हैं। संसारमें उच्च कार्य करनेवालोंके मार्गमें अधिक बाधाएँ आती हैं। इसका कारण यह है कि, तेजोद्वेषी लोग कुचक्र रचा करते हैं। स्वयं उच्च काम नहीं कर सकते हैं, मगर दूसरेको करते देख कर भी उनके हृदयमें आग लग जाती है। वे सोचते हैं लोग इसकी पूजा करेंगे इसके यशोगान गायँगे और हमारी तरफ उँगली उठायँगे। इस लिए उत्तम यही है कि, इनका कार्य किसी तरहसे बिगड़ जाय। इसी तत्वने यहाँ भी कार्य किया। किसने किया और क्यों किया? इस बातका उहापोह करना हम यहाँ अस्थानीय समझते हैं। यदि अस्थानीय न हो तो भी गईको स्मरण करना अनुचित समझ हम उसे छोड़ना ही मुनासिब समझते हैं।

तेजो द्वेपी लोगोंने जब सादड़ीके श्रावकोंको भड़का दिया तब उनके उत्साह ढीले पड़ गये। वे कार्यमें टालमटोल करने लगे। आपने सोचा इस समाजका भविष्य अभी अन्धकार पूर्ण है, अभी इस समाजके भाग्यमें उन्नत,—ज्ञान और धर्ममें उन्नत,—होना नहीं बदा है, इसी लिए इसने इतना प्रयत्न करके काम छोड़ दिया है। इनकी तो ऐसी हालत हो गई है—

तकदीर पर उस मुसाफिर वेकसके रोइए;
जो थक कर बैठा है मंजिले मकसूदके सामने।

आप सादड़ीसे विहार कर शिवगंज पधारे। मुहूर्त आ जाने और समस्त जानेवालोंकी तैयारी पूरी न होनेसे, मूहूर्त पर संघका प्रस्थान कर चार दिनतक संघवी सहित आप शिवगंजके बाहर विराजे।

जिस दिन संघवी बाहर जाकर ठहरे उसी दिन अर्थात् फाल्गुन सुदि ३ को उनको रंगूनसे तार मिला कि, उन्हें व्यापारमें बहुत अच्छा नफ़ा हुआ है। उन्होंने आपसे अर्ज की—

“ गुरुदयाल! यह आपही की कृपाका फल है। मैं इन सभी रुपयोंको धर्मकार्यहीमें खर्च देना चाहता हूँ। ”

आपने फर्मायाः—“ सुश्रावक धर्मकी जड़ सदा हरी है। इस क्षेत्रमें जो जितना बोयगा उससे चौगुना उसे मिलेगा।”

फाल्गुन सुदी छठके रोज शेठ गोमराजजीको शिवगंजमें

चलती जैन पाठशालाकी तरफसे सन्मानपत्र दिया गया। इस प्रसंगपर नगरके रईस लोगोंके अलावा बीकानेरवाले सेठ श्रीचंद्रजी सुराणा और उनके सुपुत्ररत्न सेठ सुमेरमलजी सुराणा भी सपरिवार मौजूद थे।

इस सुप्रसंगपर आपका प्रभावशाली व्याख्यान हुआ था। आपकी आज्ञा होनेसे पं० श्रीललितविजयजी महाराजने भी संघवीका कर्त्तव्य इस विषयपर मनोहर व्याख्यान दिया था। फल यह हुआ कि सहकुटुंब संघवीजीने 'श्रीआत्मानन्द जैन विद्यालय गोडवाड' को दश हजारकी रकम देनेका वचन दिया। तथा संघपति गोमराजजीने यावज्जीवन चौथे व्रत ब्रह्मचर्यके पालनेकी प्रतिज्ञा की।

फागन सुदि सप्तमीको शुभ शकुनमें खूब बाजोंकी ध्वनिके साथ जय जय नाद करता हुआ संघ चल पड़ा। संघ पेरवा पहुँचा। वहाँ एक मंदिर और ४० श्रावकोंके घर हैं। पेरवासे सादड़ी गया। सादड़ीमें तीन मंदिर और ६०० श्रावकोंके घर हैं। सादड़ीसे वाली पहुँचा। वहाँ दो मंदिर और ५०० श्रावकोंके घर हैं। वालीसे लुणावे पहुँचा। वहाँ दो मंदिर और दो सौ घर हैं। लुणावेसे लाठारे पहुँचा। वहाँ एक मंदिर और ३० घर हैं। लाठारेसे राणकपुरजी पहुँचा। यहाँका मंदिर बहुत ही भव्य है। इसमें चौदह सौ चवालीस स्तंभ हैं। कहा जाता है कि सभी स्तंभ एक श्रावकने बनवाये थे, एक स्तंभ राजाने बनवानेकी इच्छा प्रकट की मगर वह न

बनवा सका । किंवदन्ती है कि, जब मंदिरकी नींव डाली जानेवाली थी तब घीका दीपक जलानेके लिए एक कटोरीमें थोड़ासा घी आया था । उसमें एक मक्खी गिर गई। मंदिर बनवानेवाले सेठने उस मक्खीको निकाल कर, घी फालतू न चला जाय इस हेतुसे और मक्खीके भी प्राण बच जायँगे इस खयालसे, अपने जूते पर रख लिया । यह देखकर राजोंको (कारीगरोंको) खयाल हुआ कि, ऐसा मक्खीचूस आदमी क्या मंदिर बनवायगा? उनमेंसे एक बोलाः— " सेठजी! नींवमें डालनेके लिए पचास पीपे घीकी जरूरत है । सेठने तत्काल ही घीके पचास पीपे मँगवा दिये । राजोंने वह घी नींवमें डाल दिया ।

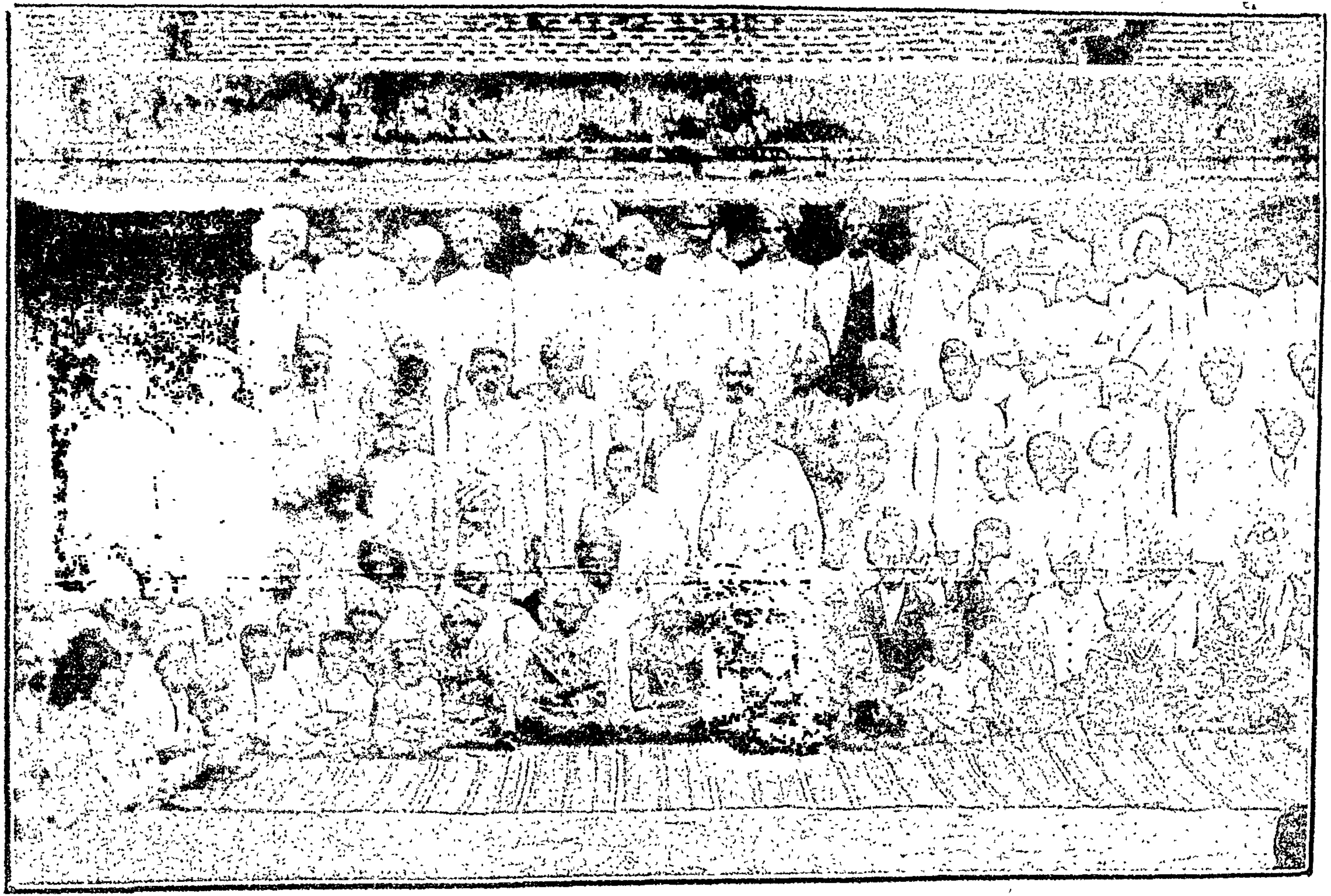
राणकपुरका दूसरा नाम त्रैलोक्य दीपक भी है । वहाँकी धर्मशाला बेमरम्मत पड़ी हुई थी । आपके उपदेशसे संघवी आदि श्रावकोंने उसकी मरम्मत करा दी ।

राणकपुरसे संघ देसूरी पहुँचा। देसूरीमें श्रावकोंके आपसमें झगड़ा था। कोर्टमें मुकदमा चलता था आपने आपसमें फैसला करनेके लिए बहुत समझाया; मगर वे न माने । तब दूसरे दिन आपने साधुओंको कह दिया कि, कोई इस गाँवमें आहार पानी लेने न जाय । संघमें २७ साधु और ६६ साध्वियाँ थीं । इस समाचारसे सारे देसूरीमें हलचल मच गई। लोग मुकदमेंबाजोंको घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे उन्हें धिट-कारने लगे । अनेक श्रावकोंने भी उस दिन अन्नजल नहीं



१००८ श्री आचार्य महाराज राणकपुर तीर्थपर (पंजाब श्रीसंघसहित) पृ. ३६८.

मनोरंजन प्रेस, बम्बई.



१००८ आचार्य महाराज श्रीमद्विजयवल्लभ सूरिजी। खुडाला (मारवाड) पृ० ३७१.

मनोरंजन प्रेस, बम्बई.

लिया। भला अपने गाँवमें अपनी जानमें, अपने गुरुओंको—पंचमहाव्रतधारी साधुओंको—अनाहार देखकर कोई अन्नग्रहण करेगा? अन्तमें दुपहरके बाद आपसमें समझौता हुआ और दोनोंतरफके लोगोंने आपसे क्षमा माँगी और आपका उपकार भी माना। जब समझौता हो चुका तब शामको सभी साधु साध्वियोंने और संघने आहारपानी लिया।

देसूरीसे संघ फाल्गुन वदि १ के दिन जीलवाड़े पहुँचा। वहाँ एक जिनालय और ५० श्रावकोंके घर हैं।

जीलवाड़ेसे गढ़बोर पराली, केलवाड़े होता हुआ संघ राजनगर पहुँचा। राजनगरमें राणा राजसिंहजीका बनवाया हुआ एक बहुत बड़ा तालाव है। उसकी परिधि करीब बारह कोसकी बताई जाती है। उसको बनवानेमें एक करोड रुपये खर्च हुए थे। राजनगरहीमें पहाड़ी पर एक जिनालय है। उसमें चौमुखे महाराज विराजमान हैं। उस मंदिरको राणा रायसिंहजीके मंत्री दयालशाहने बनवाया था। उसको बनवानेमें एक पैसा कम एक करोड़ रुपये उसने खर्च किये थे। पूरे करोड़ करनेमें राणा साहबकी नाराजगीका खयाल था। इसी लिए उसने एक पैसा कम खर्च किया था।

राजनगरसे संघ नाथद्वारे पहुँचा। यहाँ एक जिनमंदिर है। नाथद्वारेसे देलवाड़े पहुँचा। उसमें तीन जिन मंदिर हैं। देलवाड़ेसे एकलिंगजी पहुँचा। वहाँ शान्तिनाथ-

भगवानकी एक बहुत बड़ी प्रतिमा है । यह अदबदबावाके (अद्भुतबाबाके) नामसे प्रसिद्ध है ।

एकलिंगजीसे विहारकर आप संघके साथ उदयपुर पहुँचे । वहाँ तीन दिन निवास किया और शहरके सारे निकट और दूरके जिनालयोंकी यात्रा की ।

शहर यात्रा करते हुए श्रीसंघके साथ आप मालदासकी सेरीमें चाहबाईके उपाश्रयान्तर्गत श्रीजिनमंदिरके दर्शनार्थ पधारे । उस समय उस उपाश्रयमें बालब्रह्मचारी १००८ श्रीविजयनेमिसूरी महाराज ठहरे हुए थे । आप संघ सहित सहर्ष उस स्थानपर पधारे । श्रीविजयनेमिसूरिजीने भी हर्ष प्रदर्शित किया । परस्परका योग्य शिष्टाचार देखकर श्रीकेसरियाजीके संघने,—जो आपके साथ आया हुआ था और उदयपुरके श्रीसंघने दिलमें अपूर्व आनंद प्राप्त किया । इस दृश्यसे श्रावक समुदायपर जो कुछ प्रभाव पड़ा उसे वही जानता है । अन्यान्य मन्दिरोंमें देवदर्शन करने थे इसलिए अधिक समय आप वहाँ बैठ न सके तो भी करीब आध घंटेके आप वहाँ बैठे और परस्पर वार्त्तालाप कर आनंद उठाया । अगले रोज अर्थात् दूसरे दिन वे दादावाड़ीमें—जो चौगानके पास, हाथी पोलके बाहर है—दर्शन करने जा रहे थे । हाथी पोलके बाहर धर्मशालामें हमारे चरित्रनायक ठहरे हुए थे । वहाँ उस समय पंन्यासजी श्रीललितविजयजी महाराज खड़े हुए थे । उन्होंने नम्रता पूर्वक श्रीविजय नेमिसूरिजी महाराजसे अंदर

पधारनेको कहा। उन्होंने दर्शन करके लौटते समय आनेकी बात कही। लौटते समय वे आये। हमारे चरित्रनायकके शिष्योंने सामने जाकर उनका स्वागत किया। आपनेभी खड़े होकर उनका सत्कार किया खूब आनंदसे कोई दो घंटेतक बातचीत होती रही। जाते हुए वे दुपहरको शहरमें आनेका हमारे चरित्र नायकको आमंत्रण दे गये। आप दुपहरको पधारे। उन्होंने भी आपका योग्य स्वागत किया। दोनों महात्मा बहुत देरतक वार्तालाप करते रहे।

उदयपुरसे संघ रवाना हुआ। कायाकी चौकीसे बोलाओंके अलावा एक थानेदार भी संघकी रक्षाके लिए केसरियाजी तक साथ गया था। वह हमारे चरित्रनायकका अच्छा भक्त हो गया था। संघ केसरियाजी पहुँचा।

संवत १९७७ चैत्र सुदी दशमी सोमवारको संघ सहित श्रीकेसरिया बाबाकी यात्राकर आपने आनंद माना। इस संघमें २७ साधु और ६९ साध्वियाँ तथा डेढ हजारके करीब श्रावक श्राविकाओंका समुदाय था। वहाँ साधुओंके और संघपतिके आग्रहसे आपने आदीश्वरजीकी पूजा बनाई थी। वह वहाँ अहमदाबादनिवासी जौहरी भोगीलाल ताराचंदके आग्रहसे और उन्हींके खर्चसे पढ़ाई गई। उसको पहली बार संघवीने छपाकर प्रकाशित किया था। वहाँ एक साधर्मीवात्सल्य भी हुआ था। प्रतापगढ़निवासी सेठ लक्ष्मीचंदजी घीया आदि कुछ श्रावक श्रीकेसरीयानाथकी

यात्राके साथ आपके दर्शन और आपको प्रतापगढ पधारनेकी विनती करने आये थे । आसपुरके श्रावक भी इस समय तीर्थयात्राके उपरांत आपके दर्शनका लाभ लेने यहाँ आ पहुंचे थे वे भी अपने यहाँ पधारनेकी विनती करते रहे ।

कई रोज संघ श्रीकेसरियानाथजी ठहरा । खूब आनंदसे यात्रा पूजा प्रभावना साधर्मिवात्सल्यादि धर्मकार्य होते रहे । आखरी दिन चलते हुए दादा केसरियानाथजीकी यात्रा कर संघ सहित आप वहाँसे विदा हुए और उसी क्रमसे उदय-पुर पधारे ।

इस वक्त आप श्रीसंघ उदयपुरके आग्रहसे शहरके उसी चाहवाईके उपाश्रयमें—जहाँ श्रीविजयनेमिसूरिजी पहले ठहरे हुए थे—आ ठहरे । क्योंकि श्रीविजयनेमि सूरिजी कुछ शरीर नरम हो जानेसे बाहर धर्मशालामें सपरिवार जा ठहरे थे इस लिये उपाश्रय खाली था। चार दिन आप वहाँ ठहरे। संघके आग्र-हसे दो रोज आपने और एक रोज़ आपके सुशिष्य पं० ललित-विजयजीने श्रीसंघ उदयपुरको उपदेशामृत पिलाया ।

दो साधर्मिवात्सल्य—एक संघपतिकी तरफसे और एक श्रीसंघ उदयपुरकी तरफसे—हुए थे ।

आजकल कहा जाता है कि यतियोंका बहुत पतन हो गया है । श्रावक प्रायः यतियोंको अपने घरोंमें गोचरी लेने नहीं आने देते । और तो और अपने खास शहरमें भी यतियोंकी मान मर्यादा बहुत कम हो गई है । आजकल यतियोंका नि-

वाह उनके पूर्वजोंके संचित धनपर, जमीं जायदाद पर और वैद्यक, ज्योतिष एवं यंत्र मंत्र पर होता है। श्रावकोंके भक्ति-भाव पर नहीं। श्रावकोंके नहीं माननेका मुख्य कारण यह है कि उन्हें यतियोंके विषयमें यह शिकायत है कि यति संयम बराबर नहीं पालते हैं। ऐसी दशामें भी कुछ यति ऐसे हैं जो सब तरहके सुख साधनोंके होते हुए भी प्रायः संयमी हैं और जिनपर उनके श्रावकोंकी पूर्ण श्रद्धा है।

उदयपुरनिवासी यतिजी श्रीगुलाबचंद्रजी और उनके शिष्य यतिजी श्रीअनूपचंद्रजी भी ऐसे ही हैं। गुरु शिष्योंका शहरमें बड़ा मान है। कोठारी बलवंतसिंहजी आदिकी बड़ी बड़ी हवेलियोंमें, जनानेमें, किसी यतिको जाने नहीं देते; मगर इन गुरु शिष्योंके लिए कहीं मनाई नहीं है। इनका उपाश्रय कसेरोंकी ओल (गली) में है। इस ग्रंथके लेखकका घर उनके उपाश्रयसे सटा हुआ था। और बचपनमें इस, लेखकने उन्हींके यहाँ शिक्षा प्राप्त की। कुटुंब परिवारके लोग वैष्णव धर्मके धारक हैं, परन्तु इन पंक्तियोंका लेखक आज जैनधर्मको पालता है इसका कारण ये ही दोनों गुरु शिष्य हैं।

यतिजी अनूपचंद्रजी प्रायः साधु मुनिराजोंके पास जाया करते हैं और उनकी सेवा भक्ति भी किया करते हैं। उनकी और सिरसानिवासी यति श्रीप्रतापचंद्रजीके शिष्य यति श्री मनसाचंद्रजीकी उदयपुरमें एक पुस्तकालय खोलनेकी इच्छा

थी । यति प्रतापचंद्रजी आचार्य महाराज श्रीविजयकमल सूरिजीके यतिपनेके--गुरुभाई थे ।

यति अनूपचंद्रजी और मनसाचंद्रजी हमारे चरित्रनायकके पास गये और उन्होंने विनती की कि, हम अपने पुस्तकालयकी उद्घाटन क्रिया आपके शुभ हाथोंसे कराना चाहते हैं । आपने इस बातको स्वीकार किया । सं० १९७७ के वैशाख विद ३ के दिन इस पुस्तकालयकी आपके हाथोंसे उद्घाटन क्रिया हुई । नाम 'श्रीवर्द्धमानज्ञानमंदिर' रक्खा गया । इसमें इस समय करीब ढाई हजार पुस्तकें हैं ।

जिस वक्त संघ उदयपुरसे रवाना हुआ उस वक्त विहारके लिए तैयारी की हुइ, कमराँ बाँधे हुए हमारे चारित्रनायक आचार्यश्री विजयनेमिसूरिजीकी तबीयतका हाल पूछनेको और उनसे मिलनेको उस धर्म शालामें पहुँचे जहाँ वे ठहरे हुए थे । जाकर सुखसाता पूछी, आचार्यश्री बड़े खुश हुए । चलनेकी जल्दी थी तोभी उनके आग्रहसे करीब डेढ घंटे बैठना पड़ा । इस आखरी मुलाकातमें आचार्यश्रीने अपना सच्चा अन्तःकरणका उद्गार निकाला । उन्होंने कहा--

"वल्लभ विजयजी! मैं नहीं समझता था कि तुम इस प्रकारकी सज्जनता दिखलाओगे और शिष्टाचार करोगे । मेरे मनमें तुम्हारे लिए बहुत कुछ भरा हुआ था; परंतु तुम्हारे इस आनंद जनक समागमसे वह सब निकल गया । "

आपने कहा:--"बड़ी खुशीकी बात है । आप जानते हीं

हैं सुननेमें और देखनेमें बड़ा अंतर होता है। सुननेमें परके विश्वासपर आधार होता है और देखनेमें—प्रत्यक्षमें अपने आपका विश्वास होता है। जिस तरह आपकी गलत फेहमी दूर हो गई इसी तरह आपकी निस्वत मेरी गलत फेहमी भी निकल गई। इसी लिए तो मैं चाहता हूँ और आपसे भी सिफारिश करता हूँ कि जिस तरह भी हो सके एक दफा सर्व साधुओंका सम्मेलन होवे। आमने सामने मिलनेसे आँखोंमें कुछ शरम आ जाती है; अमी टपकने लग जाता है और हृदयकी जहरकी लहर शांत हो जाती है। आप करनेको समर्थ हैं। यदि आप जैसे समर्थ प्रतिष्ठित महात्मा मिलकर शासन सुधार करना चाहें तो कोई वड़ी वात नहीं है।" उन्होंने जवाब दिया, वल्लभ विजयजी! तुम्हारा कहना सत्य है। परस्पर मिलनेसे बहुत ही फायदा होता है, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव हम तुम दोनोंको हो चुका है और मैं भी यह चाहता हूँ कि साधुसम्मेलन अवश्य ही होना चाहिए; परन्तु इसमें छोटे वड़ेकी और वन्दनाकी पंचायत आखड़ी होती है। वहाँ सबकी अकल मारी जाती है।"

हमारे चरित्रनायकने कहाः—" महाराज! क्या इतनी भी उदारता त्यागी साधु महात्माओंसे नहीं हो सकती है? अरे! कुल दुनियाकी ऋद्धिको लात मारनेवाले, अपने आपको निर्ग्रन्थ–महामुनि–क्षमाश्रमण–यति–साधु–महाराज कहलानेवाले इतनी भी उदारता नहीं कर सकते हैं? आप मुझे आज्ञा करें यदि वंदना करनेसे ही सम्मेलन होता हो

तो बड़े तो क्या हरएक मुझसे छोटे साधुको भी मैं वंदना करनेके लिए तैयार हूँ ।

अफसोस! गृहस्थी भी आपसमें जब मिलते हैं तब योग्य शिष्टाचार करते हैं क्या साधुओंमें इतना भी न होना-चाहिए ? एकने उधरको मुख कर लिया दूसरेने उधरको! मानों दोनोंने एक दूसरेको 'अदिट्ठकल्लाणी' मान लिया। आपका और मेरा योग्य शिष्टाचार हुआ इसमें आपका या मेरा क्या बिगाड़ हो गया ? उलटा गृहस्थोंपर अच्छा प्रभाव पड़ा। इस लिए मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि, आप अवश्य सम्मेलनके लिये प्रयत्न करें। मेरा आत्मा मुझे साक्षी देता है कि, आप सफलता प्राप्त करेंगे! क्योंकि आपका प्रभाव बहुत अच्छा है। स्वर्गवासी १००८ श्रीमद्विजयानन्द सूरि (आत्मारामजी) महाराजजीके समुदायकी तरफसे तो आप निश्चिंत रहें। केवल १००८ श्रीआचार्य महाराज श्रीविजयकमल सूरिजी, १०८ प्रवर्त्तकजी महाराज श्रीकान्तिविजयजी और १०८ श्रीहंसविजयजी महाराज। इन तीनोंकी सलाहकी जरूरत है। इनके कहनेसे बाहिर प्रायः कोई नहीं होगा। अच्छा अब मैं आज्ञा चाहता हूँ, जानेमें देरी होती है। सुखसाता-में रहना धर्मस्नेह रखना।"

उदयपुरसे संघ रवाना होकर वापिस उसी मार्गसे देसूरी आया जिस मार्गसे वह गया था। देसूरीसे नाडुलाई, नाडोल, वरकाणाजीकी यात्रा करता हुआ संघ शिवगंजमें

पहुंचा । आप वहाँसे रवाना हुए । वरकाणाजीसे पं० सोहनविजयजीको आपने वीकानेरकी तरफ विहार करवा दिया । आप भी वीकानेरकी तरफ पधारना चाहते थे; मगर संघके आग्रहसे शिवगंज पधारे। वहाँ कुछ दिन ठहरकर वीकानेर जानेका इरादा कर आपने शिवगंजसे विहार किया । पोमावा, वांकली होते हुए आप जब तखतगढ़ पहुँचे तब आपको किसीने पहचाना नहीं; आपके पधारनेके वहाँ पहले समाचार भी नहीं पहुँचे थे; मगर जब आप मंदिरमें दर्शन कर रहे थे तब दर्शन करके रवाना होते हुए एक श्रावकने धीरेसे पूछा ये कौन महाराज पधारे हैं ? साथके साधुओमेंसे एक साधुने कहा कि, श्रीवल्लभविजयजी महाराज साहब पधारे हैं। इतना सुनते ही श्रावक दौड़ा हुआ गया। सारे बाजारमें और गाँवमें पवनवेगसे समाचार फैल गये । चारों तरफ़ दौड़ धाम मच गई। श्रावकोंने आकर वंदना की। सभी मिलकर आपको उपाश्रयमें ले गये । आपने मंगलीक सुनाई। दो दिन श्रावकोंको व्याख्यानामृत पिलाकर तीसरे दिन तखतगढ़से विहार कर क्रमशः आप पाली पधारे और पं० ललितविजयजी खुड़ाले गये ।

वीकानेरसे धर्मात्मा सेठ सुमेरमलजी सुराणा आपके दर्शनार्थ और आपसे वीकानेरमें चौमासा करनेकी विनती करनेके लिए आये । आपने उस विनतीको स्वीकार कर लिया ।

पालीसे विहार कर आप जाडन पधारे। जाडनमें मंदिर-जीकी बहुत आशातना होती थी। स्थानकवासी साधु मंदिरमें उतरते थे। मंदिरमें पूजा प्रक्षालन भी बंद हो रहा था। परंतु समयके अभावसे इस बातको न छेड़ते हुए आपने लक्ष्यमें ले लिया। रातको जाडनमें बहुत वर्षा हुई। इतना पानी बरसा कि जाडनसे आगे सोजतकी तरफ जानेका रस्ता बंदसा हो गया।

रात्रिकी वर्षा पालीमें उससे भी अधिक हुई थी, इस कारण पालीके श्रीसंघको बड़ी चिन्ता हो गई। कहीं सुबह महाराज विहार न कर जावें और आगेको दुःख न पावें इस इरादेसे रातोरात उन्होंने खेपिया भेजा और महाराजजी साहिबके साथमें गये हुए अपने भाइयोंको लिख दिया कि, जिस तरह हो सके विनती करके महाराजजी साहिबको पाली वापिस ले आना। आगेको बिलकुल न जाने देना मार्गमें बड़े दुःखी होंगे। यदि आपकी जानेकी ही इच्छा होगी तो दश दिन बादमें भी जा सकेंगे।

प्रातःकाल श्रावकोंने अर्ज गुजारी। आपने भी अवसर विचार लिया। आप जाडनसे वापिस पालीमें पधारे। जाडन गाम पालीसे करीब ११ माइलके है।

अब पालीके श्रीसंघको उत्साह हो गया कि, चौमासा यहीं होगा। प्रथम भी चौमासेके लिए बहुत जोर दे रहे थे अब तो मौका हाथ आ गया। बीकानेर पहुँचनेका समय तो

अब रहा ही नहीं। लगे चौमासेके लिए जोरसे विनती करने। कुछ महाराजजीकी सलाह होने लगी थी, अभी विनती स्वीकारी न थी, इतनेमें खुडाले (स्टेशन फालना) के श्रीसंघके मुखिया वालीके कई श्रावकोंके साथ विनतीके लिए आ पहुँचे। खुडालेके श्रीसंघकी पहलेसे ही चौमासेके लिए विनती थी; परंतु जिस लाभके लिए गोडवाड़में रहना था वह होता नजर न आनेसे ही आप गोडवाड़को छोड़ बीकानेरकी तरफ जाना चाहते थे। क्योंकि बीकानेरके श्रावक सेठ सुमेरमलजी सुराणा और सेठ लक्ष्मीचंदजी कोचरने बीकानेरमें चलती पाठशालाको स्थायीरूपमें बना देनेकी पूरी पूरी आशा दी थी। वाचकवृन्द ! आप देखते ही आये हैं कि हमारे चरित्रनायकको जैनसमाजमें तालीमके प्रचारकी धुन लगी हुई है, जो कि अबतक उसी तरह चली जा रही है।

खुडाला और वालीके श्रावकोंने कहा आप पधारिए हम आपकी इच्छानुसार कार्य करनेको तैयार हैं। यदि सादड़ीका श्रीसंघ मान लेवेगा तो सारे गोडवाडका जैनविद्यालय बना दिया जायगा; अन्यथा हम दोनों मिलकर यथाशक्ति उद्यम करेंगे। फिर धीरे धीरे आगेको काम बढ़ता जायगा; परंतु आपके पधारे विना कुछ भी बननेवाला नहीं है। ”

आपको खयाल था कि, वालीकी रकम पंन्यासजी श्रीसोहनविजयजी और ललित विजयजीके चौमासेमें और कुछ चौमासेके बादमें मिलाकर ७०-८० हजारके लगभग लिखी गई

थी यदि वालीवाले और थोड़ीसी हिम्मत करें तो एक लाखकी रकम वालीकी बड़ी खुशीसे हो सकती है। खुडालेकी रकम भी ४०-५० हजार की हो सकती है। दोनोंकी मिलाकर डेढ लाखकी रकम हो जायगी। यदि सादड़ीवाले मान लेवेंगे तो लाख सवा लाखकी रकम मिल जानेसे ढाई तीन लाखकी रकम हो जायगी। विद्यालयका काम चल पड़ेगा। यदि थोड़े समयके लिए सादड़ीका श्रीसंघ शामिल न हुआ तो भी वाली और खुडालेके श्रीसंघकी एक सलाह होनेसे संवत् १९७८ माघ सुदिमें खुडालेकी धर्मशालामें जो विद्यालयकी स्थापना की है वह ठीक रूपमें चल पड़ेगा। इस आशयसे आपके मनने पालीके हिसावसे खुडालाको अधिक पसंद किया। आपने पालीके श्रीसंघको समझाया कि आप खुद ही लाभालाभ विचार लेवें। पालीके श्रीसंघने भी स्वीकार कर लिया कि, यदि इस प्रकारके लाभकी संभावना है तो हमें कोई आग्रह नहीं है। आप खुशीसे पधार जावें। गोड़वाड़में विद्याका प्रचार होगा तो उसका लाभ हमें भी मिलेगा। अब आपने पालीसे विहार किया और क्रमशः आप खुडाले पधारे।

जुदा जुदा स्थानोंसे चौमासेकी विनती होनेसे आपने निम्न प्रकारसे अपने शिष्य प्रशिष्यादिकोंके चौमासोंका निर्णय कर दिया।

बीकानेर—पं० श्रीसोहनविजयजी गणी, मुनि श्रीसमुद्रविजयजी और मुनि श्रीसागरविजयजी।

सादड़ी—पं० श्रीललितविजयजी गणी और उनके शिष्य मुनि श्रीप्रभाविजयजी।

तखतगढ़—पं. श्रीउमंगविजयजी गणी और उनके शिष्य मुनि श्रीदेवेन्द्रविजयजी।

खुडालेमें आपके साथ उस चौमासेमें पं० श्रीविद्याविजयजी गणी, मुनि श्रीविचारविजयजी और मुनि श्रीउपेन्द्रविजयजी थे।

आप जिस संकल्पसे खुडाले पधारे थे वह तो पूरा नहीं हुआ; क्योंकि सादडीवाले मिले नहीं और बालीवाले जो पालीमें गये थे उन्होंनें फिर कभी मुख दिखाया ही नहीं। आखिरकार खुड़ालेकी धर्मशालामें स्थापन किये हुए गोडवाड जैन विद्यालयको 'श्री आत्मानन्द जैन पाठशाला-खुडाला' के रूपमें परिवर्त्तन करना पड़ा। वह पाठशाला खुडाला गाममें अच्छी तरह चल रही है। लोगोंकी इच्छा है कि, एक दफा फिर महाराजजी साहिबका यहाँ पधारना होवे तो इस पाठ-शालाकी और भी तरकी हो जावे।

पर्युषण समाप्त होनेके कुछ दिन बाद गोडवाड़के कई गाँवोंमें प्लेग फैल गया। खुड़ाला और सादड़ीमें भी प्लेग शुरू हो गया था। मुँडारेमें प्लेग नहीं था इस लिए पंन्यासजी श्रीललितविजयजी महाराज लोगोंके आग्रहसे मुँडारेमें आ गये। उन्होंने और श्रावकोंने हमारे चरित्रनायकसे भी मुँडारे पधारनेकी विनती की, मगर आप न पधारे।

वाली खुडालेसे तीन माइल है। वहाँ एक ओसवाल उस

समय हाकिम थे । यद्यपि वे तेरहपंथी थे तथापि आप पर बड़ी भक्ति रखते थे। वालीमें एक मुसलमान डॉक्टर भी थे। उनका वहीं नहीं आसपासके लोगोंमें भी बड़ा मान था। वे भी हमारे चरित्रनायक पर बहुत भक्ति रखते थे। उन दोनोंने एवं इन्स्पेक्टर गजराजजी मुहताने तथा सूरजमलजी दारोगा आदि प्रतिष्ठित श्रावकोंने आपसे बड़ा आग्रह किया कि, आप वाली पधारें, किन्तु आपने वाली जानेसे इन्कार कर दिया। आप वहांसे थोड़ी दूर फालनेका स्टेशन है। वहाँ खुडालेके श्रीसंघकी धर्मशालामें पधार गये । वहाँ एक श्रीजिनमंदिर भी है । खुडालेका श्रीसंघ भी आपके निकट ही तंबू, झौंपडियाँ लगाके आ रहा था। यहाँ आपने चौदहराजलोक-पूजाकी रचना की थी।

प्लेगके शान्त होजानेपर आप श्रीसंघ सहित पुनः खुडाला गांवमें पधार गये और चतुर्मासकी समाप्ति गांवमें ही की।

उसी चौमासेमें आपके शिष्यरत्न पं. श्रीललित विजयजी महाराजके हाथसे सादड़ी में भी 'श्रीआत्मानंद जैन पाठशाला सादड़ी' की स्थापना हुई। अब उसके लिए मकान भी तैयार हो गया है। इस मकानमें सेठ मूलचंदजी सादडी निवासीने दस हजार रुपये दिये हैं। बाकी खर्चा श्रीसंघ सादड़ीने दिया है। उस पाठशालाकी उद्घाटनक्रिया आपके लिखनेसे श्रीयुत गुलाबचंद्रजी ढड्डा एम. ए. ने सं० १९८२ के ज्येष्ठ सुदी १२ के दिन की थी। मकानपर निम्न प्रकारका बोर्ड लगाया गया है—

‘ श्री आत्मानंद मंदिरमार्गी जैन विद्यालय सादड़ी ’

‘ सेठ मूलचंद छजमलकी दस हजार एक रु. की सहायतासे स्थापित ।’

इस पाठशालाके लिए सादड़ीमें एक लाख दस हजारकी टीप हुई है। यह आपका चौमासा सादड़ीमें था तभी हो गई थी। श्रीयुत गुलाबचंदजीका जो पत्र आपके नाम आया वह यहाँ दिया जाता है।

फालना स्टेशन ता. ५

स्वस्ति श्री गुजरानवाला शुभ स्थाने अनेक गुणगणालंकृत पंच महाव्रत धारी पूज्यपाद गुरुवर्य श्री १००८ श्री आचार्य्य महाराज श्रीवल्लभविजयजीके चरणकमलोंमें गुलाबचंद ढड्ढाकी सविनय वन्दना मालुम हो, आपकी आज्ञाके मुताबिक ता. ३ को रवाना होकर ४ को सादडी पहुँचकर दोपहरको करीब १००० आदमियोंके समक्ष बहुत आनन्दपूर्वक श्री-आत्मानंद जैन विद्यालय सादड़ीकी उद्घाटन क्रिया आपकी आज्ञाके मुवाफिक निर्विघ्न समाप्त की। सेठ मूलचंदजीने नारियलकी प्रभावना की।

श्रीगुरुवर्यके पवित्र चरणकमलोंमें—

सिधराज ढड्ढाकी सविनय विनीत वन्दना मालूम हो मैं भी पू० काका साहबके साथ सादडी आयाहूँ। सर्व मुनिसमुदायको सविनय वन्दना। सुखसाताका पत्र दिरावें।

शुभ मिति जेठसुदी १५ स. १८८२

सिधराज ढड्ढा ”

जो गुण या जो पद आपको प्राप्त नहीं है वह गुण या वह पद यदि कोई आपके नामके पहले लगाता है तो आप उसे बिलकुल नापसंद करते हैं। भक्तोंके लिए आप सभी कुछ हैं; भक्त आपको सभी गुणसंपन्न और सभी पदोंसे विभूषित ही मानते हैं और लिखते हैं; परन्तु आपने कई बार उपदेशमें इसका प्रतिकार किया और एक विज्ञप्ति भी इसी चौमासेमें आपने प्रकाशित कराई उसको हम यहाँ आत्मानंद-प्रकाशसे उद्धृत करते हैं।

सूचना।

" सर्व सज्जनोंसे विज्ञप्ति है। मुझे कोई आचार्य, कोई जैनाचार्य, कोई धर्माचार्य, कोई उपाध्याय, कोई पंन्यास, कोई शास्त्रविशारद, कोई विद्याविशारद, कोई विद्यावारिधि, कोई मुनिरत्न, कोई प्रसिद्धवक्ता, कोई प्रखरविद्वान, कोई भू भास्कर, इत्यादि मनःकल्पित अपनी अपनी इच्छानुसार उपाधि–टाइटल–पदवीयाँ लिखकर भारी बनाते हैं। यह बिलकुल अन्याय होता है। क्योंकि न मुझे किसीने कोई उपाधि दी है, न मैंने ली है और न मैं किसी उपाधिके लायक ही हूँ। अतः स्वर्गवासी जैनाचार्यश्रीमद्विजयानंद सूरि महाराजकी बखशी हुई ' मुनि ' उपाधिके सिवा अन्य कोई उपाधि मेरे नामके साथ कोई भी महाशय न लिखा करें।

हस्ताक्षर मुनि वल्लभविजय।"

खुड़ालेमें, आपका वहाँसे विहार हो जानेके बाद, आपके

पोते शिष्य पंन्यासजी श्रीउमंगविजयजी महाराज गये थे। उनके उपदेश और उन्हींके हाथोंसे वहाँ एक लाइब्रेरीकी स्थापना हुई थी। उसका नाम रक्खा गया था–'श्रीआत्म-वल्लभ जैनलाइब्रेरी, खुडाला।'

खुडालेसे विहार कर आप वरकाणा पधारे। पंन्यासजी श्रीललितविजयजी महाराज भी मुंडारेसे संघ लेकर वर–काणाजीमें आपसे आ मिले थे।

पंन्यासजी महाराजने मुंडारेमें दो संस्थाएँ स्थापित कराइ थीं। एकका नाम है,–'श्रीआत्मानंद जैन पाठशाला मुंडारा' और दूसरीका नाम है,–'श्रीशान्ति आतमवल्लभ जैन लाइब्रेरी मुंडारा।' पहली संस्थाका चंदा हमारे चरित्रनायकके उपदेश-से ही हुआ था और दूसरीका चंदा पंन्यासजी महाराजके उपदेशसे हुआ था।

वरकाणेसे रानी, चाँचोरी, एन्द्राका गुड़ा होकर खाँड पहुँचे। खाँडमें आपके उपदेशसे पाठशाला खुली। वहाँ पूजा पढ़ाई गई और दो साधर्मिवत्सल हुए।

खांडसे गुंदोज पधारे। गुंदोजमें जब आप सवेरे आहार पानीकरके ओटले (थडे) पर टहल रहे थे उस समय उस गाँवके जागीरदार कहीं जा रहे थे। आपको देखकर वे घोड़ेसे उतर गये और आपके पास आकर करीब आध घंटे तक ठहरे। वहाँ आपके उपदेशसे एक पाठशाला भी स्थापित हुई।

गुंदोजसे आप कुल्ला पधारे। कुल्लेके कई श्रावक आपको

विनती करनेके लिए एन्द्राका गुड़ा आये थे। उनमेंसे एक श्रावकने आपके पास आकर उपवास पचख लिया और फिर कहाः—" आप जबतक हमारे गाँवमें पधारनेकी विनतीको स्वीकार न करेंगे तबतक पारणा नहीं करूँगा।" इस लिए आपको गाँव रस्तेमें न होने पर भी कुल्ला पधारनेकी स्वीकारता देनी पड़ी। वहाँ एक साधर्मीवत्सल भी हुआ था।

कुल्लासे डेंडो पधारे। वहाँ पालीके लोग विनती करने आये। बाजारमें आपका व्याख्यान हुआ था। वहाँ मंदिरजीमें पूजा नहीं की जाती थी। कई श्रावकोंको पूजाका नियम लिवाया।

डेंडासे आगे तीन कोस पर एक गाँव है। वहाँ आपके पधारने पर पूजा पढाई गई और साधर्मीवत्सल हुआ।

वहाँसे सं १९७७ के मिगसर सुदी १० को आप पाली पधारे। समारोहके साथ नगर प्रवेश हुआ। कई दिनतक पूजा प्रभावना और नोकारसी होती रही। वहाँ सोजत, नयाशहर (व्यावर) के लोग आपके पास अपने अपने गाँवोंमें पधारनेकी विनती करने आये थे। पालीमें एक पाठशाला भी स्थापित हुई थी।

पालीमें पचीस दिन रहकर आपने पोस सुदी ५ को वहाँसे विहार किया और जाडण पधारे। मंदिरजीमें आशातना होती है यह बात चतुर्मास पहले आप जाडण पधारे थे उस वक्तकी आपके ध्यानमें थी इस लिए पालीसे विहार करते हुए आपने पालीके श्रीसंघसे कुछ सूचना की। ५०-६० आदमी पालीसे आपके

साथ-जाडण इस इरादेसे गये थे कि आपको दो दिन वहाँ ठहरा कर कुछ उपदेश जाडणके भाइयोंको दिलाया जावे। आपने वहाँ उपदेश देकर प्रथम तो जाडणके भाइयोंमें जो कुसं-पथा उसे दूर किया। बादमें श्रीजिनमंदिरका जीर्णोद्धार और पूजाका उपदेश दिया। आपके उपदेशसे मंदिर और धर्म-शालाके जीर्णोद्धारके लिए चंदा हुआ, जिसमें पालीके श्राव-कोंने भी कुछ मदद दी, बाकी जाडणवालोंने यथाशक्ति उत्साह दिखाया और ढूँढिये साधुओंका मंदिरमें ठहरना बंद कराया। वहाँ कई स्थानकवासियोंने आपके पास पूजा पाठका नियम लिया और आपका वासक्षेप भी ले लिया। अब वहाँका मंदिर बड़ी अच्छी स्थितिमें है। उस वक्त पालीके भाइयोंने वहाँ पूजा पढ़ाई थी और साधर्मिवात्सल्य भी किया था जिसमें जाडणके बाई भाई भी शामिल थे।

वहाँसे विहार कर एक गाँवमें पधारे जो तीन कोस था। उसमें सारे श्रावक तेरह पंथी थे। इस लिए आहार-पानीकी वहाँ कुछ कठिनता पड़ी। वहाँ आप के दो व्याख्यान हुए। एक श्रावकने पूछाः—"

"स्थूलिभद्रजी कोशा वेश्याके घरमें चौमासा रह कर ब्रह्म-चारी रहे थे यह बात कैसे संभव हो सकती है।"

आपने उत्तर दियाः—

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"

उन्होंने अपने मनको साध लिया था अत एव ऐसे योगी-

श्वरोंके लिए नव वाडोंकी भी पावंदी नहीं है। भला मैं तुमको पूछता हूँ, तुमने कभी उपवास किया है?

श्रावक—हाँ कई वार।

आप—तो क्या तुम उपवासवाले दिन घर–गाँव–परिवार –खाने पीनेकी सब चीजोंको छोड़कर कहीं उजाड़में चले जाते हो या किसी पहाड़की गुफामें घुस जाते हो?

श्रावक—क्यों? वे चीजें मेरा क्या कर सकती हैं? मेरा मन काबूमें है, मैंने इनको त्याग दिया है, मुझे परभवका डर है, मैं अपना उपवास बराबर घरमें रह कर पाल सकता हूँ।

आप—भले भाई तो क्या भगवान् स्थूलिभद्र स्वामी अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेमें समर्थ नहीं थे? अवश्य थे।

इतना सुनकर वह शांत हो गया। वहाँ दो तीन श्रावकोंने पूजा पाठ करनेका नियम भी किया था।

वहाँसे आप सोजत पधारे। बड़े समारोहके साथ नगर-प्रवेश हुआ। शहरमें दस मंदिर हैं। उनका प्रबंध ठीक नहीं होता था। इस लिए आपने उपदेशद्वारा वहाँ एक पेढ़ी स्थापित कराई थी। उसका नाम 'शान्तिवर्द्धमान पेढी' रक्खा गया। उसके द्वारा अनेक मंदिरोंके जीर्णोद्धार हुए हैं। आपके पधारने पर अनेक श्रावक जो किसी कारणवश कुछ कुछ ढूँढियोंकी तरफ झुकते जा रहे थे वे वापिस अपने ठिकाने आ गये यानी पक्के प्रभुपूजक बन गये।

सोजतसे विहारकर आप विलावस पधारे। वहाँ मंदिर मार्गी एक ही श्रावक पक्का था। आपने वहाँ चार दिन रहकर उपदेश दिया। वहाँके साठ श्रावक जो कच्चे पक्के ढूँढिये थे, वे सभी मूर्तिपूजक हो गये। स्थानकवासियोंके परिचय और उपदेशसे स्त्रियोंने मासिकधर्म पालना छोड़ दिया था, सो आपके उपदेशसे वापिस पालने लगीं। वहाँ पंचोंने ठहराव करके यह बात भी लिख ली कि आजसे जिनके घरकी स्त्रियाँ मासिक धर्म नहीं पालेंगी उन पर पाँच रुपये जुर्माना होगा। वहाँ सब लोगोंके लिए पूजाका आवश्यक सामान भी आपके उपदेशसे एक श्रावकने मँगवा लिया। कई पूजाप्रभावनाएँ भी हुईं।

वहाँसे आपने कापर्डाजीकी तरफ विहार किया। विलावसके नगरसेठ गुलाबचंद्रजी आदि पन्द्रह आदमी भी आपके साथ गये। तीन दिनमें आप कापर्डाजी पहुँचे।

कापर्डाजीसे आप भावी पधारे। वहाँ सौ घर हैं मगर सभी स्थानकवासी हैं। उनमेंसे एक श्रावकने पूजा करनेका नियम लिया।

भावीसे विलाड़ा पधारे। वहाँ दो नोकारसियाँ और प्रभावनाएँ हुईं।

वहाँसे पाँच कोस पर एक गाँव है। उसमें वैष्णवी एक जाति है। वह खेती करती है। वह खेतोंमें कई वार आग लगा दिया करती है सो नहीं, लगानेका उसने आपके उपदेशसे नियम ले लिया। वहाँ तीन दिन तक आपके और पंन्यासजी महाराज ललितविजयजीके व्याख्यान होते रहे।

वहाँसे फिर आप कापडीजी पधारे। वहाँ मेले पर पाँच हजार आदमी आये थे। उसमें एक सधर्मीवात्सल्य हुआ-था। लोगोंको ठहरनेकी तकलीफ होती थी इस लिए आपने उपदेश देकर वहाँ धर्मशाला बनवानेकी नींव डलवाई।

वहाँसे आपने ब्यावरकी तरफ विहार किया और जेतारण पहुँचे। जेतारणसे दो कोस पर एक गाँव है। उसमें सभी श्रावक ढूँढिये हैं। उस गाँवमें आपने एक सार्वजनिक व्याख्यान दिया था। उसमें छःसात आदमियोंने दर्शन करनेका नियम किया। एक आदमीने पूजाका भी नियम किया। वहाँके जागीरदारके अन्तःपुरके पास जिनालय था; मगर कोई श्रावक वहाँ नहीं जाता था। इस लिए वह मंदिर जागीरदारने अपने अन्तः पुरमें मिला लिया और मूर्ति एक महात्माके यहाँ उपाश्रयमें रख दी थी। खुशीकी बात है कि श्रावकोंने नया मन्दिर बनवानेकी योजना करली है।

वहाँसे आप बरकेघाट पधारे। गाँवमें सभी ढूँढिये हैं, परन्तु आपका व्याख्यान सुनने सभी आते थे।

वहाँसे आप अमरपुरा स्टेशनकी धर्मशालामें जाकर ठहरे। नये शहरके लोग वहाँ वंदना करने आये थे। एक नौकारसी भी वहाँ हुई थी।

वहाँसे दूसरे दिन सं० १९७७ के फागण वदि १ के दिन आप ब्यावर पधारे। बड़े समारोहके साथ आपका नगर-प्रवेश हुआ। अठाई महोत्सव वहाँ शुरू था। आपके पधा-

रनेके बाद वदी ४ को भगवानकी सवारी निकली और पंचमीको शान्ति स्नात्र हुआ।

धूलचंदजी कांकरिया और शाहजी उदयमलजीके आपसमें कई दिनोंसे वैमनस्य था। दो भाई तीस वरससे आपसमें नहीं बोलते थे। वे ढूँढिये थे। इन महाशयोंने आपके उपदेशसे अपना वैमनस्य दूर कर दिया। दो वैष्णवोंने भी आपके उपदेशसे आपसी विरोध छोड़ दिया।

व्यावरमें पंन्यासजी श्रीहर्षमुनिजीके उपदेशसे पाठशालाके लिए सोलह हजार रुपयेका चंदा हुआ था। मगर वह वसूल नहीं हुआ था। आपके उपदेशसे वह वसूल हो गया। इतना ही नहीं वहाँ सात हजारका चंदा और भी हो गया।

धूलचंदजी काँकरियाने अपनी पचीस हजार कीमतकी एक हवेली पाठशालाके लिए दे दी। उन्होंने अपने वी. मा. का कागज जो पाँज हजार का था–भी पाठ शालाके लिए दे दिया। पाठशाला स्थापित हुई। वह अब अच्छी तरहसे चल रही है।

व्यावरसे आपने फागण वदी ९ को विहार किया। खरवा पहुँचे। खरवाके ठाकुरने आपके दर्शनका लाभ उठाया। खरवाके ठाकुर साहिबको राजपूतोंकी वंशावलीके कारण जैन साहित्यके देखनेका बड़ा शौक है। वहाँ पूजा और सधर्मीवात्सल्य भी हुआ।

वहाँसे विहार करते हुए आप अजमेर पधारे। समारोहके साथ नगरप्रवेश हुआ। ढड्ढोंकी हवेलीमें आपके दो व्याख्यान

हुए। वहाँ एक प्राइमरी स्कूल चलता था। उसको आपने उपदेश देकर अठारह हजार रु० की मदद दिलाई। वह स्कूल मदद मिलनेसे मिडल स्कूल बना दिया गया।

अजमेरसे विहारकर आप पुष्करजी, भगवान पुरा होते हुए पिसांगण पधारे। वहाँ सभी ढूँढिये श्रावक हैं। उनमेंसे एक श्रावक स्वर्गीय आत्मारामजी महाराजके ग्रंथ जैनतत्त्वादर्शसे प्रबोधित हुआ था। वही विनती करके आपको पिसांगणमें ले गया था। वहाँ आपके उपदेशसे तीन चार श्रावकोंने दर्शन पूजनकी प्रतिज्ञा ली थी। मंदिर वहाँ प्राचीन है।

पिसांगणसे आप केकिन पधारे उसमें जिन मंदिर विशाल और प्राचीन है। वहाँ सौ श्रावकोंके घर हैं और भव्य मंदिर भी है। मगर श्रावक सभी ढूँढिये हैं। साधुओंका विहार होता रहे तो संभव है लोगोंके भाव बदल जायँ।

वहाँसे आप मेडता पधारे। वहाँ करीब पन्द्रह जिन मंदिर हैं। वहाँकी यात्रा करके फलौधी पार्श्वनाथ पधारे। शेठ हीराचंदजी सचेती आदि कुछ अजमेरके श्रावक यहाँतक पैदल ही आपके साथ आये थे। वहाँसे वे अजमेर चले गये।

फलौधीसे आप खजवाणा, मुँडवा होकर नागौर पधारे। नागौरमें धूमधामके साथ आपका स्वागत हुआ। सिद्धिविजयजी महाराजके शिष्य अशोकविजयजी और रमणिकविजयजी आपको लेनेके लिए सामने आये। वहाँ आपके दो पब्लिक व्याख्यान हुए। वहाँ श्रावकोंके साढे तीन सौ घर हैं, उनमेंसे डेढ सौ ढूँढिये हैं। वहाँ पूजा प्रभावनादि हुए।

नागौरसे विहार कर आप दो तीन स्थानोंमें ठहर वहाँके लोगोंको धर्मामृत पिला बीकानेर पधारे।

चैत्रसुदी ९ सं०१९७८ के दिन बडी धूमधामसे आपका नगर प्रवेश हुआ। करीब ढाई हजार स्त्री पुरुष सामैयामें आये थे। आपने चौरासी गच्छके उपाश्रयमें जाकर मुकाम किया। वहाँ आपने भगवती सूत्र वाँचना प्रारंभ किया। जिस समय भगवती सूत्र शुरू करनेकी बात हुई उस समय लोग कहने लगे कि महाराज हम लोग इसको समझ न सकेंगे; मगर जब आपने पहले दिन भगवतीका व्याख्यान किया तब सभी वाह वाह करने लगे। व्याख्यानमें करीब डेढ हजार स्त्रीपुरुष हमेशा आते थे।

वहाँ उपाश्रयके पास एक ब्राह्मण रहते हैं। उनका नाम है मंगलचंदजी भादाणी। लखपति आसामी हैं। उन्हें आपके उपदेशसे ऐसा रंग लगा कि, वे गृहिणी सहित पक्के भक्त हो गये। उन्होंने सप्त व्यसनका त्याग किया, कंदमूल तीन सालतक नहीं खानेकी प्रतिज्ञा ली और नित्यदेव दर्शनका नियम किया। उस चौमासेके लिए उन्होंने रात्रिभोजनकी भी प्रतिज्ञा ले ली।

जगद्गूज्य श्रीहीरविजय सूरिजी महाराजकी जयन्तीका प्रारंभ भी आपने उसी साल प्रेरणा करके, सारे हिन्दुस्थानमें कराया। आपने भी बडे उत्साह पूर्वक वहाँ जयन्ती मनाई।

कोचरोंके आपसमें तनाजेके कारण दो धडे थे। वे भी आपके उपदेशसे टूट गये। भाग्यशाली धर्मात्मा सेठ सुमेरम-

लजी सुरानाकी प्रार्थनासे वहाँ आपने दो पूजाएँ बनाई एक पाँच ज्ञानकी और दूसरी सम्यग्दर्शनकी।

अजमेर, सोजत, नागोर, बंबई, पाटन और अहमदाबा आदि शहरोंके लोग आपको वंदना करने आये थे। पंजाव श्रीसंघका एक प्रतिनिधि मंडल आपके पास विनती कर आया था। उस वक्त पंजाबके भाईने एक गजल गाई थी उ हम यहाँ देते हैं।

गज़ल।

आप बिन पंजाबका अब हाल अबतर हो गया।
ज्ञानरूपी धन लुटा गफलतकी नींदों सो गया॥ १॥
आपकी ड्यूटी गुरूने दी थी लगा पंजाब पर।
कर दो अदा ड्यूटी गुरूकी तुमको गुरु वर हो गया॥ २॥
श्रीसूरि विजयानंद थे तब जगमगाता था यह देश।
परलोक जबसे वे सिधारे देश बेपर हो गया॥ ३॥
मुर्झा रही वाड़ी जो विजयानंदकी सरसब्ज थी।
सींच दो जल-ज्ञानसे गर दिलमें गुरु डर हो गया॥ ४॥
दीन दासोंके दुखोंको सुन दया आती नहीं।
क्या वजह दिल मोम था वो अब यूँ पत्थर हो गया॥ ५॥
वादा किया छः बरसका यात्रा करेंगे घूम कर।
पूरा किया है एक जुग मरुधरमें घर अब हो गया॥ ६॥
भूल गये पंजाबको जिस पर कि अतिशय प्रेम था।
उलफत मरूधर (मारवाड़) से लगी वह हमसे बढ़ कर हो गया॥७

वो दयालु भी रुठा जिसपर भरोसा था हमें ।
किसको जाके दुःख सुनावें हाल अव्तर हो गया ॥ ८ ॥
माफ करिए सत्र खता मंजूर करिए बीनती ।
पंजाबमें अत्र हो चौमासा काज सत्र सर हो गया ॥ ९ ॥
वल्लभविजय महाराजजी वल्लभकी शक्ति आपमें ।
ईश्वर भी देगा दाद गर चलनेका अवसर हो गया ॥ १० ॥

इस चौमासेमें आपके साथ (१) पं० श्रीललितविजयजी (२) पं० श्रीविद्याविजयजी (३) तपस्वी श्रीगुणविजयजी (४) मुनि श्रीविचारविजयजी (५) मुनि श्रीअशोकविजयजी (६) मुनि रमणिकविजयजी (७) मुनि प्रभाविजयजी (८) मुनि श्रीउपेन्द्रविजयजी । ऐसे आठ साधु थे ।

वहाँ चार मास खमण, पाँच पास खमण, पन्द्रह अठाइयाँ, दो सौ तेले और दो सौ वेले हुए थे । आपने केवल बारह द्रव्य खानेकी छूट रक्खी थी ।

वहाँ एक बंगाली सज्जन चाँदमलजी ढड्ढाके साथ आये थे। वे अच्छे विद्वान थे । वे महाराज साहबके साथ धर्मचर्चा करके अत्यंत प्रसन्न हुए और आपका अन्यान्य साधुओं सहित फोटो ले गये । उन्होंने कहा था,—" मैं इसे जैनधर्म और जैनसाधुओंके आचरणोंका विवेचन सहित किसी बंगाली पत्रमें प्रकाशित कराऊँगा । "

दीवालीके दिन हमारे चारित्रनायक भगवतीसूत्रका व्याख्यान बाँच रहे थे । उस दिन आपके दूसरा उपवास

था। व्याख्यानमें दस बारह ढूँढिये श्रावक आये थे। उन्होंने आकर आपसे कई प्रश्न किये। आपने उनमेंसे कुछका उत्तर दिया; मगर उन्हें विवाद करते देख कर आपने फर्माया:-"यदि तुम्हारे गुरुओंकी इच्छा शास्त्रार्थ करनेकी हो तो महाराज गंगासिंहजी और अन्यान्य कुछ पंडितोंको मध्यस्थ नियत कर मुझे शास्त्रार्थके दिन और स्थानकी सूचना दो। यदि तुम स्वयं ही विवाद करने आये हो तो यह प्रतिज्ञा कर लो कि, यदि मैं शास्त्रानुसार तुम्हारे प्रश्नोंका सन्तोष कारक उत्तर दे दूँगा तो तुम पुजेरे बन जाओगे ?।"

वे यह कह कर चले गये कि, हम विचार कर उत्तर देंगे। अब तक आतेही हैं।

इस तरह सं० १९७८ का पैंतीसवाँ चौमासा बीकानेरमें समाप्त कर मार्गशीर्ष वदी ५ के दिन शामको तीन बजे आपने वहाँसे विहार किया और उदासर पधारे। उदासरमें एक जिनमंदिर है। शहरमें एक चैत्यमें प्रतिमाजी थे। बड़ी आशातना होती थी; क्योंकि वहाँके सभी श्रावक तेरह पंथी थे। आपने उन्हें समझाकर प्रतिमाजी सेठ सुमेरमलजी आदिके सिपुर्द कराई। उन्होंने प्रतिमाजीको मंदिरजीमें लाकर विराजमान किया। वहाँ तीन नौकारासियाँ हुई थीं। बीकानेरके ढाई हजार आदमी आपके दर्शनार्थ आये थे।

उदासरसे विहारकर आगे एक गाँवमें पधारे और एक कुन्बीकी झौंपड़ीमें निवास किया।

वहाँसे आगेके गाँवमें पधारे। यहाँका ग्रामपति एक विद्वान था गोचरी फिरते हुए पं. श्रीललितविजयजी उनके घर चले गये। उनके वहाँ परमान्न (क्षीर) का भोजन तैयार था मगर–अभी तक चूल्हेपर था वह देने लगे मुनिजीने लेनेसे इनकार किया और अपने आचारका दिग्दर्शन कराया। पंन्यासजीके कथनमे संस्कृत भाषाका वाहुल्य सुनकर ग्रामपति खुश हुए और पंन्यासजीसे गुरु महाराजकी प्रशंसा सुनकर वह आपके पास आये। वह संस्कृतमें ही वहुत देरतक आपके साथ वार्तालाप करते रहे और आपकी विद्वत्तासे प्रसन्न होकर अपने स्थानपर चले गये।

इस गाममें एक भव्य उपाश्रय था मगर श्रावकोंकी कमजोरीसे राज्यकर्मचारी लोगोंने उसमें अपना दफ़तर रखकर अपना क़ुलफ लगा रखा था। ठाकुर साहिवने सोचा ऐसे ऐसे विद्वान साधु यहां आते हैं और स्थानाभावसे ठहर नहीं सकते। यह सोचकर उन्होंने हमारे चरित्रनायकके सामने ही श्रावकोंको कहा आजतक मुझे मालूम नहीं था कि यह मकान ऐसे ऐसे प्रखर विद्वानोंके ठहरनेके काम आता है। अव तुम रिपोर्ट करो मैं यथाशक्ति प्रयत्न करके मकानका कब्जा तुमको दिला दूँगा। ठाकुर साहिवका पंन्यास ललितविजयजीसे वड़ा स्नेह हो गया। क्यों कि उन्हींके द्वारा उनको गुरुदर्शनोंका और एक अदृष्ट पूर्व महर्षिसे धर्मचर्चा करनेका अवसर मिला था।

वहाँसे विहारकर आप लूणकरणसर पधारे। वहाँ ओसवालोंके साठ घर है सभी तेरह पंथी हैं। वहाँ एक मंदिरजी भी है। सेवक पूजा करता है। यहाँ आपको पानीकी वहुत तकलीफ़ पड़ी। कारण वहाँके कूओंका पानी विलकुल खारा है। लोग चौमासेमें पानी जमा कर रखते हैं और घीकी तरह उसे काममें लाते हैं। तेरहपंथी श्रावकोंने आपको कूओंका ही पानी जो न्हानेके लिये गरम किया था दिया। वहाँ होशियारपुर संघके वीस आदमी विनती करने आये थे।

लूणकरणसरसे आगेके गाँवमें एक जागीरदार हैं। आप उन्हींकी गढ़ीमें ठहरे थे। आपके उपदेशसे उनके मनपर वड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने शिकार नहीं करने की प्रतिज्ञा लेली।

वहाँसे महाजन पधारे। वहाँ एक मंदिर है और एक ही श्रावकका घर है। वह मंदिर नहीं जाता था। आपने उसको और उसकी पत्नीको दर्शनका नियम कराया।

महाजनसे आप सूरतगढ़ पधारे। वहाँ आर्यासमाजी और सनातनी प्रायः आपके पास आया करते थे। उनके साथ चार दिन तक आप ईश्वर जगत्कर्ता है या नहीं इस विषयमें वार्त्तालाप करते रहे। यहाँके लोगोंके दिलोंमें इस तरहकी वात वैठ गई थी कि जैन लोग अशुचिको नहीं मानते हैं। इसका कारण उधरके तेरहपंथी ढूँढिये थे। आपने इस वातको जैनधर्मका शुद्धोपदेश देकर दूर किया। वहाँ आपके पैरमें एक फोडा हुआ था। इस लिए इच्छासे कुछ समय अधिक

वहाँ रहना पड़ा। वहाँ एक मंदिर है। श्रावकोंके तीस घर हैं। उनमेंसे आधे ढूँढिये हैं। वहाँ एक महीना विराजे।

सूरतगढ़से आप व्रडोपल पधारे। वहाँ एक चैत्यालय है। श्रावकोंके पाँच घर हैं। उनमें साठ आदमी हैं। सभी मंदिरमार्गी हैं। छः सात रोज आप यहाँ विराजे।

वडोपलसे विहार कर ग्रामानुग्राम विचरते हुए आप हनुमानगढ़ पधारे। वहाँ श्रावकोंके वीस घर हैं। उनमेंसे तीन पुजेरे हैं। वाकी तेरह पंथी। मंदिरमें पूजा प्रक्षालनका कोई खास प्रबंध नहीं था। आशातना भी होती थी। आपने उपदेश देकर पूजा प्रक्षालनका प्रबंध कराया और आशातना मिटाई।

हनुमानगढसे आप डववाली मंडी पधारे। यहींसे पंजाव प्रारंभ होता है। पंजाव श्रीसंघके जुदा जुदा शहरोंसे करीव तीन सौ आदमी यहाँ आये थे। वे आपके दर्शन करने और अपने अपने शहरोंमें पहले पधारनेकी विनती करनेके इरादेसे आये थे। करीव दो माइल तक सामैयाके लिए लोग आये थे। पंजावका डेप्युटेशन भी सामैयामें शामिल हो गया था। सामैयेमें करीवन १५०० आदमी थे। शहरमें पधार कर आपने सार्वजनिक व्याख्यान दिया। असहयोगका उस समय पूरा जोर था। करीव दो हजार लोग व्याख्यानमें आये थे। उस समय आपने वर्तमान परिस्थितिपर जो व्याख्यान दिया था उसका वड़ा प्रभाव पड़ा।

वहाँ सभी लोग अपने अपने शहरमें पधारनेकी आपसे

विनती करते थे। आपने कहाः—" संघ मिल कर मेरा जाना जहाँ मुनासिब समझे वहाँके लिए कहे। मैं वहीं पहले जाऊँगा; मगर इस बातको नक्की करते वक्त इस बातका खयाल रखना कि, पंजाबमें किसी नगर वा गाँवके भाइयोंके मनमें जुदाई या दुःख मालूम न हो।" सब श्रीसंघ पंजाबने मिलकर सर्व सम्मतिसे यह निश्चय किया कि महाराज साहब पहले होशियारपुरमें पधारें। वहाँ कुछ ज्यादा लाभकी संभावना है।

आपने श्रीसंघ पंजाबके मानकी खातर यह बात स्वीकार कर ली। परंतु साथमें इतना खुलासा कर लिया कि, अंबाला-निवासी लाला गंगारामजी—जिनको कुल श्रीसंघ पंजाब मानकी दृष्टिसे देखता है—की बहुत वर्षोंसे यह अभिलाषा है कि, मेरी जिन्दगीमें एक चौमासा अंबलेमें हो जावे। इस लिए मेरा इरादा अंबालेको जानेका था। पंजाबमें विचरते हुए वृद्ध मुनि महाराज श्रीसुमतिविजयी उर्फ स्वामीजी महाराज, पं. सोहनविजयजी और विचक्षणविजयजी आदि साधुओंके साथ भी बीकानेरसे विहार करनेसे पहले पत्र द्वारा यह संकेत हो चुका है कि, यदि ज्ञानीने फरसना देखी होगी तो अपने सब अंबालेमें इकट्ठे हो जावेंगे। इस लिए तुम अंबालेकी तरफ आना और मैं भी उधर ही आऊँगा। क्योंकि श्रीसंघने हुशि-यारपुरके लिए निश्चित किया है, इस लिए मैं उधर जानेको तैयार हूँ। तुम पंजाबमें विचरते साधु मुनिराजोंको पता दे देना कि, श्रीसंघ पंजाबकी इच्छानुसार महाराज हुशियारपुर

पधारेंगे। आप भी होशियारपुर पधारनेकी कृपा करें। बाकी चौमासेके लिए तो मेरी भावना अंबालेहीकी है; क्योंकि, वहाँकी श्रीआत्मानन्दजैन पाठशाला (स्कूल) की व्यवस्था कुछ ठीक करानी है और वहाँका श्रीसंघ भी इस बातको चाहता है। श्रीसंघ पंजाबने भी यही बात पास कर ली है।

डबवाली मंडीसे विहारकर आप भटिंडे पधारे। वहाँके हिन्दु मुसलमान भी आपके स्वागतके लिए आये थे। वहाँ आपके दो सार्वजनिक व्याख्यान हुए। कई लोगोंने यहाँ मांस मदिराका त्याग किया। परस्त्रीगमन न करनेकी प्रतिज्ञा ली।

भटिंडेसे आप जेतो पधारे। यहाँ भी सार्वजनिक व्याख्यान हुआ।

जेतोसे कोटकपूरे पधारे। एक वैष्णव मंदिरमें उतरे। सार्वजनिक व्याख्यान हुआ। जेतो[1] नाभास्टेटमें और कोटकपूरा पटियाला स्टेटमें है।

---

१ जेतो वो स्थान है जहाँ सिक्खोंका **गुरुगंगसर** नामा गुरुद्वारा है, जिसमें उनके यकीदे मुजिब ग्रंथ साहिबका अखंड पाठ करना सरकारकी ओरसे मना किया गया था और "**शिरजावे तो जावे मेरी सीरकी सदक ना जावे**" इस वचनपर तुले हुए अकाली-सिक्खों ने पाँच पाँच सौका जथा जाना शुरू करा दिया था। हजारों ही कैद हुए, सैंकडों मर गये, अनेक प्रकारके संकटोंका सामना किया परंतु बहादुर अकाली-पीछे, नहीं हटे। आखर अपना धारा कर लिया। एकके बदले एक सौ एक अखंड पाठ किये, सबको कैदसे रिहाई मिली और दुनियामें जीती जागती कौम कहाई। वाह! धन्य है! धर्मकी टेक हो तो ऐसी ही होवे।

कोटकपूरेसे चाँदा पधारे। रास्तेमें चलते हुए दो साधुओंको ज्वर हो आया। अतः उन दोनोंकी उपधियाँ और झोलियाँ आपने ले लीं। इसीका नाम समयज्ञता है। कुछ आगे पंन्यासजी महाराज श्रीललितविजयजी जा रहे थे उनको खबर पड़ने पर वे ठहर गये और आपके मिलनेपर आपसे वे चीजें फिर उन्होंने ले लीं।

चाँदेसे विहारकर आप तलवंडी पधारे। वहाँ एक पब्लिक व्याख्यान हुआ। जीरेके लोग वंदना करने और आपको वहाँ पधारनेकी विनती करने आये थे।

तलवंडीसे विहार कर आप जीरे पधारे। वहाँ दो पब्लिक व्याख्यान हुए। व्याख्यानमें बडे बड़े ऑफिसर भी आये थे। आपसमें दो आदमियोंके मुकदमा चलता था उसे भी आपने मिटा दिया।

जीरेसे विहार कर आप सुलतानपुर, कपूरथला, कर्त्तारपुर, अलालपुर, आदि स्थानोंमें होते हुए खुर्दपुर पधारे। गुजराँवालेसे विहारकर स्वामी श्रीसुमतिविजयजी महाराज और पंन्यासजी श्रीसोहनविजयजी महाराज भी आपसे यहाँ आ मिले।

वहाँसे विहार कर आप नसराला गाँवमें पधारे सर्व साधु भी इकट्ठे हो गये यानी हुशियारपुरसे विबुधविजयजी और विचक्षणविजयजी भी यहाँ आमिले।

फाल्गन सुदी ५ के दिन आप सर्व साधुओंसहित

होशियारपुर पधारे। होशियारपुरमें आपके स्वागतार्थ करीब सात आठ हजार आदमी शहरके और बाहरके आये थे। बड़े समारोहके साथ जुलूस निकला। तीन घंटेतक सारे शहरमें जुलूस घू। स्थान स्थानपर भजन मंडलियाँ भजन गाकर आनंद देती थीं। स्थान स्थानपर शर्वतका इन्तजाम किया गया था। मुसलमानोंकी, सनातनियोंकी ढूँढियोंकी और जैनियोंकी, ऐसे चार, सेवा समितियाँ प्रबंध करनेके लिए साथमें थीं। जुलूस जहाँ व्याख्यानका इन्तजाम कर रक्खा था उस स्थान पर पहुँचा तब आप व्याख्यानके पाटपर विराजे। लाला दौलतरामने आपके सामनेकी चौकी पर एक सौ मुहरोंका साथिया कर वंदना की। न्योछावर भी मुहरोंहीकी की। वहाँ पंजाबके श्रीसंघने जो मानपत्र आपके भेट किया था उसकी नकल यहाँ दी जाती है।

ॐअर्हम्।

सूरि श्रीविजयानंद-प्रशिष्यं शान्तचेतसम्।
जैनधर्मधुरं वन्दे, वल्लभं मुनिवल्लभम्॥

प्रातःस्मरणीय, पूज्यपाद, न्यायाम्भोनिधि, जैनाचार्य, श्रीमद्विजयानंद सूरि उर्फ आत्मारामजी महाराजके प्रशिष्यरत्न प्रौढ विद्वान, जैनभूषण, मुनि श्रीवल्लभविजयजी महाराज!

हम-समस्त श्रीसंघ पंजाब, जिसमें दिल्ली, मेरठ और बीकानेर भी सम्मिलित हैं-अपनी अनन्य भक्तिभावना और उत्कृष्ट श्रद्धासे, इस होशियारपुर नगरमें आपश्रीका शुभ

स्वागत करते हुए, यह तुच्छ सम्मान आपकी सेवामें अर्पण करते हैं आशा है आप इसे स्वीकार कर हम सेवकोंको अनुग्रहीत करेंगे।

गुरुराज आपश्रीके विषयमें हमारे दिलोंमें जो श्रद्धा और भक्तिभाव हैं उनको शब्दोंद्वारा प्रकट करनेमें हम सर्वथा असमर्थ हैं।

आपका जीवन जैनधर्मका उच्च आदर्श, सादगी और पवित्रताका एक खास नमूना है। आपका नाम ही वल्लभ नहीं आप काममें भी सच मुच ही वल्लभ हैं। आप जैसे रत्नोंहीसे जैनसमाज गौरवशाली बन रहा है। आप सत्य और प्रेमकी जीती जागती मूर्ति हैं। इस लिए आपको सच्चे सत्याग्रही कहना चाहिए।

संयम—संन्यास व्रत-ग्रहण करनेके वक्तसे ही आपने कुल बुराइयोंका सच्चे दिलसे त्याग कर दिया है, इस लिए आप सच्चे असहयोगी हैं।

गुरुवर्य! आपके उच्च एवं अनुकरणीय जीवनका विचार करते हुए हमारा मस्तक श्रद्धा और भक्तिभावसे नम्र होकर आपके प्रशस्त चरणोंमें झुक जाता है। अधिक क्या कहें हम लोग आपश्रीके गुणानुवादमें सर्वथा असमर्थ हैं।

पूज्य मुनिराज! स्वर्गवासी गुरुमहाराज (आत्मारामजी) के बादमें आपने पंजाबके जैन समाज पर जो उपकारमयी ममता रक्खी है, उसके लिए हम आपके सदा ही ऋणी रहेंगे।

आपका असीम विद्या प्रेम किसीसे छिपा हुआ नहीं है। वंबईका 'श्रीमहावीर जैनविद्यालय' और पालनपुरका 'जैन एज्युकेशनल फंड' आदि संस्थाएँ—जो आपके द्वारा स्थापित हुई हैं—आपकी शिक्षाभिरुचिकी जीती जागती मिसालें हैं।

इसके सिवा गुजरात, काठियावाड़ और मारवाड़ आदि देशोंमें पैदल भ्रमण करके शिक्षाप्रचार और समाज सुधारके लिये आपने जो परिश्रम उठाया है उसके लिए, जैन समाज आपका सदा आभारी रहेगा।

पंजाब भूमिके लिए आजका दिन बड़े ही सौभाग्यका है। इस समय आपश्रीका यहाँ पर पदार्पण करना एक विशेष गौरवकी वात है। इस वक्त पंजावके श्रीसंघकी जो काया पलटी है, वह आपके ही अतिशय विशेषका फल है। जैन समाजके स्त्री पुरुषोंका, इस समय मलमल और रेशमके स्थानमें, केवल खद्दर और गाढेके वेशमें नजर आना, आपके आगमन प्रभावका ही प्रत्यक्ष फल है।

अन्तमें आपश्रीके पवित्र चरणोंमें हमारी सविनय प्रार्थना है कि, आप अपने शिष्य परिवार सहित इस पंजाव भूमि-जिसने श्रीविजयानंद सूरि जैसे धर्मोद्धारक रत्न पैदा किये हैं—में वहुत समयतक विचर कर इस भूमिको सच्चा और अनुकरणीय धर्मक्षेत्र वनानेकी कृपा करें और इस भूमिमें भी कोई ऐसा पौदा लगावें कि, जिसके अमर फलोंसे हम

और हमारी सन्तानें अमरता लाभ करके सच्चे सुखको प्राप्त कर सकें।

फाल्गुन शुक्ला ५ शुक्रवार, सं० १९७८ ता. ३–३–२२	हम हैं आपके तुच्छ सेवक, समस्त पंजाबके जैन।

आपने इसके उत्तरमें कहा था कि,—" आप लोगोंने मेरा इतना सत्कार किया है, इसको मैं अपना नहीं प्रातःस्मरणीय गुरु महाराजका मान समझता हूँ और इसी लिए इसको ग्रहण करता हूँ। यदि आप लोगोंमें सच्ची गुरुभक्ति है, तो आप लोग अपने अन्तःकरणसे मेरा—नहीं गुरु महाराजका एक ऐसा स्मारक करो कि जिसके कारण स्वर्गीय गुरुदेवकी आत्माको परम संतोष हो, और मैं भी आनंदका उपभोग कर सकूँ। वह स्मारक है, पंजाबमें एक ' आत्मानंद जैनकॉलेज ' की स्थापना करना। गुरु महाराज अकसर फर्माया करते थे कि, पंजाबमें जब देवस्थान काफी हो जायँगे तब सरस्वती मंदिर तैयार कराऊँगा। सज्जनो ! पंजाबमें देवस्थान काफी तादादमें बना कर आपने गुरुदेवकी एक भावनाको पूर्ण किया अब दूसरी भावनाको पूर्ण कर यानी सरस्वती–मंदिर बनाकर गुरुदेवके आत्माको परम संतोष प्रदान कीजिए और गुरुऋणसे मुक्त होइए।

"आपके मानपत्रकी सार्थकता मैं उसी दिन समझूँगा जिस दिन आप यहाँ गुरु देवके नामका कॉलेज बना देंगे; जिस

दिन मैं कोसों दूरसे आत्मानंद जैन कॉलेजकी बिल्डिंगको देख सकूँगा उसी दिन मैं समझूँगा आपने सच्चे दिलसे मुझे मानपत्र दिया है; जिस दिन भारतवर्षके कौने कौनेमें यह चर्चा होगी कि जैनधर्मके सच्चे धारक–सच्चे ज्ञाता–साथ ही ऐहिक विद्यामें पारंगत तो आत्मानंद जैन कॉलेजहीसे निकलते हैं, उस दिन मैं समझूँगा मेरे जीवनकी, बड़ीसे बड़ी ऐहिक साधनाको तुमने पूर्ण कर दिया है। जब तक ऐसा नहीं होता तब तक मैं समझूँगा तुम्हारा 'आत्मारामजी महाराजकी जय' 'वल्लभ विजयजीकी जय' बोलना बुलाना और मेरा ग्रामानुग्राम पंजाबमें भ्रमण कर उपदेश देना सब निरर्थक हैं। शासन देव तुम्हें सद्बुद्धि और शक्ति दे कि, तुम इस कामको पूरा कर सको।"

पंजाबके श्रीसंघमें एक बिजलीसी दौड़ रही थी। उस वक्त उनके हृदयमें जो भाव थे वे वर्णनातीत हैं। सैकड़ों आँखें स्वर्गीय गुरुदेवके स्मरणसे तर हो रही थीं। पंजाब श्रीसंघने उसी दिन पंजाब महाविद्यालय-कॉलेजके लिए चंदा लिखना शुरू किया। करीब दो लाख रुपये लिखे गये। पुरुषोंमें ही नहीं स्त्रियोंमें भी इतना उत्साह था कि अनेकोंने अपने जेवर उतार उतार कर विद्यालयके लिए दे दिये।

तीन दिन जल्सा रहा। सार्वजनिक व्याख्यान भी होते रहे। पं० मदनमोहनमालवीय वहाँ आये थे। उनसे भी आपका श्रीजिमनमंदिरमें मिलना हुआ था। करीब आध घंटे तक आप और मालवियाजी वार्तालाप करते रहे।

महावीर जयन्ती भी बड़े ठाटवाटके साथ मनाई गई। वहाँ और भी महत्त्वकी बातें आपके उपदेशसे हुई उन्हें हम आत्मानंद प्रकाशके उन्नीसवें वर्षके फाल्गुनके अंकमेंसे यहाँ उद्धृत करते हैं।

“ × × × अपवित्र केसरका पूजामें उपयोग नहीं करनेका ठहराव हुआ। प्रभु पूजाके समय हाथसे कते सूतका हाथसे बना हुआ खादीका कपड़ा ही पहनना, मिलका या चरबीवाला अपवित्र कपड़ा पहनकर प्रभुकी पूजा नहीं करना, अंगलूहने प्रभुके शरीर पोंछनेके कपड़े—भी ऐसे ही पवित्र होने चाहिए। मंदिरमें नैवेद्य देशी शक्करका ही रखना चाहिए इत्यादि स्तुत्य प्रस्ताव किये गये थे।”

जिस समय आप पंजाव पधारे थे उस समय सारे देशमें खादीका दौर दौरा था। आपके हृदयमें जब ब्यावरमें थे तभीसे विचार उठ रहा था कि, मिलके कपड़े पहनना धार्मिक दृष्टिसे अनुचित है या उचित? अन्तमें आप इस परिणाम पर पहुँचे कि अनुचित है। कारण मिलके कपड़ोंमें चरवी लगती है और चरबी हिंसा हुए बिना नहीं आती इस लिए बीकानेरसे ही आपने शुद्ध खादीका पहनना प्रारंभ कर दिया था।

होशियारपुरसे विहार कर आप फगवाडे पधारे। फगवाड़ेमें ढूँढिये और पुजेरे सभी श्रावकोंने आपका सामैया किया था।

फगवाडेसे विहार कर फिलोर पधारे। वहाँसे आहार करके

दुपहर बाद विहार किया। चलते चलते रात हो जानेसे मार्गहीमें एक आमके वृक्षके नीचे आपने रात विताई।

वहाँसे लुधियाने पधारे। बड़े समारोहके साथ आपका नगरप्रवेश हुआ। उपाश्रयमें व्याख्यानमें करीव एक हजार आदमी हिन्दु मुसलमान सभी जमा हुआ करते थे। जगहकी कमी होनेसे वहाँ दो कोठोंकी दीवारें तोड़ देनी पड़ीं। एक मुसलमानने अपने कुटुंबके सात आदमियों सहित मांसाहारका त्याग कर दिया।

एक ब्राह्मणका लड़का बड़ा ही शरावी था। आपके उपदेशसे उसने शरावका त्याग कर दिया और व्याख्यानमें ही सवके सामने प्रतिज्ञा की कि, आजके वाद यदि मुझे कोई शराव पीते देख लेगा या मुझे शराव पिये हुए वता देगा तो मैं उसे पचीस रुपये दूँगा। इतना ही नहीं उसने पचीस रुपये भी अन्यत्र रख दिये।

वहाँसे जव आप रवाना होने लगे तव हिन्दु मुसलमान आदि सवने आपसे वहीं चौमासा करनेकी विनती की। उन्होंने यह भी कहा कि,—"यदि आप यहीं चौमासा करें तो हम तीस चालीस हजार रुपये लगाकर एक पाठशाला स्थापित कर दें।"

आपने फर्मायाः—"पंजावके सारे संघने मिलकर अंवालेमें चौमासा स्थिर कर दिया है, इस लिए संघको मान देकर मैं चौमासा अंवालेहीमें करूँगा।"

आत्मानंद जैन प्रकाशमें प्रकाशित हुआ था कि । "×++ वल्लभविजयजी महाराजकी अध्यक्षतामें (लुधियानेमें प्रातः स्मरणीय विजयानंद सूरीश्वरजीकी) जयन्ती मनाई गई थी। सवेरे इसके लिए दो हजार भाई बहिन जमा हुए थे। +++ श्रावकोंने जयन्तीकी याददाश्त सदा रखनेके लिए यह प्रतिज्ञा की थी कि, वे कभी चरबीवाले अपवित्र वस्त्र और रेशमी वस्त्र इत्यादि किसी भी प्रसंगपर उपयोगमें न लायँगे। इससे हजारोंका खर्च बचनेकी संभावना है। इस तरह गुरु भक्ति कर जयन्ती मनाई गई थी। ”

लुधियानेसे विहार हुआ तब आपको पहुँचानेके लिए आपके साथ सैकड़ों लोग—श्रावकोंके अलावा हिन्दु मुसलमान सिक्ख आदि भी—करीब एक माइलतक गये थे।

विहार करते हुए आप सं० १९७८ के अषाड़ कृष्ण ६ के दिन अंबाले पहुँचे। बड़े समारोहके साथ आपका नगरप्रवेश हुआ। जब जुलूस उपाश्रयमें पहुँचा तब लाला गंगारामजीने १००) रु. और १३) रु. अन्य दो महाशयोंने दानमें दिये और वे रुपये आपके उपदेशसे क्रमशः कांग्रेस और खिलाफत कमेटियोंको इस शरतपर दिये गये कि, नंगे भूखोंको कपड़ा और भोजन दिया जाय।

वहाँ जब आपने व्याख्यान दिया तब करीब एक हजार स्त्री पुरुष थे। आपके व्याख्यानका जनता पर बड़ा असर हुआ उसका सार यह था।

जो चाहो शुभ भावसे, निज आतमकल्यान ।
तीन सुधारो प्रेमसे, खान, पान पहरान ॥

आपके इस उपदेशसे अंवालेके श्रीसंघने एकत्र होकर जो प्रस्ताव किया था वह हम " आत्मानंद जैन सभा " अंवालेकी सालाना रीपोर्टसे यहाँ उद्धृत करते हैं,—

" (१) कोई भाई विवाह, गमी या अन्य अवसरों पर चढ़ावा और सौगातमें ऐसा कपड़ा न देवे जिसमें चरवीकी पान दी हुई हो और इस लिए धर्म विरुद्ध और अपवित्र हो, तथा रेशमी कपड़ा, जो लाखों कीड़ोंकी हिंसासे वनता है । (२) चरवीसे वना हुआ सावन भी आगेको कोई न वरते । "

एक प्रस्तावके लिए फुट नोटमें लिखा है कि,—" जो वस्त्र अशुद्ध समझे गये हैं; उनका नवीन वनवाना तो विलकुल ही वंद हो चुका है । केवल पिछले वने हुए, मौजूद हैं उनका किसी तरह घरमें उपयोग कर लेना खुला रक्खा गया है । श्रीमंदिरजीमें जाना और सामायिक, प्रतिक्रमण, देवपूजामें इन वस्त्रोंका उपयोग विल्कुल नहीं करना; तथा अशुद्ध केसरका पूजामें उपयोग नहीं करना एवं अशुद्ध खाँडकी वनी मिठाई श्रीमंदिरजीमें नहीं चढ़ाना यह प्रतिज्ञा तो होशियारपुरमें श्रीमहाराज साहवके प्रवेश समय ही श्रीसंघ पंजावने क़र ली थी । "

आपके उपदेशसे वहाँका मिडल स्कूल हाइ स्कूल वनाया

गया और उसके लिए वहाँसे वाईस हजार रुपयोंकी सहा
यता भी मिली। विल्डिंगके लिए भी कई महानुभावों
कमरे बनवा देनेके लिए धन दिया।

कार्तिक शुक्ला ५ सं० १९७९ के दिन एक पुस्तकाल
स्थापित हुआ। उसकी उद्घाटन क्रिया गुजराँवालानिवास
लाला जगन्नाथजीके हाथसे हुई थी। उसके लिए करी
तीन हजार पुस्तकें आपने दीं। इनमें कई ग्रंथ तो बड़े प्राची
छः छः सौ वरसके पुराने लिखे हुए हैं। ग्यारह श्राविकाओं
पुस्तकोंकी अलमारियाँ ज्ञानभक्तिके निमित्त बनवा दी थीं।

इस चौमासेमें तपस्याएँ भी खूब हुई थीं। उनमें सब
अधिक, उल्लेखनीय मुनि महाराज श्रीगुणविजयजी तपस्वीक
थी। उन्होंने ७६ दिनमें केवल ७ दिन ही खाया था
तपस्वीजीके पारणेवाले दिन पूजा पढ़ाई गई और जीवदयाके
लिए चंदा एकत्र हुआ।

इस तरह सं० १९७९ का छत्तीसवाँ चौमासा आपक
आनंद पूर्वक अंबालेमें समाप्त हुआ।

चौमासेमें सामानेके लोग आपके पास प्रतिष्ठा करानेके
लिए सामाने पधारनेकी विनती करने आये थे। तदनुसा
अंबालेसे विहार कर ग्रामानुग्राम विचरते हुए आप पटियाले
पधारे। आपके आगमन समाचार सुनकर वहाँके कई स्थान
कवासी और जैनेतर भाई आपको लेनेके लिए सामने आ
थे। पटियालेमें मंदिरमार्गियोंका खास कोई जत्था नहीं है

तो भी पटियालेवाले अन्य भाइयोंने आपको वहीं पर मास कल्प करनेकी विनती की थी; परन्तु सामानेकी प्रतिष्ठाके दिन नजदीक आ गये थे इस लिए आप वहाँ न ठहर सके।

पटियालेसे विहारकर आप सामाने पधारे। समारोहके साथ आपका सामैया हुआ। जैनेतर लोग भी बहुतसे आये थे। वहाँ पर जैन और जैनेतर लोगोंमें किसी कारणवश मुकद्मा चल रहा था। आपने दोनों तरफके लोगोंको समझाकर आपसमें फैसला करा दिया। संवत् १९७९ माघ सुदी ११ को श्रीशांति नाथ प्रभुकी प्रतिष्ठा बड़ी धामधूम और आनंदोत्साहके साथ हुई।

सामानेसे विहार कर आप नाभे पधारे। नाभेमें स्थानकवासियोंकी वस्ती अधिक है। उन्होंने अपने उपाश्रयमें पधारकर व्याख्यान बाँचनेकी प्रार्थना की। इस लिए आप वहीं जाकर व्याख्यान बाँचने लगे। उनके हृदयमें आपके लिए बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गई। करीब दस दिनतक आप वहाँ विराजे थे। नाभेसे विहार कर आप मालेरकोटले पधारे। वहाँ बड़े उत्साहके साथ आपका स्वागत हुआ। जुलूसमें मालेरकोटलाका सरकारी बाजा आदि सामान भी था।

आपके वहाँ हमेशा व्याख्यान होते थे। उनमें जैनसे जैनेतर लोग ही अधिक जमा हो जाते थे।

वहाँ अनेक सज्जनोंने मांस मदिराका त्याग कर दिया। दो मुसलमान भाई भी मांसाहार छोड़ आपके पूर्ण भक्त बन गये।

तपस्वी गुणविजयजीने चैत्र वदि अष्टमीको तेले तेले पारना वरसी तप प्रारंभ किया। अहमदावादनिवासी जौहरी भोगीलाल ताराचंदकी प्रेरणासे श्रीचारित्र–पूजा उर्फ ब्रह्मचर्य–पूजाकी शुरूआत भी आपने मालेरकोटलाहीमें की थी। इस समय मालेरकोटलाके श्रीसंघका उत्साह कुछ अपूर्व ही था। चौमासेके लिए बहुत ही विनती की गई; परंतु आपकी इच्छा होशियारपुर चौमासा करनेकी थी, इस लिए एक कल्प करके आपने मालेरकोटलेसे विहार किया।

मालेरकोटलेमें श्रीमहावीर जयंतीका अच्छा उत्सव हुआ था। अहमदावाद निवासी वकील केशवलाल प्रेमचंद मोदी बी. ए. एल्. एल्. बी. आपके दर्शनार्थ वहाँ आये थे। उन्होंने भी श्रीमहावीरजयंतीके उत्सवमें हाथ बटाया था। दिनमें आपका और पं० श्रीललितविजयजी महाराजका प्रभावशाली व्याख्यान हुआ था। दुपहरको पालखी धूमधामसे फिराई गई थी और खूब ठाठसे श्रीमहावीर पंचकल्याणक पूजा पढ़ाई गई थी। पं० श्रीललितविजयजी महाराजको कुछ कदर संगीतका बोध है और कोटलाके लाला नगीनचंद आदि कई श्रावक भी गायन कलाके अभ्यासी हैं। इससे वहाँ पूजाका कुछ और ही रंग आया था।

मालेरकोटलेसे विहार कर लुधियाना होते हुए आप होशियारपुर पधारे और सं०१९८० का सैंतीसवाँ चौमासा आपने होशियारपुरमें किया।



चरित्रनायक तपस्याके समय। पृ. ४१५.

मनोरंजन प्रेस, बम्बई नं. ४

आपके उपदेशसे वहाँ श्रीआत्मानन्द जैन लायब्रेरी खोली गई थी जो अच्छी हालतमें चल रही है। चारित्रपूजा आपने यहीं समाप्त की । यहाँ आपने यथाशक्ति तपका आराधन भी किया। यूँ तो आप हमेशा अष्टमी चतुर्दशीको व्रत करते हैं, अन्य तिथियोंको एकासना करते हैं। परन्तु बीकानेरसे विहार करते हुए यह अभिग्रह धार लिया था कि, जबतक पंजाबके किसी खास बड़े शहरमें पहुँच न जाँय तबतक रोज एकासना करना और आठ द्रव्यसे अधिक द्रव्य खाने पीनेके उपयोगमें नहीं लेना । बादमें हमेशाके लिए यावज्जीवन दश द्रव्यसे अधिक द्रव्य नहीं लेना। जिस रोज भूल हो जावे और अधिक द्रव्य उपयोगमें आ जावें उसके अगले रोज जितने द्रव्य अधिक उपयोगमें लिए होवें उनसे दुगुने कमती कर देना।

आपका प्रथम प्रवेश होशियारपुरमें हुआ। एकासनाकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई। साधुओंके कहने कहानेसे कुछ रोज दो वक्त आहार करते रहे; परंतु आपका दिल मानता नहीं था फिर आपने एकासना शुरू कर दिया। उपवासके पहले और अगले दिनके सिवाय हमेशा एकासना शुरू कर दिया। साथमें अमुक, धारा, धार्मिक काम पूरा न हो लेवे तबतक गुड़ शक्कर आदि मीठा या मीठेका बना कोई भी पदार्थ नहीं खाना। इस प्रकारकी प्रतिज्ञा धारण कर ली।

पूर्वोक्त अभिग्रह–प्रतिज्ञाके होते हुए भी इस चतुर्मासमें

आपने दश द्रव्योंमेंसे भी एक और कम कर दिया। चतुर्दशी पूर्णिमा और चतुर्दशी अमावास्याका छठ–वेला करना शुरू कर दिया। बारह तिथि मौनव्रत स्वीकार कर लिया। पं० ललितविजयजी महाराजकी व्याख्यानादिमें सहायता मिलनेसे आप अपनी निर्धारित तपस्यादि कार्यसिद्धिमें सिद्ध हस्तसे हो गये। सत्य है योग्य उत्तर साधक मिलनेसे ही कार्यकी सिद्धि होती है। इस चतुर्मासमें कई सूत्रोंका स्वाध्याय भी आपने किया। आपके मनमें कई वर्षोंसे यह अभिलाषा हो रही थी कि कभी मैं इस जिन्दगीमें अट्ठम–तेला कर सकूँगा? सो वो अभिलाषा भी पूर्ण हो गई। बड़े आनंदसे तेला हो जानेकी खुशीमें लाला गुज्जरमलजी नाहर गोत्रीयके पौत्र लाला दौलतरामजीने सहर्ष १०१) रुपये जीवदयामें दिये। उनका अनुकरण करके श्रीसंघ होशियारपुरने और भी कुछ रकम जीवदयाके निमित्त इकट्ठीकी और कुल रकम बंबई जीवदयामंडलके नियंता सेठ लल्लुभाई गुलाबचंद झवेरी वलसाडनिवासीको भेज दी।

इस वर्ष पर्युषणोंमें व्याख्यानका कार्य पं. ललितविजयजी महाराजके सुपुर्द होनेसे आपने निश्चिन्ततासे व्रत-वेला और तेला करके पर्युषण पर्वका आराधन कर अपने जन्मको सफल माना। समयकी बलिहारी! कहाँ तो तेला करते हुए झिझकना–होगा या नहीं इस प्रकार सशंक होना और कहाँ तेलेके साथ सांवत्सरिक पर्वके रोज कल्पसूत्र-बारांसोका

सुनाना ! अब आपके आत्माको यह निश्चय हो गया कि तेले तककी तपस्या तो मैं सहर्ष कर सकता हूँ और इसी उत्साहसे गत वर्ष लाहौर और इस वर्ष गुजराँवालामें तेलेकी तपस्या आपने की थी; परन्तु "जहा लाहो तहा लोहो" वाला हिसाब ! अब आप चौला-चार उपवास लगातार-करनेकी अभिलाषा कर रहे हैं ! शासन देवता आपकी अभिलाषा पूर्ण करें ! वाचक वृन्दके दर्शनार्थ होशियारपुरकी तपस्याके समयकी तस्वीर साथमें दी गई है।

आपकी कृश शरीरावस्थाको देखकर पं० ललितविजयजी महाराज बहुत कुछ कहा करते थे; परन्तु प्रतिज्ञाके नामसे वे भी लाचार हो जाते थे। एक दिन बंबईसे किसी भाग्यवान धर्मात्माका पत्र होशियारपुर पहुँचा, जिसमें यह इशारा था कि, श्रीमहावीर जैन विद्यालयकी दश वार्षिकी मर्यादा पूर्ण होनेपर आई है अब आपको इसकी तरफ भी नजर करनी चाहिए। पत्रको पढ़कर आप विचारमें पड़े आपको विचार में पड़े देख, हाथ जोड़, चरणोंमें नमस्कार कर नम्रभावसे पं. ललितविजयी महाराजने विज्ञप्ति की:– "सद्गुरो ! ऐसी क्या बात है ?"

आपने वह पत्र पंन्यासजी महाराजको दे दिया और कहा:—"इसे पढ़ लो और यादि कुछ हिम्मत है तो यथाशक्ति हाथ बटाओ।"

पंन्यासजी महाराजने पत्र पढ़ा और अर्ज की:–" आप पधारिये यह सेवक हर तरहसे आपकी सेवामें रहकर यथा-शक्ति भक्ति करनेको तैयार है।"

आपने फरमाया:–" बेशक! परन्तु तुम खुद ही विचार लो। अभी तो पंजाबमें आये ही हैं। तत्काल उधरको कैसे जा सकते हैं? हाँ यदि तुम हिम्मत करके पहुँचो तो उधरका काम भी सुधर जायगा और इधर तो मैं बैठा ही हूँ। थोड़ा बहुत इधर भी सुधर ही जायगा।"

इस बातको सुन कर श्रीपंन्यासजी महाराजने अर्ज की:–" भले आप आज्ञा फरमाइये किंकर तैयार है। आप-की आज्ञा और आपका शुभ नाम सर्वत्र सहायक होगा। इसमें जरासा भी सन्देह नहीं है; परन्तु आप मेरी इस विज्ञप्तिको ख्यालमें ले लेवें। आपने जो एकासना करना शुरू किया है, चौमासा पूर्ण होनेपर इसको आगे न बढ़ाइये और अधिक तपस्या पर जोर न दीजिये। आपका शरीर तपस्याके योग्य नहीं है। तपस्या करना तो आप तपस्वी गुणविजयजीको ही सौंप दीजिये।"

आपने कहा:–" भले आदमी! क्यों तपस्याके नामसे मुझे बदनाम करता है। मुझसे तपस्या होती ही कहाँ है? धन्य है जो तपस्या करें। हाँ मेरे एकासनेसे ही तू नाराज है तो

चौमासेतककी मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो लेवे उसकेवाद निरंतर एकासना न करूँगा; परंतु जहाँतक मेरा वश चलेगा छूटे मुँह भी न रहूँगा। अष्टमी चतुर्दशीका उपवास तिथिको एकासना तो जैसा चलता है चलता ही रहेगा। वाकीके दिनोंमें वेसना –दो वक्त आहार करता रहूँगा। अव और कुछ कहना है तो वह भी कह दे।"

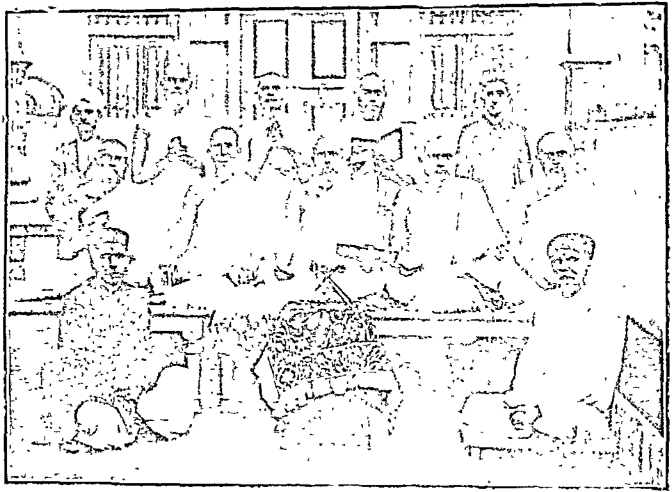
पंन्यासजी महाराजने कहाः–" जब तक मैं आपकी सेवामें वापस न आऊँ तवतक आप दश द्रव्य कायम रक्खें, निर्वाह छःसे या चारसे चाहे जितने द्रव्योंसे आपकी इच्छा के अनुसार कर लेवें; परन्तु दशसे कमती द्रव्यकी प्रतिज्ञा न करें। आपने जो मीठेकी प्रतिज्ञा की है उसके पूर्ण करनेमें मेरी शक्ति और भक्तिका भी कुछ अंश स्वीकरनेकी अर्ज है।"

आपने इन सब वातोंको सहर्ष मंजूर किया। चौमासे वाद पंन्यासजी महाराजने सीधा वंवईकी तरफ विहार किया और गुरुकृपासे ठीक धारे हुए समय पर वंवई पहुँच गये। अहमदावादसे पं०श्रीउमंगविजयजी महाराज, मुनि श्रीनरेन्द्र-विजयजी महाराज और मुनि श्रीअमर विजयजी महाराज भी सपरिवार इनके साथ आये थे।

पं० ललितविजयजी महाराजके वंवई पहुँचते समय वंवई-के श्रीसंघको आपने एक पत्र भेजा था, जो इस मुजिव था।

श्री श्वेतांबर जैनसंघ प्रति विज्ञप्ति।

मैं नीचे सही करनेवाला, सकल श्रीश्वेतांबर जैनसंघ (खास करके बंबई निवासी श्रीसंघ) की सेवामें विज्ञप्ति करना चाहता हूँ कि कुछ समयसे श्रीसंघ बंबई की–उनमें भी मुख्य–तया महावीर जैनविद्यालयके मेम्बरोंकी–इच्छा बम्बईमें आने–के लिए प्रदर्शित की गई, मगर मैं पंजाबमें बहुत दूर बैठा हूँ, सहसा बंबई नहीं पहुँच सकता इस लिए और पंजाबमें कई नवीन जिनमंदिर बने हुए हैं उनकी प्रतिष्ठा करना है इसलिए मैं आप श्रीसंघकी इच्छाको मान न देसका इसके लिए आशा है श्रीसंघ कुछ खयाल न करेगा। तो भी फूल नहीं तो फूलकी पखड़ी ही सही इस, हिसाबसे यथाशक्ति समाजकी सेवा होनी ही चाहिए यह सोचकर मैंने अपनी हार्दिक इच्छा पंन्यास ललितविजयजीको बतलाई कि, महावीर जैनविद्यालयकी योग्य सेवा बहुत समय हुआ हम कुछ न कर सके। श्रीमहावीर जैनविद्यालयके कारण समाजमें कितनी जागृति हुई है, यह बात उसके वार्षिक रिपोर्ट से भली भाँति मालूम हो जाती है। जिस दिनसे यह संस्था स्थापित हुई है उसी दिनसे यदि इसकी उचित सार सम्भाल ली जाती तो आज इस संस्थाका स्वरूप कुछ और ही होता, मगर अभाग्यवश ऐसा न हो सका। इस लिए प्रेरणा कर उसकी तरफ समाजको आकर्षित करनेवाले की खास आवश्यकता है। संस्थाको मदद करनेवा–



पंन्यासजी म० श्रीललितविजयजी उनके दाहिने हाथ. पं० म० श्री उमंगविजयजी. १ मुनि म० अमरविजयजी २. बाएँ हाथ मुनि श्रीनरेंद्र विजयजी म० १ मुनि श्री मनोहरविजयजी महाराज. २. पृ. ४२०,

मनोरंजन प्रेस, बम्बई.

लोंके दस वरसतक मदद देनेके वचन थे उनका समय भी अब अनकरीब ही पूरा होनेवाला है। इस लिए इस वरसकी मुद्दत समाप्त हो इसके पहले ही यदि प्रेरककी तरह उपदेश द्वारा समाजकी सेवा हो सके तो जैन समाजको उन्नति की पायरी पर पहुँचानेवाले महावीर जैनविद्यालयकी नींव मजबूत हो जाय। आदि।

मेरी भावनाको मान दे कर पंन्यास ललितविजयजीने अर्ज की कि,—" यदि आपकी ऐसी ही इच्छा हो और मुझे वहाँ जाने के योग्य समझते हों तो प्रसन्नतापूर्वक मुझे जानेकी आज्ञा दी जिए, मैं हर तरहसे हरेक तकलीफ को वर्दाश्त कर वहाँ शीघ्र ही पहुँचूँगा और यथाशक्ति समाजकी सेवा कर आपकी इच्छा को पूर्ण करूँगा। "

श्रीमहावीर जैन विद्यालय इन्हींकी उपस्थितिमें स्थापित हुआ था, इसलिए जैसा सद्भाव उसके प्रति मेरा है वैसाही, मेरा विश्वास है कि, उनका भी है। वंबई के श्रीसंघसे भी वे भली भाँति परिचित हैं, इसलिए वे समाजसेवाके कार्य में अवश्य प्रयत्न करेंगे और समाजका ध्यान उस तरफ भली प्रकार आकर्षित कर सकेंगे। इसी आशयसे मैंने पंन्यास ललितविजयजीको आज्ञा दी कि ऐसे समाजसेवाके कामको अवश्यमेव करना चाहिए; मेरी मान्यता है कि, तुम कर सकते हो, इस लिए वंबईके श्रीसंघकी इच्छा को मान दे, यथासाध्य प्रयत्न कर, यह चौमासा तुम्हें वहीं जाकर करना चाहिए।

मेरी इस आज्ञाको मान, हाथ जोड स्वीकार कर सं० १९८० कार्तिक शुदी २ (गुजराती) को पंजावके होशियारपुरसे विहार कर मार्गमें प्रायः विशेप किसी भी स्थानपर न ठहर, निरंत लंवा विहार करते हुए, लगभग बारह सौ माइलकी (पैदल) मुसाफिरी कर करीव सात महीनें में वंबई पहुँचनेवाले हैं । यह काम कुछ कम हिम्मत का नहीं है ।

इनके साथ यद्यपि इनके शिष्य मुनि प्रभाविजयजी, गुरुभक्ति की खातिर, होशियारपुरसे ही इनके साथ आये हैं तथापि, वंवई जैसे वड़े शहरमें चार साधु विशेप हो तों शासनकी शोभा के साथ ही कार्यसिद्धिमें भी विशेप मदद मिले, इस हेतुसे पंन्यास उमंगविजयजीको पत्र लिख उनके साथ वंवई जानेकी प्रेरणा एवं आज्ञा की । यद्यपि इनकी विशेष इच्छा न थी तथापि मेरी आज्ञा एवं शान्तमूर्ति १०८श्री हंसविजयजी महाराजकी प्रेरणा और तथा आज्ञाको मान, तथा पंन्यास ललितविजयजीके साथ पहलेसेही धार्मिक प्रेम होनेसे और दोनोंने पदवी साथही ली है, इस संवंधको विचार कर वे वंवई, अहमदाबादसे विहारकर अपने शिष्य मुनि चरणविजयजीके साथ आये हैं। इस प्रसंगपर स्वर्गवासी मुनि महाराज श्री मांणिकविजयजीके शिष्य मुनि श्रीनरेन्द्रविजयजी और स्वर्गवासी मुनि महाराज दादा श्रीकेवलविजयजीके शिष्य मुनि श्रीअमरविजयजी अपने शिष्य मुनि कान्तविजयजीसहित साथमें पधारे हैं। यह खुशी की वात है । आशा है पंन्यास

ललितविजयजी, पंन्यास उमंगविजयजी आदि सातों साधु परस्पर प्रेमका वर्ताव रक्खेंगे और सभी एक ही ध्येयके लिए समाजसेवाका प्रयत्न करनेमें किसी तरहकी कसर न रक्खेंगे। वंबईका जैनसंघ भी आये हुए मुनियोंको अपनायेगा और यथाशक्ति श्रीमहावीरजैनविद्यालय द्वारा जैनसमाजकी उन्नतिको बढ़ानेकी कोशिश करनेमें पीछे पैर नहीं रक्खेगा।

इतना लिख, हृदयकी भावनाका यत्किंचित परिचय करा, पंन्यास ललितविजयजी, पंन्यास उमंगविजयजी आदि सात साधुओंको एवं श्रीसंघको धन्यवाद देता हुआ और वंबईके श्रीसंघकी इच्छाको, मैं स्वयं वहाँ पहुँच, पूर्ण न कर सका इसके लिए उससे क्षमा चाहता हुआ विरमता हूँ।

ताजा कलम—विशेष प्रसन्नताकी बात यह है कि, जैनाचार्य श्री १००८ श्रीविजयवीरसूरिजी महाराजका चौमासा भी अपने शिष्यसमुदाय सहित वंबईमें है, इससे वंबईके श्रीजैनसंघ को अधिक लाभ मिलेगा। आशा है वंबईका श्रीजैनसंघ इस सुनहरी अवसरका अच्छी तरहसे लाभ उठायगा। इसी तरह आचार्य महाराज श्रीविजयवीरसूरि भी श्रीमहावीर जैनविद्यालयका निरीक्षण कर उसमें किसी तरहकी कमी दिखाई दे तो उसे दूर करने की कार्यवाहकों से प्रेरणा करेंगे और स्वयं भी योग्य सेवा कर अपने आत्माको कृतार्थ करेंगे एवं समाजको उसका कर्तव्य समझायँगे।

अमृतसर (पंजाब)
वैशाख सं १९८०

मे हूँ समस्त श्रीजैनसंघका दास,
मुनि वल्लभविजय।

सामानेमें प्रतिष्ठाके समय आपके पास एक मुसलमान सज्जन–जो वहाँके रईस और निकटके ग्रामके स्कूलके मास्टर थे–आया करते थे। आपके पास आने जानेसे उनके दिलमें अहिंसा और दयाके विचार पैदा हुए। आपने उन्हें एक दो किताबें भी दीं। जब आप होशियारपुरमें विराजते थे तब उन्होंने आपके पास एक पत्र भेजा था। उसकी नकल यहाँ दी जाती है:–

"पीरे तरीक़त, राहे हिदायत श्रीमुनिवल्लभविजयजी महाराज! बाद अदाए आदाब व तस्लिमाना बजा लाकर अर्ज़ ख़िदमात आलीजाह हूँ। बंदा बख़ैरियत और ख़ैरोआफ़ियत हुजूर अन्वर नेक मतलूब। हजूरकी मुलाक़ातसे जो कुछ फ़ायदा उठाया बयानसे बेरूँ। दोनों किताबें जेर मुताला हैं। जहाँ तक मेरे इन्साफ़ने फैसला दिया है, मसला दया और अहिंसाका जैनतालीममें फ़ौक़ियत रखता है। वाक़ईमें दया ही धर्मका मूल है। जैसे तुलसीजी साहब फ़र्माते हैं—

दया धर्मका मूल है, पापमूल अभिमान।
'तुलसी' दया न छोड़िए, जबलग घटमें प्रान॥

दासकी निहायत अदबसे अरदास है, दया दृष्टि फ़र्माएँ। बंदा बारह तेरह रोज तक हाज़िर खिदमत होकर क़दम्बोसी हासिल करेगा। बराए परवरिश एक किताब जिसमें जैन-पुरुषार्थका लबेलबाब यानी रियाज़त या तप–ध्यान या मराक़बा ज्ञान या मारफ़तके असूल उर्दूमें हों तो बेहतर है,

नहीं तो फिर किसी भाषामें हों जरूर तलाश करके रख छोड़ें । हुजूरकी दयासे बंदेको इस वक्त किसी किताव या ग्रंथकी जरूरत नहीं । लेकिन धर्मके फूल सूँघनेका निहायत शौक़ है । बाकी सबकी खिदमतमें सलाम कुबूल हो । ज्यादा आदाब फ़कत ।

खादिमुल्फ़क़ीर
मुन्शी शेरहुसेन सामानवी । "

होशियारपुरका चौमासा समाप्त होनेपर आप काँगड़ेकी यात्राके लिये पधारे । काँगड़ेका नाम पहले नगरकोट था । प्राचीनकालमें वह 'त्रिगर्त्त' के नामसे विख्यात था । उस समय अनेक जैन और जिनमंदिर भी वहाँ थे । इस समय वहाँ एक स्थानपर भगवान श्रीआदिनाथकी एक भव्य मूर्ति है । जो किलेमें होनेके कारण गवर्न्मेंटके अखतियार और कवजेमें है । जैनसमाजका कर्त्तव्य है कि, वह प्रयत्न करके उस मूर्तिको अपने अधिकारमें ले और सेवापूजाका प्रबंध करे । *

आपके साथ होशियारपुरके कई श्रावक श्राविका यात्रार्थ गये थे । एक छोटासा संघ हो गया था ।

काँगड़ेकी यात्राकर आप वापिस होशियारपुर पधारे । और वहाँसे अन्यत्र विहार किया । काँगड़ा तीर्थका वर्णन

*सुना गया है कि हमारे चरित्रनायकने इसके लिए प्रयत्न जारी किया था मगर कामयाब नहीं हुए । अब दुबारा फिर भी कुछ प्रयत्न करना चाहते हैं ।

विज्ञप्तित्रिवेणी नामा पुस्तक—जो भावनगर (काठियावाड की श्रीजैनआत्मानन्दसभाने छपवाया है पढ़नेसे वखूबी मालूम हो जाता है।

(सं० १९८१–८२)

होशियारपुरसे विहार कर मियानी, उरमड आदि स्थानोंके जीवोंको उपदेशामृत पिलाते हुए आप 'जंडियाला गुरु' पधारे। वहाँके लोग वाजेगाजेके साथ आपका सामैया करनेके लिये सामने आये, मगर आपने विचार कर लिया था कि, जबतक मनोरथ पूर्ण न होगा तब तक कहीं भी जुलूसके साथ नगरप्रवेश न करेंगे। तदनुसार आपने संघसे कहा:—"उरमडमीयानीमें भी विनाही वाजेके मैं गया हूँ यहाँ भी उसी तरह जाऊँगा।"

संघमें उदासीनता छा गई। मगर क्या करता लाचार था। वाजे लौटा दिये गये। वाजोंके धूमधड़ाके विनाका शान्त जुलूस निकला। लोग इस शान्त जुलूससे विशेष प्रभावान्वित और अन्तर्द्रष्टा बने।

आपका विचार शीघ्र ही गुजराँवाला पधार कर स्वर्गीय गुरुदेवकी समाधीकी चरणवंदना करनेका था; परन्तु लाहोर आदि रास्तेके स्थानोंमें प्लेग हो जानेके कारण श्राव-कोंके आग्रहसे आपको वहीं ठहरना पड़ा।

जंडियालेमें कई दिनोंसे आपसमें कलह चल रहा था। आपके प्रयाससे वह मिट गया।



तपस्वीजी श्रीगुणविजयजी महाराज.
(आचार्य महाराजकी सेवामें) पृ. ४२७

मनोरंजन प्रेस. बम्बई नं ४

महावीरजयन्तीका सार्वजनिक उत्सव किया गया। हिन्दु मुसलमान सभीने इस उत्सवमें भाग लिया।

तपस्वीजी श्रीगुणविजयजी महाराज तेले तेलेके पारणेसे वार्षिक तप कर रहे थे। वैशाख सुदी ३ (अक्षय तृतीया) सं० १९८१ के दिन वह तप निर्विघ्न पूरा हुआ और उन्होंने पारणा किया। उस अवसर पर श्रीसंघने खुशीमें पूजा पढ़ाई। कई भव्योंने ज्ञान दान दिया। जितनी रकम हुई थी वह सभी जंडियालेके श्रीसंघके सुपुर्द कर दी गई। और उसका स्कॉलर्शिप फंडकी तरह उपयोग करनेका उपदेश दिया गया। उसकी व्यवस्था हुई कि जंडियालेका कोई जैन विद्यार्थी अगर उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके लिए कहीं बाहर जाना चाहता हो; मगर आर्थिक बाधाके कारण न जा सकता हो तो उसको स्कॉलर्शिप दी जाय। उसी समय यह बात काममें भी लाई गई। अर्थात् एक लड़केको १० दस रुपये मासिक दिये जाना स्थिर हुआ।

स्वर्गीय गुरु महाराज श्रीआत्मारामजीके बनाये हुए जैनतत्त्वादर्शको पुनः छपवा कर मामूली कीमतपर बिकवानेकी योजना भी वहाँ की गई। अभी वह अमलमें नहीं लाई गई। उम्मीद है अब गुरुकुलका काम ठीक चल पड़नेपर वह योजना भी अमलमें लाई जायगी।

जंडियाला गुरुसे विहार कर आप अमृतसर पधारे। अमृतसरमें भी विना ही धूमधामके आपने प्रवेश किया। गुजराँवालेका

श्रीसंघ आपसे विनती करने आया। गुजराँवालेके संघमें कुछ फूट दिखाई दे रही थी, इस लिए आपने फर्मायाः—“ पहले आपसी फूट मिटा लो, फिर सभी एक दिल होकर विनती करने आना।”

लाहोरका संघ भी आपके पास विनती करने आया और उसने निवेदन किया कि,—“ यदि गुजराँवालेका श्रीसंघ आपसी कलह मिटा ले तो आप चौमासा करने गुजराँवालेमें पधार जायँ अन्यथा लाहोरमें चौमासा करें।”

आप अमृतसरसे विहार कर लाहोर पधारे। स्पर्शना वलवान है। आपका सं० १९८१ का अड़तीसवाँ चौमासा लाहोरमें ही हुआ।

× + × ×

चौमासेमें आपके उपदेशसे पंचरंगी तपस्या हुई। तपस्वियोंको पारणा लाला फग्गूशा खजानचीमलने कराया, उन्होंने साधर्मीवात्सल्य भी किया था। पर्युषण करनेके लिए अनेक गाँवोंके भव्य श्रावक लाहोरमें आये थे। पर्युषणका जलसा लाहोरके श्रीसंघने वड़े उत्साहसे किया।

लाहोरमें आत्मानंद जैनमहासभाका सालाना जलसा भी हुआ था।

जव आपका चौमासा वीकानेरमें था तव पंजावके श्रीसंघके पास जीरावासी श्रीयुत वावूराम जैन एम्. ए. की मारफत आपने संगठनका संदेशा पहुँचाया था; जिसको अमलमें लाते-

हुए श्रीसंघ पंजाबने गुजराँवाला शहरमें एक खास मीटिंग कायम की। क्योंकि पं० श्रीसोहनविजयजी महाराज तथा वृद्ध महात्मा स्वामीजी महाराज श्रीसुमतिविजयजीका चौमासा वहाँ था। सर्वानुमतसे "श्रीआत्मानन्द जैन महासभा" श्रीसंघ पंजावके संगठन रूप कायम की गई। इस वर्ष इस सभाका. यह चौथा सालाना जल्सा था।

पालीतानेके मूँडकेके संबंधमें सं० १९८१ के कार्तिक. सुदीमें अहमदावादके सेठ भोगीलाल ताराचंद जौहरीने आपके पास एक पत्र भेजा था, उसका आवश्यक भाग यहाँ दिया जाता है—

"xxx श्वेतांवर जैनोंके लिए, निकट भविष्यमें एक महत्त्वका प्रश्न, उपस्थित होनेवाला है। xxxxxxएजंसीने, बंबई सरकारने, और सेक्रेटरी ऑफ स्टेटने भी अपने विरुद्ध फैसला दिया है। इतिहास लंबा है। हृदयशोकसे भर आता है। मूँडकाकी (अमुक रकम देकर बंद कराया था उसकी) चालीस वरसकी मुद्दत ता. ३१ मार्च सन १९२६ के दिन पूर्ण होती है। (पालीताने के) दरवारके हकमें फैसला मिला है इस लिए वे विशेष रकम माँगेंगे। यह बात स्वाभाविक है। जैनसाधु पादचारी होनेसे, दूरसे आवश्यकताके समय तत्काल ही नहीं आ सकते, इस लिए तीर्थ शिरोमणि, मुकुट समान सिद्धाचलजीके कामकी लागणीसे प्रेरित होकर आप शीघ्र ही इस तरफ पधारनेकी कृपा करें। x x x x x

" इस समय फिरसे कौल क़रार होनेवाले हैं, इसके लिए खास बुद्धिमान, विचारशील नेताओंको मिल कर योजना तैयार करनी चाहिए। मेरी बुद्धिके अनुसार इस काममें आपकी खास आवश्यकता है । आपको विशेष आग्रहके साथ लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । आपके हृदयमें तीर्थका हित ओतप्रोत भरा है, इस लिए कृपा कर मार्गमें आवश्यकतानुसार ही विश्राम ले, यथासाध्य शीघ्र ही इधर पधारें । मेरी यही नम्र प्रार्थना है । × × × × "

लाहोर सरकारकी तरफसे पुरातत्त्वकी खोज करनेवाले श्रीयुत हीरानंदजी शास्त्रीने, फर्नहिल नीलगिरिसे लिखा थाः—" भागमलजीने उवाईसूत्रकी प्रति और त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र पर्व ८, ९ और १० वाँ आपकी आज्ञानुसार भेज दिये हैं । बड़ी ही कृपा है । धन्यवाद करता हूँ । उवाई सूत्र पढ़कर भेजदूँगा ।

मेरा विचार है कुछ समय आपके पास व्यतीत करूँ । जब संभव होगा लिखूँगा । मैं चाहता हूँ जैनधर्मके ग्रंथ पढ़ कर उनको छापूँ और टीका टिप्पणी उनपर लिखूँ, जैसा याकोबी साहब योरपमें करते हैं । देखें कब विचार पूरे होते हैं । यदि इतना दूर न होता तो कुछ न कुछ अबतक लिख देता । कभी कभी कृपापत्र भेजा कीजिए । "

गवर्नमेंट कॉलेज लाहोरके प्रॉफेसर बाबू बनारसीदासजी जैन एम. ए. (ऑफ लंदन) सन् १९२४ में लंदन गये हैं ।

ये बड़े ही सज्जन, मिलनसार और धर्मात्मा सज्जन हैं। विद्वान होते हुए भी उनके हृदयमें अभिमान नहीं है। इन पंक्तियोंके लेखकके साथ वे बड़े ही प्रेमके साथ मिले थे। बंबईके जैन नेताओंने उनका यहाँ अच्छा सत्कार किया था। जिस दिन वे जहाजमें बैठे उस दिन कई नेता उन्हें पहुँचाने गये थे और श्रीफल भेट में देकर उनकी यात्रा सफल होनेके लिए शुभ भावना की थी। उन्होंने पं० महाराज श्रीललित-विजयजीको लिखा है—

"×××× गुरुमहाराजकी (वल्लभ विजयजी महाराज-की) कृपासे अबतक अभक्ष्यको हाथ नहीं लगाया और आशा है नहीं लगाऊँगा। ××××"

आपने चरित्रपूजा रची वह 'वर्द्धमान ज्ञानमंदिर' उदय-पुरके भेट भेजी गई थी। उसके संचालक यति श्रीअनूपचंद-जीने लिखा है—"×××× चरित्रपूजाकी पुस्तक विवेचन-सहित मिली। पढ़ कर बहुत आनंद हुआ। यहाँपर अठाई महोत्सव शुरू हुआ उसमें यह पूजा बड़े आनंदके साथ पढ़ाई गई। (खरतर गच्छीय) कृपाचंद्रजी महाराज व श्रोतागण पूजा सुनके बहुत प्रसन्न हुए। ××××"

लाहोरके चौमासेका संक्षिप्त वर्णन, और आपको आचार्यपद पर स्थापित करनेका एवं आपके द्वारा लाहोरमें की गई प्रतिष्ठाका सविस्तर वर्णन लाहोरकी आत्मानंद जैनसभाने प्रकाशित कराया है उसको हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

लाहोर शहर में
प्रतिष्ठा तथा आचार्य पदवी का समारोह !

नमो विश्वप्रधानाय, विश्वविश्रुतकीर्तये ।
सर्वसम्पन्निधानाय, वर्द्धमानाय वेधसे ॥ १ ॥

प्रारम्भिक निवेदन।

पंजाबकी विख्यात राजधानी इस लाहोर शहरमें जैन-धर्मके प्राचीन जीर्णोद्धृत देवमंदिरकी प्रतिष्ठा और मुनि श्री १०८ वल्लभविजयजी महाराजको बड़े समारोहसे आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करना यह दो काम इतने महत्त्वके हुए हैं कि वर्त्तमान जैन इतिहासमें इनका स्थान एक विशेष गौरव-को लिए हुए होगा । इन दो शुभ कार्योंके निमित्त जैन जनताने जिस श्लाघनीय उत्साहका परिचय दिया है उसका जिकर तो इतिहासके पृष्ठोंमें खास तौर पर करने लायक है । यह कहना कुछ अत्युक्ति न होगी कि आज चार सौ वर्षके बाद इन दो शुभ कार्यों (प्रतिष्ठा तथा आचार्य पदवी) की पुनरावृत्ति करते हुए पंजाबके और खास कर लाहौरके जैनसमाजने जो श्रेय प्राप्त किया है उसकी तुलना यदि असम्भव नहीं तो कठिनतर अवश्य है ! धार्मिक और ऐतिहासिक दोनों ही दृष्टियों से ये बड़े महत्व के हैं । ××××

'तीर्थभूता हि साधवः'

शास्त्रकारों ने साधु महात्माओंको तीर्थस्वरूप लिखा है। तीर्थ उसको कहते हैं जिसके आलम्बनसे मनुष्य अपनी आत्मामें विकास प्राप्त कर सके अर्थात् जिसके जरियेसे आत्माका उद्धार हो सके। तीर्थके शास्त्रकारों ने स्थावर और जंगम ऐसे दो भेद भी किये हैं। स्थावर वे हैं जो सदा एक ही स्थानमें स्थिर रहते हैं जैसे शत्रुञ्जय, रैवताचल और सम्मेत शिखरादि।

जंगम तीर्थ उनको कहते हैं जो चलते फिरते और सदाके लिए कहीं पर स्थिर नहीं रहते, वे जंगम तीर्थ साधु मुनिराज हैं। वे जहाँ कहीं भी जाते हैं वहाँ पर उनके उपदेश द्वारा अनेक जीवोंका उद्धार होता है। बहुत से ऐसे जीव हैं जो कि महात्माओंके सदुपदेशसे प्रबुद्ध हो कर अपनी बिगड़ी हुई जीवनचर्याको सदाके लिये सुधार लेते हैं। बहुतसे लोगों पर इन महापुरुषोंके विशुद्ध जीवनका ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वे उससे प्रभावित होकर आजन्म प्रभावना युक्त कार्योंमें ही सतत लगे रहते हैं। इस लिये शास्त्रकारोंने महात्मा पुरुषों-को तीर्थकी उपमासे अलंकृत किया है।

एक उदाहरण लीजिये। आजसे अनुमान साठ वर्ष पहले पंजाबके जैन समाजकी वह सुदशा नहीं थी जो कि सौभाग्यवश उसे आज प्राप्त है। उस समय वह अपने

असली स्वरूपको बिलकुल ही भूला हुआ था। देवपूजन, देव, गुरु एवं धर्म के यथार्थ स्वरूपसे वह बिलकुल ही वंचित था। परन्तु प्रातःस्मरणीय स्वर्गवासी जैनाचार्य श्रीमद्विजयानन्द सूरि उर्फ आत्मारामजी महाराजने स्वयं प्रबुद्ध हो कर जब उसे प्रबोधित किया तब वह—जैन समाज—समझा कि इससे प्रथम उसने जिस मार्गका अवलंबन किया हुआ था वह वस्तुतः उन्मार्ग था। उसके लिये प्रशस्त मार्ग वही है जिसका निर्देश उक्त महापुरुष कर रहे हैं। अतः उसने अपने उसी प्राचीन प्रशस्त मार्गका सतत अनुसरण किया। इसके प्रमाणमें पंजाबकी इस समय विद्यमान सच्ची धार्मिक जागृति प्रस्तुत है। उसमें इस वक्त देवविमानोंके सदृश देवमंदिर भी विद्यमान हैं, सच्चे साधु मुनिराज भी वहाँ न्यूनाधिक संख्यामें मौजूद हैं और संख्याके अनुरूप सद्बोध प्राप्त श्रावकवर्ग भी है।

तात्पर्य कि महापुरुषोंके उपदेशालम्बनसे मनुष्यके आत्मविकासमें बड़ी भारी इमदाद मिलती है। तदनुसार उक्त स्वर्गवासी गुरु महाराजके बाद पंजाबको यदि किसी ने अपने विशिष्ट उपकारसे आभारी किया हो तो वे मुनि महाराज श्रीवल्लभविजयजी हैं। अनुमान १३ वर्ष के बाद आपश्रीका जबसे फिर पंजाबमें पधारना हुआ तबसे पंजाबके जैन समाजमें कुछ अपूर्व ही जागृति पैदा हो रही है। उसने अपनी सामाजिक त्रुटियोंको बहुत अंशोंमें पूर्ण किया, तथा

अपनेमें होनेवाली शिक्षाकी कमी को अब वह पूर्णरूपसे अनुभव करने लगा है। यदि महाराजश्री अपने पवित्र चरण-कमलोंसे इस भूमिको कुछ समय तक पवित्र करते रहे तो वह दिन बहुत नजदीक है जब कि वह (पंजाबका जैनसमाज) अपनी सामाजिक और धार्मिक शिक्षामें रही हुई अत्यन्त अपूर्णताको पूर्ण करनेमें पूर्णतया समर्थ हो जायगा। एवं लाहौर जैसे विशाल क्षेत्रमें जैन समाजकी अत्यल्प संख्याके होने पर भी इतने बड़े उत्साहपूर्ण समारोहका होना और उसमें पूर्णतया सफलता प्राप्त करना यह सब कुछ उक्त मुनिराज (श्रीवल्लभविजयजी महाराज) के आदर्शजीवन का प्रभाव, प्रशस्तोपदेश और पूर्ण कृपाका ही विशिष्ट फल है ! यह कथन निस्संदेह, अत्युक्ति शून्य और तथ्य पूर्ण है।

जीर्णोद्धार ।

यहाँ पर भगवान सुविधिनाथ स्वामी का एक प्राचीन जैन मंदिर था। उसकी अत्यंन्त जीर्ण दशाको देखकर महाराजश्रीके सदुपदेशसे यहाँ—लाहौर—के श्रीसंघके मनमें उसके पुनरुद्धारकी शुभ भावना पैदा हुई। यद्यपि यहाँ पर अपने जैन समुदायकी संख्या बहुत कम और उसमें भी धनाढ्य कोइ नहीं; प्रायः सभी मध्यस्थितिके लोग हैं तथापि इस धार्मिक काममें लोगोंने इतना उत्साह दिखलाया कि थोड़े ही दिनोंमें देवविमानके समान एक विशाल शिखरबद्ध मंदिर तैयार कर दिया। स्थानकी संकीर्णता होने पर भी उसकी बना-

वट इतनी सुन्दर और चित्ताकर्षक है कि दर्शकोंका दर्शन करते हुए जी नहीं भरता। सचमुच ही यह देवमंदिर लाहौरके श्रीसंघकी पुण्यश्रीका एक उज्ज्वल आदर्श है।

देवप्रतिमाओंका लाना।

देवमंदिरके तैयार होजाने पर अब यहाँके श्रीसंघको उसकी प्रतिष्ठा और उसमें सद्यः भगवान वीतरागदेवकी प्रतिमा स्थापन करने का खयाल हुआ। तदनुसार वे इस शुभ कार्यके लिए प्रयास करने लगे। उस समय सादड़ी (मारवाड) की अखिल भारतवर्षीय जैन श्वेताम्बर कॉनफ्रन्स हो चुकनेके बाद महाराज श्रीवल्लभविजयजी खुड़ाला (मारवाड़) में विराजमान थे। सादड़ीके बादका द्वितीय चतुर्मास आपने वहीं पर किया था। यहाँसे लाला प्रभदयाल और लाला माणिकचन्दजी उक्त कार्यकी सम्पन्नताके लिये आपश्रीके पास खुड़ालेमें पहुँचे और पहुँचते ही अपना भाव आपको कह सुनाया। महाराजश्रीने वहाँ (खुड़ाला–सादड़ी) के पंचोंकी सम्मति लेकर श्रीवरकाणातीर्थराजसे वहाँके मैनेजर मूता सरदारमलजीकी मारफत इनको तीन मूर्तियाँ दिलवाईं, जिनमें मूलनायक भगवान श्रीशान्तिनाथ थे, जो कि लाहौरके उक्त मंदिरमें इस समय नीचेकी वेदीमें प्रतिष्ठित किये गये हैं और ऊपरकी वेदीमें श्रीसुविधिनाथ भगवानकी वही अति प्राचीन मूर्ति विराजमान की गई है, जो कि प्रथम इस मंदिरमें प्रतिष्ठित थी।

लाहौरका चतुर्मास।

प्रभु प्रतिमाओंके लानेका कार्य परिपूर्ण हो जानेके अनन्तर अब यहाँके श्रीसंघके मनमें उनको प्रतिष्ठित करनेकी विशुद्ध भावना जागृत हुई; परन्तु इसकी पूर्तिका होना अधिकांश महाराजश्रीके हाथमें था। तदर्थ सबसे प्रथम श्रीसंघने आपश्रीकी सेवामें अपनी भावनाको पहुँचाया। उस समय महाराजजी साहिब जंडियालागुरुमें विराजमान थे। अमृतसरमें लाहौरके श्रीसंघने महाराजश्रीको बड़े ही विनीत भावसे लाहौर पधारनेकी प्रार्थना की और अपना प्रतिष्ठा सम्बन्धी इरादा आपसे स्पष्टतया अर्ज किया; परंतु आपने अपना भाव लाहौर होते हुए सीधे गुजराँवाला पहुँचने का बतलाया। तदनुसार आप लाहोरमें पधारे और ज्येष्ठ शुदी अष्टमीका स्वर्गवासी गुरु महाराजका जयन्ती महोत्सव आपने लाहोरमें ही किया।

लाहोरमें कुछ दिन विराजने और चतुर्मासके अति निकट होने पर भी पंजाबकी जैन जनताको तो यही दृढ विश्वास था कि महाराजश्रीका यह चतुर्मास निस्संदेह गुजराँवालेमें ही होगा और स्वयं महाराजजी साहिबका विचार भी पूर्णतया स्वर्गवासी गुरुमहाराजके चरणोंमें ही चतुर्मास करने का था [इसी लिये स्वामीजी आदि कुछ साधुओंने विहार भी कर दिया था जिसके लिये स्वामीजीका चतुर्मास वहीं पर हुआ।] परन्तु इस बलवती क्षेत्रस्पर्शना और लाहोर

श्रीसंघके पुण्यातिरेकने इस कदर जोर मारा कि आपश्रीका चतुर्मास लाहौरमें ही हुआ। इससे प्रथम आप श्रीका लाहोरमें चतुर्मास नहीं हुआ था।

प्रतिष्ठा की तैयारी।

महाराज श्रीवल्लभविजयजीका चतुर्मास लाहौरमें होना निश्चित हुआ देख लाहौरनिवासियोंके हर्ष और उत्साहका पारावार न रहा। उन्होंने तत्काल ही महाराजश्रीकी सेवामें उपस्थित होकर, प्रतिष्ठाके मुहूर्तका निश्चय करने और तदर्थ आमंत्रणपत्रिका प्रकाशित कराकर वितीर्ण करनेकी शुभ अनुमति माँगी। तदनुसार प्रतिष्ठाका शुभ मुहूर्त विक्रम सं० १९८१ मार्गशीर्ष सुदी पञ्चमी सोमवारका स्थिर हुआ। मुहूर्तके निश्चित हो जाने पर अब धीरे २ प्रतिष्ठा सम्बन्धी कार्यकी तैयारी होने लगी। समय नजदीक आने पर पंजाबके हर एक शहर, कसबा और ग्राममें आमंत्रण पत्रिकाएँ भेजी गईं तथा देशान्तरस्थ सद्गृहस्थोंको भी आमंत्रण भेजा गया।

प्रतिष्ठा सम्बन्धी प्रबंधके लिये एक प्रबन्धकारिणीसमिति बनाई गई उसने प्रतिष्ठा सम्बन्धी इस महान कार्य को बड़ी ही योग्यता से किया। भक्तनिवास—जहाँ पर महाराजजी साहिब विराजमान थे—के नज़दीक राजा ध्यानसिंह की हवेली में एक बड़ा ही विशाल और सौंदर्यपूर्ण मण्डप बनाया गया, उस में महाराज श्रीवल्लभविजयजी पं० श्रीसोहनविज-

यजी तथा बाहिर से आनेवाले अन्यान्य विद्वानों के प्रभावशाली व्याख्यान तथा भजन मंडलियों के मनोहर भजन हुआ करते थे।

इसी शोभनीय विशाल मंडप में प्रातः स्मरणीय महाराज श्रीवल्लभविजयजी तथा पंन्यास श्रीसोहनविजयजी को समस्त चतुर्विध संघने एक मन होकर क्रमशः आचार्य और उपाध्याय पदवी से समलंकृत करके अपनी कृतज्ञता का परिचय दिया।

आमंत्रणके पहुँचते ही पंजाब के सभी साधर्मी बन्धुओं ने इस शुभ कार्य में हमारी हरएक प्रकार से सहायता की। अंबाला, होशियारपूर, गुजराँवाला, नारोवाल, मालेरकोटला, लुधियाना और जंडयाला आदि जिन २ शहरों में सोना चांदी के रथ पालकी, आसे, चामर और चाँदनी आदि बहुमूल्य सामान लेने के लिये यहाँ से जो आदमी गये उनको वहाँ २ के श्रीसंघ ने और भी प्रोत्साहित किया तदर्थ हम उनके कृतज्ञ हैं।

मार्गशीर्ष शु० द्वितीया शुक्रवार से पंचमी सोमवार तक का प्रोग्राम था। इस अवसर में अपने दिलों में पूर्ण उत्साह को लिये हुए लोग अधिकाधिक संख्या में आने लगे। बाहर से आने वाले बंधुओं की सुविधा के लिये स्टेशन पर स्वयंसेवक मौजूद रहते थे। पंजाब के अलावा काठियावाड़, गुजरात, मारवाड़, और बंगाल आदि प्रान्तों से भी कई एक सम्भावित सद्गृहस्थ इस अवसर पर पधारे थे। उत्सव में

पधारे कुल स्त्री पुरुषों की संख्या अनुमान चार से पाँच सहस्र की थी।

व्याख्यान—नवीन मुद्रित प्रोग्राम के अनुसार, शुक्रवार की रात उक्त मंडप में, न्यायाचार्य पंडित सुखलालजी संघवी और पंडित हंसराजजी शास्त्री के, सामाजिक विषय पर बड़े ही रोचक व्याख्यान हुए। शनिवार को सवेरे ८ वजे के करीव महाराज श्रीवल्लभविजयजी का एक वड़ा ही सार गर्भित धर्मोपदेश हुआ। दो पहर के दो वजे पंन्यासजी श्रीसोहन-विजयजी महाराज ने वड़ी ओजस्वीनी भाषा में जैन समाज के सामयिक कर्त्तव्य को सूचित किया। रात्रि को पंडित हंसराजजी का 'वर्त्तमान समय में जैन समाज को किसमार्ग का अनुसरण करना चाहिये' इस विषय पर एक छोटा सा, लेकीन भावपूर्ण, भाषण हुआ। अनन्तर वोध-पूर्ण कई एक भजनों के वाद सभा विसर्जित हुई।

सवारी—रविवार का दिन वड़ा ही उत्साहपूर्ण था। आज के दिन भगवान् की सवारी वड़ी ही धूमधाम से निकलनेवाली थी। सोने चांदी के रथ और पालकियाँ सुसज्जित हो रहे थे। महेन्द्र ध्वजा फहरा रही थी। तात्पर्य्य यह कि सवारी का सभी सामान तैयारी के पूर्ण यौवन में था। प्रातःकाल महाराज श्री का एक वड़ा ही पुरअसर उपदेश हुआ। इसके बाद रथ आदि की वोलियाँ हुईं अनन्तर लोग भोजन के लिये भोजनशाला में चले गये।

ठीक बारह बजे के करीब बड़ी धूमधाम से भगवान् की सवारी निकाली गई और शहर के नियत स्थानों से होती हुई करीबन आठ बजे वापिस लौटी। सवारी के साथ जनता की भीड़ बेशुमार थी, जिधर देखो उधर ही स्त्रीपुरुषों का समूह नज़र आता था।

सवारी का क्रम—सब के आगे नफीरियों का मनोहर बाजा था। उसके पीछे पुतलियों वाली महेन्द्र ध्वजा फरकाती हुई चल रही थी। उसके बाद एक गतका बाज़ी का कर्त्तव्य दिखाती हुई मंडली जारही थी। उसके पीछे मोटरों पर सजी हुई सोना चाँदी की पालकियाँ और रथों के साथ चलती हुई एक २ भजन मंडली अपने मनोहर भजनों द्वारा दर्शक जनता को मुग्ध कर रही थी और उनके साथ २ चलनेवाले बेंड भी अपनी नवीन वादन कला का खूब ही परिचय देरहे थे। सवारी की लम्बाई तकरीबन आधे माइल के थी। सवारी के दरम्यान में एक सुन्दर मोटर पर बड़ी सजधज के साथ विराजमान की हुई स्वर्गवासी गुरुमहाराज (श्री आत्मारामजी) की ऑइल पेंटिंग छवी थी वह दर्शकों के दिलों पर अपूर्व प्रभाव डाल रही थी। सबके पीछे भगवान् का जो गङ्गा जमनी (सोने चाँदी का मिश्रित) रथ था उसके आगे ओसिया की सुप्रसिद्ध भजन मंडली अपना अद्भुत नाटकीय कर्तव्य दिखा रही थी तथा इस रथ के आगे लाहौर का सुप्रसिद्ध जो बेंड बज रहा था उसका मधुर नाद तो अभी तक कानों में

गूँज रहा है। अमृतसर, जंडयाला, होशयारपुर, पट्टी, कसूर, रोपड़ और अम्बालादि शहरों की भजन मंडलियों ने अपने उत्तमोत्तम भजनों द्वारा जनता को खूब ही आनन्दित किया। तथा ओसिया की भजन मंडली का अभिनय तो दर्शकों के लिये बिलकुल ही नई चीज़ थी। इसलिये जैन समाज की उसके साथ इतनी भीड़ थी कि कहीं २ पर तो उसके अभिनय के लिये स्थान बनाने में ही बड़ा हैरान होना पड़ा ताथा। इस भजन मंडली के दर्शन हम को बीकानेर निवासी श्रीमान् सेठ सुमेरमलजी सुराणा और उदयचन्दजी रामपुरिया की मेहरबानी से हुए तदर्थ हम उनके आभारी हैं।

प्रतिष्ठा—सोमवार का दिन बड़ा ही सौम्य और मंगलजनक था। उसरोज भगवान् श्रीशांतिनाथ को गद्दीपर विराजमान करने और परमपूज्य महाराज श्री वल्लभविजयजी को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करने की शुभ क्रिया का सम्पादन बड़े ही समारोह से किया गया। लाहौर शहर में ये दो कार्य ऐसे हुए हैं जो कि वर्तमान जैन इतिहास में निस्सन्देह स्वर्णाक्षरोंसे अंकित करने योग्य हैं।

आवश्यक उपयोगी क्रिया हो चुकने के बाद ठीक नौ बजकर पैंतीस मिनिट पर भगवान् बड़े ही उत्साह और समारोह के साथ गद्दी पर विराजमान किये गये। भगवानको गद्दीपर विराजमान करने और रथयात्रा की बोलियोंके तथा भेटके कुल मिलाकर १२५४० रुपयेकी मंदिरजी में आमदनी हुई थी।

यह प्रतिष्ठा जैनाचार्य श्रीमद्विजयवल्लभ सूरि महाराज के पवित्र करकमलों से हुई। यह संघ के लिए उत्तरोत्तर पूर्णतया कल्याणकारी, मंगलकारी और अभ्युदयकारी होगी ऐसा हमारा (श्रीसंघ का) दृढ एवं अटल विश्वास है। शासनदेव से हमारी वार २ प्रार्थना है कि वे हमारे इस विश्वास में अणु मात्र भी फर्क न आने देवें।

आचार्य पदवी प्रदान

आचार्य पदवी को इससे बढ़कर और सौभाग्य क्या हो सकता है कि वह बहुत समय से जिस अनुरूप वर की प्राप्ति के लिये घोर तपस्या कर रही थी वह उसे मिल गया। उसकी—आचाय पदवी की—दीर्घ कालीन तपश्चर्या ने अपना फल दिखाया तथा समस्त संघ के विनीताग्रह और वड़ों की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए आचार्य पदवी को विभूपित करने में महाराज श्रीवल्लभविजयजी ने भी जो उदारता दिखाई है तदर्थ आप श्री को अनेकानेक साधुवाद ! आपकी आचार्य पदवी का संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है।

इन्कार – तपोगण गगन दिनमणि श्रीमद्विजयानन्द सूरि आत्मारामजी महाराज के स्वर्गवास होने के वाद, पंजाव श्री संघ की इच्छा, पूज्यपाद महाराज श्रीवल्लभविजयजी को ही, स्वर्गवासी गुरुमहाराज की इच्छा के अनुसार, उनके पट्ट पर विभूपित करने की थी; परन्तु महाराजश्रीने इस पर अपनी सर्वथा अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा कि,–मेरे सिर पर अभी

कई वड़े वैठे हैं, जो कि मेरे से कई गुणा अधिक इस पदवी के लिये योग्य हैं। अतः श्रीसंघ को उन्हीं महात्माओं में से किसी एक को इस पद पर प्रतिष्ठित करना चाहिये।

इस विचार विमर्श में महाराज श्रीकमलविजयजी आचार्य बनाये गये जो कि अभी विद्यमान हैं। परन्तु बहुत से वर्षों के बाद पंजाब श्रीसंघ अपने दीर्घ अनुभव द्वारा किसी और ही नतीजे पर पहुँचा। उस को अपनी आशालता सर्वथा मुर्झाई हुई प्रतीत होने लगी। वह समझने लगा कि अब पंजाव की डगमगाती हुई नौका का कर्णधार सिवाय महाराज श्रीवल्लभविजयजी के दूसरा नहीं हो सकता। इस विशाल क्षेत्र की अवनति को देखकर, सिवाय इनके और किसी के दिल में थोड़ा बहुत भी दर्द होता हो, ऐसा समझना भूल है। अब तो उसको यह पूर्ण विश्वास हो गया कि, जिस महापुरुष ने, पंजाव की इस वीर भूमि में, वीर निर्दिष्ट धर्म बीज को वपन करके अंकुरित और पल्लवित किया, उस महापुरुष का अंगुली निर्देश, जिस आदर्श गुरुभक्त पर था (वही वल्लभविजयजी) इस उछरते हुए धर्म पौदे के आलवाल—थाले—को जलसे परिपूर्ण करेगा और उसको, अपनी देखरेखमें रख, उसकी सेवाकर, फलायगा फुलायगा।

इसी उद्देश्य से पंजावके श्रीसंघने अनेक वार महाराज श्रीवल्लभविजयजी महाराजकी सेवामें, पंजाव के जैनशासन की बागडोर अपने हाथ में लेने की विनीत प्रार्थनाएँ कीं।

जिनमें सादड़ी (मारवाड़) की अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर जैन कानफ्रन्स के अधिवेशन और महाराजश्रीके होशयारपुर के प्रवेशोत्सव पर, पंजाब के समग्र जैन समाज की तरफ से की गई संमिलित प्रार्थनाएँ खास तौर पर उल्लेख करने योग्य हैं।

इसी प्रकार कुछ समय वीत जाने पर पंजाव का सोया हुआ भाग जागा। गुरुभक्तिके आदर्श की जीती जागती मूर्ति, अपने चरण कमलों द्वारा बम्बई, गुजरात, काठियावाड़ मेवाड़, मारवाड़ और यू० पी० आदि देशों को पवित्र करती हुई १३–१४ वर्षों के वाद फिर पंजाव में पधारी। पधारते ही सबसे पहले उसका ध्यान समाज की विशृंखलता पर पहुँचा। उससे होने वाली भयंकर हानि पर विचार करते हुए समाज में संगठन पैदा करने की उसे नितान्त आवश्यकता प्रतीत हुई। तदर्थ श्रीआत्मानन्द जैन महासभा नाम की एक महती संस्था कायम की गई। वह आजतक कई सामाजिक सुधारोंमें अपनी सफलता का परिचय देचुकी है।

होशियारपुरका प्रवेश—विक्रम सम्वत् १९७८ फाल्गुन सुदी पञ्चमी को महाराज श्री का प्रथम प्रवेश होशियारपुर में हुआ। आप श्री का प्रवेश तो प्रथम अम्बाले में होना था परन्तु स्वर्गवासी लाला गुलावराय गुज्जरमल की फर्म के मालिक लाला दौलतराम मुन्निलाल जी आदि श्रीसंघ होशियारपुर के विशेष आग्रह और स्थानान्तरीय श्रीसंघ का उस-

में अनुमोदन होने से अम्वाले की वजाय आपका प्रथम प्रवेश होशियारपुर में हुआ। आपके प्रवेश के समय श्रीसंघ पंजाव ने जैसा उत्साह दिखाया वैसा आपकी इस वक्त की आचार्य पदवी से पहले कभी नहीं देखा गया था। उसी उत्साह में विद्यालय के लिए एक लाख के करीव चंदा जमा हुआ और तीन लाख के करीव लिखा गया था। उस की व्यवस्था अभी तक ज़ेर तजवीज़ है। उस समय महाराज श्री की सेवा में समस्त श्रीसंघ की तरफ से एक मानपत्र पेश किया गया था और शासन की वागडोर अपने हाथ में लेने की वड़े विनीत भाव से प्रार्थना की गई थी। इस से प्रथम सादड़ी (मारवाड़) की जैन कानफ्रन्स के समय भी आप से आचार्य पदवी के लिये अनुरोध किया गया था। परन्तु आपने इस वक्त भी श्रीसंघ को पूर्ववत् ही निराश किया। अव लाहौर की प्रतिष्ठा के समय फिर श्रीसंघ ने आपकी सेवा में उपस्थित हो कर उसी प्रार्थना को दोहराया। मगर आपको सम्मत होते न देख कर संघ ने, साधु शिरोमणि प्रवर्तक श्री कान्तिविजय जी महाराज, शान्तमूर्ति मुनिप्रवर श्रीहंसविजय जी महाराज, आदर्श गुरुभक्त पंन्यास श्री सम्पद्विजय जी महाराज और परम वृद्ध साधु स्वभाव मुनि श्रीसुमतिविजयजी महाराज की पवित्र सेवा में, अपनी उक्त शुभेच्छा प्रदर्शित करते हुए प्रार्थना की कि, आप इस विषय में श्रीसंघ पंजाव की इमदाद करें। जिससे कि वह शीघ्र ही अपने शुभ मनोरथ में सफलता प्राप्त

कर सके। श्रीसंघ पंजाब को इस से बढ़कर और कोई खुशी नहीं हो सकती कि, उक्त मुनि महाराजों ने श्रीसंघ की उक्त प्रार्थना का आशा से बढ़कर स्वागत किया। तदर्थ श्रीसंघ आपका सदा के लिये कृतज्ञ रहेगा। अब तो संघ के पाओं में और भी बल आगया स्वामी जी महाराज तो यहाँ मौजूद ही थे, प्रवर्तक जी महाराज और श्रीहंसविजय जी आदि के तार पहुँच चुके थे इस लिए अब महाराज श्रीको इन्कार की गुंजाइश न रही। संघके मुखियों ने आपश्रीकी सेवा में, उपस्थित होकर, बड़े नम्र शब्दोंमें प्रार्थना की "श्रीसंघ पंजाबकी चिरन्तन आशालता को अब आप श्री अवश्यं पल्लवित करें। स्वर्गवासी गुरु महाराज के बाद पंजाब के लिए आपश्री ने जो २ कष्ट सहन किये हैं उनमेंसे हम एक का भी बदला देने के लायक नहीं। आप हमारे विनय या अविनय पर कुछ भी ध्यान न देते हुए सिर्फ गुरु महाराज के "मेरे बाद तुम्हारी सार संभाल वल्लभ लेगा" इन वचनों का खयाल करके इस भार को अपने कंधों पर उठाने की कृपा करें।" समाज नेताओं के इन वचनों को सुनकर आप कुछ समय तो मौन रहे, फिर बोलेः—"परन्तु मेरा वहां के साथ व्यवहार तो वैसा ही रहेगा जैसा कि प्रथम था और अभी है।" यह सुनकर संघ की खुशी का पार न रहा। बच्चे २ के दिल में उत्साह और हर्ष वाल्लियों उछलने लगा। बाहर से आये हुए लोगों के ठहरने के स्थानों में सूचना करा दी गई कि कल

प्रातःकाल ही ६ बजे पहले सब लोग मंडप में हाज़िर हो जावें, महाराज श्री को 'आचार्य पद' पर प्रतिष्ठित किया जायगा! सच है—

भागती फिरती थी दुनिया, जब तलब करते थे हम।
जब से नफरत हमने की, वह बेकरार आने को है॥
(स्वामी रामतीर्थ)

आचार्य पद प्रतिष्ठा—सोमवार को प्रातःकाल ६ बजे से पहले ही स्त्री पुरुषों से सारा पंडाल खचाखच भर गया। मध्य में चाँदी का समवसरण स्थापित था जिसमें चारों तरफ विराजमान प्रभुमूर्तियाँ दर्शकों को, भावना वृद्धि द्वारा, कृतार्थ कर रही थीं। इस समय मंडप की शोभा कुछ अपूर्व ही थी जिस समय महाराज श्रीवल्लभविजयजी वयोवृद्ध स्वामी श्री सुमतिविजयजी महाराजको साथ लिए हुए अपने शिष्य परिवार सहित मंडप में पधारे, उस समय उपस्थित जनता ने "भगवान महावीर स्वामी, स्वर्गवासी गुरु महाराज और आप श्रीकी जय" के बुलन्द नारों से आपका बड़े ही हर्ष के साथ स्वागत किया। इस समय लोगों के दिलों में जो अपूर्व उत्साह दिखाई देता था उसका वर्णन इस क्षुद्र लेखनी के सामर्थ्य से बाहिर है। हमारा यह विश्वास है कि यदि एक सप्ताह प्रथम आपकी आचाय पदवी सम्बन्धी विज्ञप्ति प्रकाशित हो जाती तो पंजाब का तो एक भी स्त्री पुरुष उस रोज़ (आचार्य पदवी के रोज, घर में न रहता। सब के सब लाहौर में पहुँचते जा



पदवीप्रदान.

पृ. ४४९.

हाँतक वनता अन्य प्रान्तों से भी एक बड़ी संख्या में लोग उपस्थित होते। हमारे पास आज तक उपालम्भ के पत्र और तार आही रहे हैं; मगर लाचार, हमें स्वीकृति ही ऐन वक्त पर मिली, जिसके लिए सखेद हम उन अनुपस्थित सज्जनों से क्षमा माँगते हैं जो कि इस शुभ अवसर की प्राप्ति से वंचित रहे और इस शुभ अवसर की राह बहुत दिनों से देख रहे थे।

चादर की बोली—सब से प्रथम महाराज श्री पर जो चादर ओढाने की थी उसकी बोली स्वनाम धन्य स्वर्गवासी लाला हीरालाल जीके सुपुत्र लाला माणिकचन्द जी मुन्हाणी लाहौर वालों ने ११०१ रुपये में ली, और उपाध्याय पदवी के लिये ओढाई जाने वाली चादर की बोली को ७०१ रुपये में स्वनाम धन्य स्वर्गवासी लाला ठाकुरदास जी खानगा डोगरां वाले के सुपुत्र श्रीमान् लाला प्रभदयाल जी दुग्गड लाहौर वालों ने लिया।

मानपत्र प्रदान—चादरों की बोली हो चुकने के बाद समस्त श्री संघकी तरफ से आपश्रीको एक मानपत्र दिया गया जिसको कि उपस्थित चतुर्विध संघ के समक्ष पंडित हंसराजजी ने पढ़कर सुनाया वह अक्षरशः नीचे दिया जाता है:—

नमः सत्योपदेशाय सर्वभूतहितैषिणे।
वीतदोषाय वीराय विजयानन्दसूरये॥

पूज्यपाद श्रीवल्लभविजयजी महाराज की पवित्र सेवा में।

श्रीमन्तः!

हम समग्र पञ्जाब के जुदे २ शहरों, कसवों, और ग्रामों के निवासी जैनश्वेताम्बर मूर्तिपूजक लोग आज इस पञ्जाब की राजधानी लाहौर शहर में एकत्र होकर समग्र पञ्जाब के जैनश्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ की हैसियत से आपश्रीको, स्वर्गवासी जैनाचार्य न्यायाम्भोनिधि श्रीमद्विजयानन्द सूरि उर्फ आत्माराम जी महाराज के पट्टपर आचार्यपद से विजयवल्लभ सूरि इस नाम के साथ प्रतिष्ठित करते हैं।

योग्यता

आपकी आयु इस वक्त ५४ सालकी है। दीक्षा लिये आपको आज ३७ वर्ष हुए। आप बाल ब्रह्मचारी हैं। आपका चरित्र निःसन्देह निरवद्य और पवित्रतम रहा है। ज्ञान की दृष्टिसे भी आपका स्थान बहुत ऊँचा है। स्वर्गवासी गुरु महाराज के पास से विद्या और अनुभव प्राप्त करने का आपको अच्छा अवसर मिला, आपने भक्तिपूर्वक गुरुचरणों में रहकर उस अवसर से लाभ भी पूरा उठाया। आपकी विनीतता, बुद्धिमत्ता और समय सूचक चातुरी से आकर्षित होकर गुरु महाराजने भी अपने सद्गुणों का मुख्य भाजन आपही को बनाया।

सेवा

विक्रम सम्वत् १९५३ में महाराज जी साहिब का जब स्वर्गवास हुआ तबसे पञ्जाब को सम्भालने का सारा भार आपके ऊपर आया, आपने हम पञ्जाब निवासियों के धार्मिक स्वत्वों का संरक्षण करते हुए समस्त जैन समाज की भी अमूल्य सेवा करने में कुछ बाकी नहीं रक्खा। यद्यपि आपकी जन्मूमि गुजरात देश है तथापि आपका अधिकतर जीवन पञ्जाव में ही बीता। आप जब गुजरात में गये तो वहाँ समय देख कर सामयिक शिक्षाकी ओर सबका ध्यान खींचा। जहाँ पर भी आप गये वहाँपर विद्याभिवृद्धि और धार्मिक शक्ति बढ़ाने की दृष्टि से ही आपने प्रयत्न किया। उसके फल स्वरूप श्री महावीर जैन विद्यालय आज बम्बई में मौजूद है। जहां रहकर हरसाल अनेक विद्यार्थी विद्याकी भिन्न २ शाखाओंमें उत्तीर्ण होते हुए धार्मिक शिक्षा भी प्राप्त करते हैं। यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं कि उक्त विद्यालय जैसी दूसरी संस्था जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज में कहीं भी नहीं एवं पालनपुरका एक बोर्डिंग भी आपके शुभ प्रयत्न की साक्षी देरहा है, फिर मारवाड़ जैसे विकट प्रदेश में भी आपने विद्या के लिये अथक परिश्रम किया।

आप काठियावाड़ आदिमें १३ वर्ष तक भ्रमण करके हमारे सौभाग्यसे फिर पंजाब में पधारे। आप जब से इधर पधारे

है तबसे हम लोगोंकी धार्मिक और समाजिक उन्नति के लिये निरंतर प्रयास कर रहे हैं तदर्थ हम आपके कृतज्ञ एवं ऋणी हैं।

सम्मति

यद्यपि अमली तौर से आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करनेका सौभाग्य हम को आज ही प्राप्त होता है; परन्तु हमारे हृदय पट पर तो आप उसी दिन से आचार्यरूप से विराजित हैं जिस दिन कि स्वर्गवासी गुरुमहाराजने पञ्जाब श्रीसंघ के मुखियों से यह कहा था कि पंजाब का भार हमारे बाद में वल्लभ उठायगा उन मुखियों में से स्वनाम धन्य लाला गंगा-रामजी जैसे आज भी कई एक वृद्ध पुरुष यहां पर मौजूद हैं जो गुरुमहाराज की सम्मति को प्रत्यक्ष रूप से कार्य में परिणत होते देख अपने को कृतकृत्य मान रहे हैं।

अनिच्छा और उदारता

गुरु महाराज के स्वर्गगमन के बाद पंजाब के श्रीसंघ ने आपको ही उनके पद पर प्रतिष्ठित करनेका निश्चय किया लेकिन आपने इस पर अपनी सर्वथा अनिच्छा प्रकट करते हुए यह उदारता भी दिखाई कि मुझ से जो बड़े इस वक्त मौजूद हैं उनमें से ही किसी को इस पद पर नियुक्त किया जावे। तदनुसार श्री कमलविजयजी महाराज आचार्य बनाये गये जो कि अभी विद्यमान् हैं। यद्यपि आचार्य श्री कमलविजय सूरि जी गुण और चारित्र की दृष्टि से सारे जैन समाज में

संमानित हैं तथापि वृद्धावस्था के कारण विहार की अशक्ति, गुजरात और पंजाब का वृहदन्तर इन दो कारणों से पंजाब का खास बोझ उठाने में सर्वथा असमर्थ हैं।

प्रसंग और स्थान

आपका वयःपर्याय, दीक्षापर्याय और ज्ञानपर्याय ये तीन तो यथेष्ट हैं ही लेकिन आपकी धर्म विद्या और समाज सेवा भी किसी अंश में कम नहीं, इसी लिये इस शुभ अवसर पर आपश्री को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करनेका हमने संमिलित रूप से निश्चय किया है; क्योंकि इस पूर्ण उत्तरदायित्व पद के योग्य इस समय हम आप ही को पाते हैं।

आज तकरीबन् ४०० वर्ष के बाद इस लाहौर शहरमें फिर मंदिर प्रतिष्ठाका सुअवसर प्राप्त होता है तथा इसी शहरमें श्रीजिनसिंह और भानुचन्द्र क्रमशः आचार्य और उपाध्याय पदवी से विभूषित हुए थे। ऐसे ऐतिहासिक स्थान में आज हम सब लोग उन्हीं दो कामों [प्रतिष्ठ और आचार्यपद] की पुनरावृत्ति करने का सौभाग्य हासिल कर रहे हैं यह कुछ कम हर्ष की बात नहीं।

आज यहां पर केवल पंजाब का श्रीसंघ ही उपस्थित नहीं बल्कि काठियावाड़ गुजरात और मारवाड़ के संभावित बड़े २ गृहस्थ भी उपस्थित हैं। जिनमें दानवीर सेठ मोतीलाल मूलजी बम्बई–राधनपुर। सेठ गोविन्दजी वेरावल–(काठियावाड़)

धर्मप्रिय सेठ सुमेरमल जी सुराणा बीकानेर और सेठ पूंजलाल सातभाई वगैरह (अहमदाबाद) आदि सद्गृहस्थों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।

हम को यह कहते हुए और भी आनन्द होता है कि हमारे इस शुभ इरादे—आचार्यपद देने—को मुनि श्रीसुमतिविजयजी, साधु शिरोमणि प्रवर्तक श्री कांतिविजय जी और शान्तमूर्ति मुनि प्रवर श्री हंस विजयजी महाराज ने भी अपनी समुचित अनुमति द्वारा अपनाकर परिपुष्ट किया है । अतः हमारी आपके चरणों में बड़े विनीत भावसे प्रार्थना है कि आप इस आचार्य पदको सुशोभित करें ।

आपके हाथों से देशकालोचित प्रभावना जनक अनेक कार्य हों और शासन की विजयपताका उत्तरोत्तर अधिक फहरावे यही हमारी शासनदेव से बार २ प्रार्थना है ।

विनीत—

पंचनदीय, जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक

वीर सं० २४५१. आत्म० सं० २९.
विक्रम सं० १९८१ मार्गशीर्ष शु० ५ चन्द्रवार.
स्थान—लाहौर.

समस्त श्रीसंघ.

इस मान पत्रको पढ़ चुने के बाद उपस्थित चतुर्विध संघ को सम्बोधित करते हुए पंडित जी ने कहा कि,—“ इस समय संक्षेप से दो वातें आप से मुझे जरूर निवेदन करनी हैं ।

प्रथम-जो चादर इस वक्त श्रीसंघ की तरफ से महाराज श्री पर ओढाई जाने वाली है वह कपड़े के लिहाज़ से तो अत्यन्त विशुद्ध एवं पवित्रतम है ही; परन्तु इस चादर में एक और विशेषता है, इसका सूत मेरे पूज्य पितृकल्प पंडित हीरालाल जी शर्मा ने अपने हाथ से काता है और इस पर सैकड़ोंही नहीं बल्कि हज़ारों ही "उपसग्गहर" तथा 'नव स्मरण' के पाठ हुए हैं (हर्षध्वनि) द्वितीय-जिस समय महाराज श्री की दीक्षा राधनपुर में हुई थी उस समय हमारे, जैन समाज के नेता दानवीर सेठ मोतीलाल मूलजी वहाँ पर मौजूद थे, उस वक्त दीक्षा का सब प्रवन्ध आप के हाथ से हुआ था और आज जब कि आप श्री को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया जाता है तब भी सेठ साहिब यहाँ पर आप लोगों के समक्ष विद्यमान हैं। इससे इनकी पुण्य श्री के अतिरेक का अन्दाजा आप लोग बखूबी लगा सकते हैं।"*

महाराजश्रीके कीमती वचन—पंडित जी के बोल चुकने के बाद महाराज श्री उठे और आप ने फरमायाः—

* बडे दुःखसे कहना पडता है कि धर्मपरायण दानवीर सेठ मोतीलाल मूलजी इस वक्त संसार में नहीं हैं। लाहौरसे आते ही कुछ दिन बाद बम्बई में उनका देहान्त हो गया। ऐसे उदारचेता धर्मात्मा पुरुष का जैन समाजमें से सदा के लिये विछुड जाना बडे ही दुःख की बात है। पंजाब में आपका यह प्रथम आगमन सदा और सबके लिये अंतिम हो गया। समस्त भारतवर्षके जैन समाजको आपके विनयोगका दुःख है।

" उपस्थित चतुर्विध संघ मुझे जिस गुरुतर पद पर प्रतिष्ठित कर रहा है उसकी जिम्मेदारी को मैं जानता हूँ। उस पद के अनुरूप मेरे में योग्यता कितनी है इसका भी मुझे पूरा ख्याल है। मैं यह भी अच्छी तरह से जानता हूँ कि मेरे से वयोवृद्ध, दीक्षावृद्ध और ज्ञानवृद्ध, मेरे देश के मेरे शहर के मेरे परम उपकारी-जिनका उपकार मेरी नस २ में समाया हुआ है—प्रवर्तक श्रीकान्तिविजय जी महाराज, शान्तमूर्ति श्री हंसविजय जी महाराज, तथा अनन्य गुरु भक्त पंन्यास श्री सम्पद्विजय जी महाराज और मेरे पास में विराजमान परम वृद्ध स्वामी श्रीसुमतिविजयजी महाराज मेरे सिरताज मुनिराज मेरे सिर पर अभी विद्यमान हैं; तथापि श्रीसंघ का विशेष आग्रह और उक्त महापुरुषों का अनुरोध एवं विशिष्ट कृपा तथा विशेष कर स्वर्गवासी गुरु महाराज के वचन का पालन इस गुरुतर भार को उठाने के लिये मुझे विवश कर रहा है। जिस के लिये मैं लाचार हूँ। स्वर्गवासी गुरु महाराज पंजाब के थे। उन्हों ने इस वीर भूमि पंजाब में वीर परमात्मा के निर्दिष्ट किये हुए धर्मबीज को आरोपित, अंकुरित और पल्लवित करने में जो २ असह्य कष्ट सहे हैं वे सब मेरे हृदयपट पर पूरे तौर से अंकित हैं।

मैंने इसी उद्देश्य से अपने शिष्य वर्ग में से, सोहनविजय, ललितविजय, उमंगविजय और विद्याविजय इन चार को पंन्यास बनाया; क्योंकि वे चारों ही पंजाबी हैं और गुरुभक्ति में ये चारों ही एक से एक बढ़ कर हैं। इन चारों ही गुरुभक्तों को मैं अपनी चार भुजाएँ समझता हूँ। इन चारों को आज से इस बात को अपने

हृदय पट पर लिख लेना चाहिये कि गुजरात देश में जन्म लेने पर भी हमारे गुरु ने स्वर्गवासी गुरुमहाराज के लगाये हुए धर्म वृक्ष को सुरक्षित रखने का बीडा उठाया है तो हमारा यह सब से प्रथम कर्तव्य होगा कि हम अपने जीवन में पंजाब को कभी न भूलेंगे। शिष्य का धर्म है कि वह गुरु का सर्वथा अनुगामी हो।

इसके सिवाय एक बात और है। आप लोग मुझे आचार्य पदवी दे रहे हैं। मैंने उसे जिन हेतुओं से स्वीकार किया उनका मैं दिग्दर्शन करा चुका हूँ। यदि यह सब कुछ ठीक है तो मैं आप से कहता हूँ कि इस आचार्य पदवी के साथ ही पंन्यास सोहनविजय को उपाध्याय पदवी दी जावे। यद्यपि मेरे शिष्य वर्ग में इस समय उक्त पदवी के योग्य ललितविजय है। वह इससे (सोहनविजय से) दीक्षा में बड़ा और ज्ञानसे अधिक है; परन्तु पंन्यास पदवी प्रथम इसकी हुई है। यदि पंन्यास ललितविजय यहाँ पर मौजूद होता तो निस्सन्देह यह पदवी उसी को दी जाती; मगर यह भी इस पदवी के योग्य ही है और पंजाब के ऊपर इसका ममत्व सबसे बढ़कर है। इस लिये उक्त पदवी मैं इसी को देनी उचित समझता हूँ। मैंने स्वामी जी महाराज तथा यहाँ पर उपस्थित अन्य साधुओं से भी इस बारे में परामर्श कर लिया है। क्या आप सब को यह बात मंजूर है?"

आपके इस कथन का समस्त संघ ने एक आवाज़ से

समर्थन किया। इसके अनन्तर पंन्यास श्री सोहनविजय जी को मुखातिब करके, महाराज श्री ने फरमायाः—" तुम को इस वक्त श्री संघ की तरफ से जिस पद पर प्रतिष्ठित किया जाता है उस की गुरुता का तुम को अब पूरा ख्याल रखना होगा। तुम्हारे स्वभाव में कुछ उतावलापन है इस उतावले पन की जगह अब तुम्हें अपने हृदय में गम्भीरता को स्थान देना चाहिए। जो कुछ भी करना समझ सोच कर करना जो कि परिणाम में शुभ फल का देने वाला हो। तथा आज से लेकर अपने को एक बात का खास ख्याल रखना होगा। कोई भी नया काम करना हो तो अपने सिर पर जो बड़े हैं—(प्रवर्तक जी महाराज, श्री हंसविजय जी महाराज, पंन्यास श्री सम्पद्विजय जी महाराज और स्वामी श्री सुमति विजय जी महाराज आदि मुनिराज) उनकी सम्मति के बगैर नहीं करना तथा अपने से छोटे साधुओं की भी सलाह लेना जरूरी है। तात्पर्य यह कि जो कुछ भी करना सम्मति से करना। इसी में श्रेय है ! यह बात खास लक्ष्य में रखनी चाहिए कि कोई भी पुरुष सेवक हुए बिना सेव्य नहीं बन सकता। "

आचार्य पद की क्रिया—इसके बाद शास्त्रोक्त विधि के अनुसार आचार्य पद की जो आवश्यक क्रिया थी वह की गई और ठीक साढ़े सात बजे महाराज श्री को आचार्य पदवी की और साथ ही पंन्यास श्री सोहनविजय जी पर उपाध्याय

पदवी की चादर ओढ़ाई गई। अनन्तर समवसरण की प्रदक्षिणा करते हुए आचार्य श्री पर और उपाध्याय जी पर चारों ओर से वासक्षेप मिश्रित चावलों की खूब ही वृष्टि हुई और जयकारों तथा बैंड वाजों की तुमुल ध्वनि के साथ यह शुभ क्रिया समाप्त हुई।

आपकी इस आचार्य पदवी के समय तकरीबन ७४,७५ शहरों के लोग उपस्थित थे, उन सब की लिस्ट परिशिष्ट में दर्ज है। तथा पंजाब के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों के भी बहुत से सद्गृहस्थ इस समय हाज़िर थे। उन में दानवीर सेठ मोतीलाल मूलजी जे. पी. (वम्बई–राधनपुर), सेठ गोविन्द जी खुसाल (वेरावल–काठियावाड़), सेठ नवीनचन्द हेमचन्द (मांगरोल), धर्म मूर्ति सेठ सुमेरमल जी सुराणा, सेठ उदयचन्द जी रामपुरिया (बीकानेर), सेठ पूंजाभाई–छगनलाल–कालीदास सात भाईया (अहमदाबाद), श्रीयुत मगनलाल हरजीवनदास (भावनगर), बाबू टीकमचन्द जौहरी (देहली) बाबू चंद्रसेन (विनौली) और लाला उमरावसिंह खिवाई (मेरठ) आदि सद्गृहस्थों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

तथा महाराज श्री के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने की खुशी में सेठ मोतीलाल मूलजी की तरफ से एक साधर्मिवात्सल्य हुआ।

<u>बोलियाँ</u>—इस प्रकार उत्साह पूर्वक आचार्य पदवी का कार्य सम्पूर्ण होने के बाद भगवान् को गद्दी पर विराजमान

करने की बोलियाँ होने लगीं । इन बोलियों के बोलने में यद्यपि यथाशक्ति सभी ने अपना पूर्ण उत्साह बतलाया था तथापि गुजराँवाला श्री संघ का उत्साह कुछ विशेष देखने में आया। इसी अवसर पर लाहौर निवासी बाबू मोतीलाल जी जौहरी ने एक सोने की जड़ाऊ कंठी मूलनायक श्री शांतिनाथ जी के भेट की ।

बोलियों का कार्य समाप्त हो चुकने के बाद जैनधर्म भूषण आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरि जी महाराज श्री मंदिर जी में पधारे और ठीक नौ बजकर पैंतीस मिनट पर भगवान् श्री शांतिनाथ गद्दी पर विराजमान किये गये । शुभ क्रिया उक्त श्रीके पवित्र करकमलों से सम्पादित हुई ।

भजन व्याख्यान और इनाम ।

सोमवार की रात्रि को पंडाल में एक महती सभा हुई । सभापति का आसन दानवीर सेठ मोतीलाल मूलजी ने ग्रहण किया । जुदा २ भजन मंडलियों के भजन होने के बाद पंडित हंसराज जी शास्त्री का सामाजिक विषय पर एक छोटा सा भाषण हुआ । इसके अनन्तर मंदिर के पुजारियों तथा अन्य कर्मचारियों को सभापति के हाथ से इनाम दिलाया गया । बाद में ओसिया की भजन मंडली ने शिक्षापूर्ण एक अभिनय किया और कुछ अन्य भजनों के बाद सभा विसर्जन हुई ।

आचार्य श्री का उपदेश।

आज पूर्णाहुती का दिन है परन्तु खुशी की वात तो यह है कि आज के दिन भी मंगल है। और सेठ साहिब के साधर्मिवात्सल्य ने तो इस मंगल को और भी मंगलमय वना दिया! लोग जाना चाहते थे लेकिन इसी कारण से उन्हें रुकना पड़ा।

ठीक आठ वजे के करीव आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरि जी महाराज सभामें पधारे और अनुमान दो घण्टे तक आपने वडा ही शिक्षापूर्ण उपदेश दिया। आपने पंजाव निवासियों की कन्दमूल भक्षण की तरफ वढ़ी हुई अभिरुचि की आलोचना करते हुए केशी स्वामी और गौतमगणधर के प्रसंग में, साधुओं को वस्त्र किस प्रकार के और कितने मूल्य के रखने चाहिएँ यह वतलाकर आधाकर्मी आहार के विपय में वहुत कुछ मनन करने लायक वातें कहीं। इस उपदेश के दरम्यान में ही प्रसंगवश आपने कहा कि आप लोग सिद्ध क्षेत्रपालीताणा की यात्रा करने के लिये जाते हैं। वहाँ स्टेशन के नजदीक ही अपनी एक श्री यशोविजय जैन गुरुकुल नाम की संस्था है और जैनवालाश्रम नाम की एक संस्था शहर में है। क्या आपने कभी इसको देखा है? यदि न देखा हो तो आज से याद रक्खें कि जव कभी भी पालीताणे में जायँ इन संस्थाओ के दर्शन किये विना नहीं आवें। यहाँ पर

आज चार रोज से श्री यशोविजय जैन गुरुकुल की तरफ से दो आदमी चन्दे के लिये आये हुए हैं। यदि यह लोग आने से पहले खवर देते तो मैं इनको तुरन्त ही जवाव लिखा देता। इन लोगों का चन्देके निमित्त यहाँ पर आना समुद्र का छपाडियों से जल मांगने आने समान है; परन्तु यह लोग यहाँ पर आकर खाली चले जावें इस में भी शोभा नहीं। इस लिये ये लोग जिस ग्राम में आवें वहाँ इनकी यथाशक्ति मदद करनी योग्य है।

इसके सिवाय एक और वात की तरफ आपका ध्यान खींचता हूँ कि सिद्धक्षेत्र पालीताणा में पहाड़ पर भगवान ऋषभदेव के चरणों के नजदीक ही अपने परम उपकारी स्वर्गवासी गुरुमहाराज की एक मूर्ति विराजमान है। उस जगह पर जो कुछ भी काम हुआ है वह कितना रमणीय और शोभास्पद है वह तो आप में से जिन लोगों ने वहाँ जाकर दर्शन किये हैं उनको मालूम ही है। उसकी सुन्दरता के वनाने में जो कुछ भी द्रव्य लगा है उस में पंजाव निवासियों के सिवाय और किसी का एक पैसा नहीं, यदि चाहते तो गुजरात, काठियावाड़ और मारवाड़ आदि देश का कोई एक ही सद्गृहस्थ इतना काम वनवा सकता था; परन्तु पंजाव पर जो उनका खास उपकार हुआ है उसकी स्मृति कायम रखने के लिये ही ऐसा नहीं किया गया। मगर अपने घर का काम काज छोड़कर, अपने वक्त का भोग देकर

केवल गुरुभक्ति के निमित्त अपनी पूरी देखरेख में, जिन सज्जन ने इस कामको कराया है उन विनीत गुरुभक्त को धन्यवाद देने में पंजाब श्री संघ को अवश्य आगे आना चाहिये। वे सज्जन श्री जैन आत्मानन्द सभा भावनगर के मंत्री हैं और श्रीयुत वल्लभदास त्रिभुवनदास गाँधी उनका नाम है।"

(इस पर होशियारपुर निवासी लाला गोरामल के सुपुत्र लाला अमरनाथ ने कहा–"श्री आत्मानन्द जैन महा सभा पंजाब की तरफ से उनको एक स्वर्णपदक दिया जावे और उसपर जो खर्च होगा सो मैं अपने पास से दूँगा।' इसका उपस्थित सभी अन्य सज्जनों ने समर्थन किया।)

इसके बाद आपने स्त्रीवर्ग को सम्बोधित करके कहा:–"मैं इस वक्त आप से भी दो बातें कहूँगा। प्रथम–आप हाथ का जेवर–जो रत्नचौक या हाथ की मेंहदी के नाम से पुकारा जाता है–आगे को नया न बनवावें। मुनासिब तो यह है कि पहला बना हुआ भी न पहनें। इसके पहनने से एक तो हाथ सर्वथा काम करने से रुक जाता है और दूसरे चोर बदमाश को इसके खोसने में कुछ परिश्रम नहीं उठाना पड़ता। इस लिये ऐसे जेवर का न पहनना ही अच्छा है। द्वितीय–कपड़े पर १० तोले से अधिक गोटा न लगवावें और सलमे सितारे को तो छोड़ ही देना चाहिए। इन दोनों बातों की निस्बत महा सभा के दफ्तर से सब शहरों में पत्र आवेंगे जिस किसी माता या बहन को ये बातें पसन्द आवें वह अपना नाम वहाँ

लिखा देवे ।" और भी कई उपयोगी कामों की तरफ सभासदों का ध्यान खींचते हुए उपदेश के साथ ही आपने सभा को विसर्जित किया ।

आभार और उपसंहार

लाहौर में होने वाली प्रतिष्ठा और आचार्य पदवी का संक्षिप्त विवर्ण हमने पाठकों की सेवा में उपस्थित कर दिया । इतने वडे कार्य की सम्पादनता में हमें जो सफलता प्राप्त हुई है वह सब स्वर्गवासी गुरु महाराज की कृपा और यहां पर विराजमान साधु मुनिराजों का अनुग्रह तथा वाहर से आने वाले साधर्मि वन्धुओं की मेहरवानी का नतीजा है । सब से प्रथम हम स्वामि श्री सुमतिविजय जी महाराज को धन्यवाद देते हैं कि जिन्हों ने हमें हरएक प्रकार से प्रोत्साहित किया । तथा श्री देव श्री जी आदि सतियों के भी हम कृतज्ञ हैं कि हमारे इस उत्सवमें जंडयाला से विहार करके पधारीं । पंजावके अतिरिक्त वम्बई आदि प्रान्तों से आनेवाले धर्मवन्धुओंके हम विशेष आभारी हैं कि जिन्हों ने इतनी दूर से आकर हमारे उत्सव की शोभा को वढ़ाया । विशेष कर लाहौर तथा स्यालकोट के परम्परा वाले स्थानिक वासी भाइयों को तो जितना धन्यवाद दिया जाय उतना कम है । इस मौके पर उन्हों ने हमारी आशा से वढ़कर मदद की है । और साथ में हम अपने यहां के दिगम्वरी भाइयों की इमदाद के भी वहुत २ मशकूर हैं, तथा राजा ध्यान

सिंह की हवेली के मैनेजर ठाकुर कंधारासिंह जी साहिब और राय साहिब लाला रघुनाथसहाय हैड मास्टर घालसिंह हाई स्कूल तथा राय साहिब लाला दीनानाथ की धर्मपत्नी आदि सद्गृहस्थों का भी हम अत्यन्त आभार मानते हैं कि जिन्हों ने हमको मंडप और रिहायश का मकान देकर हमारे उत्सव को पूर्ण सहायता दी। अन्त में शासनदेव से प्रार्थना है कि संघ में सदा शान्ति रहे।

आचार्यपद हो जानेके बाद सैकडों तार और चिट्ठियाँ मुबारिक बादीके आपके पास आये—उनमेंसे अनेक साधुओंके हैं और अनेक श्रावकोंके हैं। चिट्ठियोंको यहाँ उद्धृत करते हैं, तार परिशिष्टमें दिये गये हैं। साधुओंमें अनेक आत्मारामजी महाराजके संघाड़ेके हैं और अनेक दूसरे संघाड़ेके भी हैं।

मुनि महाराजाओंके अभिनंदनपत्र।

(१)

जामनगरस्थ मु० मंडल त० श्री लाहोर श्रीयुत वि० व० सू० जी उ० सोह० वि० जी सप० यथा० साथ मा० हो। आपका पत्र तथा श्रीसंघका तार आनंद पूर्ण मिला है। पढ़कर आनंदमें वृद्धि हुई है। गुरुमहाराजकी कृपासे सारा कार्य आनंद पूर्वक समाप्त हुआ यह खुशी की बात है।

आपको जिस धर्म क्षेत्र में श्री १००८ गुरु महाराज की तरफ से विद्या और विनय शीलता आदि सद्गुणों की प्राप्ति

हुई उसी क्षेत्र में श्री संघने आपको गुरु महाराज के पट्ट पर अभिषिक्त किया यह आपके लिये बड़े गौरव की बात है। अब आप की और श्री संघ की इसी में शोभा है कि आप गुरु महाराज के कदमों पर चलते हुए शासन की शोभा में उत्तरोत्तर वृद्धि करें। श्री जी महाराज धर्म चर्चा के समय अपने वचनामृत से धर्माभिलाषियों की भावनाओं को पूर्णतया भरपूर करते हुए कहा करते थे कि,—संसार ताप से अत्यन्त तपे हुए जीवों को वीर परमात्मा की अमृतमयी वाणी सुना कर शान्त करने का सतत प्रयत्न करते रहना यही हमारा सच्चा धर्म धन है। यदुक्तम्—

शास्त्रं बोधाय दानाय धनं धर्माय जीवितम्।
वपुः परोपकाराय धारयन्ति मनीषिणः॥ १॥

वाद विवाद के समय कई एक कम समझ कटुक स्वभाव रखने वाले मनुष्य निष्कपट या सत्य कहने पर भी गर्म हो पड़ते थे; परंतु आप तो सदा शान्त और प्रसन्न वदन ही रहते थे। विपक्षी लोग कितने ही गर्म हों मगर आप तो सदा शान्ति से ही उत्तर दिया करते और अपनी शान्त गम्भीर मुद्रा में विकृति का अणु मात्र भी प्रवेश नहीं होने देते थे। इस पर आप श्री से कभी पूछा गया तो आपने यही उत्तर दिया कि—

सुजनो न याति विकृतिं परहितनिरतो विनाशकालेपि।
छेदे हि चन्दनतरु सुरभयति मुखं कुठारस्य॥

अज्ञ लोक एक प्रकार के बालक होते हैं। जैसे कोई रोग ग्रस्त हठी बालक औषधि पीने से इनकार करता है और उत्तम वैद्य अपने मधुर वचनों द्वारा उसे समझाबुझा कर औषधि पिला देता है और वह रोग से मुक्त होजाता है, इसी प्रकार साधु महात्माओं का फर्ज है कि वे पास में आये हुए अबोध से अबोध मनुष्य को भी किसी न किसी प्रकार से सद्बोधामृत पिला कर सुबोध करने का प्रयत्न करें। व्याख्यान देते समय क्रोध बिलकुल नहीं करना। क्रोध से विचार शक्ति नष्ट होजाती है। सरल से सरल प्रश्न का भी उत्तर देते नहीं बनता। क्रोध जैसा भयंकर विष और कोई नहीं। यदुक्तम्—

द्रुमोद्भवं हन्ति विषं नहि द्रुमं, नवा भुजंगप्रभवंभुजंगम्।
अदः समुत्पत्तिपदं दहत्यहो हंहोल्वण क्रोधहलाहलं पुनः॥

उपदेश देते समय साधु यदि क्रोध के वशीभूत हो जाय तो वक्ता श्रोता दोनों को ही कर्म का बन्ध होता है। इसलिये साधु पुरुष को प्राणिमात्र से मैत्री रखनी चाहिये और उसकी भाषा बड़ी ही शान्त एवं मधुर हो।

शेख सादी एक जगह फरमाते हैं—

दिलागर तवांजे कुनी अखतियार
शवद खलक दुनिया तुरा दोस्तदार॥

साधु पुरुषों के द्वारा प्रेम भाव से उपदेश मिलने पर धर्मान्वेषक जिज्ञासु लोग अवश्य धर्म में दृढ़ होते हैं और धर्म के रसिक बनते हैं। वीतरागदेव के प्रपौत्र मुनि महाराज, पाट पर

बैठ कर वीतरागदेव के समाधि मार्ग का उपदेश करें और श्रोता गण उस उपदेशामृत से अपने आत्मा में शान्त भाव को प्राप्त करें इसी में सार है। सांसारिक कार्यों में व्यग्रता को प्राप्त हुए मनुष्य कुछ समय शान्ति प्राप्त करने के लिये ही साधु मुनिराजों के पास उपदेशामृत का पान करने के वास्ते आते हैं, न कि इधर उधर की व्यर्थ बातों के सुनने और अपनी व्यग्रता को बढ़ाने के लिये उनका आगमन होता है। पाट पर बैठ कर व्याख्यान बाँचने वाले को किसी राज्य की तर्फ से किसी तरह की अमलदारी नहीं मिली हुई। उसको तो इस स्थान से मात्र लघुता रूप सद्गुण की अनुपम शिक्षा ग्रहण करने की है, इसलिये पाट पर बैठने से पहले, मैं कौन हूँ, किस के पाट पर बैठता हूँ और आगे को मेरे लिये क्या २ कर्त्तव्य है इत्यादि बातों का अवश्य विचार कर लेना चाहिये। तथा व्याख्यान दाता को इतना और भी ख्याल रखना चाहिये कि व्याख्यान में इस प्रकार के विषय की चर्चा हो जिससे कि सुनने वालों को कुछ न कुछ सद्बोध और शान्त रस की प्राप्ति हो।

साधु पुरुषों के कथन और आचरण का उपयोग मात्र धर्माभिवृद्धि के लिये है। इसके विपरीत बन्धुओं के पारस्परिक क्लेश, और परस्पर की ईर्षा आदि बीभत्स कार्यों के लिये साधु पुरुषों को अपने उच्चार और विचार का कदापि उपयोग नहीं करना चाहिये। इस वास्ते महात्मा पुरुष अलग रहते हुए भी सब से मिले हुए और सब से मिलते हुए भी सब से अलग हैं। एक

उर्दू कवि ने इस भाव को बहुत अच्छी तरह से व्यक्त किया है।

अलग हम सब से रहते हैं मिसाले तार तम्बूरा।
ज़रा छेड़े से मिलते हैं मिला ले जिसका जी चाहे ॥

साधु महाराज की मुख मुद्रा को देखते ही उसकी गम्भीरता और शान्तता का प्रभाव यदि श्रोताओं पर पड़े तभी वे शान्त भाव से साधु मुनिराज के उपदेशामृत को भली भाँति पान कर सकते हैं। कहा भी है—

चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमा।
चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये, शीतलः साधु संगमः ॥

इस लिये साधु पुरुषों को सदा शान्त भाव में ही रमण करना चाहिये। परोपकार साधुओं का एक विशिष्ट गुण है। यदि कोई प्रतिपक्षी कष्ट भी दे तब भी साधु पुरुषों को तो दीपक की तरह उसके अज्ञानान्धकार को कष्ट सह कर भी दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये।

अपने को जलाकर और को रोशन करना।
यह तमाशा हमने फ़कत चिराग़ में देखा ॥

परोपकार के कार्य में कष्टों के उपस्थित होने पर भाग जाना परोपकारी का काम नहीं। ऐसा कोई समय नहीं था और न होगा जब कि सारा संसार एक ही रंग में रंगा हुआ नज़र आवे। सभी लोग अवगुणान्वेषी और सभी गुणग्राही नहीं होते। संसार में यदि गुणग्राही लोग हैं तो अवगुण देखने वालों की भी कमी नहीं; परन्तु परोपकारी पुरुष इन बातों की कुछ भी

परवाह नहीं करते। वे कष्टों के पहाड़ों को चीरते हुए अपने ध्येय स्थान पर पहुँचकर ही वस करते हैं। कष्ट सहन किये विना कुछ नहीं वनता, पुराने उदाहरणों को छोड़िये एक ताजा ही उदाहरण लीजिये—

श्री १००८ गुरु महाराज साहिव ने जितने कष्ट सहे हैं उनकी गणना करनी कठिन है। यदि वे इस कदर कष्टों को न सहते और दृढता पूर्वक उनका मुकाविला न करते तो आज जो कुछ धर्म प्रभावना दृष्टि गोचर हो रही है यह कभी देखनी नसीव न होती। महाराज श्री अपने पूर्व कष्टों का कभी ज़िकर करते तो सुनकर आँखों में आँसू भर आते। इस लिये मात्र मानी हुई वड़ाई काम नहीं आती, किन्तु आचार में आया हुआ वड़प्पन ही काम की चीज़ है। विचार कर देखा जाय तो जितने भी महन्त आज तक हुए हैं वे सुख की शय्या पर सोते हुए नहीं किन्तु अनेक विध कष्टों की कंटीली शय्या पर तपस्या करने से हुए हैं। महत्व प्राप्त करना कुछ मामूली सी वात नहीं।

इसके अलावा नायक वने, इस से यह कदापि समझने का नहीं कि हमारे आश्रय तले रहा हुआ अन्य साधुवर्गमात्र हमारी हाँजी के लिये ही है, किन्तु छोटे साधु जो हैं वे वड़ों के संयम पालने में और शासन की शोभा वृद्धि में कई प्रकार से मददगार हैं ऐसा विचार करने का है। मयूर अपने छोटे वड़े अनेक प्रकार के पिच्छसमूह से ही शोभा देता है। छोटे

वड़ों के सहारे अपने संयम का पालन करते हैं और वड़े अपने दीर्घ कालीन विशिष्ट अनुभव द्वारा समय २ पर उनको समुचित्त शिक्षण देते हुए उन से संयम पलाते हैं। इस प्रकार परस्पर के प्रेम भाव से ही शासन शोभा और धर्माभिवृद्धि में प्रगति होती है। महत्व की शोभा केवल लघुत्व पर ही अवलम्बित है।

नमन्ति सफला वृक्षा नमन्ति सज्जना जनाः।

आप जानते हैं कि यह समय कुसंप के वढ़ाने का नहीं किन्तु जहाँ तक होसके उसको कम करने का है। परम पूज्य महाराज जव विद्यमान थे तव वे साधुओं और श्रावकों के साथ कितना प्रेम रखते थे, तथा साधुओं और श्रावकों में परस्पर कितना प्रगाढ़ प्रेम था उसका स्मरण आते ही आजकल की दशा पर अश्रुपात हुए विना नहीं रहता। वे महा पुरुष एक ही थे परन्तु उनके समय में जो २ काम हुए हैं उनका तो आज स्मरणमात्र ही रह गया। इसमें सन्देह नहीं कि अधिक महात्मा यदि आपस में मिलकर काम करें तो काम अवश्य अधिक हो मगर ऐसा भाग्य कहाँ? यदि मुनिनायक और साधारण मुनिराज अपने दिल में कुछ नम्रता को स्थान दें तो शासनोन्नति के अनेक प्रशंसनीय कार्य होसकते हैं परन्तु ऐसा सद्भाग्य मिलना वहुत कठिन है।

आपस में कुसम्प वढ़ने वढ़ाने का मुख्य कारण अभिमान है। इस अभिमान शब्द में से यदि 'मा और न' निकाल

दिया जावे तो तमाम जगत् विजय नाद से गूँज उठे । इस 'मा और न' को निकालने का उपाय छोटे बड़े दोनों को ही विचारणीय है। ऐसा होने से ही शासन की उन्नति होसकती है अन्यथा नाम मात्र की ही उन्नति है, कपाय धर्म और संयम दोनों के ही विघातक हैं इसी लिये इनके त्याग का शास्त्रों में वार २ उपदेश दिया है। जैन शासन में भले ही मुनियों और पदवीधरों की वृद्धि हो यह एक विशेष खुशी की बात है। परन्तु इसके साथ यदि वे अपनी २ शक्ति के अनुसार देश देशान्तर में भ्रमण करके सदुपदेश द्वारा लोगों में वास्तविक धर्म की अभिरुचि पैदा करें और उन्हें वीतराग देव के समाधि मार्ग के रसिक बनावें तथा एक दूसरे से प्रेम पूर्वक मिलें, प्रेम पूर्वक वार्तालाप करें एवं मिलते ही एक दूसरे के अन्तःकरण में आनन्द की उर्मियाँ उठने लगें और हिलमिल कर धर्म सम्बन्धी कार्यों का विचार करें तभी शासन की शोभा तथा उन्नति में यह वृद्धि उत्तरोत्तर वृद्धि कर सकती है।

गृहस्थ लोग आपस में मिलते समय अपने पुराने से पुराने वैर विरोध को छोड़ कर बड़े प्रेम भाव से मिलते और वार्तालाप करते हैं। अपने साधु कहलाते हैं और उस पर भी वीतराग-देव के शासन के अनुयायी हैं। अपने में समता गुण की अधिकता देख कर ही अन्य गृहस्थ लोग धर्म में प्रवृत्त हो सकते हैं, इस लिए वीतरागदेव के अनुयायी साधु वर्ग में

समता गुण जितना अधिक हो उतना ही अच्छा है, इसी में शासन की शोभा है । यदि जिन शासन रसिक मुनि लोगों में समता गुण का अभाव हो तो लोगों की उनके प्रति अवश्य हलकी नजर होगी । लोग उन्हें तुच्छ दृष्टि से देखेंगे, ऐसी दशा में उक्त वृद्धि और साधुता शासन की शोभा के लिए नहीं किन्तु शासन को शरमाने के लिये ही हो सकती है । इस लिये मुनिजनों का समता गुण ही अधिकतया शासन की शोभा है ।

आप गुरु महाराजकी सेवा भक्ति में निरन्तर लगे रहे, पंजाव में महाराज जी साहिव रूप सूर्यास्त होने के वाद उन क्षेत्रों में आपके हाथ से अनेक प्रभावनाजनक शुभ कार्य हुए तथा निरन्तर भ्रमण करके वहुत कुछ उन्नति की। इससे आकर्षित होकर श्रीसंघने आपको गुरु महाराज के पट्ट पर अभिषिक्त किया यह खुशी की वात है । अव आगे को आपके द्वारा अधिकाअधिक धर्म कार्य हों और शासन की शोभा में उत्तरोत्तर वृद्धि हो तथा अन्य मुनिराज भी उसका अनुसरण करें तो उसकी शोभा भी आप को ही है ।

विशेष में मैं याद दिलाता हूँ कि, १००८ श्री स्वर्गवासी गुरु महाराज श्रीमद्विजयानन्द सूरीश्वरजी तथा गुरु जी महाराज श्री १००८ श्रीलक्ष्मीविजय जी महाराज जी की विद्यमानता में प्रायः ऐसा प्रसंग आने ही नहीं पाता था । कदापि दैव योग सकारण या निष्कारण किसी को छद्मस्थपने की लहरसे

कषाय आ भी जाती तो उसी वक्त नहीं तो उसी दिन के देव-सिक प्रतिक्रमण में सुलह–संप करते करा देते थे। यदि ऐसा होने पर भी कुछ कसर किसी के दिल में रह गई मालूम होती थी तो पाक्षिक प्रतिक्रमण में उसकी सफाई करा दी जाती थी। अंत में सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में तो अवश्यमेव क्षमापना आप स्वयं करते थे और अन्यों से कराते थे। कभी कोई अज्ञानता वश उस बात पर ध्यान नहीं देता था तो उसको श्री कल्प सूत्र का—

“ जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा।
जो न उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा।
तम्हा अप्पणा चेव उवसमियव्वं।”

यह पाठ दिखा कर समझाते थे कि, देख भाई–जीवा! श्री तीर्थंकर महाराज ने तथा श्री गणधर देवों ने क्या फरमाया है? “जो जीव क्षमापना करता है वो आराधक होता है, और जो नहीं करता है वो आराधक नहीं होता है। इस लिये क्षमा-पना करके आराधक होना योग्य है”। ऐसे प्रेम के वचनों को सुनकर अगला भी शांत होकर क्षमापना कर लेता था। यह आपको भी मालूम ही है, आप स्वयं जानते हैं, आप ने स्वर्गवासी गुरुमहाराज के चरणों में रह कर–गुरुकुल वास से खूब अनुभव संपादन किया है। आप को समझाने की कोई जरू-रत नहीं है, तथापि अब आप उन महा पुरुषों के स्थानापन्न–उनके पट्ट धर बने हैं, अतः आप को उनका अनुकरण करना योग्य है। श्रीगुरु महाराज आपको सहायता देवें और आप

ऐसे कार्य करने लायक हो जावें, जिनसे कि श्री गुरु महाराज का–श्री १००८ श्री मद्विजयानन्द सूरीश्वर जी महाराज का शुभ नाम जगत् में अधिक से अधिक रोशन होवे। आपके साथ धर्म स्नेह होने से आपको योग्य समझ कर इतनी सूचना शुद्धान्तःकरण पूर्वक लिखी है। आशा है आप इसमें से सार ग्रहण करेंगे, तथापि मेरे लिखे हुए मतलब में किसी प्रकार भी अप्रीति होने का कारण बन जावे तो उसकी बाबत मिच्छामि दुक्कडं देता हुआ मैं अपने लेख को समाप्त करता हूँ।

मैं हूँ आपका शुभचिन्तक—
मुनि–कां० वि०
जामनगर (काठियावाड)

(२)

श्रीयुत वल्लभाचार्य ता० उपाध्यायजी आदि सर्व मुनिराज योग्य अहमदावाद थी हंसवि०ता०पंन्यासजी आदिनी .... मालुम थाय तार पहोच्यो आनंद थयो .... आपनो पत्र ता० मान पत्र वांची आनंद थयो .... तमारी पदवी थी श्री .... सूरि पण खुशि थया छे ... छापेली मानपत्रनी पांच नकलो मोकलावशो

(३)

ॐ

ता० १—१२—२४.
आचार्य अजितसागर सूरि
ठे० आंबलीपोल जवेरीवाडा
अमदावाद.

वन्देवीरम्

लाहोर मध्ये श्रीमान् जैनाचार्य विजयवल्लभ सूरि जी तथा उपाध्याय सोहन विजयजी विगेरे योग्य सुख साता और वंदना आपको ता० १-१२-२४ को प्रातः काल में आचार्य पद की क्रिया समग्र पंजाब संघ की तरफ से हुई उनकी तार द्वारा खबर पड़ते ही हम अत्यंत आनंदित हुये हैं और आप जैसे धर्मोद्धारक को यह अमूल्य पद शोभास्पद है । आपके द्वारा जैन शासन के उद्धार के अनेकानेक कार्य बनते रहें यह हम शासनदेव से प्रार्थना करते हैं । विनय संपन्न पंन्यास सोहन विजयजी को उपाध्याय पद दिया जिससे बहुत खुश हुए हैं।

ले० हेमेन्द्रसागर की वंदना ।

१००८ वार स्वीकारें

अमदावाद.

(४)

सीनोर ।

श्री श्री श्री आचार्य उपाध्याय जी तथा सुमति विजयजी आदि योग मुकाम सीनोर थी मुनि अमरविजय आदि ठा० ३ना तरफ थी वंदना सुख साता यथा योग्य वांचनी. लाहौर से आया पत्र वांच के आनंद हुआ। हम तो अब सब बात से थके हुवे हैं । आपने गुरुमहाराज का पद लिया है सो खूब दीपावना यही हमारा आशीर्वाद है । सब साधुओं को वंदना सुख साता यथा योग्य कहना । मिती १९८१ ना मागसर वदि ८.



जैनश्वेतांबर आरतीमंडल गुजरांवाला. पृ. ४७६.

मनोरंजन प्रेस, बम्बई नं. ४.

(५)

मु० लाहोर आचार्य महाराज श्री श्री श्री वल्लभ विजयजी उपाध्यायजी सोहन विजयजी आदि योग्य धीनुज थी मुनि मोतीविजय पन्नाविजय मणिविजय ठा० ३ ना वंदनानुवंदना. त्यांना समाचार छापा द्वारा वांची अत्यंत आनंद थयो छे।

(६)

वलाद—मागसर वदि १

श्री परमोपकारी शांतदांत त्यागी वैरागी गंभीर धर्म स्नेही परम कृपालु परम पूज्य भट्टारक आचार्य महाराज ना गुणे करी विराजमान गुरुदेव श्री श्री श्री १००८ श्रीयुत विजय वल्लभ सूरीश्वर महाराजजी आदिना चरण कमलमां सेवक विवेक विजयनी वंदना अवधारसो जी, तथा मुनि श्री सुमति स्वामीजी तथा तपस्वी जी तथा पंन्यासजी श्री उपाध्यायजी श्री सोहन विजय जी तथा पंन्यासजी श्री विद्याविजय विचार-विजय सागरविजय समुद्रविजय उपेंद्रविजय आदिने वंदना-नुवंदना कहसो जी. वलादमां आजे वदी १ ना रोजे आव्यो छुं. आपनी सुखसाता ना समाचार अवसरे लखवा कृपा करसो जी. सेठ फूलचंद खेम चंद तथा मोहनलाल ना मुख जबानी थी लाहौर ना समाचार सांभळीने घणो आनंद थयो छे।

(७)

मागसर सुदि ९

श्री डभोडा

परम पवित्र पूज्य मुनिराज श्री १००८ श्रीमान् श्री वल्लभ

विजय जी महाराजजीं विगैरे मुनिराजों योग्य सेवक मान, विवेक, संतोप तरफ से वंदनानुवंदना सुखसाता पूर्वक आनंद साथे मुनि श्री पं० ललितविजयजी के पत्र से आपको आचार्य पद मिल्या वांचकर वहोत हर्ष हुवा। आप पद के योग्य हो अच्छे अच्छे धर्म के कार्य करते हो।

(८)

डभोडा।

श्री परमपूज्य विद्वान शिरोमणि श्री श्री श्री १००८ गुरु जी महाराज श्री आचार्य महाराज श्री वल्लभविजय जी आदि परिवार योग्य विवेकविजयनी वंदना अवधारसो जी, आजे पं० ललित वि० उमंगवि० ना पत्र थी आप साहेवजी नी पदवी ना समाचार जाण्या. आनंद थयो. अवसरे सुखसाता ना समाचार देशो जी. द० विवेकविजय सुदि ९

(९)

लाहोर मध्ये शान्त दान्त परम पूज्य परमोपकारी एवा अनेक गुणेकरी विराजमान आचार्य महाराजजी श्री विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराजादि कपडवंज थी लि: सेवक कीर्ति-वेनी वंदना १००८ वार अवधारशोजी. वीजुं आप श्री जीनी कृपा थी आनंद छे. आप श्री जी ने आचार्य पदवी तथा पं. महाराजजी श्री सोहनविजय जी महाराजजी ने उपाध्याय पदवी सांभली अत्यानंद थयो छे. मागसर सुदि १२.

सेवक कीर्तिनी वंदना।

द. सेवक छोटा कीर्तिकी त्रिविध त्रिविध वंदना पूर्वक वडी खुशी हुई । अमारा आत्मा बहुत आनंद भया ए काम बहुज अच्छा हुआ है..आपका पुण्य तेज है, प्रथम कान्फरन्स वखत पण करने की श्रावकों की मरजी हुई पण आपने ना पाडी तो अव दूसरे को ठपका का वखत नहीं रहा और सव लोक वडी खुशीसे ए काम करने को सामिल हुए और प्रतिष्ठाका मामला में वडी धाम धूमके साथ हुई अमारे को जरा मनमें दिलगिरी पैदा हुई पण अमदावाद से और पं. ललितविजयजी की चिठी से सुनके वड़ा आनंद हुआ है।

(१०)

वन्दे श्री वीरमानन्दम् ।

१००८ पूज्यपाद आचार्य भगवान् श्रीगुरु महाराजजी सपरिवारकी सेवा में लाहौर ।

घाटकोपरसे सेवक वर्ग की १००८ वार वंदना स्वीकार होवे। कल रात्रिको प्रतिक्रमण बाद मणिलाल सूरजमलकी मारफत, तार द्वारा, आपकी आचार्य पदवी का समाचार सुन कर जो आनंद हुआ है, ज्ञानी महाराजही जानते हैं। इस खुशीमें क्या लिखूँ ? मारे खुशीके विवश हो रहा हूँ। बस इतना ही लिखता हूँ कि आजका दिन मेरे लिए तो क्या स्वर्गवासी, प्रातःस्मरणीय, जैनाचार्य, न्यायांभोनिधि, श्रीमद्वि-

जयानन्दसूरि-आत्मारामजी-महाराजजीको सच्चे गुरु तरीके माननेवाले हर एक जैन बच्चेके लिए स्वर्णाक्षरोंमें लिख लेने वाला हुआ है, क्योंकि "मेरेबाद पंजाबकी सार संभाल वल्लभ लेवेगा" इस गुरु वचनको श्रीसंघ पंजाबने आजके रोज आप को उन गुरु महाराज के पट्ट पर कायम करके सत्य कर दिया है। मैं श्री संघ पंजाबको अनेकशः धन्य वाद देता हूँ और शासन देव से प्रार्थना करता हूँ कि आपका इकबाल बहुत बढ़े, ताकि गुरु महाराजका नाम अधिक रोशन होवे।

मंगलवार.
मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी-सप्तमी—
ता. २-१२-२४.

आपके चरणोंके किङ्कर—
ललित की अनेकशः वंदना।

(नोट) यहाँ घाटकोपरमें इस बातकी खुशी सकल श्री संघमें फैल गई है। कल अष्टमीको श्रीफलकी प्रभावना तथा पूजा पढ़ाने का श्रीसंघ का विचार है। कुछ साधर्मिवात्सल्य या अमुक रकम महावीर जैन विद्यालय को इस प्रसंग की खुशी में देनेका विचार भी श्रीसंघ का है जो बने सो खरा।

द० सेवक ललित की वंदना।

लघु सेवक की त्रिकाल वंदना स्वीकारनी जी सेवकों की चिरकाल की आशा आज सफल आपश्री जी ने करी है और सेवक वर्गकी पदवियों की शोभा भी अब ही हुई है जो आप श्री तख्त नशीन हुए हैं। सच्चा वारसा आप श्रीजीकोही प्राप्त हुआ है। × × × × द० सेवक उमंगकी वंदना।

(११)

श्री वीर सं: २४५१ वि: १९८१
श्री आत्म सं: २९ मागसर सुदी १०

प्रातः स्मरणीय चारित्र चूडामणि यतिपति शासन सुभट कलिकाल कल्पवृक्ष मुनिचक्र चूडामणि शांतदांतादि सकल सद्गुण विभूषित परोपकारनिष्ठ श्री श्री श्री १००८ जैनाचार्य श्री विजयवल्लभसूरि जी महाराज आदिनी सेवामां लाहोर, ओलपाड (सूरत) थी सेवक विनयनी वंदणा नी साथे मालूम थायके आपनी पदवी नो तार सूरत आवेल त्यांथी मने आजरोज़ खबर मल्या, तेथी लखवानुं के लायक ने लायक मान मले तेमां आनंद थाय ए स्वाभाविक छे. द: सेवक विनयनी वंदना स्वीकारशोजी. दोशी जमनादास भगवानजीनी वंदना १००८ वार आपनी पवित्र सेवामां स्वीकारशोजी. जत लखवानुं के आपने आचार्य पदवी मळी तेथी अमे वहु खुशी थया छीये।

(१२)

श्रीमद् विजयधर्मसूरिगुरुभ्यो नमः ।

मीती मार्गशीर्ष वदी १४ धर्म सं: ३.

शांत्यादि अनेक गुणगणालंकृत शासनोन्नतिकारक विद्वद्वर्य श्रीमान् विजयवल्लभसूरिजी महाराज आदि ठाणा सर्वनी पवित्र सेवा मां मु० लाहोर, सविनय १००८ वार वंदना साथे विनंती के आपनो पत्र मल्यो हतो..........................विशेष पहेलो पत्र लख्या वाद "जैनपत्र" थी आप श्रीने आचार्य

पदवी थयाना समाचार जाणी अमो सर्वे घणाज खुशी थया छीए, आगरानो संघ पण खुशी थयो छे, आप जेवा योग्य पुरुषो ने योग्य पदवी थई ते घणुंज ठीक थयुं छे।

ली० सेवक जयंतिविजयनी वंदना।

(१३)

कपडवंज।

स्वस्ती श्री लाहौर मध्ये शांत दांत महंत त्यागी वैरागी छत्रीस गुण युक्त परम पूज्य पवित्र परमोपकारी धैर्य गंभीर अनेक उपमा लायक श्री श्री श्रीमद्विजयवल्लभसूरीश्वर महाराजजी साहिबनी सेवा मां, कपडवंज थी ली. क्षमा श्री जी म. माणिक्य श्री वसंत श्री, सर्वेनी वंदना कोटी वार आपना पवित्र चरणों में कृपा करके स्वीकार करनाजी और आपको पद प्रदान का मंगलकारी श्रेष्ठ समाचार जैन से और कुंकुम पत्रीसे जानकर बहुत आनंद हुवा है जी। योग्य बात बनने से हर्ष हुवे इस में नवाई क्या है? प्रथम से ही सब जगा में उपकार कर रहे होजी। अच्छा अच्छा धर्मका काम किया है जी।

मंगल अस्तु

ली. माणिक्य श्री.

" सद् गृहस्थोंकें अभिनंदन पत्र। (हिन्दी)"

(१)

फर्नहिल नीलगिरीज्।

१०-१२-१९२४

श्रीमन्तो महानुभावा मुनिवराः सप्रश्रयम्, चिरंजीवी भाग-

मल्ल से ज्ञात हुवा कि थोड़े दिन हुए जैनसमाज ने श्रीमानों को जैनाचार्य की पदवी से सत्कृत किया है, मैं सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। यद्यपि आप जैसे महात्मा पदवी की या उपाधि की इच्छा नहीं रखते तथापि हम सबका कर्त्तव्य है कि उनका सत्कार करते हुए अपनी कृतज्ञता बतलायें, बहुधा ऊँची पदवी आप जैसे महात्माओं के शुभनाम के साथ ही शोभा प्राप्त करती है।

विनीत
हीरानंद शास्त्री.

(२)

बीकानेर।
ता. १४-१२-१९२४

श्रीमान् मान्यवर सद्गुणालंकृतधर्मनिष्ठ परोपकार व्रत परायण विद्यावारिधि जैनाचार्य श्री १००८ श्री वल्लभविजयजी महाराज आचार्यजी महोदय योग्य जयदयाल शर्मा का सविनय प्रणाम प्राप्त हो। श्रीमानों को आचार्य पद की प्राप्ति सुनकर चित्त को अत्यंत ही प्रमोद प्राप्त हुआ। वास्तव में यह पद आप जैसे विद्यावारिधि सौजन्यादि गुणाकर महानुभावों के योग्य ही है। श्री सर्वज्ञ प्रभु से मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि आप चिरायु होकर अपने सद्ज्ञान विद्या आदि सद्गुणों के द्वारा देश का चिर समय तक कल्याण करें।

जयदयाल शर्मा शास्त्री।

(३)

श्री आत्मानंद जैन सभा, अंबाला शहर।

४ दिसम्बर १९२४

स्वस्ति श्रीमत्पार्श्वजिनं प्रणम्य तत्र श्री लाहोर शुभ स्थाने विराजमान पूज्यपाद परमोपकारी श्री जैनाचार्य श्री १००८ श्रीमद्विजयवल्लभसूरिजी महाराज उपाध्याय श्री सोहन विजय जी महाराज श्रीसुमतिविजय जी महाराज श्री पंन्यास विद्याविजयजी महाराज तथा अन्य सर्व साधु समुदाय की सेवा में दासानुदास भागमल्ल की वंदना नमस्कार १००८ वार अभ्युट्ठिओमिके पाठ सहित स्वीकार होजी। आगे निवेदन यह है कि सेवक कल ही गुडगाओं से वापिस आया है। वहाँ की परीक्षा में मैं और हमारे स्कूल के मास्टर विलायतीराम दोनों प्रथम कक्षा में उत्तीर्ण हुए।

यहाँ आते ही लाहौर के प्रतिष्ठा महोत्सव के आनंददायक समाचार सुने। विशेषकर आप दोनों मुनि महाराजों की पदवियों का हाल सुनकर चित्त इतना प्रसन्न हुआ कि उस प्रसन्नता को वर्णन करने के लिए मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं हैं। क्या ही अच्छा होता यदि मैं भी अपनी आँखों से वह दृश्य देख पाता। परंतु मुझ जैसे निर्भाग्य के भाग्य में यह शुभ अवसर कहाँ ?

आपकी इन पदवियों पर एक वार और बधाई देता हूँ और समाज की दक्षता पर मुग्ध होरहा हूँ जिन्होंने ऐसे स्वर्णमय अवसर का ऐसा अच्छा उपयोग किया।

यही इच्छा है कि समाज के सिर पर आपका छत्र अनंत काल तक झूलता रहे और यह समाज उन्नति को प्राप्त हो।

सेवक—
भागमल्ल मौद्गल।

(४)

श्री

जयपुर।
ता. ९-१२-२४

स्वस्ति श्री लाहोर शुभ स्थान सकल शुभोपमाकरी विराजमान पूज्य श्री १०८ श्रीयुत आचार्य महाराज श्री विजयवल्लभ सूरिजी महाराज साहब की पवित्र सेवा में दास गुलाबचंद ढड्ढा की सविनय वंदना मालूम होवे, आपका कृपा पत्र मिला। पढ़कर आनंद हुवा। मेरी दिली चाहना पंदरा बरस से आपको परमोपकारी स्वर्गवासी सूरीश्वर की गद्दी पर देखने की थी, आपकी दयालुता, योग्यता, धर्मज्ञता, विद्वत्ता, उपकार, तप, जप, क्षमा वगैरह गुणों को लेकर आपको इस पद पर पंदरा बरस पहिले ही देखने की इच्छा थी, परंतु समय आने पर फल मिलता है। मुझे अगर जरा भी सूचना किसी द्वारा इस शुभ क्रिया की मिल जाती तो मुझे कुछ भी तकलीफ होते हुवे भी मैं अवश्य हाजर होता, परंतु मैं इस बात के लिए बिलकुल अंधेरे में था, हालां के मैंने कई दफे यात्रा में विचार भी किया था कि प्रतिष्ठा के समय आचार्य पदवी दी जावे तो अती

श्रेष्ठ हो। दाख पके जब कव्वे का कंठ रुक जावे, वाकइ आपको सूरि पद प्राप्त होने से जितनी उमंग की लहरोंसे हृदयकमल प्रफुल्लित हुवा उस से कई दरजे जियादा मेरी बद किसमती पर अफसोस और रंज हुवा, जिसको मैं लिख नहीं सकता। खर भावी प्रबल, आत्माको संतोष इस ही बात पर दिया जाता है कि २८ बरसके बाद हमारे उपकारी महात्माके योग्य पट्टधर को हमने अपना शिरताज देखा। इस दासकी प्रार्थना यही है कि आप सिंह जैसे प्रबल, चंद्रमाके जैसे उज्जवल, सूर्य जैसे तेज प्रताप वाले होकर, बलीके जैसे शूरवीर होकर जैन जैसे दयालु होकर स्वपरोपकारार्थ आरोग्यतापूर्वक इस पृथिवी पर विचर कर सब जीवोंके तारनेवाले बनें, कलम जियादा कहना नहीं करती इस वास्ते आचार्य श्री १०८ श्रीयुत विजयवल्लभ सूरि महाराजकी जय बोलते हुवे इस अरजीको समाप्त करता हूँ।

फकत—

दास गुलाबचंद ढड्ढा।

(५)

156 | A Harrison Road, Calcutta.

17–12–94.

श्री मान्यवर १००८ श्री आचार्य वल्लभविजयजी महाराज १००८ श्री उपाध्याय श्री सोहनविजयजी महाराज मुनि मंडल जोग कलकत्ते से दयालचंद का वंदना। तार श्रीसंघका आया जिसमें आपके आचार्य वा उपाध्याय पदपर विभूषित होनेकी खबर थी।

श्रीसंघने जो उपाधियाँ आपको दी हैं वह बहुत उचित ही किया क्योंकि बडे गुरु महाराजजीके बाद पंजाब में जरूरत ही थी।

द. दयालचंद।

(६)

१५६ । A हैरीसनरोड
कलकत्ता 17-12-24

श्रीजैन श्वेताम्बर संघ लाहोर जोग लिखी कलकत्ते से दयालचंद का जय जिनेश्वरदेव।

आपका तार मिला। आपके शुभ समाचार पढ़कर बड़ी खुशी हुई कि आप लोगों ने आचार्य पदवी से श्री वल्लभविजयजी महाराज को वा "उपाध्याय पदवी" से श्री सोहन विजयजी महाराज को विभूपित करा। पंजाव देश में ही इस कार्य की होने की निहायत आवश्यकता थी, जो कुछ हुआ, बहुत ही उचित हुआ, आपके इस कार्यपर आप लोगों को धन्यवाद दिया जाता है।

आपका सेवक— दयालचंद।

(७)

श्रीमान् शासनरक्षक पूज्यपाद आगमज्ञाता श्री १००८ श्री विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज की सेवामें लाहोर, अनेकशः वंदना सहित निवेदन कि स्वास्थ्य सुखवृत्ति के समाचार दीर्घ समय से ज्ञात नहीं हुवे, प्रसंगोपात लिखने की

कृपा करें, आचार्यपद समर्पण समय में क्षुद्रात्मा को स्मरण नहीं किया इसका अत्यंत खेद है लेकिन आनंद तो इस बातका है कि पंजाब ने समग्र भारत के जैनसंघकी इच्छा संपूर्ण की, विशेष क्या लिखूँ आनंद असीम है।

छोटी सादड़ी
ता. ११-१२-१९२४ } चंदनमल नागोरी।

(८)

श्रीमद् वीराय नमः।

स्वस्ती श्री लाहोर नगरे महाशुभस्थाने शांत दांत सूर्य-समान तेजस्वी चंद्रसमान शीतल स्वभावी कल्पवृक्षसमान परोपकारी भारंडपक्षीसमान अप्रमत्त संसारी जीवोंको दुःखरूपी समुद्र से पार करने के लिये नौका समान इत्यादि अनेक शुभ गुणगुणालंकृत शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्री श्री १००८ श्री विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज उपाध्याय श्री सोहनविजयजी मुनि श्री सुमति विजयजी पं. विद्याविजयजी, तपस्वी गुणविजय-जी, विचारविजयजी, समुद्रविजयजी, सागरविजयजी, आदि महा-राज साहेब की सेवा में मुंबई से सादड़ी श्रीसंघ की वंदना १००८ वार अभुट्ठिओमी अभ्यंतर सहित अवधारना जी, वि० विनंती साथ लिखना है कि आप श्रीका कृपापत्र नहीं सो आप श्री अमूल्य वक्त लेके लिखने की कृपा करनाजी। वर्षा ऋतुमें कृषाण लोक मेघ की राह देखते हैं उसी तरह, हम भी आप श्रीका अमृततुल्य उपदेशक पत्र की राह देखते हैं। यहाँपर देवगुरु

महाराजजी की कृपासे सुखशांति है। आप श्रीकी सुखसाता की सदा चाहना रखते हैं और आप श्रीने श्रीसंघ के अति आग्रह से आचार्य पद को ग्रहण किया है उसीसे हमको वहोत आनंद प्राप्त हुवा है। देवाधिदेव से हाथ जोड़के यही प्रार्थना हम करते हैं कि ऐसा शुभ अवसर हमको वारंवार प्राप्त हो।

सं. १९८१ पोसवदी २ शनिवार।

द. से. सागरमल की १००८ वार वंदना स्वीकारशोजी.
से. दीपचंद की १००८ वार वंदना ,,
से. सेंसमल की १००८ वार वंदना ,,
से. तेजमल की १००८ वार वंदना ,,
से. सिरदारमल की १००८ वार वंदना ,,

(९)

मुम्बई।
१२-१२-२४

"आनंदित अनुमोदन विनंती पत्रिका।"

पूज्य महान उपकारी १००८ श्री अमर नाम विजयवल्लभ सूरि महाराज के चरण में ली. आपका दासानुदास गुरुभक्ताभिलाषी प्रभु गुण गायक प्राण सुख मानचंद के १००८ वंदना आप चरणमें कबूल करेंगे। शुदि १० मी के दिन मु० श्री वालापुर में उत्सव प्रसंग में मैं गया था, वहाँ सुस्वप्न देखा सुस्वर सब सुने सुवास आई, मन प्रफुल्लित हुआ, अंतरीक जी और भांडुक जी की यात्रा करके आज मुंबई आया। पूज्य पं० ललितविजय

जी महाराज को वंदना काज गया। मन की खुशाली जाहेर की उन्हों की खुशाली और आनंद की क्या वात है? सच्ची गुरु भक्ति का प्रभाव छुपा नहीं रह सकता है। शुभ प्रसंग की सब हकीकत का सारांश पंन्यास जी ने मुझे कहा। सुन कर वहात ही हर्ष हुआ। जो वात न्याय दृष्टि से विरुद्ध पक्षकार भी कुबूल करे उस में दो मत हो ही नहीं सकते हैं, लायक को लायक मान मिलने से मनुष्य तो क्या पर देव भी अनुमोदना करते हैं। पूज्य मुनि महाराजों और सुज्ञ श्रावकों ने इस शुभ कार्य के लिए जो प्रेरणा की है उनको भी धन्यवाद है। पंच महाव्रत धारी साधु मुनिराज मंडल में आपको सर्वोत्तम अध्यक्ष पदवी जो दी गई ह उसको परम पूज्य आचाय महाराज १००८ श्री विजयानंद सूरि महाराज की परंपरा में सुवर्ण अक्षर मय बनाव समझता हूँ और चाहता हूँ कि शासनदेव की सहायता से उस परम पद को आप दे दीप्यमान कर दिखावें।

तथास्तु—

लि० दासानुदास

प्राणसुख मानचंद।

(१०)

जीरा।

१९-१२-२४

सूरिजी महाराज दामे इकबाल हू

अजजानब राधामल्ल ईश्वरदास नथुराम बाबूराम बाद वंदना नमस्कार दस्त बस्ता इच्छामी के पाठ से १००८ वार

मारुज आंके, आप श्रीजीने आचार्यपद की गद्दी को ज़ीनत बखश कर सब पर बहुत महरबानी की है, हम आपके अज़हद मशकूर हैं और आपको बहुत बहुत मुबारकवाद देते हैं और शासन देवता से दुआ करते हैं कि आप श्रीकी जिन्दगी बहुत लम्बी हो, और जैनसमाज और जैनशासन की दिन दुगनी रात चौगुनी तरक्की कर सकें।

(११)

पूज्य मान्यवर गुरुजी विजयवल्लभसूरिजी की पवित्र सेवा में नागपुर से प्यारेलाल की वन्दना स्वीकृत हो, कुछ दिन हुए भाई दौलतराम का पत्र मिला था, जलसे का तमाम हाल मालूम हुवा, और आपको आचार्यपद से भाइयों ने विभूषित किया समाचार पढ़कर अत्यंत हर्ष हुवा, और इस दास की तरफ से वधाई स्वीकृत हो।

भवदीय दासानुदास
प्यारेलाल जैन
१७-११-२४

(१२)

पटियाला,
नथुरामजैनी अग्रवाल।

श्रीमान् पूज्य श्री १००८ श्री श्री आचार्य महाराज श्री मुनि वल्लभविजयजी महाराज वा श्री उपाध्यायजी महाराज श्री श्री मुनि सोहनविजयजी महाराज और सब मुनि राजगान के

चरणों में विनय पूर्वक निहायत आदाव से वंदना नमस्कार मालूम हो, प्रतिष्ठा का हाल सुनकर दिलको बहुत आनंद और खुशी हुई और मुझको यह सुनकर और अजहद खुशी हुई कि श्रीसंघ पंजाब ने आपको ही अपनी सर परस्ति के लिए आचार्य पदवी और सोहनविजयजी महाराजको उपाध्याय पदवी दी है, वेशक आप इसी लायक हैं ।

तोताराम दीनदयाल दुर्गादास की तरफसे आपके चरणोंमें नमस्कार पहुचे ।

२१—मग्गर—१९८१

(१३)

रियास्त, मलेरकोटला

मुन्शी करीमबखश ।

ता. ७-१२-२४

१००८ श्री श्री श्री श्री श्री, श्रीमद् विजयवल्लभ सूरि धर्माचार्यजी महाराजके पवित्र चरणों में इस दास की विनंती मंजूर होवे, मुबारक हो मुबारक हो मुबारक हो कि हुजूर के कमल चरणोंसे आचार्य पदवी की गद्दी फेजयाव हुई तमाम दुनिया को उसकी खुशी है ।

(१४)

श्री

२४५१

सि० श्री लाहोर महा शुभस्थाने पूज्य परमदयाल ज्ञान सागर पंचाचार पालक षट्त्रिंश गुणे करी सुशोभित श्री

१००८ श्री श्री मद् आचार्य श्री श्री विजयवल्लभ सूरि जी आदि मुनि मंडल की सेवामें—

आसपुर (मेवाड) से आपके चरण कमलोपासक तारावत चंपालाल–निहालचंद आदि परिवार की द्वादशावर्त्त वंदना विनय स्वीकारियेगा। जैनपत्र आया उसमें मगसर सुदि ५ साडा सात बजे श्री जी को श्री संघने योग्य सो टचके सोनेमें हीरे माफिक पद समर्पण के समाचार पोस सु० ५ को वांचकर अत्यानंद हुआ, वारंवार श्री संघका धन्यवाद है, इस देशमें ४०० घर १००० मनुष्य हैं वो सर्व एक आवाज से धन्यवाद देते हैं श्री संघको–और आप तो गुणवान ही हैं, सेवकों को समाचार १ माह के वाद मिले ऐसे कर्मवश पड़े हैं कि कर्मों की वलिहारी..........मिति पोप शुदि १०–१९८१ निहालचंद की वंदना सविनय द्वादशावर्त्त स्वीकारियेगाजी—

श्रीयुत उपाध्याय जी श्री १०८ श्री सोहन विजयजी महाराज जी से मेरी सविनय वंदना अभुट्ठिओमि अभितर सहित स्वीकारियेगाजी।

(१५)

ॐ सोजत

ता. ७–१–२५

श्री श्री १००८ श्री श्री विजयवल्लभ सूरीश्वर जी महाराज की चरण सेवामें सोजत (मारवाड) निवासी समग्र श्री शांति वर्धमानजी तथा श्री महावीर लायब्रेरी के जैन श्वेताम्बर समस्त संघ नम्रवंदनाके साथ अपने हार्दिक प्रेम का प्रकाश इस

माफिक करते हैं कि, पंजाव समग्र श्री जैन संघ ने एकत्र होकर लाहोर जैसे केपिटल स्थान में आप श्री को सूरि पद से विभूषित किया वह पत्र हमारे यहां पहुंचा, सो तो संघ की भक्ति गुरु प्रति होनी ही चाहिये, परन्तु आप श्री को स्वर्गवासी श्री मद्विजया-नंद सूरिमहाराज ने पहिले ही से यह भार आपके लिये रोशन किया हुआ है, वैसे ही आप श्री कृतज्ञता सेवा धर्म, स्व सिद्धांत प्रतिपादन के भावों से निभ्रन्ति (?) होते हुए सानंद यहां एकत्र होकर पंजाव के पत्र को सुनते हैं। हम आपके अनुक्रम विधान कार्य निश्चितात्मा पर प्रसन्नता प्रगट करते हैं कि आप इस भारतवर्ष में स्वर्गवासी रीश्वर जी के बाद आनंद से समय समाप्त कर इस पदवी को सुशोभित कर रहे हैं। इस अवसर पर हमारे हृदयांकित विचार आप श्री की तरफ आकर्षित हैं। विविध प्रकार से आपके शासन काल में स्वयं परिज्ञान जो कुछ कार्य वाई करते हुए, न्याय तथा शासन सेवा के निमित्त हित दरसाया है उसकी प्रशंसा हम पूर्णतया नहीं कर सकते, प्रत्युत हम में से कई शखसों ने आप से धर्मोपदेश सुनने का आनंद और सौभाग्य अनुभव किया है, और इसी से हम आप की न्याय तत्परता शैली से पूरण परिचित हैं।

जिस प्रेम और निष्पक्ष भावों से संसार के प्राणिमात्र पर आपकी करुणा दृष्टि हो रही है उसके लिए हम आपकी हार्दिक कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं।

जिन मनुष्यों को आपके पूर्ण परिचय का सुअवसर मिला

है उन हृदयों का आपके सामाजिक नैतिक तथा धार्मिक जीवन के सभ्य व्यवहार ने अतिशय आकर्षित कर लिया है। यहाँ पर श्री महावीर लायब्रेरी तथा शांति वर्धमान जी देव की पेढी तथा श्री वर्धमान जैन कन्या पाठशाला की स्थापना आपके उपदेश प्रेरणा का ही कारण है कि जिनका निरीक्षण राज के बड़े ओफिसरों ही ने नहीं वरन श्रीमान् His Highness Maharaja Sahib Bahadur of Jodhpur और कई मुनिराजों ने संस्थाओं में पधार करके प्रजाहित कार्य में प्रेम प्रदर्शित किया है, अतः आपकी सादगी का साधारण जीवन वर्णन किया जाय तो एक दफतर की आवश्यकता है। आप श्री मान पूज्यवर हमारे हिवडे के हार और एक जैन संसार में अनुकरणीय आचार्याधिराज हैं। हम को सम्पूर्ण आशा है कि आपके आगामी जीवन में भी हमारे साथ सहानुभूति वनी रहेगी, और उसके प्रताप से हमें उज्ज्वल सफलता प्राप्त होती रहेगी। आपकी शासन सेवासे भारत वर्ष की प्रजा का उपकार और उद्धार होगा, चंद्रमा का मुख विश्व सेवा से ही उज्वल है। आप पञ्चमी गति गामी मुनिराजों में केंद्र हो, यदि आपकी शक्ति का संघठन हमारे अंदर न होता, तो आज मारवाड के गाय भेंस लरडी वकरी के अभय दान में आप की वनाई संस्था सौभाग्य प्राप्त करने का गौरव रखती है वह अवसर कहाँ था, आप श्री की चरण सेवा में रहने वाले मुनि मंडल को यहाँ का संघ वंदन लिखाता है और आशा रखता है, कि यही मंडल जगत को एक्यता का पाठ समझा कर पालन करने में चमत्कारिक शक्ति फैलावेगा।

भंडारी चैनराज, खीवराज, मुता मूलचंद रातड़ीया रतनचंद व हीरालाल सुराणा मुता जोरावरमल्ल कोचर किशोरीलाल, रीखवदास मदनराज कुशलराज आदि सकलसंघकी वंदना १००८ वार अवधारशोजी।

सद्गृहस्थों के अभिनंदनपत्र [गुजराती.]

श्रीजैन आत्मानंद सभा भावनगर।

ता. ८-१२-१९२४ मागसर सुदि १३ सोमवार,

अनेक गुण गणालंकृत परमकृपालु पूज्य पवित्र आचार्य महाराज श्री विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराजनी पवित्र सेवा मां लाहौर.................. विनंति पूर्वक अपूर्व आनंद सहित जणाववा रजा लइये छीये के आ सभानी लांबा वखतनी अभिलाषा आकांक्षा श्री पंजावना श्रीसंघे आप कृपालु श्री ने आचार्य पद आपी ने पूर्ण करी छे ते माटे पंजावना श्रीसंघ ने लाखो धन्यवाद देवा साथे आ सभा पोतानो पण अपरिमित आनंद हर्षना आवेष पूर्वक जणावे छे, साथे परमात्मानी पवित्र अंतः करण थी प्रार्थना करे छे के आप आ आचार्य भगवाननुं उच्च पद दीर्घायु थई भोगवो अने शासन सेवा करवा निरंतर विशेष भाग्यवान थावो! वस!—हृदयना पूर्ण उमळका साथे आ सभा पोतानो आनंद अने भावना आ रीते आपनी सेवामां रजू करे छे।

प्रथम आचार्य पदवी देवा अने अपाया पछी हर्ष जाहेर

करवा—अभिनंदन आपवा एम वे वखत आ सभा तरफथी श्रीपंजावना श्रीसंघ ने तारो करवामां आव्या हता ते सहज जाणवा माटे लख्युं छे।

लि० नम्रसेवक

गांधी वल्लभदास त्रिभुवनदास

(आखी सभानी वती) नी १००८ वार वंदना अवधारशोजी.

लि० सेवक—गुलावचंद आनंदजी नी १००८ वार वंदना अने आ पदवीनो आनंद स्वीकारशोजी।

(२)

श्रीमहावीर जैन विद्यालय-मुंबई.

ता. ३-१२—१९२४

अनेक गुण गणालंकृत श्री मन्मुनिमहाराज श्रीआचार्य श्री विजयवल्लभ सूरिजी नी पवित्र सेवा मां लाहोर आप श्रीने आचार्य पदवी श्रीसंघे पंचमीना रोज आपी ते संबंधमां अमारी मेनेर्जींग कमेटी पोतानो संतोष जाहिर करवा वंदना पूर्वक मने फरमास करे छे के आप आवा पदने सर्व रीते योग्य छो. आखी मेनेर्जींग कमेटी नी वंदना स्वीकारशोजी. श्रीसंघे आपने आवुं अनुपम मान आपी पोताना गौरवमां वधारो कर्योछे।

श्रीमहावीर जैन विद्यालयनी मेनेर्जींग कमेटीना हुकमथी सेवक मोतीचंद गिरधर कापडीया नी वंदना अवधारशोजी।

(३)

श्रीवीरायनमः

श्री माहावीर जैन विद्यालयना विद्यार्थीओनी मळेली आजनी सभा प्रातः स्मरणीय परम पूज्य मुनि महाराज श्री १००८ श्रीमद् वल्लभविजयजी श्रीने पंजाब ना श्रीसंघे बहुमान पूर्वक अर्पण करेल आचार्य पदवी माटे परमोल्लास प्रदर्शित करे छे, जैन समाज ना जीवन रूप अने संस्कृति ना बीज रूप श्री महावीर जैन विद्यालय ना संस्थापक तरिके ना एओ श्री ना अविरत परिश्रमो माटे मात्र शब्दोथीज जे कांइ आभार अने ऋय भाव नी लागणी दर्शावी शकाय ते प्रस्तुत प्रसंगे अंतः करण पूर्वक एओ श्री ना चरण कमल मां नम्रता पूर्वक अर्पण करे छे।

मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमी
वी० सं० २४५१

लि. श्री महावीर जैन विद्यालयना
विद्यार्थी गणनी
सविनय नम्र वंदना:

(४)

श्री जैनवनिताविश्राम।

सुरत ता० ९-१२-१९२४

परम पुज्य आचार्य महाराज श्री वल्लभविजय जी साहिब ....वि० आप श्री ने आचार्य पदवी नी वात जाणी अमो आप ने अभीनन्द आपीए छीए.

ल० जैन वनिताविश्राम ना
व्यवस्थापक.

(५)

मीयांगाम

ता० १२-१२-२४

आचार्य महाराज श्री श्री श्री श्री श्री वल्लभविजय सूरि जी आदि ठाणा मु० लाहौर ली० शा० शिवलाल छगनलाल नीवंदना १००८ वार स्वीकारशोजी वी० अमे देवगुरु महाराज नी कृपा थी कुशल छीए ली० आप श्री ने समस्त जैन श्वेतांवर संघे आचार्य पदवी अर्पण करी तेथी हमारा अंतर ना ऊंडा अभीनंदन छे.

(६)

मीयांगाम

ता० १२-१२-२४

आचार्य श्री श्री श्री श्री श्री वल्लभविजय सूरि तथा आदि मुनिराज मु० लाहौर ली० दलाल शेठ दलसुख गुलावचंद नी वंदना १००८ वार स्वीकारसोजी ली० मारा अंतर नो जे विचार घणा वखत परनो हतो वे आशा मारी सफल थई तेथी घणोज आनंद थयो. आप श्री ने आचार्य पदवी श्री जैन श्वेतांवर संघे अर्पण करी ते मां मारी सहानुभूती छे. आजेज अमोये तार करयो छे।

(७)

श्रीमहुवा यशोवृद्धि जैन बालाश्रम।

ता. १६-१२-१९२४

स्वस्ति श्री लाहोर महाशुभस्थाने पूज्याराधे परमपूज्य

परमोपकारी अनेक गुणोंकरी विराजमान पूज्य आचार्य महाराज श्री श्री श्री वल्लभविजयजी तथा उपाध्याय महाराज श्री सोहनविजयजी महाराज साहिब तथा मुनिमंडलनी अखंड पवित्र सेवामां श्री महुवाबंदर थी ली. सेवक गुलावचंद माणकचंद पारेख (सु प्री. यशोवृद्धि जैन वालाश्रम) ना १००८ वार वंदणा अवधारशोजी. सविनय लखवानुं के--आप साहेब ने आचार्यपद अने महाराज श्री सोहनविजयजीने उपाध्यायपद मल्यु, जाणी खुशी थयो छुं साथे साथे केळवणीना कार्यो करो छो तेथी विशेषकरी आपने प्राप्त थयेल पदवी ने वधारे उज्वल करो, तेवी मारी श्रीवीर प्रभु पासे याचना छे।

आप श्रीए श्री महावीर विद्यालय, जुनागढ, श्रीदेवकरण मूलजी जैन बोर्डिंग, पालनपुर जैन बोर्डिंग, वीकानेर हाई स्कूल, अंबाला हाई स्कूल, पंजाब मां साडात्रण लाखनुं केलवणीफंड गोलवाड मारवाड माटे एक लाखनुं फंड विगेरे घणे ठेकाणे आप श्रीए केळवणी नो उद्धार कर्योछे, ते वात विन संदेह छे।

लि. सेवक
गुलावचंद माणक चंद महुवाबंदर काठियावाड.

(८)

ॐ

श्री जैनशासननभोगणदीप्तदिप्तिः,
मिथ्यातमोविघटनाय समृध्य मूर्तिः ।

स्याद्वाद पूर्ण जिनपागमपारदृश्वा,
सूरीश्वरो विजयताम् मुनिवल्लभोऽयम् ॥ १ ॥

स्वस्ति श्री पार्श्व जिनं प्रणम्य मुनिवृन्द चरण रज परि पुनिते महाशुभस्थाने लाहोर नगर मध्ये शांत, दांत, त्यागी वैरागी, परमप्रभावक, शासनधोरी मुनिगणमार्तंड, शासन सम्राट्, वादिगजकेसरी, निर्ग्रंथचूडामणि शांतमूर्ति, कलिकाल कल्पवृक्ष, विद्वद्रत्न, व्याख्यान कला कोविद, अनेक सिद्धांत पारगामी, श्री जैन शासन प्रबोधपंकज सहस्ररश्मि सूरिपुरंदर, सूरिचक्र चक्रवर्ति, इत्यादि अनेक गुणालंकार विभूषित पूज्यपाद आचार्य महाराज श्री विजयवल्लभ सूरीश्वर जी ना चरणारविन्द युग्ममां, श्रीवेरावल बंदर थीं ली० सूरि दर्शनोत्कंठित समस्त संघनी १००८ वार वंदणा अवधारशो जी, विशेष अमने जाणीने आनंद थयो छे के श्री संघे लाहोर मां आप साहेब ने सूरीश्वरनुं पद प्रदान कर्युं छे अने ते पद आपनी शासन सेवानी प्रवृत्ति, शासन सेवानी निशदिन उत्कंठा, जैन शासन नो विजय वावटो फरकाववानी आपनी अभिलाषा अने आपना उत्तम स्वभाव मां सोनुं अने सुगंध जेवी योग्यता ने पामे छे, अमो खरे खर मानी शकीये छीये के श्री संघे योग्य महात्मा ने योग्य स्थान आप्युं छे तेथी आप श्री ने समर्पेल सूरि पद सवथा योग्यज छे अने ते शुभ खबर मलतां अमे बहु आनंदीत थया छीये, विशेष आप साहेबजी अमोघ उपदेश द्वारा जगत ने पावन करता सौराष्ट्र

भूमि मां पधारी अमो ने दर्शन आपी कृतार्थ करशो ए शुभ आशा राखी आपने अभिनंदन आपीए छीए ।

वीर निर्वाण संवत २४५१ मौन एकादशी.

ॐ शांतिः ली० अमे छीए दर्शनाभिलाषी सेवको श्री बेनातट जैन संघ ।

शा० खुशाल करमचंद, द० देवकरण खुशालनी वंदणा अवधारशो जी ।

शा० जेचंद खीमजी द० पोते वंदणा अवधारशो जी ।

शा० हंसराज वशन जी नी सही छे द० पोते वंदना १००८ वार अवधारशो जी ।

शा० वीरजी रायजी द० गीरधर वीरजी नी वंदणा अवधारशो जी ।

वशा, सोमचंद खीमजी, द० वशा, नेमचंद माणकचंद नी वंदणा अवधारशो जी ।

(९)

मुम्बई ।
२—१२—२४

परम पुज्य परम कृपालु परमोपकारी अनेक शुभ गुण गणालंकृत श्रीमाद्विद्वर्य आचार्य महाराज श्री श्री श्री श्री श्री १००८ श्री मान् विजयवल्लभ सूरि जी महाराज तथा उपाध्याय जी श्री सोहन विजय जी महाराज सपरिवार योग्य श्री लाहोर.

मुंबई थी ली० दासानुदास मणिलाल नी वंदना १००८ वार अवधारवा कृपा करशोजी । गई काले सांजना श्री संघ

पंजाब नो तार आचार्य तथा उपाध्याय पदवी नो मळ्यो सर्वने घणो आनंद थई रह्यो छे।

दासानुदास—
मणिलाल सूरजमल.

(१०)

मुम्बई।
ता. ७–१२–१९२४ रविवार

पुज्य आचार्य महाराज श्री वल्लभ विजय जी नी पवित्र सेवा मां लाहोर।

आप साहिबने गया सोमवारे आचार्य पदवी आपवा मां आवी ते खबर सांभळी घणो आनंद थयो छे. आप ये पद ने तद्दनज लायक होवा छतां स्वीकार करता न होता, परंतु आप साहिब हंसविजय जी महाराज अने कान्तिविजय जी महाराज नी आज्ञा मांज चालता होवा थी तेमना दबाण ने लईनेज आ पद स्वीकार कर्युं छे ते आपना वडीलोये वखत ने अनुसरी काम कर्युं छे।

मूलचंद हीरजीनी
वंदना स्वीकारशोजी.

(११)

पालणपुर।
ता० १–१२–२४.

स्वस्ती श्री लाहौर महा शुभ स्थाने आचार्य महाराज श्री वल्लभविजय जी महाराज साहेब ना चरणं कमलमां अत्र श्री

पालणपुर थी लि० श्री संघ समस्त नी वंदना १००८ वार अव-धारसोजी. आज रोज मुंबई थी मणीलाल सूरजमल्ल ना तार थी अमारा जाणवामां आव्युं छे के पंजावना श्री संघ तर्फथी आजे आपने आचार्य पद आपवानुं छे आ समाचार सांभळी श्री संघ मां घणोज आनंद थयो छे अने आ संबंधी श्री पंजाव ना श्री संघे घणुंज उत्तम कर्युं छे तेथी अत्रे ना श्री संघ तर्फ थी तार १ मुवारकवादी नो पंजाव ना श्री संघ उपर कर्यो छे।

(१२)

ता. ३-१२-१९२४

स्वस्ति श्री लाहोर महाशुभस्थाने पूज्याराधे सर्वेशुभोपमा लायक आचार्य ना छत्रीश गुणेकरी विराजमान आचार्य महा-राज श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री वल्लभविजय जी महाराज नी पवित्र सेवामां मुंबई वंदर थी ली० आपना चरण कमल ना दास आज्ञांकित सेवक पारेख त्रीभोवन मलुकचंद कागदी नी वंदणा १००८ वार अवधारशो जी, विशेष विनंती साथ लखवानुं के आप साहव ने मागसर सुदी ५ ने दिवसे सकल संघनी समक्ष आचार्य पदवी आप्या ना शुभ समाचार सांभळी अमो घणाज खुशी थया छीये।

१९८१ ना मागसर सुदि ८ वार वुधवार

द० सेवक त्रिभुवन मलुकचंद नी वंदना १००८ वार अव-धारशोजी. अमारा भाइ न्यालचंद देवजी नी वंदना १००८ वार अवधारशो जी. आजे घाटकोपर महाराज साहव पासे गयो

हतो त्यां संघ तरफ थी देरासर जीमां पूजा श्रीफल नी प्रभावना करवा मां आवी हती।

(१३)

ता० ४-११-१९२४

परम पूज्य आचार्य महाराज श्री १००८ श्री वल्लभविजय जी महाराज साहेब तथा श्री संघ समस्त मु० लाहोर वडोदरा थी लि० वैद्य बापुभाई हीराभाई तथा वैद्य मणिलाल नी १००८ वार वंदणा स्वीकारशो जी बाद लाहोर ना श्री संघनो तार आज रोजे मळ्यो तेनी हकीकत जाणी सर्वे श्री संघ खुशी थयो छे, आप श्री ने आचार्य पदवी मळी तथा मुनि (पंन्यास) सोहन विजय जी ने उपाध्याय पदवी आपी, पंजाब ना संघे आप साहेबो नी जे अपूर्व भक्ति करी ते बद्दल लाहोर ना संघ ने धन्यवाद घटे छे. आप श्री आचार्य ने माटे सर्वोत्तम लायक छो तेथी आप जेवा लायक ने लायक पदवी मळवा थी अत्रे नो संघ घणोज खुशी थयो छे, संघ समस्त ना तरफ थी तार आज रोजे कर्यो छे एटले अमे जुदो तार कर्यो नथी

आपना कृपा कांक्षी—

बापुभाई वैद्य ना सपरिवार नी वंदणा स्वीकारशो जी।

(१४)

श्री

वडोदरा.

ता. ८-१२-२४

परमपूज्य आचार्यजी महाराजजी साहेब श्री विजयवल्लभ

सूरीजी महाराजजी साहेब. तथा श्री उपाध्यायजी महाराज साहेब आदि मुनि मंडलनी पवित्र सेवमां श्री वडोदराथी ली० आपनो सेवक चिमनलाल विगेरेनी वंदना १००८ वार अवधारसोजी आप साहेवना दर्शननो पत्र घणाज दिवसथी नथी तो सेवक पर पत्र लखवा आपना कोमल हस्तने जरा वार तस्दी-देशोजी. आप साहेब आचार्य पदवी पाम्या छो तेम उपाध्यायजी महाराज सो. वि. थया छे जे थी हमारा दिल मां हर्ष रेतो नथी हमने तो शुं पण वडोदरानो श्री संघ घणोज खुशी थई गयो छे।

(१५)

वदि ८ वार शुक्र

स्वस्ति श्री लाहोर मध्ये छत्रीस गुणधारक वाल ब्रह्मचारी महाव्रत धारी जीवदया गुण भंडार श्री श्री श्री आचार्य महाराज श्री वल्लभ सूरीश्वर तथा उपाध्यायजी सोहनविजयजी वीगेरे साधु मंडल, सुरत वंदरथी ली० तलकचंद दयाचंद तथा धर्मचंद वीगेरेना १००८ वार वंदना आपना चरण सेवामां कबूल करशो,................ विशेष लखवानुं के भावनगरनुं चोपानीयुं आत्माराम सभानुं वांची घणोज आनंद थयो छे. तेमज जैन पेपर वांच्युं तथा प्रजामित्र वांची वाकेफ थया छीए अती आनंद थया छीए, अमो तुमारो उपगार घडी-पण वीसरता नथी, तुमो उपगारी मुनि महाराजनी धर्मलाभनी राह जोतो बैठो छुं।

रतनचंदना वंदना
वांचशोजीः

(१६)

ता १३-१२-२४

स्वस्ती श्री लाहोर महा शुभस्थाने पूज्याराधे सर्वे शुभ उपमां लायक पंच महाव्रतधारी आचार्य महाराज श्री श्री श्री वल्लभविजयजी तथा आदि ठाणा सर्वेनी पवित्र सेवामां एतान श्री मुंबइ बंदरथी ली० सेवक छोटालाल मोतीचंद ना तथा सह कुटुंब ना १००८ वार वंदना स्वीकारसोजी. जत लखवानुं जे आपनी आचार्य पदवी सांभळी अमो तथा सह कुटुंब वहुत खुशी थयो छीये. वीजुं श्री हमेश थी सासन नी सेवा वजावता आव्या छो अने हवे थी विशेप वजावशो अेवी पूण आशा छे, शासनदेव आपनी कीर्ति ने तथा जिन्दगी ने आवाद राखो। वीजुं आचार्य महाराज श्री श्री श्री आत्माराम जी नी पण अेज मननी इच्छा हती, मुनि महाराज श्री वल्लभविजयजी शासननी रक्षा करशे, तेओ श्री नी मननी इच्छा श्री संघे पूरी पाडी छे, जो के आपने आचार्य पद लेवानी इच्छा न हती, पण संघना आग्रहथी तथा प्रवर्त्तकजी महाराज श्री कांतिविजयजी नी तथा हंस विजयजी नी आज्ञा थी संघनो वहुज आग्रह होवा थी लीधेल छे, शासन देवता आपनी रक्षा करो एम हुं प्रभु पासे मांगुं छुं।

(१७)

सुरत—वडा चउटा.

ता० ३-१२-२४.

मु० लाहोर मध्ये पुज्यपाद आचार्य श्री वल्लभविजय जी तथा उपाध्याय श्री सोहन विजयजी आदि ठाणा जोग श्री

सुरत थी लि० सेवक शा० फकीरचंद खीमचंद तथा नानक-चंद भाई चंद नी वंदना १००८ वार अवधारशो जी.

जत लखवानुं के लाहोर वगेरेना तार समाचार कांति विजय जी ना उपर जामनगर मध्ये आवेला ते वखते हुं मारा पुण्योदय थी अचानक जामनगर गयेलो हतो, ते वखते आप नी आचार्य पदवी ना समाचार वांची घणोज आनंद थयो छे, दरेक तार मारा वांचवा मां आव्यो हतो तेथी विशेष आनंद थयो हतो।

ली० सेवक नी वंदना स्वीकारशो।

(१८)

ॐ

श्री लाहोर परम पुज्य गुरु महाराज श्री वल्लभ विजय जी आदि महाराज नी पवित्र सेवा में भावनगर बंदर थी ली० आप नो चरण उपासक सेवक मास्तर माणक लाल नानजी भाई तथा ची० भाई बाबूराम तथा श्राविकादि नी १००८ वार वंदणा स्वीकारशोजी. आज रोज श्रीजैन आत्मानंद सभा उपर अत्रे तार हतो तेथी जाण्युं जे आपने तथा पंन्यास श्री सोहन विजयजी ने श्री आचार्य अने उपाध्याय महाराज नी पदवी श्रीजैन संघ तरफ थी अर्पण करवा मां आवी ते जाणी परम आनंद थयेल छे, आप ते पदवी ने खरेखर लायक हता अने ते छेवटे पदवी आपवामां आवी तेथी अति हर्ष थयेल छे.

द० पोते ता. ४-१२-२४ गुरु

(१९)

मुंबई.
१-१२-२४.

परम पुज्य परमोपकारी सदगणालंकृत श्रीमद् मुनि महाराज श्री १००८ श्री वल्लभविजयजी नी पवित्र सेवा मां मु० लाहोर।

ली० मुंबई थी श्रावक लल्लु भाई गुलाबचंद हरिचंद मगन लाल ना सविनय १००८ वार वंदना स्वीकारशो.........
वळी आप जेवा परमोपकारी अनेक शुभ गुणालंकृत प्रातः स्मरणीय मुनिराज ने आजना मांगलीक दीवसे श्रीजैन शासन ना स्थंभ रूप श्रीमद् जैनाचार्य नी पद्वी श्री लाहोर ना संघे आपवानी जे उत्तम तक मेळवी छे, ते जाणी अमोने अत्यंत आनंद थयो छे, आप श्री जेवा उत्तम चरित्र ना धारनार गुणी मुनि राज ने जैनाचार्यनी पदवी आपवा मां आवी छे ते घणुंज योग्य थयुं छे. आ समाचार जाणी अत्रे सर्व ने घणो आनंद थयो छे, परमात्मा प्रत्ये अमारी एटलीज प्रार्थना छे के आप श्री जेवा गुणी अने परमोपकारी मुनि राज दीर्घायुष्य भोगवी जैन शासन नी कीर्तिमां वधारो करे. अस्तु !

द० मगनलाल ना १००८ वार सविनय वंदना अवधारशोजी.

(२०)

श्री पार्श्वजिन प्रणम्य श्री लाहोर नगरे, शांत दांत त्यागी वैरागी शासनोद्धारक आदि अनेक शुभ गुणालंकृत पूज्य आचार्य महाराज श्री श्री १००८ श्री विजय वल्लभ सूरीश्वर जी महाराज आदि समस्त ठाणा नी पवित्र सेवा मां योग्य,

श्री मुंबई बंदर थी ली. चीमनलाल जी प्रतापजी विगेरे नां १००८ वार वंदना अवधारशोजी।

विशेष आपे मगसर शुद ५ रोज आपनी इच्छा न होवा छतां अनेक मुनिवर्य अने श्रावक समुदायना आग्रह थी आचार्य पद अंगिकार कर्या ना समाचार सांभळी अमो अति आनंदित थया छीए।

चीमनलाल नी वंदना.

मगसर सुदि १० शुक्रवार द० सेवक छगनलाल पानाचंद नी १००८ वार वंदना अवधारशो जी।

(३१)

मुंबई.

ता० ११-१२-२४

स्वाति श्री लाहोर महा शुभ स्थाने पुज्याराधे परम पुज्य ....शासनोद्धारक जैन धर्म प्रवर्तक एवा अनेक गुणे करी विराजमान श्री मद् आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरि महाराज तथा आदि मुनि महाराज समस्त जोग श्री मुंबई थी ली० आपना दर्शनाभिलाषी आपना चरणकमलनी सेवा ना अभिलाषी सेवक खंभातवाळा (चोकशी) कस्तूरचंद मगनलाल तथा आपना सेवक उजमसी नी वंदना १००८ वार अवधारशो जी.

अने आप साहिबनी आचार्य पदवी ना समाचार सांभळी अत्यानंद थयो छे.

आपना सेवक कस्तूर नी वंदना १००८ अवधारशोजी

मगशर शुद १५ गुरुवार..

(२२)

पुज्य आचार्य सूरी जी वल्लभ विजयजी उपाध्याय सोहन विजय जी आदि ठाणा।

मुंबई थी ली० नाना भाई बेन रुकमणी परिवार सहित १००८ वंदना अवधारशोजी।

आपने संघे आचार्य पदवी आपी ते जाणी अमारा मनने घणा हर्ष पूर्वक आनंद थयो छे, आचार्य पदवी थवानी ते अत्रे कोईने पण खबर न होती श्रीसंघ ना तार थी खबर थई छे आनंद थयो छे। ता. २२-१२-२४

(२३)

स्वस्ति श्री लाहोर महा शुभ स्थाने अगणित गुण गणालंकृत गात्र परम पात्र मुनि महाराजाओ ना सिरताज छत्रीस गुणेकरी विराजमान आचार्य महाराज श्रीमान् विजयवल्लभ सूरि जी महाराज सपरिवार नी सेवा मां।

मुंबई थी ली० आपना आज्ञाकारी सेवक पानाचंद प्रेमचंद तथा मोहनलाल पानाचंद तथा पदमशी पानाचंद आदि सकल परिवार नी वंदना १००८ वार अवधारशोजी.

आप साहेबनी आचार्य पदवी ना समाचार मने बहुज मोडा मळ्या छे, तेथी तार करावी शक्यो नथी. आपनी आचार्य पदवी थी आखा संसार ने अपार हर्ष थयो छे, स्वर्गवासी श्री आत्माराम जी महाराजनी हयाती थीज आप भाव थी तो आचार्य छो, द्रव्य थी संसार नी रूढ़ी प्रमाणे हमणा आप

आचार्य थया छो ते वहुज खुशी नी वात छे. आप चिरकाल सुधी जीवो, शासन नी ध्वजा फरकावो.

मिति मागशर वद नोम रविवार.

सेवक खीमचंद देवजी नी वंदना १००८ वार अवधारशो. पानाचंद प्रेमचंद नी वंदना १००८ वार स्वीकारशो.

(२४)

मुंबई

१९-२-१९२४.

श्रीमद् महाराज श्री श्री श्री आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरीश्वरजी तथा उपाध्यायजी श्री श्री सोहन विजयजी आदि ठाणा, मुंबइथी ली० सुश्रावक गुलावचंद सोभागचंद तथा अमारा माताजी परसनवाई तथा सरस्वतीवेन विगेरेनी वंदना १००८ स्वीकारशोजी.......... आप साहेव ने लाहोर ना संघे आचार्य पदवी आपी ते जाणी हमो घणाज खुशी थया छीए. आपश्रीने हमोए तार कर्यो हतो ते मळ्यो हशे।

* ली. गुलावचंद सोभागचंद ना १००८ वंदना स्वीकारशो

(२५)

मुंबई

मौन एकादशी

वन्दे जिनवर्धमानम्.

सूरि श्रीवल्लभमानंदम् वन्दे प्रातःस्मरणीय सर्वोत्कृष्ट सम-

* इस पत्रमें तारका भेजना लिखा है परन्तु नहीं मालूम क्या कारण ? तार मिला नहीं है।

यज्ञ, परम पूज्य आचार्य महाराज श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वरजी नी पवित्र सेवामां निवेदन विशेष श्रीपंजाब समस्त श्रीसंघे आप पूज्यश्रीने संपूर्ण रीते योग्य एवी श्रीसूरि पदवी थी अलंकृत करेल छे ते योग्यज थयुं छे. तेने माटे हुं मारो श्री संघ प्रत्ये हार्दिक आनंद जाहेर करुं छुं।

लि० आज्ञांकित सेवक
भोगीलालना सविनय वंदना.

(२६)

सुरचंद० न० महेता.
मीती मारगसरवद १ (गुजराती)
१३१ भुलेश्वर रोड शुक्रवार
मुंबई नं० २

परम पूज्य पंच महाव्रत नाधारणहार छत्रीस गुणकरी वीराजमान श्री १००८ श्री आचार्य महाराज श्रीविजयवल्लभ सूरीश्वरजी तथा श्री उपाध्याय महाराज श्रीसोहनविजयजी महाराज तथा पंन्यासजी श्रीविद्याविजयजी गणी तथा महातपस्वीजी श्रीगुणविजयजी आदि ठाणा, जोग लाहोर, मुंबई थी श्रावक सुरचंद महेतानी वंदना १००८ वार चरण कमलमां अवधारशो जी. आप सर्वे साहबो सुखसातामां हेशोजी, अत्रे श्रीगुरुदेव महाराजनी कृपाथी कुशल मंगल वरते छे जी, आप साहेबने श्री आचार्य पदवी स्थापन थइ ते जाणी अति आनंद थयो छे, आप श्री दीर्घ आयुषी थाओ श्रीजैन शासननी उन्नति करता आव्या छो अने विशेष करो, लायक ने लायक पदवी स्थापन थइ तेथी श्री संघमां घणो आनंद फेलाणो छे।

(२७)

मुंबई ५-१२-२४

स्वस्ति श्री शहर लाहोर मध्ये पंच महाव्रतधारी छत्रीस गुणेकरी विराजमान छः काय रक्षक शीलांगधारी शांत दांत गांभीयादिक गुणे विराजित, विद्याविशारद, शासन रक्षक परमोपकारी श्री श्री श्री १००८ आचार्य श्रीविजयवल्लभ सूरीश्वरजीनी पवित्र सेवामां मुंबइ बंदर थी ली. जवेरी सारा भाई भोगीलाल नी १००८ वार वंदना स्वीकारशोजी।

विशेष आप साहिव ने आचार्य पद थी विभूषित थयेला जाणी अमने घणो आनंद उत्पन्न थयो छेः आपना जेवा रागी अने ममत्व रहित साधु महात्मा ने कोई पण पदवीनी अभिलाषा होती नथी, छतांपण आपनी विद्या तथा गुणो जेनो विकस्वर घणाय लांवा वखत थी थयेल छे, तेमज आ महान पद माटेनी आपनी योग्यता घणा लांवा वखत थी थयेली छे तेनो आज व्यवहारी रूप देखी अमने अति आनंद थयो छे आप जैन शासनना एक धोरी महात्मा छो अने खास करी आपना महान गुरुदेव ने पगले चाली पंजाब जेवी भूमी मां धर्मनी विजय फरका फोरववा आप जे श्लाघ्य प्रयत्न करो छो, ते त्यां ना सर्व जीवो ऊपर उपगार अने शासननी अभिवृद्धि नुं कारण छे, आपनुं दृष्टांत बीजा साधुओं ने अनुकरणीय छे।

अमो आशा राखीये छीये के आप जे प्रमाणे शासन नां महान कार्यो करता आव्या छो तेवाज महान कार्यो दीर्घायुषी थई करता रहेशो एवी नम्र इच्छा छे।

सेवक साराभाई नी वंदना स्वीकारशोजी.

(२८)

श्री लाहौर नगरे,

तत्र शांत दांत त्यागी वैरागी शासनोद्धारक आदि अनेक शुभ गुणालंकृत परम पुज्य आचार्य महाराजनी पवित्र सेवा मां योग्य मुंबई बंदर थी ली० नीचे सही करनाराओ नी १००८ वार वंदना अवधारशोजी.

वि० अमोअे गये परमरोज आप साहिबे परम पवित्र आचार्य पद ग्रहण करवाना समाचार सांभळी अमो सौ अत्यंत खुशी थया छीए. आपने आचाय पद अर्पण करवानो परम पुज्य शासन प्रभावक स्वर्गस्थ आचार्य श्री विजयानंद सूरि जी नो खास विचार हतो, परन्तु तेओ साहिबना स्वग गमन वाद आप दरेक रीते आचार्य पद माटे लायकात धरावता छतां आप ते पद ग्रहण न करतां श्री मद् विजयकमल सूरीश्वरजी ने वडिल समजी तेमने ते पद ग्रहण कराव्यु हतुं, त्यार वाद पण अनेक अग्रगण्य व्यक्तिओ तरफ थी अनेक वार आपने आचार्य पद ग्रहण करवा माटे अत्यंत आग्रह हतो छतां आप ते माटे तदन निःस्पृह हता, तेमज हालमां पण अमारा सांभळवा अने जाणवा मुजव आप पद ग्रहण करवा निस्पृह हता, परन्तु अनेक मुनि वय तथा श्रावक समुदाय ना खास आग्रह अने अत्यंत प्रेरणाथी आपे आपनी इच्छा न होवा छतां ग्रहण कर्यु ते अत्यंत योग्यज कर्युंछे, जेथी अमो सौ घणाज आनंदित थया छीए, आप तीर्थोद्धार ना तथा शासनोद्धार ना अनेक कार्यो करो, अने शासन देवता तेमां आपने सहाय थाओ, एम अमे सौ इच्छीए छीए।

मागशर शुद ८ ने बुधवार

छगनलाल पानाचंद मास्तरना १००८ वार वंदना अव धारशोजी.

रतनचंद जीवराज नवलाजीनी वंदना अवधारशोजी ।

सहसमल्ल हंसाजीनी वंदना अवधारशो.

मुंबई. १७-१२-२४

(२९)

द० सेवक मणिलाल त्रिकमनी वंदना १००८ वार अव-धारशोजी, घणा वर्षोथी, आचार्य पदवीनी झांखी करतो हतो परमा तेज पदवी में जोई नहींने हुं हाजिर नहिं तेने माटे तो घणीज दिलगीरी थई हती, पण आचार्य पदवी आप्याना समाचार थी घणोज आनंद थयो छे ।

(३०)

घाणेराव २१-१२-२४

सव सद्गुणालंकृत परम पूज्य-पवित्र-परम माननीय, प्रातः स्मरणीय, जैनशासनोन्नत्ति कारक श्रीमान् विजयवल्लभसूरि महाराज साहेबनी पवित्र सेवामां वि. वि. लखवानुं के आपनी कुशलता चाहुं छुं बीजुं लखवानुं के "जैनपत्र" नी अंदर मांग-लिक समाचार वांचीने हुं घणो खुशी थयो छुं, म्हारी वत्ती श्रीमान् उपाध्यायजी महाराज आदि समस्त मुनि महाराजने १००८ वार वंदणा जणावशोजी, एज. म्हारा लायक कार्य सेवा फरमावशोजी ।

द० सेवक गिरधर देवचंदनी वंदना मान्य करशोजी

(३१) ता० १५-१२-१९२४
जंबुसर

जैनाचार्य श्री १००८ श्रीमद् विजयवल्लभ सूरिनी पवित्र सेवामां मु: लाहोर, श्रीजैन धर्मोद्धारक परम पूज्य आचार्य महाराज श्रीमद् विजयानंद सूरीश्वर जीना सदगत वाद अनेक परिषहो सहन करी पंजाव जेवा विकट प्रदेशमां विचरी जैन-धर्मनी ज्योत प्रकाशीत करवा आपे करेलो अथाग श्रम माटे अत्रेनो संघ आभार माने छे. आपनो उपरोक्त परिश्रम तथा विशुद्ध चारित्र तथा संपूर्ण लायकातनो विचार करी पंजावना समस्त संघे आप श्रीने जैनाचार्यनी पदवीथी विभूपित करवानुं शुभ पगलुं भर्युं छे ते तद्दन प्रशंसनीय छे' अने अत्रेनो संघ तेने अंतःकरणना अवाजथी वधावी ले छे, परन्तु एथी विशेप आपने आचार्य पदवी थी विभूपित करवानुं कहेतां आप आपना वडीलो तरफ जेवाने तेवाज पूज्यभाव राखवानी वतावेली इच्छाए आपना तद्दन सरस परिणामी अने निरभिमानी पणानो आवेहूव चितार वताव्यो छे. आपनी ए शुभ भावना माटे अत्रेनो संघ आपनो अंतःकरण पूर्वक आभार माने छे ।

ली० श्री जंवुसर जैन संघ तरफथी सेवक
जगमोहन मंगलदास शाह नी वंदणा स्वीकारशोजी.

(३२)

काशी विश्वविद्यालय होसृल न० ४।४१
ता० ४-१-२५

पूज्यपाद आचार्य श्रीनी सेवामां (लाहोर) सादर वंदना. आप आचार्य पदवी पर विराज्या सांभळी आजे मने जेटलो

आनंद थयो छे ते हुं पोतेज जाणुं छुं, तेनुं वर्णन समय आव्ये करीश।

लि० आपना बाळको
शांतिलाल, मगनलाल, अमृतलाल.

(३३)

श्रीसद्गुरुभ्यो नमः

शान्त दान्त.........पंच महाव्रतादि अनेक उच्च गुणोए अलंकृत.........श्री १००८ आचार्य श्रीमद् विजयवल्लभ सूरिजी महाराज तथा उपाध्याय पदालंकृत मुनिराज श्रीसोहन विजयजी महाराज आदि महात्माओनी पवित्र सेवामां, शुभ स्थान लाहोर—सुरवाडा थी लि० दर्शनाभिलाषी लालचंद, मनसुख, छगनलाल, दलसुखभाई, झवेर, नेमचंद, चीमन, सोना, वे पार्वती बेन विगेरे सर्व श्रावक श्राविकानी नम्रता पूर्वक वंदना अवधारजोशी।

अत्रे आप सद्गुरुनी पूर्ण कृपाथी सुखसाता अनुभवाय छे आप परोपकारी गुरुरायने सदा सुख सातामां चाहिये छीये. दया लावी आ पापी गरीब सेवकोने पत्रद्वारा दर्शनदेवा कृपा करशोजी.

विशेषमां योग्य समयानुसार आप श्रीने समस्त श्रीसंघे तरफ थी महान् पवित्र उत्कृष्ट आचार्य पदथी अलंकृत करेल 'जैन' पत्रथी जाणी अत्रे सर्वने अतिशय आनंद थयेल छे ते पवित्र पदयुक्त आप श्रीने शासनोन्नतिना संपूर्ण कार्योमां शासन देवो सहायभूत थई चिरकाल आपश्रीनो उज्वल यश जगतमां अस्खलितपणे विस्तार पामो एज अंतरनी प्रबल भावना अने अभिलाषा छे।

अमो दीन गरीब सेवको योग्य काम सेवा फरमावशोजी पत्र पहुंचे थी जरूर प्रत्युत्तर आपी सेवको ने आनंदित करशो जी. एज नम्र विनंती. सं० ११८१ ना पोस सुदि २ शनिवार द. दर्शनातुर चरण किंकर झवेर नी सविनय वंदना १००८ वार अवधारशोजी।

नोट—कितने ही धर्मात्मा गुरुभक्तों के अन्यान्य पत्र भी आये थे, परन्तु अफसोस है के वे पत्र बे ख्याली में रद्दी में डाल दिये गये। उम्मीद है वे भाई साहिब मुआफ फरमावेंगे।

(३४)

प्रो. बनारसीदास जैन एम्. ए., लंडन का पत्र.

स्वस्ति श्री गुजरांवाला नगरे विराजमान श्री १००८ श्री मद्विजयवल्लभ सूरि जी जोग लन्दन से सेवक बनारसीदास का सविनय वन्दना नमस्कार वाँचना। यह समाचार सुन कर मुझे निहायत खुशी हुई है कि आप ने पंजाब के जैनियों का उद्धार करने का भार अपने जिम्मे ले लिया है अर्थात् स्वर्गवासी गुरु महाराज के लगाए हुए पौधे की आप सब प्रकार रक्षा करेंगे और इस का चिन्ह रूप आचार्य पद आप ने धारण कर लिया है। काम तो बड़ा कठिन है परन्तु आप ने गुरु महाराज के अन्तेवास में सब अवस्थाएं देखी हैं और आप यहाँ के लोगों से भली प्रकार परिचित हैं। परमात्मा आप को इस काम में सिद्धि देवें। स्वामीजी महाराज तथा अन्य मुनिराजों के चरण कमलों में वन्दना नमस्कार।

BANARSI DAS, JAIN,
112, GWER STREET,
LONDON, W. C I.

समाप्त.

पहलेसे दस या इससे अधिक ग्रंथोंके जो सज्जन ग्राहक हुए उनके शुभ नाम-

१ श्रीसंघ पट्टी (पंजाब)	प्रति	१२
२ श्रीसंघ जंडियालगुरु (पंजाब)	,,	१०
३ लाला हीरालालजी जैन, संघवी कांगडा, होशियारपुर		२५
४ मंत्री आत्मानंद जैन सभा होशियारपुर	,,	१७
५ श्रीसंघ गुजराँवाला (पंजाब)	,,	१९
६ सेक्रेटरी आत्मानंद जैन सभा अंबाला	,,	१००
७ रूपाजी लाधाजीकी कंपनी वंबई नं. २	,,	१००
८ भूताजी मूरतिंगजी वंबई	,,	५०
९ लाला दलेलसिंहजी दिल्ली	,,	११
१० गुलाबचंद हेमाजी मु० श्रीगाँव (थाना)	,,	१२५
११ जैन नवयुवक मंडल मु० हरजीका	,,	१७
१२ ला० फग्गूमल माणिकचंद लाहोर	,,	११
१३ वनेचंद माणकचंद, वंबई	,,	१०
१४ देवचंद वरदाजी, वंबई	,,	१५
१५ एक सद्गृहस्थ,	,,	६०

आदर्शजीवन

उत्तरार्द्ध ।

सामानेके शास्त्रार्थादिका वर्णन।

वि. संवत् १९५६ के सालमें मुनि श्रीकुशलविजयजी, हीरविजयजी, सुमतिविजयजी, वल्लभविजयजी, (हमारे चरित्र नायक) लब्धिवियजी और ललितविजयजी छः साधु शहेर समाना (जिलापटियाला पंजाब) में एक महीने तक रहे। मुनि श्रीवल्लभविजयजी व्याख्यान करते थे। व्याख्यान क्या करते थे मानो अमृतपान कराते थे। सेवकोंके सोये हुए दिल पुनः जागृत हो गये। बेशक वल्लभविजयजी नाम–गुण निष्पन्न ही हैं। स्वर्गीय गुरु महाराज श्री श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरिजी महाराज (आत्मारामजी महाराज) ने जिस वीरशासनको उसके शुद्धरूपमें, पंजाबमें फैलाया था, उसकी सारसँभाल लेना इन्हींका कार्य है। ये सबको प्रिय लगते हैं, मगर कुमतियोंकी आँखोंमें काँटेसे खटकते हैं। सूर्य सबको अच्छा लगता है, मगर उल्लूको उससे जलन है, इसका कोई क्या करे? भाग्य उल्लूके।

ढूँढियोंको चिन्ता हुई कि यहाँ पुजेरोंका पैर जमने लगा है और हमारा उखड़ने। बात कुछ ऐसी ही बनी हैं। अभी सं० १९६० के फाल्गुन महीनेमें मुनि श्रीहीरविजयजी, श्रीवल्लभविजयजी, श्रीविमलविजयजी और श्रीकस्तूरविजयजी इन चार

साधुओंका फिरसे शहर समानामें आगमन हुआ। मुनि श्री वल्लभविजयजीने ऐसी व्याख्यानकी झड़ी लगाई कि मेघको ईर्ष्या हो गई और वह व्याख्यान झड़ीको अपने जलप्रपातमें बहा लेजानेको तैयार हुआ मगर वह मुनिराजकी समानता न कर सका। हार कर चला गया। मुनिराजके वचनामृतकी झड़ी लगातार होती ही रही। उसने सच्चे धर्मवृक्षको पल्लवित कर दिया और ढूँढियोंके मानको गाल दिया। इस वक्त जो धर्मका उद्योत शहर समानामें हुआ ऐसा पहले कभी उसे नसीब नहीं हुआ था। हमारे और सभी सेवकोंके (श्रावकोंके) हौसले बहुत बढ़ गये। सबको यह निश्चय हो गया कि, बड़ोंके कथनको इन्होंने सफल किया है और करेंगे। हमारे गुरु महाराजजीको तथा मुनि श्रीवीरविजयजीको जो तकलीफें जैनाभास ढूंढियोंने दी थीं उनका बदला मिल गया। अर्थात् जैनधर्मका झंडा सदा फर्राता रहे इस गर्जसे जिन-मंदिर बनाना शुरू हो गया। ढूँढियोंके मुखसे बेतहाशा निकल पड़ा—"हमारे छाती पर जन्मभरके लिए यह साल हो गया।"

ढूँढियोंने मंदिर न बनने देनेके लिए शक्तिभर प्रयत्न किया मगर उनको सफलता न हुई। शासनदेवकी कृपा और मुनिजीके प्रभावसे मंदिर बनना न रुका। सभी हिन्दु-मुसलमान इस मंदिरके बननेमें खुश थे। नाराज थे केवल ढूँढिये। × × × ×

लुधियाना, जँडिआला, पट्टी, दिल्ली, गुजराँवाला, आदि

शहरोंके श्रावक मुनिराजोंके दर्शनार्थ आये थे। पूजा-प्रभावनादि धर्मकार्य अच्छे हुए। शहरमें धार्मिक उत्साह अच्छा बढ़ा हुआ है। × × × ×

शहरमें उत्साह बढ़ने और धर्म तथा गुरुमहाराजकी महिमाका विस्तार होनेसे दुखी होकर ढूँढियोंने छेड़ छाड़ प्रारंभ की।

एक दिन कन्हैयालाल बंब आकर पूछने लगा कि, "शास्त्रोंमें तो पानीकी एक बूँद भी रातमें रखना मना है और तुम घड़ोंके घड़े भरे पानी क्यों रखते हो ?"

मुनि श्रीवल्लभविजयजीने जवाब दिया कि,—"हम रातको पानी, उसमें कली चूना डालकर रखते हैं। इसमें चोरीकी कोई बात नहीं है। श्रीनिशीथसूत्रके चौथे उद्देशमें लिखा है कि जो साधु या साध्वी, लघुशंका या दीर्घशंका जाके शुचि नहीं करता है या शुचि न करनेवालेको मदद देता है उसे प्रायश्चित्त आता है। इस लिए हम पानी रखते हैं। मगर तुम्हारे गुरु ढूँढिये साधु नहीं रखते हैं वे क्या करते हैं ?"

कन्हैयालालने पूछाः—"जरूरत पड़ने पर पानीका रखना क्या किसी सूत्रके मूलपाठमें लिखा है ?"

वल्लभविजयजीने कहाः—"हाँ, बृहत्कल्पके पाँचवें उद्देशमें यह बात लिखी है।"

कन्हैयालालने दोनों बातें नोट कर लीं और कहा कि वह अपने पूजजीसे ये बातें पूछेगा ।

मुनि वल्लभविजयजीने उसे ढूँढिये साधु ऋपिराजकी बनाई हुई 'सत्यार्थसागर नवीन ग्रंथ' नामकी पुस्तक दिखाई और कहा-"देखो तुम्हारे साधु ही इस विपयमें क्या लिखते हैं ।" उस पुस्तकके ४३९ वें पेजमें यह लिखा है,—

प्रश्न—साधु साध्वी लघुनीत (पेशाब करना) बड़ी नीत (पाखानेजाना) होकर यदि शरीर शुचि न करे तो प्रायश्चित्त होय के नहीं ?

उत्तर—प्रायश्चित्त होय । निशीथसूत्रके उद्देशमें कह्यो है ते पाठ (**जो भिक्खु उच्चार पासवनं परिठ वित्ताणाय संतंवा साइज्जइ** १४०) अर्थ-जो कोई साधु साध्वी दिशामात्रा (पाखाने पेशाब) फिर कर पानीसे शुचि न करे तो प्रायश्चित्त होय । जो साधु साध्वी रोगादि कारणं विशेष जानकर शरीर शुचिके वास्ते रात्रिको राख मिलायकर पानी शरीर शुचि कारणे रक्खे तो कोईसा साधुका महाव्रत नहीं जाता है । क्योंकि लघुनीत बड़ीनीतकी दुर्गंध जहाँ तक होगी, वहाँ तक सूत्र पढ़ना मना है । और प्रभातकाले पडिकमणा कैसे करे और व्याख्यान सूत्रका कैसे करे ? जो शुचि शरीर न हो; असिझाइ रहे तो सूत्रमें असिझाइ टालनी कही है ।

कन्हैयालालने पूछा—"तुम्हारा रजोहरण छोटा क्यों है ?"

मुनि महाराजने कहा—" महानिशीय सूत्रमें लिखा है कि, जो साधु बिना प्रमाणके रजोहरण रखता है अथवा रखनेवालेको सहायता देता है उसे प्रायश्चित्त आता है। वह पाठ इस तरह है—

" जे भिक्खु अइरेग पमाण रयहरणं धरेइ धरंतंवा साइज्जइ ते सेवमाणे आवज्जइ मासिय परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।" सो तुम अपने गुरुओंसे बत्तीस शास्त्रोंके मूलपाठमें रजोहरणका प्रमाण पूछ लो और फिर मिलालो। जिसका प्रमाण मिले वह सही और जिसका प्रमाण न मिले वह भगवानका साधु नहीं।"

इस बातका भी उसने नोट कर लिया और वह यह कह कर चला गया कि, इसका भी उत्तर मँगवाऊँगा; मगर आज तक कोई उत्तर नहीं मिला इससे स्पष्ट है कि, इन ढूँढियोंमें जरूर पोल ही भरी हुई है; क्योंकि यदि ऐसा न होता तो ढूँढियोंके वर्तमान पूज सोहनलालजी और मयारामजीसे पूछकर कन्हैयालाल जरूर उत्तर देता बस सिवाय हठके और कुछ नहीं है।

एक दिन कर्मचंद बंबने जोरमें आकर कहा कि—" प्रश्न व्याकरणके मूलपाठमें लिखा है कि जिनप्रतिमाकी पूजा करनेवाला मंद बुधिया है।"

महाराज श्रीवल्लभविजयजीने पूछा—" यदि ऐसा पाठ न निकले तो क्या करना ?"

कर्मचंद—यदि ऐसा पाठ न निकलेगा तो मैं ढूँढकपंथ छोड़ दूँगा। यदि निकल आयगा तो तुम क्या करोगे ?

मुनिजीने बड़े हौसलेके साथ उत्तर दिया—"एक प्रश्न व्याकरण ही क्या यदि किसी भी जैनशास्त्रमें ऐसा मूलपाठ निकल आवे कि, जिनप्रतिमा पूजनेवाला मंदबुधिया (मंद बुद्धिवाला) होता है तो मैं ढूँढक पंथ स्वीकार कर लूँगा।"

"अच्छा किसी पढ़े हुए साधुसे पूछ कर आपके पास आऊँगा।" कह कर कर्मचंद चला गया। मगर सोहनलालजी, मयारामजी आदिके होने पर भी आज तक उसने मुँह नहीं दिखाया। इसी तरह लाला देवीचंद दुग्गड़के पुत्र लाला सुरजनमलने भी प्रण किया था कि, यदि सोहनलालजी पंडितोंकी सभामें बैठकर तुम्हारे साथ चर्चा न करेंगे तो मैं ढूँढक पंथ छोड़ दूँगा सो प्रतिज्ञा पूरी करनेमें पूरे ही सूरमें निकले। चर्चाके लिए जो सभा बुलाई गई थी उसमें एकत्रित ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी जैनेतर सज्जनोंने जो निर्णय चर्चाकी सभाका प्रकाशित किया था वह पूरा यहाँ उद्धृत किया जाता है। इसके नीचे करीब सत्तर उन व्यक्तियोंके नाम हैं जिन्होंने सभाकी तरफसे यह विज्ञापन प्रकाशित किया था।

मुनिश्रीवल्लभविजयजी की जयपताका

अथवा

ढूंढकमतपराजय

शहर समाना रियास्त पटियाला के ब्राह्मण क्षत्रिय महाजन जिनको यद्यपि जैनमत से कोई संबंध नहीं परंतु सत्य के प्रकट करने में कोई हानि न समझ कर सर्व साधारण को विदित करते हैं कि हमारे इस शहर में तारीख ९ फरवरी सन् १९०४ शुक्रवार के दिन महाराज श्रीआत्मारामजी की समुदाय के साधु, मुनि श्रीहीरविजयजी आदि ४ साधु पधारे और भावड़ों के मुहल्ला व मकान में जो तबेले के नामसे मशहूर है उतरे, प्रतिदिन कथा हुआ करती थी, एक दिन कथा में देवीचंद के पुत्र सुरजनमल भावडा दुग्गड़ गोत्रीयने कई क्षत्रिय महाजनों के समक्ष प्रतिज्ञा की, कि मैं सोहनलालजी साधु की साधु वल्लभविजयजी के साथ चर्चा कराऊँगा। यदि सोहनलालजी चर्चा न करेंगे तो मैं ढूंढिया पंथ छोड़ दूंगा, इस पर भावड़ों के सिवाय हम लोगों ने साधु मुनिराजों से प्रार्थना की कि यद्यपि आपका महीना पूरा होनेवाला है और हम लोग यह भी जानते हैं कि साधु किसी खास कारण के विना एक मासोपरांत नहीं ठहरते, किंतु यह भी एक धर्मका कार्य है, धर्म के वास्ते अधिक ठहरने में कोई हानि नहीं,

कदाचित् आपके चले जाने के पीछे ढूंढ़िये कहें कि पूजेरे साधु भाग गये, इसलिये यावत् ढूंढ़िये साधु यहां न आवें और कोई निर्णय न होजाय, तावत् आपका यहां से जाना उचित नहीं। हमारी इस प्रार्थना को महात्माओं ने सानंद स्वीकार किया और कहा कि तुम निश्चित रहो यावत् ढूंढ़िये साधु आकर यहां से विहार न कर जांयगे तावत् हम यहां से न जांयगे, परंतु उन का विहार कैंथल से समाना की ओर होना चाहिये। इस पर समाना के तीन आदमी साधु सोहनलाल और मयाराम आदि को शहर समाना में लानेके लिये कैंथल गये और कैंथल से विहार कराकर अपने साथ ले आये, और ९ मार्च १९०४ बुधवार को सोहनलालजी शहर समाना में आगये, उनके सेवकों ने उनसे चर्चा के वास्ते कहा जबकि अनुमान ९७ क्षत्रिय, ब्राह्मण, महाजन भी विद्यमान् थे। सोहनलाल जी के वार्तालाप से यह प्रकट हुआ कि वह चरचा से सर्वथा विमुख हैं क्योंकि साधु वल्लभविजयजी ने कहा था कि दो वा चार पंडितों को मध्यस्थ करके खुले मकानमें चरचा की जाय। सोहनलालजी ने इस पर यह उत्तर दिया कि हम अपने स्थान को छोड़कर दूसरे के स्थान पर नहीं जासक्ते, जिसको कोई शंका हो वह हमारे यहां आकर शंका दूर कर ले, पंडितों की कोई जरूरत नहीं, पंडित लोग क्या जानते हैं? यह सुन वहां बैठे हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, महाजन गुस्से में आये कि बड़े

अफसोस की बात है कि जब पंडित नहीं जानते तो क्या गधे चराने वाले कुम्हार जानते हैं ? मालूम होता है कि ये सब अपठित एकत्र होरहे हैं और इसी कारण यह अपना स्थान छोड़कर पंडितों के सामने शास्त्रार्थ करना पसन्द नहीं करते, अस्तु इनकी इच्छा हमें क्या । सब लोग अपनी अपनी दुकानों पर आ बैठे, किन्तु जगत् आरसी सदृश है जैसा देखेगा वैसा कहेगा, बाजारमें धूम मच गई कि ढूंढिये साधु पुजेरे साधुओं के साथ किसी प्रकार भी बातचीत करने के योग्य नहीं, यह सुनकर ढूंढिये भावड़ो ने सोहनलाल जी के पास जाकर कहा कि इस बातमें बड़ी हीनता है किसी तरह से उत्तर दिया जाय तो श्रेय है । सोहनलालजी ने अपने सेवकों को ऐसा पत्थर पकड़ाया कि जो धरा जाय न उठाया जाय, अर्थात् यह बतलाया कि आत्मारामजी ने जैनतत्वादर्शके पृष्ठ ४०९ पर सूत्र महानिशीथ के तीसरे अध्ययनका पाठ लिखा है, सो यह पाठ महानिशीथ के तीसरे अध्ययनमें नहीं है । इस धोखे में आकर सुरजनमल भावड़ा ने पूज्य बक्षीराम को यह प्रतिज्ञा लिख दी कि यदि महानिशीथ के तीसरे अध्ययन में जैनतत्वादर्शका पूजा बाबत लिखा हुआ पाठ निकल जायेगा तो मैं ढूंढियापन्थ त्याग दूंगा । यह बात पूज्य बक्षीराम ने स्वीकार करली और प्रतिज्ञापत्र दोनों की ओर से लिखे गये, जिसपर तारीख १६ मार्च १९०४ बुधवार को दिनके एक बजे अनाजमंडी के बीच कटड़ा में सभा

लगाई गई । साएवान, दरी और मेज़ आदिक से सभास्थान सुसज्जित किया गया, लाला रलाराम व जगन्नाथ व लाला बख़शीराम साहिब तथा शहर के चौधरी विद्यमान थे ।

और उस समय सर्व जाति के अनुमान १००० आदमी विद्यमान थे और सरकारी पोलीस का भी प्रबन्ध था । अनेक पुरुषों से परिवरे हुए साधु हीरविजयजी, वल्लभविजयजी, विमलविजयजी, कस्तूरविजयजी, चारों साधु अपने शास्त्र लेकर बड़े आनन्द और प्रेम से सभामंडप में आ पहुंचे । सनातनधर्मीय लाला जगन्नाथ, लाला रलाराम, लाला बखशीराम, बिहारीमल्लकी आज्ञा लेकर लाला रलाराम जगन्नाथ की दुकान पर अपने आसन जमा लिये और साधु वल्लभविजयजी ने खड़े होकर जैनधर्म का स्वरूप वर्णन करना प्रारम्भ किया और कहा कि प्रायःलोगों को ढूंढियों और पुजेरों का भेद मालूम न होने से ढूंढियों और पुजेरों की भिन्नता मालूम नहीं होसक्ती । ढूंढियों और पुजेरों में इतना फरक है कि जितना रात और दिन का । ढूंढिये मूर्त्तिपूजा से सर्वथा इन्कार करते हैं और पुजेरे मूर्त्तिपूजा को जैनशास्त्रानुसार स्वीकार करते हैं । पुजेरे साधु दिशामात्रा करके शुची निमित्त रातको कली चूना डालकर अपने पास पानी रखते हैं और ढूंढिये साधु सर्वथा पानी नहीं रखते । जैनमत के शास्त्र निशीथसूत्र के चौथे उद्देशे में कहा है कि जो साधु दिशा मात्रा हो करके शुद्ध न हो, उसको दण्ड आता है । जब यह ढूंढिये साधु

रात को अपने पास पानी नहीं रखते, तो शुचि किस तरह करते हैं ? जैनशास्त्रों में सूतकपातक माना जाता है परन्तु ढूंढिये बिल्कुल नहीं मानते । इत्यादि विषयों का वर्णन होने लगा तो ढूंढिये भावड़े झट चमक उठे और कोलाहल करने लगे कि इन विषयों को छोड़कर पहिले हम को महानिशीथ का पाठ दिखाओ, यद्यपि सब लोग इन्हीं विषयों को सुनना चाहते थे परन्तु ढूंढियों के कोलाहल और आग्रह से सब लोगों ने प्रार्थना की कि महाराजजी इनकी शांति के लिये पहिले आप पाठ ही दिखला दें । इस पर उसी समय महानिशीथ के तीसरे अध्ययन का पाठ जैनतत्त्वादर्श पृष्ठ ४०९ के साथ पूज्य बशीराम द्वारा उनको दिखलाया गया । महानिशीथ सूत्रानुसार गृहस्थी को मूर्तिपूजन सिद्ध किया गया, साधु वल्लभविजयजीने कहा कि यदि यह अर्थ जो पूजा के विषय में सूत्र महानिशीथ का बताया गया है असत्य है तो तुम्हारे ढूंढिये साधु सोहनलाल व मायाराम आदि जो यहां हैं उनको बुलाकर हमारे सामने निर्णय करालो, मूर्त्तिपूजन सत्य है वा असत्य है। यदि असत्य है तो महानिशीथ सूत्रानुसार असत्य करके दिखावें, नहीं तो मूर्त्तिपूजन का निर्णय हमारी तरफ से सिद्ध होगया । उसी समय ढूंढिये भावड़ों ने जाकर अपने साधुओं से कहा कि महाराज आज हमारे मत की बड़ी हानि हुई है आप चलकर उनको उत्तर दें, नहीं तो हमको उन से निरुत्तर होना पड़ता है । यद्यपि ढूंढिये साधु पहिले कह

चुके थे कि हम दूसरे के स्थान पर या सभा में नहीं जासकते परन्तु भावड़ों के कहने से अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ना पड़ा और भावड़ों के साथ तीन साधु कटड़े में आये; किन्तु मोहनलाल व मायाराम जो बड़े साधु थे, उन में से कोई भी न आया। तीनों साधुओं को सभा के चौधरियों ने कहा कि महाराज आप इन साधुओं के निकट आकर अपना जो कुछ वादविवाद है निर्णय करलेवें। परन्तु उन्होंने यह बात स्वीकार न की और सभा से जुदे एक किनारे पर बैठकर अपने सेवक भावड़ों को अपना जो कुछ मन्तव्य था कह सुनाया। सभा के लोगोंने साधु वल्लभविजयजी से प्रार्थना की कि यदि वे तीनों साधु इस जगह नहीं आते तो आप ही उनके पास चलें और वार्तालाप करके हमें सत्यासत्य से विदित करें। यह बात सुनते ही वल्लभ-विजयजी उन तीनों साधुओं के पास जा खड़े हुए और कहा कि जो कुछ तुमने कहना है सो कहो, हम उसका जवाब देंगे। ढूंढिये साधुओं ने कहा कि हम तुम्हारे साथ चरचा करने को नहीं आये। तब लोगों ने कहा,-तो क्या यहां कोई तमाशा था जो देखने आये हो ? ढूंढियोंने कहा कि हम तो इन भावड़ों के कहने से पूज्य बक्षीराम को पाठ सुनाने आये हैं, तब लोगोंने साधु वल्लभविजयजी को कहा कि महाराज आप अपने आसन पर पधारें, ये तो बोलने से भी कांपते हैं, आपके साथ प्रश्नोत्तर क्या करेंगे। इस पर स्वामी वल्लभविजयजी अपने आसन

पर जा निराजे और ढूंढियोंने जो कुछ मुंहमें आया सच झूठ बोला।

ढूंढियों ने अपने सेवकों और पूज्य बखशीराम को महानिशीथ का पाठ सुनाना प्रारम्भ किया। पूज्य साहिब ने ढूंढिये साधुओं को ऐसा निरुत्तर किया कि वह बोलने से भी अशक्य हुए और जहां पूजा का पाठ आया ढूंढिये साधुओं ने वहां अंगूठा दे दिया। पूज्य बक्षीराम ने कहा कि अंगूठा उठाकर यह पाठ पढ़ो, सुनते ही ढूंढिये साधुओं के होश उड़गए। लोगों ने तालियां मारनी शरू करदीं, यदि उस समय पुलिस का प्रबन्ध न होता तो जाने ढूंढिये भावड़े कितने लोगों की दया पालते ? वाह खूब दयाधर्म निकाला है, ऐसे दयाधर्म की बलिहारी। लाचार अपना सा मुंह लेकर ढूंढिये कटड़े से बाहर निकल अपनी कोठी में जा घुसे, ढूंढियों के पलायन करने के पीछे बड़ी धूमधाम और अंग्रेज़ीबाजे से बाज़ार में स्वामी आत्मारामजी की जय बुलाते और श्रीपार्श्वनाथजी के भजन गाते और खुशियां मनाते श्रीहीरविजयजी और श्रीवल्लभविजयजी आदि साधुओं को जहां वे उतरे हुए थे वहां पहुंचा दिया। उस समय अनुमान ९०० आदमी मकान तक साथ आए। इस खुशी में पुजेरे भावड़ों की तर्फ से सब को परशाद बांटा गया। इस सर्व वृत्तांत का सार यह है कि हमारी संमति में पुजेरों का जो कुछ कहना व मानना है, सर्वथा जैनशास्त्रानुसार है और मूर्तिपूजा के विषय में जो कुछ

पुजेरों का कहना है, सो सत्य है। ढूंढ़िये जो अपवित्रता के गर्त में पड़े हुए हैं, सर्वथा असत्य हैं। सत्य है, जैसा पीवे पानी, वैसी बोले बानी। ढूंढ़िये मैला पानी पीते हैं और वैसे ही असत्य और अप्रमाणिक बोली बोलते हैं। शहर के लोगों की इच्छा थी की अगले दिन अर्थात् १७ मार्च १९०४ को फिर सभा लगा कर दोनों ही पक्षों के साधुओं की वार्तालाप सुनेंगे, परन्तु यह बात सुनते ही साधु सोहनलाल और मायाराम आदि १४ साधु प्रातः चल दिये, उनके दो दिन पीछे अर्थात् ता० १९ शनिवार को साधु हीरविजयजी व वल्लभविजयजी आदि बड़ी खुशीके साथ शहर नाभाकी तरफ़ प्रस्थित हुए।[१]

---

१ यह वर्णन आत्मानंद जैन पत्रिकाकी सं० १९५६ की फाइलसे लिया गया है। लेखक.

" धर्म्मतत्व । "

(स्थान बड़ौदा, ता. ९-३-१३ रविवार.)

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदश्चैव, ओंकाराय नमो नमः ॥

सभ्य महानुभावो ! आज मैं अपने पूज्य महात्मा सभापतिजीकी आज्ञासे आपके समक्ष कुछ बोलनेके लिये खड़ा हुआ हू । परंतु मेरे बोलनेमें यदि कहीं पर किसी तरहकी त्रुटि या स्खलना मालूम हो तो, सज्जनोंका जो स्वभाव होता है उसके अनुसार ही आप लोग भी उसपर ध्यान न देते हुए केवल सार मात्रके ग्रहण करनेमें ही अपनी उदारता दिखलाएँगे ऐसा मुझे विश्वास है । और सदा ऐसी ही उदार बुद्धि रखनेके लिए आपसे मेरा निवेदन है । सद्गृहस्थो ! वाणी (शब्द) को शास्त्रककारोंने पानीकी उपमा दी है, अर्थात् पाणी और वानी ये दोनों आपसमें बहुत ही सादृश्य रखते हैं। जैसे एक ही कूएका पानी कुल्या (आड़) द्वारा भिन्न२ मार्गोंमें होता हुआ उद्यानके सर्व वृक्षोंको तृप्त करता है । जो पानी आमके पेड़को दिया गया है उसीसे नीमका वृक्ष भी सेचन किया गया है, परंतु आमके वृक्षमें उसकी मधुर रसमें परिणति होती है और नीमका पेड़ उसको कटु रसम

परिणत कर लेता है। इसी तरह वक्तासे मुखरूपी कूएसे निकलता हुआ शब्दरूप जल, श्रोताओंके कर्णरूप कुल्याद्वारा अनेक अन्तःकरण रूप वृक्षोंका सिंचन तो एक जैसा ही करता है, मगर उसके रसकी परिणति उनके स्वभावके अनुसार होती है। जैनाचार्य श्रीहरिभद्रसूरिजी एक स्थानमें लिखते हैं कि—

" एकतड़ागे यद्वत्पिबति भुजंगमो जलं तथा गौश्च।
परिणमति विषं सर्पे तदेव गवि जायते क्षीरम्॥ "

यद्यपि साँप और गौ दोनों एक ही तालावमें पानी पीते हैं पर साँपमें तो वह विषके स्वरूपको धारण करता है और गौके शरीरमें उसे दुग्धका रूप प्राप्त होता है। इसी तरह जिस जलके प्रभावसे उद्यानमें अनेक प्रकारके सुन्दर पुष्पोंकी उत्पत्ति होती है, वहीं तीक्ष्ण कांटोंका भी उत्पादक होता है। तात्पर्य कि, जैसे जलमें स्वच्छता और मधुरताका स्वाभाविक गुण होने पर भी अन्याय पदार्थोंके संयोगसे उसके रसमें परिवर्तन हो जाता है; इसी तरह वाणी चाहे कैसी भी सरस और हितकर हो, तो भी श्रोता उसको अपने स्वभावके अनुकूल बना लेता है। इसी लिए सब श्रोताओं पर वक्ताकी वाणीका एक जैसा असर नहीं होता। वक्ताके विचारोंका श्रोताओं पर अच्छा या बुरा असर होना उनके अन्तःकरणके स्वभाव पर निर्भर है। इसमें वाणीका कुछ दोष नहीं, उसका अच्छे या बुरे रूपमें परिवर्तन श्रोताके आशय पर अवलंबित है। इसलिए मेरे शब्दोंके विषयमें नुक्ता-

चीनी न करते हुए उसके मात्र सरल आशयको ग्रहण करनेमें ही आप अपनी उदारता और सहृदयताका परिचय देंगे ऐसी मुझे आशा है।

सद्गृहस्थो! सुखकी अभिलाषा प्राणिमात्रको है, वह चाहे अमीर हो या गरीब, धनी हो चाहे निर्धन, संसारमें छोटेसे छोटे कीटसे लेकर बड़ेसे बड़े जानवर तक एवं साधारण मनुष्यसे लेकर इन्द्र आदि देवताओं तकमें ऐसा कोई भी जीव नहीं जो सुखकी इच्छा न करता हो! पर सुखका साधन वही वस्तु है, जो कि मेरे आजके व्याख्यानका विषय है। शास्त्रकारोंने सब तरहके सुखका कारण धर्मको ही बतलाया है। इसलिये धर्मका पालन करना ही मनुष्यका सबसे पहला कर्त्तव्य (फर्ज़) है।

गृहस्थो! एक बात पर विचार करते हुए मुझे बहुत आश्चर्य होता है। धार्मिक भाव अथवा धर्मके अनुष्ठानसे मनुष्यको सुख मिलता है; यह हिन्दु, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सभी सम्प्रदायें पुकार रही हैं, और जिधर देखो उधर ही धर्मके नामकी घोषणा सुनाई देती है। इससे मालूम होता है कि धर्म सबको प्यारा है और सभीने उसे ऐहिक और आमुष्मिक-परलोकके सुखका हेतु माना है। परन्तु आज जितनी मारामारी लड़ाई बखेड़ा और परस्पर ईर्षा-द्वेष चल रहे हैं वे केवल धर्मके ही नामसे चल रहे हैं! जो धर्म सुख और शान्तिका देनेवाला माना जा रहा है, उसीके नामसे आपसमें भयंकर मारामारी

चले ! इससे मालूम होता है कि, धर्मके वास्तविक रहस्यसे लोग अभी बहुत कम परिचित हैं ! अन्यथा इतना भेदभाव न हो !

सज्जनो ! मेरा माना हुआ धर्म अच्छा और तुम्हारा बुरा ! इस प्रकार वृथा ही कोलाहल मचानेवालोंके सिवा, आत्मा कोई पदार्थ है, और वह अपने शुभ अशुभ कर्मके प्रभावसे देव मनुष्य और तिर्यंच आदि अनेक प्रकारकी उच्च नीच गतियोंमें भ्रमण करता है,. इस सिद्धान्तको भ्रमयुक्त और कपोल कल्पित बतलानेवाले भी संसारमें बहुत मनुष्य हैं ! उन्हें यह सिद्धान्त बहुत ही उपहासास्पद मालूम होता है ! परन्तु एक निर्धन और दूसरा धनवान, एवं एकका जन्मसे ही प्रतिभाशाली होना, और दूसरेका अनेक प्रकारके प्रयत्न करनेपर भी आजन्म मूर्ख रहना, अवश्य कोई हेतु रखता है । क्योंकि कार्यका भेद कारण भेद पर ही अवलंबित है । इस लिए आप्त पुरुषोंने उक्त भेदका कारण जो कर्मको बतलाया है, वह बहुत ही ठीक मालूम पड़ता है । शास्त्रकारोंका कथन है कि, जीवात्माके साथ ऐसी किसी वस्तुका संबंध अवश्य है जिससे अपनेमें एकत्व होनेपर भी अंतर स्पष्ट प्रतीत होता है । कल्पना करो, एक ही पिताके दो पुत्र हैं । दोनों ही रूप और लावण्यमें समान नजर आते हैं, पर जब उनके आंतरिक विचारों पर दृष्टिपात किया जावेगा तब भेद स्पष्ट ही ज्ञात हो जायगा । इस लिए आत्माके साथ संबंध रखनेवाला और परस्पर भिन्नताका नियामक पदार्थ कर्म है, यह

निर्विवाद है । आत्माके साथ कर्मोंका संबंध कब हुआ ? इसका संक्षेपसे सरल और स्पष्ट उत्तर यही है कि, वह अनादि है । जैसे बीज और वृक्षका संबंध प्रवाहसे अनादि है, इसी तरह जीव और कर्मका भी अनादि संबन्ध है ।

सज्जनो ! आत्मा, मुक्त और संसारी भेदसे दो प्रकारका है । जिस आत्माने अनेक प्रकारके कर्मजन्य बन्धनोंको तोड़ कर मोक्षको प्राप्त कर लिया है वह मुक्त कहलाता है । इसके विपरीत अर्थात् कर्मोंसे जो बद्ध है वह संसारी अथवा बद्ध आत्मा कहलाता है । इस लिए जिस साधनके द्वारा—आत्मामें गुप्त रूपसे रहनेवाली ज्ञान दर्शन और चारित्र आदि अनन्त शक्तियोंके यथावत् प्रकट होनेपर निरतिशय आनंद रूप मोक्षको यह आत्मा प्राप्त हो, उसका नाम धर्म है । अर्थात् आत्माको वैभाविक—हीन दशासे निकाल कर उन्नतिकी पराकाष्टामें पहुंचानेवाला जो कोई साधन है, उसे शास्त्रकारोंने धर्मके नामसे व्यवहृत किया है । अब आप विचार सकते हैं कि, जो धर्म इस प्रकारके सुखका देनेवाला हो, फिर उसके नामसे इतनी मारामारी चले ! इसका कोई अवश्य कारण होना चाहिए । जब तक इस कारणका अन्वेषण न किया जाय तब तक एकताकी आशा करना मनोरथ मात्र है !

गृहस्थो ! परस्पर धर्मोंकी विभिन्नता रहने पर भी किसी प्रस्तुत शुभ कार्यके लिए भेदभावको त्यागकर सबको एकमत

होकर काम करना चाहिए ! यह जमाना अब परस्पर मिलकर काम करनेका है । शब्दोंके गोरख–धंदेमे ही फँसकर कर्तव्य भ्रष्ट होते हुए अपना सर्वस्व खो बैठना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है । प्रकृतिका एक २ पदार्थ हमें ऐक्यके विश्वव्यापक सिद्धान्तकी शिक्षा दे रहा है । ऐक्यमें कितना बल है ? इसके अनेक प्रत्यक्ष उदाहरण देखनेमें आते हैं । सूतके बारीक बारीक डोरे अपनी भिन्न २ दशामे रहे हुए जरासा धक्का लगने पर सहजमें ही टूट जाते हैं । परन्तु जब वे एक दूसरेके साथ मिल जाते हैं, तब उन्हें ऐक मदोन्मत्त हस्ती भी तोड़नेके लिए समर्थ नहीं हो सकता !

सज्जनो ! अपनी पाँचो अंगुलियाँ एक जैसी नहीं हैं और एकका काम दूसरी नहीं कर सकती । ऐसा होनेपर भी यदि कोई प्रश्न करे कि इनमें श्रेष्ठ कौनसी है ? तो इसका उत्तर देना कठिन है । क्योंकि अपने २ कार्यमें सभी श्रेष्ठ हैं । सभी अंगुलियाँ जब साथ मिलती हैं तभी कार्य होता है इसी तरह जब हम दूसरेको हलका न समझते हुए परस्पर मिलकर काम करनेमें प्रवृत होंगे तभी सफलताका मुँह देख सकेंगे ! (करतल ध्वनि) वास्तविक ऐक्य आत्मस्वरूपकी प्राप्तिमें है । जिस वक्त यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति मनुष्यको होती है, उसी समय सूर्यके प्रकाशसे अन्धकारकी तरह भेद भावका सदाके लिए नाश हो जाता है । यही तात्विक विचार

धर्मसे प्राप्त होता है । इस लिए धर्ममें सबकी अभिरुचि भी न्यून अथवा अधिक देखनेमें आती है। परन्तु अपनी २ मान्यताके अनुसार उसमें बहुत भेद भाव देखनेमें आता है इसका कारण यही मालूम पड़ता है कि, वस्तुमें जो अपेक्षा रही हुई है, उसकी तरफ हम दृष्टि नहीं देते । यदि अपेक्षासे पदार्थका विचार किया जाय तो भेद भाव नाम मात्रके ही लिए रह जाता है ।

गृहस्थो ! यदि संसारके तमाम धर्मोको सर्वथा जुदा जुदा ही माना जाय, तब तो उसका कर्तव्य भी जुदा, उसमें कथन किया पुण्य पाप भी जुदा, उससे होनेवाली मुक्ति भी जुदी, और अन्तमें ईश्वर भी जुदा २ ही मानना पड़ेगा । यद्यपि ऐसा माननेवाले नजर भी आ रहे हैं, मगर इसका कारण यही है कि लोग हट और आग्रहसे अपने कक्केको ही खरा मान रहे हैं । आज संसारमें हिंदु, मुसलमान और ईसाई ये तीन धर्म अधिक प्रसिद्ध हैं ! इनमें हिन्दु यदि " अहिंसा परमोधर्मः " का ढंढोरा पीटते हैं तो मुसलमान भाई इससे विपरीत ही अपनी मान्यता बतला रहे हैं ! और ईसाई महाशय दोनोंसे ही जुदा राग आलाप रहे हैं । अब प्रश्न होता है कि हिन्दुओंका ईश्वर भूल रहा है ? या मुसलमान भाइयोंके खुदाने गल्ती खाई ? क्योंकि दोनों ही ईश्वरको मानते और उसकी आज्ञाके मुताबिक चलनेको धर्म मानते हैं।

और दोनोंके लिए ईश्वरका भिन्न २ उपदेश है। इसलिए दो ईश्वरोंमें एककी भूल तो मंजूर करनी ही पड़ेगी। परंतु विचारसे देखा जाय तो किसीके ईश्वरकी भूल नहीं, भूल सिर्फ अपनी ही है। अपने ही वस्तु स्थिति पर उचित विचार नहीं करते। यदि पानीके दृष्टान्त पर विचार करें तो इस बातका खुलासा बहुत ही जल्दी हो सकता है। एक ही नलकेसे एक ही जैसा पानी सबको मिलता है, मगर उसी पानीको लेकर एक आदमी तो " हिन्दुका पानी " और दूसरा " मुसलमानका पानी " कहकर पुकार रहा है। इसपर प्रश्न उपस्थित होता है कि, एक ही स्थानसे वह पानी लाया गया। और एक जैसा ही उसका रूप स्वाद और वजन है फिर उसमें हिन्दु और मुसलमानपना कहाँसे आया ? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि, पानीमें तो फरक नहीं परन्तु जुदे २ बर्तन—घड़ा वगैरामें पड़नेसे वह हिन्दुका और मुसलमानका कहलाया है। अर्थात् हिन्दुके बर्तनमें पड़नेसे हिन्दुका, और मुसलमानके बर्तनमें पड़नेसे मुसलमानका। इसी तरह आत्माके संबन्धमें समझना चाहिए। शरीर रूप बर्तनमें जब तक यह आत्मा विद्यमान है, तभी तक इसके विषयमें अनेक प्रकारके भेद भावोंकी कल्पनाएँ की जाती हैं। शरीरके सम्बन्धसे कोई इसको ब्राह्मण, कोई क्षत्रिय, कोई पुरुष, कोई स्त्री, कोई उच्च और कोई नीच मान रहा है। परन्तु आत्मामें उच्चता और नीचता मात्र कर्मके अनुसार है। कुल गोत्रकी

उच्च नीचता आत्मामें हमेशांके लिए नहीं है । इस विषयपर महात्मा आनंद घनजीने बहुत ही ठीक कहा है—

अवधू ऐसो ज्ञान विचारी । वामें कौन पुरुष कौन नारी ॥अवधू०॥

बामनके घर न्हाती धोती, जोगीके घर चेत्री ।
कलमां पढ़कर भइरे तुरकड़ी, आपो आप अकेली ॥

आत्माकी उन्नति और अवनति उसके अच्छे बुरे विचारोंपर अवलंबित है । जैसे गंदा पानी अमुक प्रयोगसे साफ किया हुआ पीने लायक बन जाता है, इसी तरह मलिनात्मा भी सत् कर्मके अनुष्ठानसे निर्मल हो जाता है । (करतल ध्वनि)

महानुभावो ! धर्मका रहस्य समझनेके लिए किसी तत्त्वपर जब तक अमुक अपेक्षा, अथवा किसी एक दृष्टिको लेकर विचार न किया जाय, तब तक धर्मके नामसे पड़ी हुई भेदभावकी विकट ग्रंथिका सुलझना बहुत कठिन है । धर्मकी एकताके विना सामाजिक उन्नति और देशोन्नतिका होना मुशकिल है । धर्म सुखका एक मुख्य साधन है यह बात निर्भ्रांत है परन्तु उसको उचित रीतिसे कार्य क्षेत्रमें न लानेसे वह दुःखका कारण भी हो सकता है और हो रहा है । इसका कारण अपनी २ स्वतंत्र मान्यता है । भिन्न २ प्रकारकी मान्यताओंसे धर्म भी सर्वथा भिन्न २ एक दूसरेका विरोधी हो रहा है । परस्परके आघात प्रत्याघातोंसे विभिन्नताकी दावाग्नि उत्तरोत्तर अपना अधिक

प्रचंड रूप दिखा रही है ! यदि ऐसा ही रहा तो आशा नहीं कि भारतको सुखकी शय्या कभी स्वप्नमें भी नसीब हो सके !

सद्गृहस्थों ! पदार्थ मात्रमें अपेक्षा रही हुई है। वस्तुत्वका विचार करनेके लिए "अपेक्षावाद" का सिद्धान्त बहुत उपयोगी है। आज जितना मतभेद दृष्टि गोचर हो रहा है उसका निराकरण, अपेक्षावादके सिद्धान्त द्वारा बड़ी सुगमतासे हो सकता है। अब मैं इस बातको एक उदाहरणसे बतलाता हूँ। स्नान करनेसे शरीरकी सफाई होती है, वह शृंगारकी मुख्य सामग्री है, यदि देवपूजाके उद्देश्यसे किया जाय तो वह (स्नान) धर्म कार्यमें उपयोगी होनेसे धर्म भी कहा जा सकता है। परन्तु बहुतसे आदमी स्नानमें ही धर्म मान रहे हैं ! यदि यह बात सर्वथा ठीक हो तब तो वेश्याको सबसे अधिक धर्मात्मा कहना चाहिए ! क्योंकि वह तो दिन भरमें चार पाँच दफा स्नान करती है। इसलिए मात्र सौन्दर्य वृद्धिके लिए जो स्नान है वह धर्म नहीं किन्तु देवपूजाके निमित्त किया गया स्नान देव पूजा जैसे धार्मिक कृत्यमें उपयोगी होनेसे धर्ममें परिगणित किया जा सकता है। तात्पर्य कि, किसी दृष्टिसे स्नानादि कर्म, धर्मके नामसे निर्दिष्ट किये जा सकते हैं, सर्वथा उनको धर्ममें समाविष्ट करना सत्यका निस्संदेह गला घोटना है। इसी तरह हरएक कर्तव्य विषयका अपेक्षावादकी पद्धतिद्वारा

विचार करनेसे ज्ञात हो सकेगा कि, उसमें रहस्य अवश्य समाया हुआ है।

सभ्य श्रोतृगण ! धर्मका लक्षण करते हुए शास्त्रकार कहते हैं–"दुर्गतौ प्रपतत्प्राणिधारणाद्धर्म उच्यते"-दुर्गतिमें पड़ते हुए जीवको जो धारण करे अर्थात् उसको बचाकर सद्गतिमें स्थापन करे उसे धर्म कहते हैं। इसलिए परम सुख देनेवाले धर्म रूप पदार्थमें अपनी २ मान्यतासे विरोधका उद्भावन करना उचित नहीं। वास्तविक धर्म हमेशह एक ही तरहका होता है। उसमें भिन्नताका लेश, नाम मात्रके हि लिए होता है। जब तक विचार समूह एकत्रित होकर कर्तव्य परायण नहीं होता तब तक उद्देश्यकी सिद्धि आशा मात्र ही है। मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि, 'स्वतंत्र' निरपेक्ष मान्यतासे प्रति दिन विरोध बढ़ रहा है ! कोई ईश्वरको कर्ता मानता है और कोई अकर्ता कहता है। और दोनों ही एक दूसरेको अधर्मी और अपने आपको धर्मात्मा समझ रहे हैं इतना ही नहीं किन्तु कभी २ दोनोंका उक्त विषयके निमित्तसे घोर युद्ध भी हो जाता है। नतीजा यह निकलता है कि, आपसके मेलका नाश होकर एक दूसरेके कार्यमें साहाय्य देनेके बदले उसका घोर विरोध करने लग जाते हैं। इसका फल अंतमें दोनोंके ही लिए हानिकारक साबित होता है।

सज्जनो ! विचार वैचित्र्य रहने पर भी हमें मिलकर काम

करना चाहिए। परस्परके मेलसे परस्पर अवलोकनका लाभ होता है। परस्पर अवलोकन (एक दूसरेके सामने देखने) से मूल्य बढ़ता है; बस मूल्य बढ़ना ही उन्नति है। आप लोग रोज देखते हैं कि, ६३ का अंक तब बनता है जब ६ और ३ इन दोनोंका मुख एक दूसरेके सामने होता है। परन्तु वही जब अपने मुखको एक दूसरेसे फिरा लेते हैं तब वे ६३ के ३६ बन जाते हैं। (करतल ध्वनिः) इसी तरह जिस समय भारतीय धार्मिक साम्प्रदायिक मनुष्योंमें परस्पर मेल था और वे एक दूसरेको प्रेमभरी दृष्टिसे देखते थे उस वक्त भारतवर्षका गौरव ६३ के अंकके समान अधिक था, परन्तु जबसे इसमें विमुखताका प्रवेश हुआ तब से यह ६३ की कीमतके बदले ३६ की कीमतका रह गया।

ईश्वरको कर्ता और अकर्ता मानकर व्यर्थ कोलाहल मचानेके सिवा, यदि सत्य वस्तु क्या है ? इसकी खोज की जाय तो, लाभ बहुत हो। कितनेक लोगोंका कथन है कि, इस संसारको ईश्वरने ही बनाया है। वह जैसा चाहे वैसा करता है। यह कथन यदि ठीक ही मान लिया जावे तब तो किसीको राजा और किसीको रंक, किसीको अमीर और किसीको गरीब, एवं किसीको सुखी और किसीको दुःखी भी ईश्वरने ही बनाया होगा ! मगर सच्चिदानंद स्वरूप परमात्मको इस प्रकारके नाटकसे क्या लाभ होता होगा ? यह भी एक विचारणीय है। क्योंकि, वह कृतकृत्य है। रागद्वेषसे रहित है।

यदि उक्त भेदका कारण कर्मोको स्वीकार किया जावे जब तो कर्म करनेवाला जीव है, उसीके किये हुए कर्मका फल उसे मिलता है। ईश्वरके कर्तृत्वका उससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं। कहनेका मतलब यह है कि, इस प्रकारके विरोधोद्भावनसे परस्परमें द्वेष बढ़ाते हुए लोग धर्मको ही अधर्मकी पौशाक पहना देते हैं। यदि विचार किया जाये तब कर्ता इस शब्दके साथ कुछ भी विरोध नहीं। विरोध केवल अपनी २ स्वतन्त्र मान्यतामें है। कर्ता दो प्रकारका होता है। एक 'प्रेरक' और दूसरा 'प्रकाशक'। यदि ईश्वरको 'प्रेरक' माना जाय तब तो संसारके सब कार्य ईश्वरकी ही प्रेरणासे होंगें। यदि ऐसा है तब तो एक मनुष्यको मार डालनेवाला दूसरा मनुष्य अपराधी नहीं ठहरना चाहिए। क्योंकि, वह मारनेमें स्वतंत्र नहीं। उसको ईश्वरने जैसी प्रेरणा की, वैसा ही उसने किया। आप लोग एक निरपराध मनुष्यको अन्य किसी पुरुष द्वारा मारे जानेपर नाराज होते हो, मगर ईश्वर तो इसमें बहुत खुश हैं। यदि 'प्रकाशक' रूपसे ईश्वरको कर्ता माना जाय तब तो किसी बातमें किसीको भी विरोध नहीं। जैसे सूर्यके प्रकाशसे यावत् कार्य होते हैं, परन्तु हमारे कर्तव्यमें उसका किसी प्रकारका भी दखल नहीं। हम अपने कार्यको प्रारंभ करनेमें और छोड़नेमें स्वतन्त्र हैं। इसी तरह अपने किये हुए कार्योंके उत्तर दाता भी हम स्वयं हैं। ईश्वरकी प्रेरणाका इसमें अणुमात्र

भी सम्बन्ध नहीं। वह मात्र द्रष्टा रूपसे सर्वदा विद्यमान है। इस लिए गंभीर विचार करनेसे इस प्रकारके शुष्क विवादोंको दूर करके सबको आपसमें मेल बढ़ाना चाहिए। धर्मका रहस्य सबके लिए एक ही है! वह आत्माका स्वाभाविक गुण है। उसीके समझनेसे आत्माको उन्नत दशाकी प्राप्ति होती है! (करतल ध्वनि)

गृहस्थो! धर्मके निमित्तसे लोगोंमें अधिक मत भेद होनेका एक और भी कारण है। लोग स्वधर्म और परधर्मके रहस्यको न समझकर किसी वक्त बड़े २ अनर्थ भी कर बैठते हैं। वे लोग यही समझते हैं कि, हमारे बाप दादाके वक्तसे जो कुछ रस्मोरिवाज चले आते हैं वे ही धर्म हैं। चाहे वे कैसे ही क्यों न हों! परंतु स्वधर्म और परधर्म शब्दके वास्तविक अर्थपर विचार करें तो मालूम हो जायगा कि, इसमें कितना रहस्य समाया हुआ है। स्व नाम आत्माका है। वस्तुके स्वभावका नाम धर्म है। अतः आत्माका जो स्वभाव वही स्वधर्म है। इसी लिए भगवद्गीताके अन्दर लिखा है कि " स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः"

स्व-(अपने) धर्ममें यदि मृत्यु भी हो जाय तो भी अच्छी है मगर परधर्म—दूसरेका धर्म भयका देनेवाला है।

इस श्लोकका बहुतसे आदमी यही अर्थ समझ रहे हैं

कि, जो अपने बाप दादा करते चले आए हैं वही अपना धर्म है । उसीके अनुष्ठानसे अपना कल्याण होनेवाला है, दूसरेका जो धर्म है वह चाहे कैसा ही अच्छा हो मगर उससे कल्याणके बदले भय ही होगा ! यदि इस श्लोकका यही अर्थ माना जाय तब तो परमार्थके बदले अधिक अनर्थकी ही सम्भावना है । बाप दादा जिसको करते चले आए हैं उसीको धर्म कहा जाय तब तो अधर्मका नाम ही दुनियासे उठ जाय ! शास्त्रोपदेशकी कुछ भी जरूरत न रहे !

सज्जनो ! यदि बाप दादा जिसे करते थे वही धर्म हो तब तो क्षमा कीजिए आज इस जगह पर उपस्थित सभीको अधर्मीकी पदवीसे विभूषित होना पड़ेगा । (करतलध्वनि)

आज जिस तरहकी सभा एकत्रित हो रही है, सभ्यगण जिन २ पौशाकोंमें सुसज्जित हुए जिस प्रकार बैठे हुए हैं, क्या आजसे तीन चार पीढ़ी प्रथम अपने बाप दादा इस ढंगसे और इस ड्रेससे कभी बैठे या बैठते थे ? यदि नहीं तो क्या हमारे इस आचारसे धर्म कहीं भाग गया ? अथवा हम अधर्मी हो गए ? यदि बाप लूला हो, लंगड़ा हो, निर्धन हो, खूनी हो, तो क्या बेटेको भी वैसे ही होना चाहिए ? बाप यदि अंधा होकर युवा अवस्थामें ही गुजर जाय तो क्या पुत्रको भी आँखोंसे अंधा होकर युवावस्थामें ही प्राण दे देने चाहिए ? नहीं नहीं ऐसे

तो न कोई करता है और नाहीं किसीको करना चाहिए। इस लिए स्वधर्म क्या और परधर्म क्या इसका प्रथम तात्पर्य समझना चाहिए। स्वधर्म अर्थात् आत्माका धर्म। परधर्म नाम मायिक पदार्थका जो धर्म नाम स्वभाव। इसका तात्पर्य यह है कि, आत्माका जो धर्म है वह ग्रहण करने योग्य है, और मायिक–पौद्गलिक धर्म त्यागने योग्य है। आत्मिक धर्मकी प्राप्ति निवृत्ति मार्गके अनुसरणसे होती है, निवृत्ति मार्गका अनुष्ठान मायिक धर्मके त्याग विना नहीं हो सकता। इस लिए आत्मस्वभावमें रमण करना और असार मायिक पदार्थोंका त्याग करना ही स्वधर्मके अनुष्ठान और परधर्मके त्यागसे बोधित होता है। आशा नहीं कि इस प्रकारके उपदेशमें किसीको विवाद हो।

सभ्य पुरुषो! शास्त्रकारोंने ज्ञान, दर्शन और चारित्र इस रत्नत्रयीको मोक्षका मार्ग बतलाया है। अर्थात् श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा यह आत्मा मायिक–पौद्गलिक यावत् उपाधियोंसे रहित होकर सत् चित् आनंद परमात्मरूपको प्राप्त कर लेता है। फिर उसके लिए कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं रहता, इसीका नाम वास्तविक सुख है। इसीके लिए प्राणिमात्र प्रयत्न शील हो रहे हैं। यही अलौकिक सुख, धर्मके सतत अनुष्ठानसे प्राप्त होता है। परंतु इतना ख्याल रखनेकी अवश्य जरूरत है कि, जब तक देव और गुरुकी पहचान न हो तब तक धर्मके रहस्यकी प्राप्ति होनी मुशकिल है। उसपर भी इतना ध्यान

जरूर रखना चाहिए कि, केवल नाम मात्रसे सिद्धि नहीं हो सकती, केवल राम नाम उच्चारण मात्रसे कुछ नहीं बनता, किन्तु उनके आचरणोंको अपने हृदयमें अंकित करके अपने आचरणोंमें निर्मलता लाते हुए यदि नामका स्मरण पूजन किया जाय तब ही उद्धार हो सकता है। हरएक मनुष्यको यह समझ लेना चाहिए कि, संसारमें जो सामान्य जीव था वह उक्त ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप रत्नत्रयीके अनुष्ठानसे समस्त कर्मोंके क्षय द्वारा उन्नतिको प्राप्त होकर परमात्म दशाको प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार यदि मैं भी उसी मार्ग पर चलूँ तो मैं भी किसी समय वैसा ही हो सकता हूँ! अर्थात् जिस निरतिशय आनंदको वे आत्मा प्राप्त हुए हैं वह वस्तु सत् कर्मके अनुष्ठान द्वारा मेरे लिए भी अवश्य साध्य है।

सद्गृहस्थो! मनुष्य जन्म चिन्तामणिके समान है। इसे प्राप्त करके इससे लाभ उठाना ही विशेष बुद्धिमत्ता है। अब चाहे तो इससे लाभ उठा लो, और चाहे इससे वृथा खो दो, यह आपका अखत्यार है। बस इतना ही कह कर मैं अपने व्याख्यानको समाप्त करता हूँ। क्योंकि अब सूर्यास्त होनेका समय बहुत ही निकट आ गया है, इस लिए धर्मके नियमको मान देकर व्याख्यानके सार पर विचार करनेके लिए आपसे अनुरोध करता हुआ अपने कथनको विराम देता हूँ।

॥ ॐ शांति ३ ॥

सार्वजनिक धर्म्म ।

(स्थान-बड़ौदा, ता. १६-३-१३ रविवार.)

मो मा रा म म मा दं द्वे
ह या ग द ल नं भ षः

एते यस्य न विद्यन्ते,
तं देवं प्रणमाम्यहम् ॥

प्रिय सज्जन महाशय ! मैंने गत रविवारके व्याख्यानमें देव और गुरुका कुछ नाम मात्रसे वर्णन किया था । आजके व्याख्यानमें उक्त विषयका कुछ सविस्तर वर्णन आपको सुनाऊँगा । आप मेरे गत व्याख्यानके श्रवणसे इस विचारपर आ गये होंगे कि, वस्तु स्थितिमें धर्मके विषयमें सबका समान स्वत्व है । और धर्म सबके लिए एक जैसा है । एवं प्राणिमात्रके लिए अनुष्ठेय है । जब धर्म सबके वास्ते एक ही है, तब देव भी एक ही होना चाहिए । और उसका उपदेश भी परस्पर अविरुद्ध और सबके लिए एक जैसा ही होना आवश्यक है । यदि देव भिन्न २ माने जायँ तो उनका उपदेश भी भिन्न २ ही मानना होगा । उपदेशकी भिन्नतासे उपदिष्ट मार्गकी भिन्नता स्पष्ट ही है । तब तो आत्म शुद्धिकी समान उपलब्धि सबके लिए अशक्य है । इस लिए प्रथम देव तत्वपर विचार करनेकी जरूरत है ।

सद्गृहस्थो ! आजकल दुनियामें देवके अनेक नाम सुननेमें आते हैं । कोई किसी नामका उच्चारण करना मानता है और कोई किसीका । परन्तु वे नाम यदि गुण निष्पन्न हैं तब तो कुछ भी विवाद नहीं । क्योंकि वस्तुमें रहे हुए भिन्न २ गुणोंके अनुरूप, अनेक नामोंकी कल्पना हो सकती है । मगर इतना स्मरण अवश्य रखनेकी जरूरत है कि, नामके उच्चारणमें जिस गुणका बोध होता है वह गुण नामवालेमें भी विद्यमान है या कि नहीं ? मतलब कि गुणनिष्पन्न देवका ही हमें स्मरण करना आवश्यक है । देव कैसा होना चाहिए ? इसका वर्णन व्याख्यानारम्भके मंगल श्लोकमें आ चुका है । उक्त श्लोकका तात्पर्य यह है कि, मोह–माया–राग–मद–मल–मान–दंभ और द्वेष जिसमें नहीं ऐसे देवको मैं प्रणाम करता हूँ । महात्मा हरिभद्रसूरि एक स्थानमें लिखते हैं,–"भवबीजाङ्कुरजनना, रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य । ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥" अर्थात् संसारमें जन्म और मरणको उत्पन्न करनेवाले राग और द्वेषादि जिसके विनाश हो चुके हैं वह ब्रह्माके नामसे प्रसिद्ध हो, विष्णुके नामसे प्रख्यात हो, अथवा हरके नामसे कहा जाता हो, चाहे जिसके नामसे प्रसिद्ध हो, उसे मैं नमस्कार करता हूँ । तात्पर्य कि, नाम मात्रमें किसी तरहका आग्रह नहीं, मतलब केवल नामवालेके प्रशस्त गुणोंसे है ।

सज्जनो ! सब जगहमें धर्म शब्दकी घोषणा सुनाई देती है ।

भिन्न २ मतवाले एक दूसरेसे अपने धर्मको अधिक प्रिय और पवित्र समझते हैं, तो क्या वे सभीके सभी झूठे हैं ? नहीं। प्रत्येक मतमें कुछ न कुछ सत्यताका अंश अवश्य है ! परन्तु यह सत्यता कहाँसे आई ? इस सत्यताके स्रोतका मूल कारण क्या है ? और वस्तुस्थिति क्या है ? इसका परामर्श करना हमारा सबका काम है। परमात्मा किसीको स्वयं आकर कुछ नहीं समझाता ! इसलिए हेयोपादेयका—छोड़ने और ग्रहण करने योग्यका-विचार करना यह अपना ही कर्तव्य है। इस विषयमें मैं अपने अनुभवका एक दृष्टान्त सुनाता हूँ।

अमृतसर (पंजाब) के पास मानावाला नामका एक गाम है, दैवयोगसे एक वक्त स्वर्गवासी प्रसिद्ध महात्मा जैनाचार्य श्रीमद्विजयानन्दसूरि उर्फ आत्मारामजी महाराजके साथ वहाँ मेरा जाना हुआ। वहाँपर हीरासिंह नामका एक नम्बरदार है। भिक्षाके समय गाममें मेरा जाना हुआ। गाममेंसे साधुके योग्य शुद्ध आहार मात्र उक्त नम्बरदारके घरसे तक्र (छाछ) मिली, और लोगोंसे ज्ञात हुआ कि गाममें यह नम्बरदार ही कुछ सम्पन्न पुरुष है। बहुतसे लोग उसके घरसे थोड़ी २ छाछ ले जाते हैं। उसमें और, पानी मिलाकर अपना अपना निर्वाह चलाते हैं। उस एक घरकी छाछसे कितने ही घर छाछवाले बन रहे हैं। स्थानपर आकर उक्त स्वर्गवासी गुरु महाराजसे नम्बरदारके घरका सब हाल कह सुनाया। उस वक्त आपने कहा कि,

जैसे इस गाममें छाछका मूल स्थान उक्त नम्बरदारका घर है, और अन्यान्य लोग उसके घरसे छाछ लाकर उसमें अपनी तर्फसे थोड़ा २ पानी मिलाकर छाछवाले बन रहे हैं। इसी तरह धर्मका मूल स्थान ईश्वर है और उसका उपदेशरूप धर्म भी एक है। परन्तु भिन्न२ मार्गानुयायी लोग उसे ग्रहण करके अपनी कल्पनाके अनुरूप बनाकर धर्मज्ञ बन रहे हैं। जैसे छाछमें पानी मिलाने पर भी मूल छाछका अंश उसमें बना रहता है, ऐसे ही जुदे २ मतोंमें भी न्यून अथवा अधिक रूपमें वास्तविक धर्मांश अवश्य है! वही अंश मनुष्यको अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। इसलिए जलमिश्रित तक्रकी तरह कल्पना मिश्रित धर्मांश भी धर्मरूपसे भासमान हो रहा है। अतः निखिल धर्मोंमें रहे हुए सत्यांशका ग्रहण करना ही विवेकी पुरुषोंका काम है। आहा! महात्माओंके सारगर्भित कैसे निष्पक्ष विचार होते हैं!

सज्जनो! परमात्मा सबके लिए समान है। हमारी स्वतन्त्र कल्पनाएँ उसकी अप्रतिहत ज्ञान सीमाको अणुमात्र भी विचलित नहीं कर सकती। परन्तु जब तक परमेश्वरके वास्तविक स्वरूपको हम अच्छी तरह समझ न सकें तब तक ईश्वर विषयक निर्भ्रांत मानसिक विचारोंकी स्थिरता दुष्प्राप्य है। इसलिए देव-परमात्माके स्वरूपका कुछ परामर्श करना प्रथम आवश्यक है।

प्रत्येक धर्मवाला ईश्वरको क्षमावान, दयालु, और निर्दोष-परम पवित्र मानता है। यथार्थमें परमात्मा निर्दोष, निर्विकार और

वीतराग ही है । जो क्रोधी, रागी, एवं अन्य किसी विकारसे युक्त है, उसे कोई भी बुद्धिमान ईश्वर नहीं मान सकता। इसलिए जिसमें किसी प्रकारकी भी सांसारिक उपाधि न हो, वही ईश्वर हो सकता है । यह मान्यता जैनोंकी ही नहीं, किन्तु अन्य धर्मानुयायी भी इसे मुक्त कंठसे स्वीकार करते हैं ।

सभ्य श्रोतृ वृन्द ! जब मैं पंजाबमें विचरता था तब बहुतसे लोगोके मुँहसे सुना करता था कि " पढ़ी गीता तो घर काहेको कीता " अर्थात् यदि गीताका अध्ययन किया, तो फिर घर करनेकी क्या आवश्यकता ? इसका खुलासा मतलब यह है कि, गीतामें कहीं कहीं इतना पारमार्थिक रहस्य भरा हुआ है कि, यदि कोई उसका मनन द्वारा निदिध्यासन करे तो हृदयपट अवश्य ही वैराग्यके प्रशस्त रंगसे रंगे विना नहीं रह सकता । अन्यथा यूँ तो पोपट (तोता) की राम राम रटनाकी तरह सभी गीता पाठी हैं ! उसी गीतामें लिखा है कि—

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ अ. ४ श्लो. १०

जिनका राग, भय और क्रोध नष्ट हो गया है, और मत्परायण होकर जो मेरी उपासना करते हैं ऐसे बहुतसे मनुष्य, ज्ञान और तपके द्वारा पवित्र होकर मेरे शरीरको प्राप्त हुए हैं । अब विचारना चाहिए कि, ईश्वरीय रूप प्राप्त करनेके लिए जब

रागद्वेषसे मुक्त होनेकी आवश्यकता है तब तो सिद्ध हुआ कि, ईश्वर परमात्मा रागद्वेषसे सर्वथा मुक्त ही है । इसी लिए परमात्मा वीतराग कहा जाता है । (सहर्षनाद)

सज्जनो ! शैव, वैष्णव, मुसलमान, और ख्रिस्ती आदि धार्मिक सज्जन अपने २ धर्म प्रवर्तक देव ईश्वरको यदि निर्दोष और निष्कलंक मानते हैं, तथा यह मान्यता वस्तुतः ठीक है, तब तो कहना होगा कि, अपने सबमें मात्र नामका ही फर्क है, न कि नामवालेका । एवं यह भी स्वीकार करना होगा कि, धर्मके नामसे ही हममें भिन्नता है, धर्म भिन्न २ नहीं । तथा ईश्वर वस्तु भी एक ही है उसमें भेद केवल निजकी कल्पना है । इसलिए वस्तु स्थितिकी शोध की जाय तो झगड़ा बहुत जल्दी निपट जाता है ।

गृहस्थो ! मोक्षरूप अनंत सुखकी प्राप्तिके लिए बाह्य वेष ही नितान्त आवश्यक नहीं । लाल पीला अथवा अन्य किसी प्रकारका कपड़ा पहनने मात्रसे ही कल्याण हो जायगा ऐसी मान्यता केवल बालपन है । तात्विक सुख प्राप्तिका साधन मात्र अंतरंग शुद्धि है । अंतरंग शुद्धिसे ही समभाव की प्राप्ति होती है । समभाव ही मोक्ष प्राप्तिका निकट साधन है । बाह्य वेष तो केवल ऊपरके सद्व्यवहारकी रक्षाके लिए है । इसलिए बाह्य वेषमें भिन्नता रहने पर भी यदि आंतरिक

वेष समभावपना जीवमें आ जावे तो निस्सन्देह वह मोक्षको प्राप्त कर सकता है। यही महर्षियोंका कथन है—

" सेयंवरो व आसंवरो व बुद्धो व अहव अन्नो वा।
समभावभावियप्पा लहइ मुक्खं न संदेहो ॥ "

बस इसीसे उन्नतिकी अभिलाषा सफल हो सकती है। सुज्ञ श्रोतृगण! जैनधर्म, खास किसी व्यक्ति अथवा जातिका धर्म नहीं, किन्तु सार्वजनिक है। व्यक्ति मात्रका अनुष्ठेय है। हरएक मनुष्य इसे बड़ी खुशीसे अपने व्यवहारमें ला सकता है। 'जैन' नाम है, जिन परमात्माके उपदेश किये हुए धर्मके अनुष्ठान करनेवालेका। जिन शब्द 'जि' धातुसे बना है। जिसने राग द्वेषादि अन्तरंग शत्रुओंपर विजय प्राप्त करली हो, वह जिन कहाता है। जिन किसी खास आदमीका नाम नहीं, किन्तु जिसे उक्त अधिकार प्राप्त हो चुका हो, ऐसा हरएक महापुरुष जिनके नामसे व्यवहृत किया जा सकता है। इसलिए हम, रागद्वेष रहित उक्त जिनको गुणनिष्पन्न शंकर, ब्रह्मा, विष्णु, हर, महादेव आदि जिस नामसे पहचानना चाहें पहचान सकते हैं। अतः इस प्रकारकी व्यक्तिका उपदेश (धर्म) यावत् मनुष्योंके लिए समान है। इसलिए उक्त धर्मको सार्वजनिक कहनेमें कोई त्रुटि मालूम नहीं देती। (करतल ध्वनि)

सभ्य पुरुषो ! संसारमें आज तक जितने धर्म प्रवर्तक, मर्यादा शील अवतारी पुरुष हुए हैं, उनमेंसे आज एक भी विद्यमान नहीं है । अतः प्रत्यक्ष प्रमाणसे तो कुछ निर्णय हो नहीं सकता । इसलिए देवके सत्य स्वरूपके निर्णयके लिए अब मात्र दो वस्तुएँ हमारे पास हैं । जिनमें एक तो उनका जीवनचरित्र, और दूसरी उनकी प्रतिमा–मूर्ति । उनका जीवन किस प्रकारका था ? उनमें निर्दोषता अथवा सदोषता कहाँ तक थी ? इत्यादि बातें जीवनचरित्रोंसे अच्छी तरह समझमें आसकती हैं । तथा मूर्तिके देखनेसे मूर्तिवालेकी अवस्थाका चित्र भी बखूबी समझमें आ सकता है । जिसकी प्रतिमा–मूर्त्तिका देखाव शान्त है तो समझ लो कि उस मूर्तिवाला भी शान्त है । यदि मूर्त्तिकी आकृति क्रोध अथवा काममयी देखनेमें आती है, तो मूर्त्तिवाला भी क्रोध और कामसे मुक्त हुआ नहीं समझा जा सकता । इसलिए बुद्धिमानको समझ लेना चाहिए कि, उक्त मूर्त्तिवाला बनावटी देव है; उसमें देवके सचे लक्षण नहीं हैं । मुझे यहाँपर प्रसंगवश कुछ मूर्त्तिपूजाके सम्बन्धमें कहना पड़ता है । क्योंकि, कितनेक मनुष्य अकारण ही मूर्तिपूजाके घोर विरोधी हो रहे हैं । इस विरोध-का कारण क्या है ? यह मेरी समझसे बाहिर है । और मेरा उन लोगोंसे यह भी आग्रह नहीं कि, उक्त सिद्धान्तको वे

माननें ही लग जावें, किन्तु इसपर कुछ विचार अवश्य करें इतना ही निवेदन है । मेरे विचारमें जो लोग मूर्तिपूजाके सिद्धान्तके विरोधी हैं, वे बड़ी भारी भूलमें हैं । मूर्तिके माननेवाले केवल मूर्तिको ही नहीं मानते किन्तु मूर्तिवाले परमात्माको मानते हैं (करतल ध्वनि) प्रत्येक धर्मवाले किसी न किसी प्रकारसे मूर्तिको अवश्य मानते हैं । कितनेक लोग वेदोंके पुस्तकोंका सन्मान करते हैं । कितनेक कुरानकी इज्जत करते हैं । और कितनेक बाइबलको सिरपर उठाते और चूमते हैं । परन्तु आश्चर्य यह है कि, स्वयं तो जड़ पुस्तकोंका सत्कार करते हैं और देवमूर्तिको जड़ बतलाकर उसकी पूजाका विरोध करते हैं । बहुधा लोगोंका कथन है कि, जड़मूर्ति हमारा न कुछ बिगाड़ सकती है, न कुछ सुधार सकती है । इसलिए उसका पूजन करना एक समयको व्यर्थ खोना है । मगर उन लोगोंको इतना स्मरण रखना चाहिए कि, मूर्ति ईश्वरभक्तिमें आलम्बन रूप है । मानसिक स्थिरताका एक अनूठा साधन है । सज्जनो ! एकान्त स्थानमें रक्खी हुई एक सुन्दर स्त्रीकी मूर्तिको देखकर यदि एक कामी पुरुषके हृदयमें देखते ही कामोत्पत्ति हो जाती है; तो क्या भगवान वीतरागकी शान्त मुद्राको देखकर एक भक्तका हृदय प्रभु भक्तिके शान्त सुधारसमें गोते खाने नहीं लगेगा ? (करतलध्वनि) इसलिए उक्त सिद्धान्तका बहुत ही विचारपूर्वक परामर्श करना चाहिए । यद्यपि इस सम्बन्धमें बहुत कुछ कहना अवशिष्ट है,

परन्तु प्रसंगान्तर होनेसे इसको यहीं पर छोड़ता हुआ अपने प्रस्तुत विषय पर आता हूँ।

सभ्य वृन्द ! देव कैसा होना चाहिए ? उसकी परीक्षा किस तरह करनी चाहिए ? इस बातको मैंने आपसे बतला दिया है। आप लोग उस पर विचार करेंगे, ऐसी मुझे आशा है। अब देवके साथ गुरुके स्वरूपका ज्ञान करना भी आवश्यक है। गुरु कैसा होना चाहिए, उसमें किन बातोंका होना लाजमी है ? इस पर विचार करना बहुत जरूरी है। क्योंकि, धर्म और अधर्मका यथार्थ ज्ञान होना गुरुओं पर अवलम्बित है। धर्मरूप नौकाके गुरु कर्णधार हैं। संसारमें आज जितने साधु दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वे गुरु पदके योग्य तभी हो सकते हैं, जब उनमें साधुताके गुण विद्यमान हों। अन्यथा चातुर्मासमें उत्पन्न होनेवाले इन्द्रगोप नामके एक क्षुद्र कीटकी तरह नाम मात्र धारण करनेसे कुछ सिद्ध नहीं! जैसे वह कीट इन्द्रगोप इस नाम मात्रसे इन्द्रकी रक्षा नहीं कर सकता इसी प्रकार साधु इस नाम मात्रसे कभी भी आतम साक्षात्कार नहीं हो सकता ! इसलिए सच्ची साधुता प्राप्त करनेकी आवश्यकता है। साधुका आचार बहुत ही शुद्ध होना चाहिए। साधु--श्रेष्ठ काम करनेवालेको संस्कृत भाषामें साधुकार कहते हैं। उसीका प्राकृत भाषामें साहुकार बनता है। जैसे सच्ची दुकान चलानेके लिए प्रामाणिक सद्व्यवहारी साहुकार होनेकी जरूरत है, ऐसे ही धार्मिक दुकान चलानेके लिए भी साधु रूप साहुकारकी

आवश्यकता है ! (करतल ध्वनि) जो मनुष्य साधुके अनुरूप आचरण रखता है उसे आप सन्यासी कहो, उदासी कहो, वैरागी कहो, मतलब कि—किसी नामसे वह परिचयमें आवे, परन्तु वह आत्मा और संसारके उद्धारमें प्रयत्न शील होना चाहिए ! एक भाषाके कविने साधुके स्वरूपका चित्र बहुत ही अच्छा खींचा है। साधुके लक्षण बतलाता हुआ कवि कहता है कि—

" साधु सो जो साधे काया, कोड़ी एक न रखे माया।
लेना एक न देने दो, ऐसा नाम साधुको हो।"

अर्थात्—साधु उसे कहते हैं जो आत्मसाधनमें प्रवृत्त हो। आत्मसाधन कब हो सके ? जब कौड़ी मात्र भी अपने पास माया न रखे ! माया दो प्रकारकी। एक द्रव्य—माया, दूसरी भाव—माया। द्रव्य—माया तो धन, लक्ष्मी वगैरह प्रसिद्ध ही है। छल, कपट वगैरह भाव—माया कही जाती है। जो मनुष्य इस दो प्रकारकी मायामेंसे किसीसे भी संबंध नहीं रखता वही आत्म—साधन कर सकता है। जब सब तरहकी मायासे रहित हो गया तो फिर न किसीका लेना रहा और न किसीका देना रहा। मात्र एक परमात्माका नाम ही लेना उसके लिए अवशिष्ट रहा। एवं न किसीको वर देना और न शाप। क्योंकि उक्त दोनों कामोंसे रागद्वेषकी वृद्धि होती है। रागद्वेषकी वृद्धि ही साधुताकी विरोधिनी है।

सज्जनो! संसारमें सारे झगड़ोंका मूल जर, जोरु और जमीन ये तीन वस्तुएँ हैं। इन्हींके निमित्तसे अनेक अनर्थ हो रहे हैं। आज आप लोग जिस स्थानमें पधारे हैं यह भी इन्हीं तीनोंके झगडेको मिटानेके लिए नियत किया गया है। (करतलध्वनि) इसलिए इन तीनों उपाधियोंसे साधुको सदा मुक्त रहना चाहिए। इनमें भी सबसे अधिक अनर्थका मूल जर—धन है। बाकीकी दो उपाधियाँ तो इसीका रूपान्तर हैं। धनका उचित रीतिसे संपादन, रक्षण और व्यय करना गृहस्थके लिए तो शोभास्पद है मगर साधुके लिए कलंक रूप है। क्योंकि, गृहस्थ और साधुके धर्म भिन्न २ हैं। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो कहना होगा कि, यदि गृहस्थके पास कौड़ी न हो तो वह गृहस्थ कोड़ीका और साधुके पास कोड़ी हो तो वह साधु कौड़ीका! (करतलध्वनि) मतलब कि, गृहस्थ द्रव्यसे शोभा देता है, और साधु त्यागसे। अतः साधुको द्रव्यादिके संसर्गसे सदा मुक्त रहनेकी आवश्यकता है।

साधुके लिए शास्त्रोंमें मुख्यतया पाँच नियमोंके पालन करनेकी आज्ञा दी है। उनमें प्रथम नियम अहिंसा है।

प्रत्येक सूक्ष्मसे स्थूल पर्यन्त प्राणिमात्रकी रक्षा करना अहिंसा कही जाती है। इस नियमका पालन करना साधुको परम आवश्यक है। जीवरक्षामें तत्पर रहना गृहस्थका भी धर्म है। परन्तु गृहस्थ सर्वथा अहिंसा व्रतका पालन नहीं कर

सकता, तब भी निर्दोष प्राणियोंका रक्षण तो गृहस्थको अवश्य करना चाहिए। इसीमें उसका भला है। साधुको तो प्रत्येक सावद्य-हिंसा-पाप जनित व्यापारका परित्याग करना चाहिए। इसीमें साधुता चरितार्थ हो सकती है।

सज्जनो ! अहिंसा धर्म (किसी प्राणीको दुःख न देने) का प्रत्येक मतमें उपदेश है। इसकी श्रेष्ठताको भी प्रत्येक सम्प्रदाय स्वीकार करता है। किसी धर्ममें भी हिंसा करनेकी छूट नहीं दी गई। कितनेक लोग कहते हैं, अहिंसा धर्मके पालनमें जैनधर्म सबमें अग्रेसर है, सो यह बात ठीक है। परंतु मैं चाहता हूँ कि, एक एक मनुष्यका हृदय ऐसा दयामय हो जाय कि, उसके प्रभावसे संसारभरमें, अहिंसामय धर्मका ही नाद सुनाई देने लगे ! (हर्षध्वनि) विचारपूर्वक गवेषणा करनेसे मालूम होता है कि, हिन्दु-मुसलमान-पारसी-ईसाई-यहूदी सभी धर्मोमें अहिंसा व्रतके पालन करनेका उपदेश है।

गृहस्थो ! सबकी आत्मा समान है। हर एक जीव सुखका अभिलाषी है। दुःख अथवा भय किसीको भी प्यारा नहीं। प्रत्येक प्राणी जीवनमें जितना सुख मानता है, उससे कई हिस्से अधिक भय उसको मरणसे है। हमारे पैरमें यदि एक मामूलीसा काँटा भी लग जाता है तो उसकी वेदनासे ही हम घबड़ा उठते हैं। किसी किसीको तो वह भी असह्य हो

जाती है। तब जो लोग जंगलमें फिरनेवाले निरपराध अनाथ हरिण आदि जानवरोंका शिकार करके खुशी मनाते हैं! एक तुच्छ जिव्हा सुखके लिए उन विचारोंके प्राण लेते हैं। उनका यह आचरण कहाँ तक ठीक है? यह बुद्धिमान स्वयं विचार लेवें। आनन्दमें बैठे अथवा फिरते या चरते हुए वन्य पशु पक्षियोंपर जिस वक्त शिकारी लोग गोली वगैरहका वार करते हैं उस वक्त उन जानवरोंकी जो दशा होती है उसको देखकर ऐसा कौन दयालु मनुष्य है जिसका हृदय दुःखके अनिवार्य स्रोतमें बह न जाय? मगर वाहरे! शिकारीके दिल! तेरे पर उसका अणुमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता!! कितनेक मृगयाप्रेमी महाशय उक्त कर्मको धर्मकी पोशाक पहनानेके बहाने ईश्वरीय आज्ञा बतलाते हैं। मगर यह काम ईश्वरकी आज्ञा तो नहीं, किन्तु उसकी आज्ञासे विरुद्ध है। अतएव धर्म नहीं, अधर्म है। प्राणिमात्रको अपनी आत्माके समान समझना ही मनुष्यमें मनुष्यत्व है! यही परम धर्म है। इसलिए "अहिंसापरमो धर्मः" के सिद्धान्तको जीवन पर्यन्त अपने हृदय पर अंकित कर लेना चाहिए।

महानुभावो! अधिकतर हिंसा तो मांसाहारके निमित्तसे हो रही है। मांस खानेका निषेध हिन्दु शास्त्रोंके सिवा अन्यत्र भी देखा जाता है। पारसी भाइयोंके पुस्तक शाहनामेमें लिखा है कि, हमारा जरथोस्ती धर्म ऐसा पवित्र है कि, इसमें न तो पशुको मारकर खानेकी आज्ञा है और न शिकार करनेकी।

इसी तरह मुसलमान भाइयोंके धर्म पुस्तकमें भी मनुष्यको उपदेश देते हुए कहा है कि–"**तू अपने पेटको पशु पक्षियोंकी कबर न बना**" तथा ईसाइयोंको भी आज्ञा की गई है कि,–**तू हिंसा मत कर। तू मेरी तरह पवित्र होकर रह ! तू जंगलके किसी भी पशुका मारकर उसका मांस न खाना।** सूक्ष्म विचारसे देखें तो मांसाहारकी छूट किसी भी धार्मिक ग्रंथमें आपको न मिलेगी।

सज्जनो ! सूक्ष्म विचारको छोड़ स्थूल दृष्टिसे ही विचार किया जाय तो भी मांसाहार आपको युक्तिसंगत प्रतीत न होगा। आप लोग न्याय मंदिरमें बैठे हुए हैं, इस लिए आशा ह कि, न्यायको अपने हृदयमें अवश्य स्थान देंगे। जब कोई हिंदु मर जाता है तो उसके साथ स्मशानमें जानेवाले आदमी अपने आपको अपवित्र समझते हुए स्नान करते हैं, और कपड़े धोते हैं। अब विचारना चाहिए कि, मुर्देके साथ जाने अथवा स्पर्श करने मात्रसे अपवित्रता आ जाती है ! तो क्या मुर्देको पेटमें डालनेसे डालनेवाला पवित्र रह सकेगा ? (करतल ध्वनि) एक भी लहूका छींटा बदन पर या कपड़े पर पड़ जाय तो मांस खानेवाले महाशय उसे मलमल कर धोते हैं, मगर अफसोस कि, उसी रुधिर लहूके लोथड़े (मांस) को अपने पेटमें डालते हुए अणुमात्र भी नहीं हिचकते ! (तालियाँ) हमारे मुसलमान भाई अपने पवित्र धाम मक्का शरीफ़की यात्रामें

हरएक तरहके जीवकी हिंसाकी मना ही करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि, उनके कथनानुसार ही ईश्वरको कुरबानी प्यारी नहीं! यदि उक्त कर्मसे ईश्वरको प्यार होता तो वह (खुदा) अपने स्थान पर उसका निषेध न करता।

गृहस्थो! मांसाहार शास्त्रविरुद्ध है इतना ही नहीं किन्तु सृष्टिक्रमसे भी विरुद्ध ह। सृष्टिमें मनुष्योंकी अपेक्षा पशुओंमें प्राकृत नियमके पालनका वर्ताव स्पष्ट देखनेमें आता है और वे उक्त नियमको पालन करते देखे भी जाते हैं। सिंह चाहे कितना ही क्षुधासे पीडित हो परंतु वह मांसके सिवा अन्य वस्तु (घास वगैरह) को कदापि न खायगा! एवं गायको चाहे कितना ही कष्ट प्राप्त हो मगर वह मांसको कदापि नहीं खा सकती। मनुष्यके स्वाभाविक आहारका विचार करनेसे मालूम होता है कि, मनुष्य मांसाशी नहीं है। मांसाहारी और फलाहारी पशु समुदायके मध्यमें यदि मनुष्यको खड़ा किया जाय तो उसका सादृश्य फलाहारी पशुओंसे ही हो सकता है। जो जीव स्वाभाविक मांसाहारी हैं उनको रात्रिमें अधिक दिखाई पड़ता है, भागनेसे पसीना नहीं आता, उनके दान्त तीखे होते हैं और वे जीभसे लप लप करके पानी पीते हैं। मगर जिन पशुओंका स्वाभाविक आहार वनस्पति है उनका व्यवहार मांसाशी जीवोंकी अपेक्षा सर्वथा विपरीत देखा जाता है। अर्थात वे रात्रिमें नहीं देख सकते, उन्ह अधिक चलनेसे पसीना आता है, दाँत उनके

चपटे होते हैं, और वे होठोंसे पानी पीते हैं। उदाहरणके लिए सिंह और गौ समझिए। मनुष्यके सम्बन्धमें विचार करनेसे उसकी तुलना वनस्पतिका आहार करनेवाले गाय आदि जानवरसे ही हो सकती है। मांसभोजी सिंह आदि पशुओंके सदृश समझ कर उसे वृथा ही दयाहीन हिंसक बनाना सत्य और न्यायका ही नहीं, बल्के मनुष्यत्वका भी नाश करना है! जो लोग सृष्टिक्रमसे विरुद्ध होनेपर भी अपने क्षणभरके मजेके लिए अनाथ पशुओंके मांससे अपने मांसकी पुष्टि करते हैं उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि, उनके लिए इसका परिणाम बहुत भयंकर होगा। प्रकृतिके यहाँ किसीका भी लिहाज नहीं। इसलिए यदि आपको अहिंसा धर्मसे प्रेम है, और आप संसारमें शांति चाहते हैं तो मांसाहारके प्रचारको रोकिए। (हर्षध्वनि)

इसके सिवा सत्य भाषण करना साधुका दूसरा नियम है। यह नियम गृहस्थके लिए भी सर्वदा अनुष्ठेय है। सत्यका कितना प्रभाव है, और सत्य बोलनेसे आत्मा कितना उन्नत हो सकता है, यह आप लोग स्वयं ही विचार कर सकते हैं। इस लिए सत्य पर विशेष विचार न करता हुआ अब साधुके अदत्तादानविरमण रूप तीसरे नियम पर कुछ आप लोगोंके ध्यानको खींचता हूँ। अदत्तादानका अर्थ है विना दिये हुए लेना। साधुको विना दिये किसीके किसी भी पदार्थको ग्रहण करना अनुचित है। किसीके देने पर भी साधुको वही वस्तु ग्रहण करनी चाहिए जो कि उसके ग्रहण करने योग्य हो।

साधुको इतना ध्यान हर वक्त रखना चाहिए कि, उसका प्रत्येक आचरण निष्पाप हो। गृहस्थोंके लिए साधुका एक भी व्यवहार भार भूत न होना चाहिए। साधुको क्षुधा निवृत्तिके लिए अन्न लानेका अधिकार भी एक गृहस्थके घरसे नहीं! उसे माधुकरी वृत्तिसे निर्वाह करनेकी शास्त्रोंमें आज्ञा है। जिस तरह मधुकर—(भौंरा) अनेक पुष्पों पर बैठता हुआ वहाँसे थोड़ा थोड़ा रस लेकर अपना निर्वाह करता है, और पुष्पोंको किसी प्रकारकी क्षति भी नहीं पहुँचती। इसी तरह साधुको अनेक घरोंसे थोड़ी थोड़ी भिक्षा लेकर अपना निर्वाह करना चाहिए! गृहस्थके घरसे साधुको उतनी ही भिक्षा लेनी चाहिए जितनीसे गृहस्थको फिर नई बनानेकी आवश्यकता न पड़े। जो लोग उक्त शास्त्रीय नियमका भंग करते हैं, वे लोग संसार में उपकार रूप होनेके बदले निस्सन्देह भार रूप हैं!

चतुर्थ नियम साधुका ब्रह्मचर्य है। यह इतना व्यापक और आवश्यक है कि, इस पर ही समस्त विश्वकी धार्मिक स्थिति अवलंबित है। ब्रह्मचर्य संसारके समस्त रत्नोंमेंसे एक अमूल्य रत्न है। जिस साधुके पास यह रत्न मौजूद है, वह जौहरी है! वह धनवान है! वह राजा है! वह महाराजा है! वह मालामाल है! कहाँ तक कहूँ? उसके पास तमाम दुनियाकी दौलत है। जिस साधुने इस अमूल्य रत्नको क्षण मात्रके विषयसुखके बदलेमें बेच दिया है वह ठगा गया, इतना ही नहीं किन्तु सड़े

4

हुए कुत्तेकी तरह उसकी घृणित दशा प्रतिव्यक्तिके अनादरका विषय हो पड़ती है। (तालियाँ) साधुके और नियमोंके पालनमें दैवयोग से यदि त्रुटि भी हो जाय तो क्षंतव्य है; परन्तु ब्रह्मचर्य व्रतके भंगका अधिकार साधुको किसी भी अवस्थामें नहीं है। प्राण भले ही कल जानेवाले हों तो आज जाएँ मगर ब्रह्मचर्य व्रतमें क्षति न आनी चाहिए।

सभ्य श्रोतृ गण! कामरूप महा तस्करसे आत्मरूप धनको शरीररूप दुर्गमें सुरक्षित रखनेके लिए ब्रह्मचर्य एक बड़ी मजबूत अर्गला है; इसलिए ब्रह्मचर्यकी सुरक्षामें साधुको बहुत सावधान रहना चाहिए। साधुके अतिरिक्त ब्रह्मचर्य गृहस्थका भी अनूठा भूषण है। गृहस्थ यद्यपि सर्वथा ब्रह्मचर्य पालन करनेमें बाध्य है, तथापि उसे स्वस्त्री संतोष और परस्त्री त्याग व्रतमें तो अवश्य दृढ रहना चाहिए। मोक्षरूप उन्नत प्रासादमें सदाके लिए निवासका होना ब्रह्मचर्य रूप सोपान पर ही निर्भर है। कहाँ तक कहूँ यह ब्रह्मचर्य आंतरिक दिव्य ज्योति है! जीवनमें प्राण है! आत्मिक दिव्य संपत्तिका मूल स्थान है! जिसने इसे खोया उसने सर्वस्व खोया! (हर्षनाद)

साधुका पाँचवाँ नियम है परिग्रहत्याग। अर्थात किसी भी वस्तुमें ममत्वका न रखना। अगर साधु ही सांसारिक पदार्थोंपर ममत्व रखने लग जाय तो साधु और गृहस्थमें सिवा वेषके और कोई अधिकता नहीं। साधुको पैसा रखना स्त्री रखनी,

मकान बनाना, ये तीनों काम त्याज्य हैं। जो इन तीनोंको रखते हैं वे साधुतासे कोसों दूर हैं। साधु कहलानेवालेको कमसे कम अपने वेषकी विडम्बना पर तो अवश्य ध्यान देना चाहिए! इस लिए संसार और आत्माकी भलाईमें तत्पर रहकर सादी सरल निष्कपट और सच्ची जिन्दगी बसर करना साधुताका सच्चा स्वरूप है।

सज्जनो! मैंने जो कुछ कहा है वह किसीपर आक्षेप बुद्धिसे नहीं कहा, मैंने केवल वस्तुस्थिति पर आपके सामने विचार किया है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच यमोंको यथावत् पालन करनेवाला साधु, तथा राग और द्वेषसे सर्वथा मुक्त देव एवं उसका कहा हुआ धर्म, इन तीनों रत्नोंको परीक्षापूर्वक ग्रहण करना ही मनुष्यके वास्ते उचित है। उक्त रत्नत्रय ही आत्मिक शान्ति देनेवाले हैं; और येही सार्वजनिक धर्मके मूल स्रोत हैं. और इन्हीका नामान्तर सबका हितकारी सुखकारी सार्वजनिक धर्म है।

सभ्यो! मैंने आज आपका बहुतसा समय लिया है मगर परस्पर धार्मिक विचारोंमें समयका व्यय करना उचित ही है। मेरे कथनपर आप लोग कुछ विचार करनेकी उदारता दिखावेंगे ऐसी आशा रखता हुआ मैं अब अपने व्याख्यानको समाप्त करता हूं॥ ॐ शान्तिः ३॥

शिवमस्तु सर्वजगतः, परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः॥
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखीभवन्तु लोकाः॥

॥ ॐ ॥

मुनिसम्मेलन ।

परलोकवासी प्रातःस्मरणीय जैनाचार्य्य न्यायांभोनिधि श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरीश्वर (श्री आत्मारामजी) महाराजके साधुओंकी १३ जून सन् १९१२ गुरुवारको देश गुजरात राजधानी बड़ौदा उपाश्रय जानीशेरीमें एक महती सभा हुई थी।

सभापतिके असनको जैनाचार्य श्रीविजयकमलसूरिजीने सुशोभित किया था।

पहेले दिनकी कार्रवाई ।

मंगलाचरण ।

प्रारंभमें मुनि परिषदकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये देवस्तुति और गुरुस्तुति की गई।

मुनिसम्मेलनके उद्देशपर मुनिराज श्रीवल्लभविजयजीका व्याख्यान ।

सभापतिजीकी आज्ञासे मुनिराज श्रीवल्लभविचयजीने यात्रामें अनेक कष्ट सहन करके देश देशांतरोंसे आये हुए मुनिराजोंको सादर अभिमुख कर कहा कि,—

महाशयो ! आज जो आपलोग यहाँपर एकत्रित हुए हैं इसका हेतु क्या है ? क्या यह नवीन ही शैली है या पहेले भी ऐसे सम्मेलन हुआ करते थे ? इत्यादि प्रश्नोंका मनुष्योंके हृदयमें उठना एक स्वाभाविक बात है । इस बातके विवेचन करनेसे पहले यह कहदेना अवश्य उचित होगा कि, यह परिषद केवल साधुओंकी ही है । इसमें अन्य किसीको सिवाय साधुके बोलनेका या दखल देनेका सर्वथा अधिकार नहीं, यह बात ध्यानमें रहे ।

यह सभा किस लिये की गई है ? इसका उद्देश क्या है ? इस प्रश्नका उत्तर देनेसे पहले मुझे तीसरे प्रश्नपर विचार कर लेनेकी आवश्यकता है ।

महानुभावो ! हमने यह कोई नवीन आडंबर खड़ा नहीं किया है । इसे सभा कहो, सम्मेलन कहो, इकठे होना कहो या वर्तमानकाल के अनुसार (जमाने हालके मुताबिक) कॉन्फरन्स कहो ! मतलब सबका एक ही है । ऐसी ऐसी सभायें या सम्मेलन प्रथम भी हुआ करते थे यह बात इतिहासोंसे बखूबी मालूम हो सकती है । हमारे पूर्वजोंने इस संमेलनसे क्या क्या फायदे उठाये हैं इस बातको भी हमें इतिहास अच्छी तरह बतला रहा है । कालचक्रके प्रभाव (जमानेकी गर्दिश)से बीचमें लुप्तप्रायः हुए हुए उन्नतिकर इस उत्तम मार्गको नवीन समझना एक भूल

है। पुरातन मुनि कर्त्तव्यको ही फिरसे उत्तेजित करनेके लिये यह उद्योग है।

अच्छा! अब यह सम्मेलन किस लिये हुआ है वह मैं आपको बतलाता हूँ। ऐसे सम्मेलन करनेसे अपने मुनि दूर दूर देशोंसे आकर एक स्थानमें मिलते हैं इससे दर्शनका लाभ होता है; एक दूसरेकी पहिचान नहीं है वह भी होती है, और आपसमें प्रीतिभाव बढ़ता है। उससे जो धर्म संबंधी कार्य हों उनमें एक दूसरेकी मददका मिलना और अपने इस सम्मेलनको देख कर अन्य भी इस प्रकारसे धर्मोन्नतिके लिये सम्मेलन करना सीखें जिससे दिनपरदिन शासनकी उन्नति हो। इसके अलावा एक महत्वका कारण यह भी है कि, अपने साधु तो फिरते राम होते हैं। एक स्थानमें सिवाय चतुर्मासके रहते ही नहीं। शेषकाल विहारमें फिरते गुजरता है। चतुर्मासमें सबका मिलना मुश्किल, भिन्न भिन्न स्थानोंमें चतुर्मास होनेसे परस्पर मिलनेका समय वर्षों तक भी हाथ नहीं आता। ऐसी हालतमें कोई मनुष्य अपने किसी स्वार्थ की सिद्धिके लिये आपसमें कुसंप करानेका, एक दूसरेकी सच्ची झूठी बातोंसे एक दूसरेके कान भरकर यदि आपसमें विक्षेप डाले या डाला हो तो इस प्रकारके संमेलनसे, जो अंदरकी कोई आँटी पड़ गई हो वह फौरन ही सत्य बातके प्रतीत होनेपर निकल जाती है। यह कोई थोड़े लाभका कारण नहीं है। और मोटेसे मोटा फायदा

तो यह है कि अपनेमें एकताकी मजबूती होगी । इस ऐक्यकी जरूरत प्राचीन वा अर्वाचीन हरएक वक्तमें थी और है । यदि हमारेमें एकता होगी तो ही हम हर एक धर्मकार्य्यको पूरा कर शासनकी उन्नति कर सकेंगे, और अपने इस कार्यका अनुकरण अन्य भी करेंगे । उससे भी हमको फायदा होगा । संमेलनमें संख्याबंध साधु विद्वानवर्गके एकत्रित होनेसे उन विद्वानोंके जुदे जुदे आशय वा तरह तरहके अनुभवी विचारोंके प्रकट होनेका भी यह एक उत्तम साधन है । जब कभी किसी धर्म संबंधी कार्यको तरक्की कर उसे ऊँचे दरजे पर पहुँचाना हो या कोई भी सुधारा करना हो तो ऐसे सम्मेलनसे ही हो सकता है, क्योंकि अगर किसी एक कार्यको कोई अकेला साधु करना या कराना चाहे तो उसमें कई प्रकारके विघ्न आ उपस्थित होते हैं; मगर वही कार्य सबकी संमति या सम्मेलनसे उठाया जावे तो फौरन ही वह भले प्रकार शिरे पहुँचेगा। (पूरा होगा) उसमें जैसी मदद चाहें वैसी मदद हर तर्फसे मिल सकती है । हर एक कार्य आसानीसे हो सकता है। इत्यादि बड़े बड़े फायदे सम्मेलनमें समाये हुए हैं।

कायदे यानी नियम सम्मेलन करके बाँधे जायँ तो वे सर्व मान्य और पायेदार मजबूत रह सकते हैं । अकेला चाहे कोई कितना ही प्रयास करे तो भी उस पर न कोई गौर ही करता है और न उसका किसी पर वजन ही पड़ता है " अकेला एक दो ग्यारां " इस लिये इस प्रकारके मुनि संमेलनकी आवश्यकता

मुझे बहुत अरसेसे मालूम हो रही थी इस लिये यह संमेलन देख कर मेरा चित्त आनंदसे फूला नहीं समाता। वह मेरी आशा आज पूर्ण हुई आप जैसे महात्माओंके दर्शनका जो लाभ हुआ है वह साधारणसे आनंदकी बात नहीं है। आप लोग जो दूर दूर देशांतरोंसे महान संकटोंको सहन करके पधारे हैं इससे साफ प्रकट है कि आप भी इस संमेलनकी आवश्यकताको स्वीकारते हैं ऐसा मैं मानता हूँ। महाशयो! अब मैं सभापति श्रीआचार्यजी महाराजसे अपना भाषण करनेकी प्रार्थना करके बैठ जाता हूँ। इसके बाद—

सभापति आचार्य महाराज श्रीविजयकमलसूरिजीने, अपना व्याख्यान (भाषण)—जो कि लिखा हुआ था—मुनि श्री वल्लभविजयजीको ही सुनानेके लिये कहा। आपकी आज्ञा पाते ही मुनिश्रीने उसे ज्यूँका त्यूँ पढ़ सुनाया।

आचार्य श्रीमद्विजय कमलसूरीश्वरजीका व्याख्यान।

मान्य मुनिवरो! मुझे कहते हुए बड़ा ही आनंद हो रहा है कि, परम पूज्य न्यायांभोनिधि श्रीमद्विजयानंद सूरीश्वरजी प्रसिद्ध नाम श्रीमद् आत्मारामजी महाराजका शिष्य परिवार जितनी संख्यामें आज यहाँ एकत्र विराजमान है, उतनी संख्यामें

पहले कभी भी कहीं एकत्रित नहीं हुआ था ! इस मुनि सम्मेलनका पूर्ण मान मुनिश्री वल्लभविजयजीको है; क्यों कि, इस तरह मुनिमंडलको एकत्र होनेकी प्रेरणा इन्होंने ही की थी, और उसी सूचनानुसार हम तुम यहाँ इकट्ठे हुए हैं ।

मुनिवरो ! यह मुझे अच्छी तरह याद है कि, आप सब दूर दूर प्रदेशसे बहुतसे परिषहोंको सहन करके यहाँ पधारे हैं, जिसको देखकर मुझे वह आनंद हो रहा है जो अकथनीय है ।

महाशयो ! आप सब जानते ही हैं कि कितनेक अरसेसे हरएक धर्म्म, हरएक समाज, और हरएक कौम वाले अपनी अपनी परिषदें, कॉन्फ़ॅर्न्सें करते हैं और उसके द्वारा धर्ममें, समाजमें, कौममें जो खामियाँ हैं उनको दूर करनेका प्रयत्न करेते हैं ।

अपने जैन कौमके नेता गृहस्थोने भी समाज और धर्मकी उन्नतिके लिये ऐसी कॉन्फ़ॅर्न्स करनेकी शुरूआत की थी और सात स्थानोंपर हुई भी थी; परंतु खेद है कि, उत्साही प्रचारकोंकी खामी होनेसे हाल कॉन्फ़ॅर्न्स सोती हुई मालूम देती है ।

अपने श्वेतांबर संप्रदायके अनुयायी समग्र साधुओंको कितनाक काल पूर्व ही ऐसे साधुसंमेलन करनेकी आवश्यकता थी; परंतु परस्पर चलते हुए कितनेक मतभेदादि कारणोंसे मुनिवर्ग संमेलनादि कार्य नहीं कर सका ! अपना अर्थात् साधु-

ओंका कर्त्तव्य उच्च तत्वोंका अधिक प्रचार कर अर्हन् परमात्मा श्रीमहावीर भगवानने जगतके उद्धार निमित्त जो रस्ता बताया है उसे जगतवासी जीवोंको दिखानेका है; परंतु दुखके साथ कहना पड़ता है कि, उस तर्फ अपनी दृष्टि जैसी चाहिये वैसी नहीं रहनेके सबब तथा अंदर अंदरके अमुक मत भिन्न होनेके कारण हम तुम अर्थात् समग्र मुनिवर्ग उपरोक्त स्वकर्तव्यका पालन नहीं कर सके।

अपने पूज्य पूर्वर्षियोंने अपनी अगाध और अलौकिक शक्तिसे जो जो महान् कार्य किये थे उन्हीं महर्षियोंकी संतान कहलानेवाले हम तुम उनके जैसे काम करने तो दूर रहे, परंतु जो वे कर गये हैं उसे सँभालनेकी शक्ति भी हम तुममें नहीं रही। क्या यह बात लज्जास्पद नहीं है। जिस समय हजारों हिन्दु बलात्कार स्वधर्मसे भ्रष्ट हो रहे थे, संसारमें आदर्श रूप पवित्र हिन्दुओंके मंदिर तोड़े जा रहे थे, ऐसे घोर अत्याचारी राजाओंके राज्यमें भी अपने पूर्वाचार्योंने अपनी आत्मशक्ति और अतुल विद्वत्तासे पवित्र जैनधर्मकी जयपताका सारे भारत-वर्षमें उड़ाई थी। हम तुम तो प्रतापी ब्रिटिश शाहनशाह नामदार पंचम ज्यॉर्जके शांतिप्रिय राज्यमें तथा विद्याविलासी श्रीमान् महाराजा सयाजीराव गायकवाड़के जैसे उत्तम राज्योंमें भी धर्मोन्नति नहीं कर सकते यह देखकर मुझे बड़ा खेद होता है। अपने पूर्वाचार्योंकी अतुल विद्वत्ताका उदाहरण पाटण,

खंभात, जैसलमेर, लींबडी आदिके ज्ञानभंडार सारे संसारको दे रहे हैं। हम तुममें वर्तमान समयके अनुसार नये ग्रंथ बनानेकी शक्ति तो दूर रही; परंतु जो अमूल्य ज्ञानका खजाना पूर्व महर्षि अपने लिये रख गये हैं उसे समझनेकी भी पूरी शक्ति नहीं यह कितने दुःखकी बात है।

महाशयो। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि समग्र साधु समुदायके एकत्र होनेकी बहुत जरूरत थी; क्योंकि, एकत्र होनेसे पृथक पृथक गच्छोंमें या एक ही गच्छके भिन्न भिन्न समुदायोंमें जो परस्पर मतभेद तथा भिन्न भिन्न विचारादि हैं, वे दूर हो सकते हैं। और आपसमें प्रीतिभाव उत्पन्न होता है; परंतु वर्तमान स्थितिका अवलोकन करनेसे मुझे मालूम हुआ कि, श्वेतांबर संप्रदायके समग्र साधुओंका एकत्र होनेका हाल कोई भी संयोग नहीं है। बिलकुल न होनेसे तो केवल अपने (श्री आत्मारामजी महाराजके) समुदायके साधुओंका ही एक सम्मेलन हो तो बहुत अच्छा है। ऐसा मेरा विचार था ही कि इतनेमें मुनि श्रीवल्लभविजयजीकी तरफसे सूचना हुई और शासनदेवकी कृपासे वह मेरा मनोर्थ और मुनिश्री वल्लभविजयजीके श्लाघनीय उद्यमका फलरूप कार्य यह संमेलन नजर आ रहा है।

साधुसंमेलन होनेकी खबर सुनकर सब जैनसमाज खुश होगा और यही कहेगा कि यह विचार अत्युत्तम है। इसको

अमलमें लानेकी पूर्ण आवश्यकता है। परंतु व्यवहार दृष्टिसे मालूम होता है कि, "श्रेयांसि बहु विघ्नानि" इस नियमानुसार बीचमें आफतके पहाड़ भी खड़े हैं; क्यों कि साधु सम्मेलनकी शुरूआत करनी और निरंतर अमुक समयके बाद सम्मेलन होना चाहिये, ऐसा सिलसिला जारी रखना यह काम साधुओंकी हालकी स्थिति तथा संकुचित वृत्ति आदिकी तर्फ ख्याल करनेसे सुगम नहीं मालूम होता। क्यों कि ऐसे सम्मेलनों द्वारा होनेवाले फायदोंकी तर्फ दृष्टि किसी पुण्यशाली पुरुषकी ही होती है। सम्मेलनोंद्वारा किये हुए नियमोंको जब अमलमें लानेकी आवश्यकता होती है तब उस तरफ बिलकुल दुर्लक्ष जैसा दिखाई देता है। जहाँ ऐसी स्थिति हो वहाँ सम्मेलनोंद्वारा हुए नियमोंको यथार्थ मान मिलना और उनका उत्साहपूर्वक पालन करना असंभव नहीं, परन्तु मुश्किल तो अवश्य है। अस्तु। ऐसा होनेसे अपनेको निराश होना नहीं चाहिए। प्रयत्न करना अपना कर्तव्य है और इस कर्तव्यकी तर्फ उत्साहपूर्वक लगे रहेंगे तो कभी न कभी अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

मान्य मुनिवरो! जमाने हालमें विद्या प्राप्त करनेके अनेक साधनोंके होनेपर भी कितनोंने, उच्च विद्या प्राप्त की, यह छिपा हुआ नहीं है। उस जमानेकी तरफ खयाल करो कि, जिस समय महामहोपाध्याय न्यायविशारद श्रीमद् यशोविजयजी तथा

उपाध्याय श्रीमद् विनयविजयजीने काशी जैसे दूर प्रदेशमें जाकर कैसी मुसीबतसे विद्या प्राप्त की थी ! मगर इस जमानेमें जहाँ चाहे वहाँ अच्छेसे अच्छे पंडित रखकर विद्याभ्यास कर सकते हैं। इतनी अनुकूलता होनेपर भी साधुओंमें उच्च ज्ञानकी बहुत खामी नजर आती है। कितनेक साधु सामान्य ज्ञान अर्थात् साधारण कथा ग्रंथ बाँचने जितना बोध हुआ कि, बस सब कुछ आ गया। ऐसा मानकर आगे अभ्यास करना बंद कर देते हैं ऐसा नहीं होना चाहिये। किंतु अच्छी तरह न्यायशास्त्रादिका पूरा अभ्यास करना चाहिये। यह खूब ध्यानमें रखना कि उँचे प्रकारके विद्याध्ययनके विना साधुओंका महत्व टिके, ऐसा समय अब नहीं रहा। इस लिये जैनसमुदायमें विद्याकी वृद्धि हो, ऐसे प्रयत्नकी बहुत जरूरत है। जब ऐसा होगा तभी समुदाय, समाज और आत्माकी उन्नति होगी। शास्त्रोंमें भी "पढमं नाणं तओ दया" "ज्ञानादृते न मुक्तिः" इत्यादि फरमान हैं।

अपनेमें अर्थात् श्रीमद् विजयानंद सूरीश्वरजीके शिष्य समुदायमें देशकालानुसार प्रायः आचार संबंधी शिथिलता नहीं है तो भी, भविष्यके लिये समयानुसार कितनेक नियम करनेकी आवश्यकता मालूम देती है। भिन्न भिन्न संप्रदायके साधुओंकी पृथक पृथक प्रवृत्ति देखकर भय है कि, अपने साधुओंमें भी संगत दोष न लग जाय, इस लिये भी कितनेक नियम करनेकी जरूरत है। कितनेक अन्य साधु विहारमें अपने उपकरण आदि

गृहस्थसे उठवाकर चलते हैं, कपड़े गृहस्थसे धुलवाते हैं, और केशलुंचन (रोगादि कारणके अतिरिक्त) भी बहुतसे साधु छोड़ बैठे हैं; तथा कितनेक साधु गुरु आदि वृद्ध पुरुषोंसे, गुप्त पत्र-व्यवहार करते हैं इत्यादिक कितनीक बातें ऐसी हैं जिनके लिये कुछ बंदोबस्त न किया जाय तो उनसे किसी समय हानिकारक परिणाम आनेका संभव है।

कितनेक साधु देशकालका विचार किये विना शिष्य परिवार बढ़ानेके लालचमें फँस कर ऐसे ऐसे कार्य करते हैं, जिससे कि धर्मकी और कौमकी न सही जाय, ऐसी बदनक्षी-बदनामी जैनेतर लोग करते हैं, और इस पवित्र धर्मकी तरफ घृणित विचार प्रगट करते हैं।

इस बातके लिये भी अपनेको कोई ऐसा प्रबंध करनेकी जरूरत है, जिससे कि धर्मकी अवहेलनारूप घोर कलंक अपने सिरपर न आवे !

यह जमाना खंडन मंडन या कठोर भाषाके व्यवहार करनेका नहीं है; किंतु शांततापूर्वक अर्हन् परमात्माके कहे सच्चे तत्वोंको समझा कर प्रचार करनेका है। वर्तमान समयमें प्रचलित राज्य भाषा जो कि, इंग्लिश है उसका ज्ञान भी साधुओंमें होनेकी जरूरत है। कितनेक साधुओंकी इतनी संकुचित्त वृत्ति है कि, उपाश्रयके बाहर क्या हो रहा है ? इसकाभी पता नहीं है ! यही कारण है, जो जैन जातिकी संख्या

प्रतिदिन घटती जाती है ! जबके अन्य जातियाँ अपनी उन्नतिको नदीके पूरके समान बढ़ा रही हैं; तो जैन जाति जो कि उन्नतिकी ही मूर्ति कही जा सकती है, उसको अपनी उन्नतिमें योग्य ध्यान नहीं देना अतीव चिंतनीय है।

महानुभावो! सोचो! यदि ऐसी ही स्थिति दो चार शताब्दि तक रही तो, न मालुम, जैनजातिका दरजा इतिहासमें कहाँ पर जा ठहरेगा? इस लिये अपनेको इन बातोपर विचार कर ऐसा प्रबंध करना चाहिये, जिससे कि अपने समुदायकी तरफसे धर्मकी उन्नति प्रतिदिन अधिकसे अधिक हो और उसकी छाप दूसरे समुदायपर भी पडे।

अपने साधुओंकी संख्या अन्य सिंघाड़ेके साधुओंसे अधिक है इससे जहाँ जहाँ जिन जिन स्थलोंमें साधुओंका जाना नहीं होनेसे हजारों जीव जैनधर्मसे पतित होते जाते हैं, ऐसे क्षेत्रोंमें विचरना, और उनको उपदेश देकर धर्ममें दृढ़ करना। यदि अपने साधु ऐसा मनमें विचार लेवें तो, थोड़े ही कालमें बहुत कुछ उपकार हो सकता है। बहुतसे साधु केवल बड़ेबड़े शहरोंमें ही विचरते हैं, इससे बिचारे ग्रामोंके भाविक जीव वर्षोंतक साधुओंके दर्शन और उपदेश बिना तरसते रहते हैं। इससे आपने साधुओंको चाहिये कि, जहाँ अधिकतर धर्मकी उन्नति हो, वहाँ पर ही चतुर्मासादि करें।

महाशयो! मैंने आपका समय बहुत लिया है. परंतु

अपने साधुओंका सम्मेलन होनेका पहला ही प्रसंग है, जिससे प्रथम आरंभमें मजबूत काम होना चाहिये, ताकि भविष्यमें यह अपना प्रथम संमेलन औरोंके लिये उदाहरण रूप हो जावे। अतः मैं आशा करता हूँ कि, सब मुनिमंडल इस बातको लक्षमें रखकर इस कार्यमें सफलता प्राप्त करेगा। अब मैं इतना ही कहकर अपने भाषणको समाप्त करता हूँ।

(इसके बाद नियमानुकूल जो प्रस्ताव और विवेचन हुए वे क्रमशः लिखे जाते हैं।)

प्रस्ताव पहला।

अपने समुदायके प्रत्येक साधुको चाहिये कि, वर्त्तमान आचार्य महाराज जहाँ चतुर्मास करनेके लिये कहें, वहाँ ही किया जाय; यदि किसीकी इच्छा किसी अन्य क्षेत्रमें चतुर्मास करनेकी हो, और आचार्य महाराज वहाँकी अपेक्षा और कहीं चतुर्मास करनेमें अधिक लाभ समझते हों तो, उनकी आज्ञानुसार दूसरे ही स्थानपर प्रसन्नतापूर्वक चतुर्मास व्यतीत करना चाहिये।

यह प्रस्ताव उपाध्याय श्रीवीरविजयजी महाराजने पेश किया था; जिसकी पुष्टि मुनिराज श्रीहंसविजयजी महाराजने बड़ी अच्छी तरहसे की थी। आखिर सर्व मुनियोंकी सम्मतिके अनुसार प्रथम प्रस्ताव पास किया गया।

प्रस्ताव दूसरा।

बिना किसी खास कारणके अपने साधुओंको, एक चतुर्मासके ऊपर दूसरा चतुर्मास उसी क्षेत्रमें नहीं करना। तथा चतुर्मास पूरा होते ही शीघ्र विहार करदेना चाहिये। यदि किसी खास कारणसे आचार्य महाराज आज्ञा फरमावेंतो, चतुर्मासके ऊपर दूसरा चतुर्मास करनेमें हरकत नहीं।

यह प्रस्ताव मुनि श्रीहंसविजयजी महाराजने पेश किया था। जिसकी पुष्टि मुनि श्रीचतुरविजयजीने अच्छी तरहसे की थी।

प्रस्तावपर विवेचन करते हुए मुनि श्रीहंसविजयजी महाराजने कहा था कि,—

" बहता पानी निर्मला, खड़ा सो गंदा होय।
साधू तो रमता भला, दाग न लागे कोय ॥ "

यानें गंगादिका बहता प्रवाह जैसे स्वच्छ रहता है, वैसे ही रमते अर्थात् देशदेशमें विचरते साधु निर्मल रहते हैं। उनके किसी प्रकारका दाग भी नहीं लग सकता; परंतु जैसे छपड़ी (खाबोचिया) का खड़ा पानी गंदा हो जाता है, वैसे ही, एकके एक ही स्थानमें रहनेवाले साधुको दोष लगनेका संभव होता है; अतः साधुको एक स्थानमें रहना योग्य नहीं इत्यादि। अंतमें सर्वकी सम्मतिसे यह भी पास किया गया।

प्रस्ताव तीसरा।

अपने समुदायके मुनियोंको एकल विहारी नहीं होना चाहिये, अर्थात् दो साधुसे कम न रहना चाहिये। यदि किसी कारणसे एकके ही रहनेका प्रसंग आवे तो श्रीमद् आचार्य महाराजकी आज्ञा ले लेना चाहिये।

यह नियम मुनिराज श्रीवल्लभविजयजी महाराजने पेश किया था। जिसपर मुनि श्रीप्रेमविजयजीने पूर्णतया पुष्टि दिये बाद सर्व मुनियोंकी संमति अनुसार यह प्रस्ताव पास किया गया।

इस नियमको उपस्थित करते हुए, मुनिराज श्रीवल्लभविजयजीने मुनिमंडलके ध्यानको आकर्षित कर कहा कि, शास्त्राज्ञानुसार साधुको दोसे कम, और साध्वियोंको तीनसे कम नहीं रहना चाहिये। जहाँ कहीं इस शास्त्राज्ञासे विपरीत हो रहा है, वहाँ स्वच्छंदता आदि अनेक दोषोंका समावेश हुआ नजर आ रहा है! अतः इस बातमें श्रावक लोगोंका भी कर्त्तव्य समझा जाता है कि, जब कभी किसी अकेले साधुको देखें तो शीघ्र ही उसके गुरु आदिको खबर कर देवें ताकि, एकल विहारियोंको कुछ खयाल होवे; परंतु, श्रावकोंको उपाश्रयका दरवाजा खुला रखना, और सौ डेढ़सौ रुपये की, पर्युषणाके दिनोंमें पैदायश करनी, इस बातका ही खयाल नहीं रखना चाहिये!

प्रस्ताव चौथा.

कोई साधु, जिसके पास आप रहता हो उससे नाराज होकर चाहे जिस किसी अपने दूसरे साधुके साथमें जा मिले तो, उसको विना आचार्य महाराजकी आज्ञाके अपने साथ हरगिज न मिलावे।

इस प्रस्तावको पेश करते हुए मुनि श्रीविमलविजयजीने खुलासा किया था कि, इस प्रस्तावका मतलब यह है कि, किसी दूसरे साधुका चेला नाराज होकर अपने गुरुको या गुरुभाई आदिको छोड़कर आया हो उसको कितनेक साधु अपने पास रख लेते हैं ऐसा नहीं होना चाहिये। कारण कि, ऐक्यमें त्रुटि और शिष्यको गुरुकी बेपरवाही होनेका संभव है।

आनेवालेके मनमें यूँ आ जाता है कि, ओह। क्या है। बस। मैं जिसके साथमें जी चाहेगा उसके साथ जा रहूँगा। मुझे गुरुकी क्या परवाह है। इतना ही नहीं। बलकि, किसी गुन्हा (कसूर) के होनेपर अगर गुरुने कुछ हितशिक्षा दी हो, तो उसकी हितशिक्षाको उल्टी मना, दूसरेके पास जाकर अवर्णवाद बोल, गुरुको ही झूठा ठहराकर आप सच्चा बननेकी चेष्टा करता है। इसका आपसकी प्रीतिभावमें विघ्न डालनेके सिवाय, अन्य किंचित् मात्र भी फायदा नजर नहीं आता। इत्यादि कारणोंको लेकर इस नियमके पास होनेकी परम आवश्यकता है।

इसको मुनि श्रीजिनविजयजीने पुष्टि करते हुए कहा कि, पूज्य मुनिवरो ! मुनि श्रीविमलविजयजी महाराजने जो प्रस्ताव पेश किया है, इसपर मुनि सम्मेलनको विचार करनेकी पूरी आवश्यकता है, इस नियमके पास होनेसे, कई प्रकारके फायदे हैं। प्रथम तो, यही बड़ा लाभ होगा कि, साधुओंकी स्वच्छंदता बढ़नी बंद हो जावेगी नहीं तो आपसमें अर्थात् गुरु शिष्योंमें या गुरुभाई आदिमें छद्मस्थ होनेसे, साधारण भी बोलचाल या खटपट हो गई हो, तो झट दूसरे साधुके पास जानेके इरादेसे, यह जानके कि क्या है ? यहाँ नहीं मन मिला तो दूसरेके पास जा रहेंगे, समुदायसे पैर बाहर रखनेकी, मरजी हो जायगी और जब ऐसा होगा तो विनयादि गुण, जो खास मुनिके भूषणरूप हैं उनका नाश होगा। यह तो आप अच्छी तरह जानते हैं कि आजकलके साधारण जीवोंमें कितना वैराग्य और विरक्त भाव है। इस लिये इस नियमके करनेसे स्वच्छंदताका कारण नष्ट होगा क्योंकि, जब कोई नाराज हो कर दूसरे साधुके पास जानेका इरादा करेगा तो वह पहले इस बातको अवश्य विचार लेगा कि, मैं दूसरेके पास जाता तो हूँ परंतु आचार्य महाराजकी आज्ञा बगैर तो अन्य रखेंगे ही नहीं और जब आचार्यश्रीकी आज्ञा मँगाऊँगा तो सारा वृत्तांत ही प्रगट हो जायगा। फिर तो, जैसी आचार्यजीकी मरजी होगी तदनुसार बनेगा इत्यादि विचार स्वयं ठिकाने आ जावेगा और ऐसा होनेसे वह गुण प्रगट होगा कि

जिस गुणके प्रभावसे साधुमें सहनशीलता परस्पर प्रीतिभाव (संप) की वृद्धि होगी। अतः इस नियमको पास करनेके लिये जोरके साथ मैं मुनिमंडलके ध्यानको आकर्षित करता हूँ।

अंतमें यह प्रस्ताव सर्वकी संमतिके अनुसार पास किया गया.

प्रस्ताव पाँचवाँ।

जिसने एक दफा दीक्षा लेकर छोड़दी हो उसको विना श्री आचार्य महाराजकी आज्ञाके, दुबारा दीक्षा नहीं देनी चाहिये। संवेग पक्षके अथवा अन्यके लिये भी जहाँतक हो सके वहाँतक आचार्य महाराजकी आज्ञानुसार ही कार्य करना ठीक है।

इस प्रस्तावको पन्यास श्रीदानविजयजीने पेश करते हुए कहा कि,–जो एक बार दीक्षा छोड़कर चला गया हो और वह पुनः दीक्षा लेने आवे तो उसके लिये इस अंकुशकी खास जरूरत है। कारण कि, वह मनुष्य किस कारण दुबारा दीक्षा लेता है, यह समझनेकी शक्ति जितनी मोटे पुरुषोंमें होती है उतनी सामान्य साधुमें नहीं होती। कदाच दूसरी बार भी दीक्षा लेकर फिर छोड़ दे। इसलिये आचार्य महाराजकी सम्मति लेनी चाहिये।

इस प्रस्तावकी पुष्टि मुनि श्रीललितविजयजीने की थी बादमें यह प्रस्ताव सर्व सम्मतिसे पास किया गया।

प्रस्ताव छठा ।

साधु प्रायः मोटे मोटे शहरोंमें और उसमें भी खासकर गुजरात देशमें ही, चतुर्मास करते हैं; परंतु साधुओंके विहारसे अलभ्य लाभ हो, ऐसे स्थलोंमें जैसे कि, मारवाड़, मेवाड़, मालवा, पंजाब, कच्छ, वागड़, दक्षिण, पूर्व वगैरह देशोंमें साधुओंका जाना थोड़ा मालूम देता है। साधुओंके न जानेसे जैनधर्म पालनेवाले संख्याबंध अन्यधर्मी हो गये, और होते जाते हैं इस बातपर, इस मुनिमंडलको मानपूर्वक ध्यान देना चाहिये, और सम्मति प्रगट करनी चाहिये कि, साधुओंको गुजरात छोड़ हिन्दुस्तानके हरएक हिस्सोंमें विहार करनेकी तजवीज करनी चाहिये ।

इस प्रस्तावको मुनिराज श्रीवल्लभविजयजी महाराजने पेश करते हुए कहा कि—"महाशयो ! आप अच्छी तरह जानते हैं कि, साधु मोटे मोटे शहरोंमें संख्याबंध पंदरा पंदरा बीस बीस हमेशह पड़े रहते हैं। लेकिन, ऐसे बहुत ग्राम खाली रह जाते हैं जहाँपर शहरोंके बनिसबत अलभ्य लाभ हो कितनेक साधु तो विहारकी सुगमता और आहार पाणीकी सुलभताको देखकर गुजरात देश छोड़ अन्य देशोंमें जानेकी इच्छा भी नहीं करते। जाना तो दरकिनार। फिर ख्याल करो कि जो साधुओंके लिये परिषह सहन करनेकी भगवतने आज्ञा फरमाई है उसका

अनुभव क्योंकर हो सक्ता है। परिचित स्थानमें तो जिस वक्त साधु महाराज गोचरी लेनेको पधारते हैं उस वक्त मुनियोंके पीछे श्रावकोंके टोलेके टोले साथ हो लेते हैं। कोई तो इधरको खींचता है कि, इधर महाराज, इधर पधारो और कोई अपनी ही तरफ। लेकिन, जहाँ पंजाब मारवाड आदि स्थानोंमें कितनेक ठिकाने श्रावकोंके घर ही नहीं, या वह लोग अन्य धर्मपालन करने लग गये हैं वैसे स्थानोंमें विहार होवे तो, परिषहोंका भी अनुभव होवे।

महाशयो! अपने साधुओंको तो प्रायःयह अच्छी तरहसे अनुभव है कि विना साधुओंके हजारों जैन अन्यधर्मवालोंके सतत परिचय होनेसे उनके ही अनुयायी होते जाते हैं। अपने महान आचार्योंने जिन्हें प्रतिबोधकर जैन धर्ममें दृढ किया था आज हम उन्हें मिथ्यात्वमें पड़ते देखकर भी कुछ ख्याल न करें, या परीषहोंसे डरके मारे अपनी कमजोरी बतलाकर गुजरातमें ही पड़े रहें, यह हमें शोभनीय नहीं है। महाशयो! अपने जैन श्रावकोंकी संख्या दिनपर दिन घटती जाती है उसका दोष अपनेही ऊपर है। एक समय ऐसा था कि एक देशसे दूसरे देशमें जाना बड़ा ही मुश्किल काम था। अन्य धर्मवालोंकी तर्फसे राजाओंकी तर्फसे चोर और लुटेरोंकी तर्फसे, साधुओंको विहारमें बड़ी मुसीबतें पड़ती थीं। ऐसे विकट समयमें भी अपने पूर्वाचार्योंने दूरदूर देशोंमें जाकर, लोकोंको प्रतिबोधकर जैनधर्मी

बनायाथा । आजतो प्रतापी नामदार गवर्मेन्ट सरकार अंगरेज बहादुरके राज्यमें साधुओंको विहारके साधन ऐसे सुलभ हैं कि, जी चाहे वहाँ बेधड़क विचरते फिरें । किसी प्रकारका भय नहीं है । ऐसे शासनमें अगर चाहो तो उनसे भी अधिक कार्य कर सक्ते हो; लेकिन, अफसोसके साथ कहना पड़ता है कि, उन्नति करनी तो दूर रही, हाँ अवनतिका रस्ता तो पकड़ा ही हुआ है । जरा पालीतानाकी तर्फ ख्याल करो । तीर्थकी आड़ लेकर कितने साधु साध्वी दरसाल वहाँके वहाँही समय गुजारते हैं । कभी बहुत जोर मारा तो भावनगर, और उससे अधिक अनुग्रह किया तो अहमदाबाद, बस इधर उधर फिर फिरा, फिर पालीतानाका पालीताना । श्वसुर गृहसे पितृगृह और पितृगृहसे श्वसुरगृह ज्यादा जोर मारा कभी मातुल-गृह (मोसाल—नानके) के जैसा हाल हो रहा है ! वहाँ आकर पानी आदिकी शुद्धि कितनी और किस प्रकार रहती है सो साधु साध्वी क्या श्रावक श्राविका भी अच्छी तरह जानते हैं कि, राग दृष्टिके वश हो भक्तिके बदले भुक्ति की जाती है ! यदि वह साधु साध्वी जुदे जुदे स्थानोमें चतुर्मा-सादि करें, तथा, अन्यान्य देशमें विहार करें तो, कितना बड़ा भारी लाभ साधु साध्वी और श्रावक श्राविका दोनों ही पक्ष-को होवे ! बेशक ! मेरा कहना कइयोंको नागवार गुजरेगा मगर न्यायदृष्टिसे सोचेंगेतो यकीन है कि वो स्वयं अपनी

भूल स्वीकार करेंगे। इसलिये अपनी कमजोरीको छोड़कर चुस्त बनो ! मेरी यह खास सूचना है कि, हरएक साधु अपने संघाड़ेके आलावा भी जो हो, याने श्वेतांबर संप्रदायके हरएक साधुको गुजरात तथा मोटे २ शहरों परसे मोह ममत्व छोड़कर गामोंमें जहाँ कि साधुओंका विहार नहीं और जहाँ साधुओंके लिये श्रावक लोक अपने यहाँ पधारनेकी पुकार कर रहे हैं ऐसे स्थानोंमें साधुओंका विहार होना चाहिये ।

ऐसे स्थानोंमें विहार होनेसे बड़ा ही लाभ होनेका संभव है। नीतिकारोंका कथन है कि–अति सर्वत्र वर्जयेत्–क्षीरान्नसे भी किसी वक्त चित्त कंटाल जाता है ! बरात वगैरह जिमणवारोंमें जहाँ नित्यप्रति मिष्टान्न ही भोजन मिलाता है वहाँ भी मिष्टान्नसे अरुचि होती नजर आती है । मैं नहीं कह सकता कि यह बात कहाँतक सत्य है; मगर मेरा ख्याल है कि, अगर पाँच सात वर्षपर्यंत साधु साध्वी अनुग्रह दृष्टिसे क्षेत्रोंके ममत्वको त्याग मरु मालवा मेवाड़ादिकी तर्फ सु नजर करें तो उमीद है कि दिनोंकी पुष्टिद्वारा धर्मोन्नति अधिकसे अधिक होवे । एक तर्फ ऊपराऊपरी भोजन मिलनेसे अजीर्ण वृद्धि होती है उसकी रुकावट होजानेसे अजीर्णकी शांतिद्वारा तंदुरुस्त हालतसे पुष्टि होगी । और दूसरी तर्फ भोजनका सांसा पड़नेसे भूखमरेकी शांतिद्वारा तंदुरुस्त हालतकी प्राप्तिसे पुष्टि होगी । अन्यथा याद रखना ! जितनी आजकल साधु साध्वियोंकी बेकदरी हो रही है,

आयिंदाको इससे अधिक ही होगी। क्या यह थोड़ी बेकदरी है? साधु साध्वियोंके शहरमें होते हुए भी कितनेक अमीर लोक तो क्या गरीब भी उस तर्फ नजर करते झिनकते हैं! यह किसका प्रभाव? एकके एक ही स्थानमें ममत्व बाँधकर रहेनेका ही नाकि, अन्य किसीका? क्या कभी आपने सुना था या सुना है? कि स्वर्गवासी महात्मा श्रीमद्विजयानंद सूरि (आत्मारामजी) महाराजजी अमुक उपाश्रयमें या अमुक स्थानमें ही रहते थे? कभी भी नहीं। बस यही कारण समझिये जो कि उनकी निसबत कुल हिंदुस्तानके जैनोंके मुखसे एक सरीखाही उद्गार निकलता है; क्यों कि, उन्होंने कोई अपना नियत स्थान नहीं माना था! और नाही वे अमुक अमुक सेठके गुरु खास करके कहे जाते थे और कहे जाते हैं। जिसका कारण उन महात्माका यह ख्याल ही नहीं था कि, अमुक हमारा भक्त श्रावक और अमुक नहीं! बलकि वो इस बातको खूब जानते थे कि, श्रावक वगैरहके ममत्वमें जो कोई फँसता है या फँसेगा उसको गुरुके बदले शिष्य बननेका समय आता है! अवश्य आयगा! क्यों कि, जब किसीके साथ ममत्वका संबंध हो जायगा तो उस वक्त उसका कहना अवश्य ही मानना पड़ेगा। अगर न मानेगा तो झट वो फरंट हो जायगा। जिसका जरा दीर्घदर्शी बन विचार किया जाय तो, हम तुमको तो क्या प्रायः कुल आलमको ही अनुभव सिद्ध हो रहा है कि, आजकल प्रायः कितनेक साधु सेठोंके प्रतिबं-

घमें ऐसे प्रतिबद्ध हुए होंगे कि, शेठका कहना साधुको तो अवश्य ही मानना पड़ता है। सेठ चाहे साधुका कहना माने या न माने यह उसकी मरजीकी बात है। तो अब आप लोक ख्याल करें, ऐसी हालतमें शेठ गुरु रहे कि साधु? सत्य है जिनवचनसे विपरीताचरणका विपरीत फल होताही है। इस लिये यदि साधुको सच्चे गुरु बने रहना हो तो शास्त्राज्ञाविरुद्ध एकही स्थानमें रहना छोड़, ममत्वको तोड़, गुरु बनना चाहते शेठोंसे मुखमोड़, अन्य देशोंके जीवोंपर उपकार बुद्धि जोड़, अप्रतिबद्ध विहारमेंही हमेशाह कटिबद्ध रहना योग्य है; ताकि, धर्मोन्नतिके साथ आत्मोन्नतिद्वारा निज कार्यकी भी सिद्धि हो. मैं मानता हूँ कि, मेरे इस कथनमें कितनाक अनुचित भाग होगा मगर, निष्पक्ष होकर यदि आप विचारेंगे तो उमीद करता हूँ कि, अनुचित शब्दके नञ्का (?) आपको अवश्यही निषेध करना पड़ेगा; तथापि किसीको दुःखद मालुम हो तो, उसकी बाबत मैं मिथ्या दुष्कृत दे, अपना कहना यहाँही समाप्त करताहूँ।

इस प्रस्ताव पर मुनि श्रीचतुरविजयजीने अच्छी पुष्टि की थी। बाद सबकी सम्मतिसे यह प्रस्ताव बहाल रखा गया।

प्रस्ताव सातवाँ।

अपने साधुओंमें अवश्य लोच करनेका जैसा रिवाज है

वैसे का वैसाही रखना, अगर चक्षु प्रमुख रोगादि कारणसे, क्षुर मुंडन करवाना पड़े तो, गुरु आज्ञासे महीने महीने शास्त्रानुसार क्षुरमुंडन करवाना; लेकिन, क्षुरमुंडन करवानेवालेने चार वा छे महीने तक केश न बढाना।

प्रस्ताव आठवाँ।

कितनेक गृहस्थी लोग उपाश्रयमें कपड़ा लाते हैं और साधुओंको वेहराते हैं यह शास्त्र विरुद्ध है। अतः अपने साधु गृहस्थीके मकान पर जाकर जरूरत हो उतना ले आवें किंतु, उपाश्रयमें लाया हुआ नहीं वेहरें (लेवें)*

---

* इस प्रस्तावपर सभापतिजीकी आज्ञानुसार महाराज श्रीवल्लभविजयजीने श्रावक श्राविका वर्गको उद्देश करके कहा था कि, शास्त्रोंमें श्रावक श्राविकाको मातपिताकी उपमा दी है। जैसे मातापिता निजपुत्रको अहितसे रोक हितमें प्रेरणा करते हैं, ऐसे ही मातापिता तुल्य श्रावक वर्गको चाहिये कि, वे निजपुत्रके समान साधुकी अहितसे रक्षा कर उसके हितमें प्रवृत्ति करें। इसलिये आपको शास्त्रकारकी आज्ञानुसार जो आज्ञा सभाध्यक्षजीकी तर्फसे सर्व साधुमंडलने स्वीकृत की है उसपर ध्यान देना योग्य है। हाँ वस्त्रकी प्रार्थना करना आपका धर्म है। साधुको जरूरत होगी तो आपके मकानसे यथा योग्य गुर्वादिकी आज्ञानुसार ले आवेगा, परंतु, तुम लोग जो गठड़े के गठड़े उठा उपाश्रयमें लाकर साधुको देते हो मेरा ख्याल है कि, साधुओंको एक प्रकारकी शिथिलतामें आप लोग मदद देते हो।

प्रस्ताव नवमाँ।

बाल, वृद्ध, ग्लान आदि किसी खास कारणके विना, अपना साधु अपनी उपधि उपकरण गृहस्थसे न उठवावे।

प्रस्ताव दशवाँ।

चतुर्दशीके दिन बाल, वृद्ध, ग्लान (बीमार) के सिवाय; अपने सब साधुओंको उपवास (व्रत) करना। (विहारमें यतना।)

प्रस्ताव ग्यारहवाँ।

अपने साधुओंको कमसेकम सौ (१००) श्लोकका स्वाध्याय ध्यान दररोज अवश्य करना। अगर जिससे न हो सके तो वो एक नमस्कार मंत्रकी माला ही फेर लेवे।

प्रस्ताव बारहवाँ।

सोने चाँदीकी या उसके जैसी चमकवाली चश्मेकी फ्रेम (कमानी) नहीं रखनी।

प्रस्ताव ७ सातवेंसे १२ वें पर्यंत छे प्रस्ताव सभापतिजीकी तर्फसे आज्ञारूप जाहिर किये गये थे; जिनको, उसीवक्त, उपस्थित हुए सर्व साधुओंने स्वीकार कर लिया था।

इतना कार्य होनेके बाद दूसरे दिनके लिये दो बजेसे चार बजे तकका टाइम मुकर्रर करके प्रथम दिनका काम समाप्त किया गया।

दूसरा दिन ।

बराबर दो बजे सभापति श्रीआचार्य महाराजजी मुनिमंडल सहित आबिराजे । श्रावकश्राविका वा अन्य प्रेक्षकगणोंसे स्थान उसी प्रकार भर गया।

प्रस्ताव तेरहवाँ ।

साधुके आचार विचारमें किसी प्रकारकी हानि न आवे इस रीतिपर अपने साधुओंको जैनोंसे अतिरिक्त अन्य लोगों-को भी जाहिर व्याख्यानद्वारा लाभ देनेका रिवाज रखना चाहिये, तथा और किसीका व्याख्यान पब्लिकमें जाहिर तरीके होता हो तो उसमें भी, द्रव्य, क्षेत्र काल, भावको देखकर साधुको जानेके लिये छूट होनी चाहिये । हाँ इतना जरूर होवे कि,हर दो कार्यमें रत्नाधिक (बड़े) की आज्ञा विना प्रयत्न न किया जावे ।

मुनिराज श्रीवल्लभविजयजीने इस निमको पेश करते हुए विवेचन किया कि, महाशयो! यह नियम जो मैंने आप साहिबोंके समक्ष पेश किया है जमानेके लिहाजसे वह बड़े ही महत्वका और धमको फायदा पहुँचानेवाला है। जैनेतर लोगोंमें जैनधर्मके तत्वोंका प्रचार करनेका यही सुगम उपाय है। लोगोंको धर्मके तत्व समझानेका जो अपना फरज है उसके सफल करनेका अत्युत्तम समय प्राप्त हुआ है । आप जानते हैं कि, अपनी सुस्तीके कारण कहो, यां

चेदरकारीसे कहो, अन्य जिस किसीका दाव लगा उसने अपने तत्वको समझाकर अपने पीछे लगा लिया। जिनमें कितनेक लोग तो जैनधर्मके तत्वोंसे अनभिज्ञ होनेसे ही अन्यके पीछे लग जाते हैं। और कितनेक एक दूसरेकी देखादेखी। यही हाल अब भी चल रहा है तथापि जैनोंकी आँखें नहीं खुलतीं। कितनेक लोग जैन धर्मके तत्वको विना समझे कुछ अन्यका अन्य ही पुस्तकोंमें लिखकर विना किसीको दिखाये अपनी मरजीमें आया वैसा ऊटपटांगसा छपवाकर एकदम जाहिर करदेते हैं। जिसका परिणाम जैनधर्मपरसे लोगोंकी श्रद्धा उठ जानेका हो जाता है। इस लिये यदि जाहिर व्याख्यानद्वारा जैनधर्मके तत्व लोगोंके सुननेमें आवें तो आशा की जाती है कि, घने लोगोंको अपनी भूल सुधारनेका मौका मिलजावे।

यह कोइ बात नहीं है कि, आप लोग बाजारमें खड़े होकर ही सुनावें। वेशक। जिस प्रकार उपाश्रयमें बैठकर सुनाते हैं उसी तरह सुनावें, मगर स्थान ऐसा साधारण होवे कि जहाँ आनेसे कोई भी झिझक न जावे। यद्यपि उपाश्रय ऐसा साधारण स्थान ही होता है क्यों कि, उसपर किसीकी खास मालकियत नहीं होती है, तथापि लोगोंमें खास करके यही बात प्रचलित हो रही है कि, उपाश्रय अमुक एक व्यक्तिका है। हम वहाँ किस-तरह जावें। कदापि गये और किसीने कह दिया कि, क्यों साहिब! आप यहां क्यों आये? इत्यादि कई प्रकारकी कल्पनाएँ

कर घने भोले जीव अलभ्य लाभसे वंचित रहते हैं। तो उनको ऐसा समय ही न मिले इस प्रकारकी व्यवस्थाका करना जानकार श्रावकोंका कर्त्तव्य समझा जाता है।

मतलब कि, जिस तरह हो सके अपनी वृत्तिकी रक्षापूर्वक जाहिर व्याख्यानद्वारा लोगोंको फायदा पहुंचानेका और अन्य समाजोंमें जाकर स्वयं किसी न किसी बातका फायदा लेनेका या समाजस्थ सभ्य लोगोंको फायदा देनेका ख्याल अवश्य रखना चाहिये। ऐसा होनेसे पूर्ण आशा है कि, मात्र उपाश्रयमें ही बैठकर केवल श्राद्ध वर्गके आगे उपदेश दिया जाता है उससे कईगुणा अधिक लाभ होगा। यदि एक जीव-को भी शुद्ध धर्मके तत्वका श्रद्धान होजावे तो मेरा ख्याल है कि सारा जिंदगीका दिया उपदेश सफल हो जावे। बाकी जो श्राद्ध वर्ग है सो तो है ही. परंतु उसमें भी विद्याभ्यासकी खामीके कारण परमार्थको समझनेवाले प्रायः थोड़े ही निकलेंगे। घने तो केवल जी महाराजही, कहनेवाले होंगे। यह बात कोई आप लोगोंसे छिपी हुई नहीं है; इस लिये, जमानेकी तर्फ दृष्टि करनी अपना फरज समझा जाता है। शास्त्रकारोंका भी फरमान द्रव्यक्षेत्रकाल भावानुसार वर्त्तन करनेका नजर आता है। ऐसा होनेपर भी यदि जमानेको मान न दिया जावे तो मैं कह सकता हूँ कि उसने शास्त्र या शास्त्रकारोंको मान नहीं दिया।

आप जानते हैं आजकलका जमाना कैसा है? आजकलका

जमाना प्रायः सुधरा हुआ और सत्यका ग्राहक हो रहा है। सैंकड़ों मनुष्य असली शुद्ध तत्वको चाहनेवाले आपको मिलेंगे; मगर शांतिपूर्वक उन्हें समझानेकी ज़रूरत है। मेरा कहना यह नहीं मानता है, इसलिये यह नास्तिक है। इसके साथ बात करनी योग्य नहीं है। ऐसी ऐसी तुच्छताको अपने दिलमें स्थान ही नहीं देना चाहिये। जबतक अगलेके दिलकी तसली न हो वो एकदम आपके कहनेको कैसे स्वीकार कर सकता है? यदि आपके कथनको सत्यही सत्य मानता चला जावे तो उसका समझाना ही क्या। वो तो आगे ही श्रद्धालु होनेसे समझा हुआ है। मैं मानता हूँ कि, भगवान् श्रीमहावीरस्वामीजी तथा श्रीगौतमस्वामीजीका बयान ऐसे मौकेपर ख्याल करना अनुचित नहीं समझा जायगा। श्रीगौतमस्वामी श्रीमहावीरस्वामीके पास किस इरादेसे आये थे? परंतु श्रीमहावीरस्वामीके शांत उपदेशसे उनकी शंकाओंका योग्य समाधान होनेसे सत्य वस्तु झट ग्रहण करली। यहाँ श्रीमहावीरस्वामीने यह ख्याल नहीं किया है कि, यह वादी बनकर आया है इससे क्या बोलना। बलकि हे इंद्रभूते! हे गौतम! इत्यादि मिष्ट वचनोंसे आमंत्रण देकर उनको समझाया। जबकि, हमतुम वीरपुत्र कहाते हैं तो वीर अपने पिताश्रीका अनुकरण करना हम तुमको योग्य है न कि, अननुकरण। इस लिये शांतिके साथ अनुग्रह बुद्धिसे यदि उन लोगोंको धर्मके तत्व तथा धर्मका रहस्य समझाया जावे तो मैं

यकीन करता हूं कि आपको जरा ही मार्ग मालूम होवे।

महाशयो ! धर्मार्थी गवर्मेंटके शांतिमय राज्यमें यह शांतिमय जमाना बहते गंगाके निर्मल पानीकी तरह है। जिसका जिसके दिल चाहे पी लो। कोई रोकनेवाला नहीं। हरएक धर्मवाला आपने अपने धर्मके तत्त्वोंको समझानेके लिये जगह जगह जाहिर व्याख्यान देता नजर आ रहा है। अगर इससे वंचित है तो केवल जैनसमाज ही है। अपने पूर्वीय महात्माओंने जो लाखों जीवोंको जैनधर्मके अनुयायी बनाया है, वो केवल उपाश्रयमेंही बैठकर नहीं बनाया; किंतु राजदरबार आदि अन्यान्य स्थानोंमें उपदेश देकरके ही बनाया है। यदि वे महात्मा आजकलकी तरह उपाश्रयमें ही बैठे रहते तो, कईएक राजा महाराजा सामंत मंत्री शेठ साहूकार व अन्य लाखों मनुष्य जैनधर्मी किस तरह होते ? भगवान् महावीरस्वामीने जैनधर्मका कंट्राक्ट (ठेका) किसी खास अमुक व्यक्ति या जातिको नहीं दिया है; किंतु उन्होंने तो दुनियाके उपकारार्थ धर्म फरमाया है। जैनधर्म अमुक जाति या अमुक देशका नहीं है। जैनधर्म सारे जगत्का धर्म है। जरा चारों ओर विचारदृष्टिको फिराकर देखोगे स्वतः मालुम हो जायगा। दयाकी बाबत जैनधर्मकी छाप हरएक दुनियाके धर्मपर कैसी जबर बैठी है। जो लोग पक्षपातके गेहरे गढ़ेमें गिरे हुए हैं उनको भी अपनी कलम व जबान मुबारिकसे जाहिर करना पड़ता है कि, दयाकी बाबतमें

जैन सबसे आगे बढ़ा हुआ है। मान्य मुनिवरो। यदि इसी प्रकार जैनधर्मके रहस्य व तत्वोंका भली प्रकार वर्णन किया जावे तो क़्या लोगों पर असर कुछ भी न होवे ? नहीं नहीं अवश्य ही होवे। इसलिये "गई सो गई अब राख रहीको" इस कहावत मूजिब आगेके लिये हुशियार होनेकी जरूरत है। मैंने आपका बहुत समय लिया है कृपया उसे दरगुजर कर, जो कुछ प्रकरणके असंगत या अनुचित छद्मस्थताके कारण कहा गया हो उसकी बाबत शुद्धांतःकरणपूर्वक मिथ्या दुष्कृत दे समाप्त करता हुआ, अपना प्रस्ताव पुनः मुनिमंडलके समक्ष पेश कर बैठ जाता हूँ।

इस प्रस्तावके अनुमोदनपर मुनि श्रीविमलविजयजीने कहा कि, मान्य मुनिवरो! मेरे परोपकारी गुरुजी महाराजने जो यह प्रस्ताव आप लोगोंके समक्ष विवेचनपूर्वक उपस्थित किया है इसपर कुछ कहनेके लिये मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। क्यों कि कहाँ तो सूर्य और कहाँ खद्योत ? कहां समुद्र और कहां जलबिन्दु ? इसी तरह कहाँ तो आपका कथन! और कहाँ उसपर मेरा कुछ कहना! इस लिये मैं आपके प्रस्तावका अक्षर अक्षर सन्मानपूर्वक स्वीकार करता हुआ इतनी प्रार्थना करता हूँ कि, जाहिर व्याख्यान देनेका अभ्यास जिनका हो उनके पाससे थोडा २ समय लेकर हमेशाह सीखना चाहिये, और बड़ोंको भी कृपा कर उन्हें बोलनेका थोड़ा थोड़ा अभ्यास कराना चाहिये, ताकी एक दिन आम खास (पबलिक) में

बेधड़क व्याख्यान (भाषण—लेक्चर) दे सकें । कोई कितना ही पढ़ा लिखा हो तोभी जिसे बोलनेका अभ्यास नहीं है वह हरगिज भी नहीं बोल सकेगा । आखिर व्याख्यानोंसे क्या लाभ है ? वह थोड़े ही समयमें आपको हस्तगत होगा । बाद इस विवेचनके सबकी अनुमतिसे यह प्रस्ताव पास किया गया ।

प्रस्ताव चौदहवाँ ।

अपने साथमें चौमासा करनेवाले या विचरनेवाले साधुके नामका पत्र, आवे तो उसको खोलकर बांचनेका अधिकार मंडलीके बड़े साधुको ही है । यदि वो योग्य जाने तो उस साधुको समाचार सुनावे, या पत्र देवे, उनका अख्तियार है । इसलिये बड़ेके सिवाय दूसरेको पत्रव्यवहार नहीं करना चाहिये । यदि अपनेको कोई कहींसे जरूरी समाचार मंगवाना हो तो, जो अपने साथ बड़े हों उनके द्वारा मंगवाना उचित है ।

यह प्रस्ताव मुनि श्रीललितविजयजीने पेश किया था जिसकी पुष्टि मुनि श्रीविमलविजयजी मुनि श्रीतिलकविजयजी तथा मुनि श्रीकपूरविजयजीने अच्छी तरह की थी। अंतमें सबकी राय मिलनेपर प्रस्ताव पास किया गया ।

प्रस्ताव पंद्रहवाँ ।

जैनेतर कोई भी अच्छा आदमी जीवदया आदि धर्मसंबंधी

उपदेश वगैरहका उद्यम करता हो तो, उसको भी अपने साधु-ओंने यथाशक्ति मदद करनेका प्रयत्न करना।

यह प्रस्ताव प्रवर्त्तक श्रीकांतिविजयजी महाराजने पेश करते हुए मालूम किया था कि, अपना धर्म दयामय है। 'अहिंसापरमोधर्मः' यह जैनका अटल सिद्धांत है।

दयाके लिये जो काम हमें खुद करने चाहिये वह कार्य अगर कोई दूसरा करता हो तो, अपनेको यह समझना चाहिये कि, यह हमारा ही कार्य करता है; इस लिये ऐसे मनुष्योंको मदद पहुँचानेका ख्याल हमको हमेशह रखना चाहिये।

इस पर मुनि श्रीवल्लभविजयजी महाराजने पुष्टि करते हुए कहा था कि, श्रीमान् प्रवर्तकजी महाराजजीने जो कुछ "जैनेतर धर्म्मोद्यत पुरुषको यथाशक्ति मदद पहुँचानेका अपने साधुओंको ख़्याल रखना चाहिये" फरमाया है, वह अक्षरशः सत्य है। यह अपना अवश्य ही कर्तव्य है।

मान्य मुनिवरो! मैं यकीन करता हुँ कि, आपके उपदेशका परमार्थ मुनिमंडल तो समझ ही गया होगा; परंतु जो अन्य रंग-बिरंगी पगड़ियाँवाले प्रेक्षकगण उपस्थित हैं, उनमें शायद कोई न समझा हो तो, वो समझ लेवें कि, साधुओंकी मददसे यही मुराद है कि, योग्य पुरुषोंको उपदेशद्वारा योग्य प्रबंध जहाँतक हो सके करा देवें। साधुओंके पाससे उपदेशके

सिवाय और धनधान्यादिकी मदद हो ही नहीं सकती ! क्यों कि साधुको रुपया पैसा रखना जैनशास्त्रका हुक्म नहीं है। इतना ही नहीं बलकि, निष्पक्ष हो विचार किया जावे तो, किसी धर्मशास्त्रमें भी साधुको धन रुपया पैसा रखनेकी आज्ञा नहीं ! जैनदृष्टिसे या पूर्वाचार्योंकी दृष्टिसे देखा जाय तो पैसा रखनेवाला दर असल साधु ही नहीं माना जाता ! लोगोंमें भी प्रायः सुननेमें आता है कि, धन गृहस्थका मंडन है और साधुका भंडन है। गृहस्थके पास कौड़ी न हो तो वो कौड़ीका और साधुके पास कौड़ी हो तो वो कौड़ीका।

अंतमें सर्वकी सम्मति अनुसार यह नियम स्वीकार किया गया।

प्रस्ताव सोलहवाँ।

अहमदावादके मोहनलाल दल्लुभाई नामक मनुष्यके निकाले हुए हेन्डबिलमें, अपने परमपूज्य परमोपकारी जगद्विख्यात आचार्य महाराज श्रीमद्विजयानंद सूरि तथा प्रवर्त्तक श्रीकांतिविजयजी महाराज तथा मुनि वल्लभविजयजी पर अश्लील आक्षेप किये हैं। जिससे पंजाब वगैरह देशोंके श्रावक वर्गका दिल अत्यंत ही दुःखी हुआ था। उस वक्त अपने साधुओंने और खास कर प्रवर्त्तकजी महाराज तथा वल्लभविजयजीने शांततापूर्वक उनको समझाकर शांत

किया और झगड़ेको बढने न दिया। उसका यह संमेलन अनुमोदन करता है और यदि कोई समय भविष्यमें ऐसा प्रसंग आवे तो ऐसे ही शांतता रखनेके लिये यह सम्मेलन सम्मति देता है।

इस प्रस्तावके उपस्थित करते हुए पंन्यास श्रीसंपतविजयजी महाराजने कहा था कि, साधुओंका यही धर्म है कि, अगर कोई गालियाँ दे या इससे भी आगे बढ़कर कोई शरीर पर चोट पहुँचाने आवे तो भी शांति रखनी चाहिये। जब साधु होकर भी शांति न रखी तो वो साधु ही काहेका? साधारण समयमें तो सभी प्रायः शांतता रखते हैं, लेकिन ऐसे विकट प्रसंगमें शांतता रहे, तो ही साधुपनेकी परीक्षा होती है। पूर्वोक्त हेन्डबिल, येभी एक ऐसा ही प्रसंग प्रवर्त्तक श्री कांतिविजयजी वगैरहके लिये था। उनकी तथा हमारे पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीआत्मारामजी महाराज कि, जिनके लिये तमाम हिन्दुस्तानके जैन ही नहीं बलकि जैनेतर लोग भी मगरूर हैं, उनके निसबत भी विना ही कारण मगज भी फिर जाय ऐसे अश्लील शब्दोंका उपयोग किया है। तो भी श्रीप्रवर्त्तकजी महाराज तथा वल्लभविजयजीने शांतता धारण करके पंजाबादि देशोंके श्रावकोंके दुखे हुए दिलोंको भी शांत किया.+ जिससे

+ सभ्य वाचकवृंद! मुनियोंके क्षमा धर्मका तो अनुभव आपको प्रत्यक्ष ही होगा! परंतु ऐसे ऐसे पूज्य महात्माओंकी बाबत खोटी नजर

बढता क्लेश अटक गया. इससे अपनेको यही सार लेना चाहिये कि अपनेकोभी ऐसे प्रसंग पर शांतता रखनी चाहिये।

इस पर पंन्यास श्रीदानविजयजी महाराजने अच्छी पुष्टि की थी।

प्रस्ताव सत्तरहवाँ।

नवीन साधुको जबतक पाँच प्रतिक्रमण, दशवैकालिकके चार अध्यन, जीवविचार, नवतत्व और दंडक अर्थ सहित न हो जावें, तबतक व्याकरणआदि अन्य अभ्यासमें नहीं जोड़ना।

प्रस्ताव अठारहवाँ।

साध्वियो और गृहस्थियोंके पास कपड़े न धुलवानेका जो रिवाज अपनेमें है, उसको वैसा ही कायम रखना, और अन्य कोई मुनि उपरोक्त काम करता हो तो उसको मिष्ट भाषणद्वारा हितशिक्षा देकर उस कामसे छुड़ानेका प्रयत्न करना।

करनेवालेको परभवमें क्या सजा होगी? वह तो अतिशय ज्ञानी ही जानते हैं; मगर पापका फल थोड़ा, या बहुत, इसलोकमें भी मिल जाता है। इस शास्त्रीय नियमानुसार विनाशकाले विपरीत बुद्धिः इस मुजिब क्षमा-प्रधान साधुओं पर हमला करता करता कितनेक गृहस्थोंपर भी मोहन लल्लुने अपने हेंडबिलमें अनुचित शब्दोंसे हमला किया! जिसका तात्का-लिक फल अमदावादकी अदालतसे तीन प्रेसवालोंको और मोहन लल्लुको सजा मिलचुकी है! (लेखक)

प्रस्ताव उन्नीसवाँ ।

आजकल प्रायः कितनेक सामान्य साधु भी ऊंची जातके और बहु मूल्यके धुस्से वगैरह कपड़े रखते नजर आते हैं। इस रिवाजको यह सम्मेलन नापसंद करता है और प्रस्ताव करता है कि, अपने साधुओंको आजपीछे पंजाबी या बीकानेरी कंबल अथवा वैसा ही और प्रकारका कम कीमतका कंबल काममें लाना चाहिये ।

नंबर १७-१८ और १९ ये तीन प्रस्ताव भी सभापतिजीकी तर्फसे बतौर आज्ञाके सूचन किये गये थे। जिनको सर्व मुनिमंडलने खुशीके साथ स्वीकार करलिया ।

प्रस्ताव वीसवाँ ।

जिसको दीक्षा देनी हो उसकी कमसे कम एक महीनेतक यथाशक्ति परीक्षा कर उसके संबंधी माता, पिता, भाई, स्त्री आदिको रजिष्टरी पत्र देकर सूचना कर देनी और दीक्षा लेनेवालेसे भी उसके संबंधियोंको जिस वक्त वो अपने पास आवे उसी समय खबर करवा देनेका ख्याल रखना।

यह प्रस्ताव प्रवर्त्तकजी श्रीकांतिविजयजी महाराजने पेश करते हुए कहा था कि, प्रायः अपने साधुओंमें आज तक दीक्षा संबंधी कोई खटपट या झगड़ा ऐसा नहीं उठा है जिससे हमें

कोई आदमी कुछ कह भी नहीं सकता, तो भी एक सामान्य नियमके कायम करनेसे भविष्यमें हमको चिंता करनेका कारण न रहेगा। यह नियम ऐसा है कि, जिससे धर्मकी हीलना होती बंध हो जायगी। कई एक वक्त दीक्षा लेनेवालेके सगेसंबंधियोंको बड़े क्लेशका कारण हो पडता है। और उससे निकम्मे खर्चमें उन्हें उतरना पड़ता है। आजकल कोई दीक्षा लेनेवाला किसीके पास आता है तो, कितनेक साधु प्रायः उसकी परीक्षा किये बगैर झट दीक्षा दे देते हैं, जिसका परिणाम ऐसा बुरा होता है कि, लोकोंकी धर्ममें अप्रीति हो जाती है। एक ऐसा बनाव मेरे ध्यानमें है कि, किसीने एक शखसको दीक्षा दे दी, वह चौथे दिन ही उपाश्रयमेंसे अच्छे २ चंदरवे पूठिये तथा पुस्तक वगैरह जो हाथ आया लेकर रातोरात रफूचक्कर हो गया! यह विना परीक्षा कियेकाही फल है। पूर्वोक्त बनाव अपने संघाडेमें नहीं बना तो भी अपनेको यह नियम जरूर करना चाहिये कि, कमसे कम एक महीना तक तो उसकी परीक्षा अवश्य करनी। बादमें योग्य मालूम हो तो दीक्षा देनी। ऐसा होनेसे दीक्षा लेने-वालेके चालचलनका पता लग जायगा और उसको साधुओंकी रीतिभाँतिका भी प्रायः कितनाक ज्ञान हो जायगा, साथ ही इसके इस बातकी भी जरूरत है कि, जब कोई दीक्षा लेने वास्ते आवे तो उसके संबंधियोंको सूचना कर देनी चाहिये, जिससे कि कई प्रकारके क्लेशद्वारा धर्ममें हानि न पहुँचे।

इस प्रस्तावका मुनि श्रीवल्लभविजयजी, मुनि श्रीदौलतविजयजी, मुनि श्रीकीर्तिविजयजी, मुनि श्रीलावण्यविजयजी, मुनि श्रीजिनविजयजीने अनुमोदन किया था।

यह प्रस्ताव सर्वकी सम्मतिसे पास किया गया। बाद इसके समय हो जानेसे दूसरे दिनके लिये सूचना देकर कार्य बंद किया गया।

तीसरा दिन।

ता. १४ जून १९१२ शुक्रवार प्रातःकाल आठ बजे सभापतिजी व अन्य मुनिमंडलके प्रेक्षक गण सहित उपस्थित हो जानेपर सभापतिजीकी आज्ञानुसार मंगलाचरणपूर्वक तृतीय दिनका कार्य प्रारंभ हुआ।

प्रस्ताव इक्कीसवाँ।

साधुओंके या श्रावकोंके भीतरी झगड़ोंमें अपने साधुओंको शामिल न होना चाहिये। कोई धार्मिक कारणसे शामिल होनेकी आवश्यकता हो तो आचार्य महाराजकी आज्ञा मँगवाकर उसके मुताबिक वर्त्ताव करना।

यह प्रस्ताव प्रवर्तक श्रीकांतिविजयजी महाराजने पेश किया

और मुनि श्रीमानविजयजी तथा मुनि श्रीउत्तमविजयजीने अनुमोदन किया । बाद सर्वकी सम्मतिसे यह नियम पास हुआ ।

प्रवर्त्तकजी महाराजने प्रस्ताव पेश करते समय कहा था कि, इस नियममें विशेष विवेचनकी कोई जरूरत नहीं मालूम होती । यह स्पष्ट ही है कि, साधुका या गृहस्थका चाहे जिसका टंटा हो उसमें पड़नेसे अपने पठनपाठन ज्ञान ध्यानमें अवश्य नुकसान होगा । दूसरा ऐसे झगड़ोंमें पड़नेसे पक्षपाती या अविश्वासु होनेका संभव है । अतः जहाँ ऐसे ऐसे टंटे झगड़ेका कारण आपड़े वहाँ यदि अपनी शक्ति हो और शांति होती नजर आवे तो उसके समाधान करनेका उद्योग करना । वरना किनारा ही करना योग्य है । मगर किसी पक्षमें शामिल होकर साधुताको दूषित करना योग्य नहीं है ।

प्रस्ताव बाहरवाँ ।

एक गुरुके परिवारके साधुओंमें ही जैसा चाहिये वैसा मेल नजर नहीं आता तब यह कैसे आशा की जा सकती है कि, भिन्न गच्छके तथा भिन्न गुरुओंके साधुओंमें मेल रहे । इस प्रकारकी स्थिति हमारे आधुनिक साधुओंकी है । इसको देख कर यह सम्मेलन अत्यंत शोक प्रदर्शित करता है और प्रस्ताव करता है कि, ऐसे कुसंगसे साधु मात्रका जो धर्मकी उन्नति करनेका मूल हेतु है वह पूर्ण होता हुआ दृष्टिगोचर नहीं आता ।

अतः अपने साधुओंको वही काम करना चाहिये जिससे कि यह कुसंप दूर हो।

इस प्रस्तावको उपस्थित करते हुए प्रवर्तक श्रीकांतिविजयजी महाराजने कहा था कि, सामान्यतया हम साधु कहलाते हैं तो क्षमागुण अपने अंदर होना ही चाहिये। यदि क्षमा नहीं तो साधुपना ही क्या! जहाँ क्षमागुण है वहाँ कुसंप रह हीं नहीं सकता; परंतु इस समय तो उल्टा ही नजर आता है। जितना संप अपने अंदर चाहिये उतना दृष्टिगोचर नहीं होता। इसी कारण धर्मोन्नतिके बड़े २ कार्य बीचमें लटक रहे हैं। यह तो आप जानतेही हैं कि, कोई भी कार्य हो विना संपके पूरा नहीं होता। विना संप कभी किसीकी फतह न हुई है और न होगी। इस लिये आपसमें संपका होना बहुत जरूरी है।

एवं मुनिराज श्रीवल्लभविजयजीने श्रीप्रवर्त्तकजी महाराजके विवेचनका अनुमोदन करते हुए कहा कि, संपके विना किसी कार्यकी भी सिद्धि नहीं होती। जब कि अपनेमें संप था तबही संम्मेलनरूप महान् कार्यकी हमें सफलता प्राप्त हुई है।

यदि अपनेमें संप न होता तो दूर दूरसे अनेक कष्ट सहन कर आनेवाले योग्य मुनिराजोंके अमूल्य दर्शनोंका होना और शासनकी उन्नतिके करनेवाले अनेक धार्मिक कार्य जो कि इस सम्मेलनद्वारा प्रस्तावित कर पास किये गये हैं या किये जायँगे उनका होना अति दुर्घट था।

मान्य मुनिवरो ! संसारमें संप एक ऐसा पदार्थ है कि, जिसके प्रभावसे साधारण स्थितिकी जातियँ भी आज उन्नतिके उच्च आसनपर बैठी हुई संसार भरके लिये संपकी शिक्षाका उदाहरण बन रही है। संपकी योग्यताका यदि गंभीर दृष्टिसे विचार किया जाय तो यह एक ऐसा सूत्र है कि, इसके नियमको उल्लंघन करनेवाला कभी कृतकार्यता (कामयाबी—सिद्धि) का मुख देखताही नहीं। इसके नियमका शासन स्याद्वाद मुद्राकी तरह संसारके प्रत्येक पदार्थमें दृष्टिगोचर हो रहा है। आप अधिक दूर मत जाइये जरा अपने हाथकी तर्फही ख्याल करें। एक एक अंगुलिके भिन्न भिन्न कार्यमें सर्व अंगुलियाँ एक समान होती हुईभी एक अंगुलिका काम दूसरी अंगुलि नहीं कर सकती है। जैसे कि, पाँचोही अंगुलियोंमेंसे विवाहादि प्रसंगमें तिलक करनेका काम जो कि अंगुष्टका है वह काम अन्यसे नहीं किया जाता। ऐसेही यदि किसीको खिजानेके लिये जैसे अंगूठा खड़ा किया जाता है और उसको देख कर सामनेका आदमी झट खीज जाता है यह कामभी और अंगुलि नहीं कर सकती। अंगुष्टके साथकी अंगुलि जैसे बोलतेको चुप करानेके लिये, या किसीको तर्जना करनेके लिये काम आ सकती है, और अंगुलि इस संकेतका ज्ञान कदापि नहीं करा सकती। पांचोही अंगुलियोंको दो इधर और दो इधर ऐसे विभागमें बांटनेका काम जैसा मध्यमा—बिचली अंगुलि कर सकती है अन्य अंगुलिसे वो काम

कदापि नहीं हो सकता। इष्टदेवके पूजनमें इष्टदेवको तिलक करनेका काम अनामिका चौथी अंगुलिका है वो काम अन्य अंगुलिसे नहीं किया जाता। इसी प्रकार कनिष्टिका पंचमी अंगुलिका काम स्कूलमें मास्तरसे लघुनीति-पेसाब-करनेको जानेके लिये छुट्टी मांगनेका है वो काम अन्य अंगुलिसे नहीं हो सकता। या मुद्रिका पानेका ख्याल प्रायः जितना कनिष्टिकाका होता है इतना अन्य किसी अंगुलिका नहीं। जिसका कारणभी यही मालूम देता है कि, चलते हुए आदमीकी वही अंगुलि खुली रहती है। औरतो प्रायः दबाणमें आजाती हैं। तो दूरसे मुद्रिकाकी चमकभी मालूम नहीं हो सकती। एवं पंचोंही अंगुलियँ निज निज कार्यके करनेमें समर्थ होनेसे अपने स्थानमें सबही बड़ी हैं। इस मुजिब चाहे कोई छोटा हो या बड़ा हो, अमीर हो या गरीब हो, साधु हो या गृहस्थ हो अपने अपने अधिकारमें अपने अपने स्थानमें निज निज कार्यके करनेमें सबही बडे हैं। कसी और सूईकी तर्फ ख्याल किया जावे। सीनेके काममेंसूईही बड़ी मानी जायगी और खोदनेके काममें कसीही बड़ी मानी जायगी। परंतु जो काम सबका साधारण है, वो काम तो सबके एकत्र होनेसेही हो सकता है, जैसा कि पांचोंही अंगुलियोंके मिलनेसे पैदा हुए ‘ थप्पड़ ’ का काम, जब पांचोंका मेल होता है तबही होता नजर आता है। यदि पांचोंमेसे एकभी अंगुलि जुदी रहे तो थप्पड़का काम नहीं हो सकता।

अथवा पांचों अंगुलियोंके मिलनेसेही दाल चावल आदिका 'ग्रास' ठीक ठीक उठाया जाता है, यदि पांचोंमेंसे एकभी अंगुलि बराबर साथमें ना मिले तो ग्रास नहीं उठाया जाता। जिसमेंभी बडी अंगुलियोंको संकुचित होकर छोटीके साथ मिलकर काम करना पड़ता है। यदि बड़ी अंगुलियाँ संकुचित न होवे तो उनके मेलमें फरक पड़जानेसे निर्धारित कार्यकीभी सिद्धि यथार्थ नहीं होती।

सभ्य श्रोतृगण। आपने देखा, संप कैसी वस्तु है। पूर्वोक्त हस्तांगुलिके दृष्टांतसे केवल संपकी ही शिक्षा लेनी योग्य है; इतनाही नहीं; बलकि, जैसे ग्रास ग्रहण करनेके समय बड़ी अंगुलियोंके संकुचित हो, छोटीके साथ मिलकर काम करनेसे कार्यसिद्धि होती है, ऐसेही कार्यसिद्धिके लिये बड़े पुरुषोंको किसी समय गंभीर बन छोटोंके साथ मिलकर ही काम करना योग्य है, नाकि, अपने बड़प्पनके घमंडमें आकर काम बिगाड़ना योग्य है। नीतिकारोंका कथन है—स्वार्थभ्रंशोहि मूर्खता—अपने मानमें तना स्वार्थका नाश करना, आला दर्जेकी मूर्खता है। मानके करनेसे प्रीतिका नाश होता है शास्त्रकारोंकाभी फरमान है कि,—माणो विणय-भंजणो--मान—विनय नम्रता गुणको नाश करता है। जहाँ नम्रता नहीं वहाँ प्रीतिका क्या काम? और विना प्रीतिके संपका तो नामही कहाँ! जब संप नहीं तो फिर क्या! कोई कैसा ही उत्तम कार्य करना क्यों न चाहे

कदापि सिद्ध होनेका संभव नहीं । अतः संपकी अतीव आवश्यकता है । " संप त्यां जंप " इस गुजराती कहावतमें कितनी गंभीरता है । इसका विचार कर अपने हृदयकमलसे कदापि इसको पृथक् नहीं होने देना चाहिये ।

दुनियाके लोग करामात करामात पुकारते हैं मगर मेरी समझमें—जमात ही करामात है । जमात (समुदाय) से अशक्य शक्य हो जाता है । जरा ख्याल करिये । कीड़ी कितना छोटा जानवर है; परंतु जमात मिलकर एक बड़े भारी साँपको खींचनेकी ताकत पैदा कर सकती है । तंतुमें वो सामर्थ्य नहीं परंतु तंतु समुदायसे हाथी बाँधा जाता है । इसलिये संपरूप सूत्रसे सबको ग्रथित होनेकी जरूरत है । संपरूप सूत्रसे बँधे हुए भी इतना ख्याल अवश्य करना योग्य है कि, जैसे ' झाडू ' जब तक डोरीके बंधनमें होता है तबतक ही कचवर (कचरे) को निकाल सफाईके कामको कर सकता है, परंतु जब उसका बंधन छूट जाता है या टूट जाता है तो कचवरका निकालना तो दूर रहा उल्टा वो आपही कचवर बन मकानको गंदा कर देता है । इसी प्रकार यदि हम संपसे बद्ध होंगे तो कई प्रकारकी कुरीतिरूप कचवरको निकाल सुधारारूप सफाइको करसकेंगे । वरना स्वयं ही कचवर बनने जैसा हो जायगा ।

प्रस्ताव तेईसवाँ ।

आजकाल कितनेक साधु लोग शिष्य बनानेके लिये देश-कालके विरुद्ध वर्त्ताव करते हैं, जिससे जैनधर्मकी अवहेलना होनेके अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार मुनियोंको भी कभी २ अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं । इस लिये यह सम्मेलन इस प्रकार दीक्षा देकर शिष्य करनेकी पद्धतिको और इस प्रकार दीक्षा देनेवाले और लेनेवालेको अत्यन्त असन्तोषकी दृष्टिसे देखता है और प्रस्ताव करता है कि, अपने समुदाय के साधुओंमेंसे किसीको ऐसी खटपटमें नहीं पड़ना चाहिये । जो कोई मुनि ऐसी खटपटमें पडेगा उसके लिये आचार्यजी महाराज सख्त विचार करेंगे ।

इस प्रस्तावके उपस्थित होनेपर मुनि श्रीचतुरविजयजी महाराजने कहा था कि, आजकल इस प्रकारकी दीक्षासे साधु-ओंकी हदसे ज्यादह निंदा होती सुननेमें आती है । जिससे कितनेक जैन या जैनेतर लोकोंके मनमें साधुओंपर अप्रीति होती जाती है । कितनीक जगह तो बिचारे श्रावकोंको सैकड़ों बलकि हजारोंके खर्चमें उतरना पड़ता है , जो कि, साधुओंके लिये विचारणीय है । तथा ऐसी खटपटमें पड़नेसे साधुको अपने ज्ञान ध्यानसे चूक रातदिन प्रायः आर्त ध्यान [illegible]

लोगोंकी खुशामद करनेका समय भी आ जाता है। और कभी झूठ भी बोलनेका प्रसंग आ पड़े तो आश्चर्य नहीं। इत्यादि रोकनेके लिये इस नियमकी जरूरत है। यदि सत्य कहा जावे तो ऐसी खटपटमें साधुओंको उत्तेजन देनेवाले श्रावक लोगही होते हैं। जो कभी श्रावक लोग ऐसी बातमें द्रव्य वगैरहकी सहायताद्वारा मदद दे उत्तेजन न देवें तो ऐसी खटपटका कभी जन्म ही न होने पावे। इस लिये इस बातका श्रावकों-कोभी ख्याल करना चाहिये कि, देशकाल विरुद्ध दीक्षा देने-वाले साधुको मदद न करें।

प्रस्ताव चौवीसवाँ।

नामदार शाहनशाह पंचमज्योर्जकी शीतल छायामें वीरक्षेत्र (बड़ौदा) जहाँ कि, श्रीमंत महाराजा सयाजीराव गायकवाड सरकार विराजते हैं उनके पवित्र राज्यमें धर्मोन्नति निमित्त यह सम्मेलन आनंदके साथ समाप्त हुआ है इस लिए यह सम्मेलन परमात्मासे प्रार्थना करता है कि, उन्होंके इस पवित्र राज्यमें ऐसे धर्म कार्य हमेशाही निर्विघ्नतासे होते रहें और सर्वदा ऐसी ही शांति बनी रहे।

उपसंहार ।

—।○○।—

इसके अनंतर सभापतिजीका व्याख्यान (आपकी आज्ञासे मुनिराज श्रीवल्लभविजयजी महाराजने) जो पढ़कर सुनाया था वह नीचे दर्ज किया जाता है।

" सभापतिजीका व्याख्यान । "

मान्य मुनिवरो ! आपकी शुभ इच्छासे मुनि सम्मेलनका कार्य निर्विघ्नतापूर्वक समाप्त हुआ, आपके प्रशंसनीय उत्साहको देखकर मुझे बहुत ही आनंद हो रहा है । मुझे पूर्ण आशा है कि भविष्यमें भी आपके सद् उद्योगसे ऐसे ही महत्वशाली और धर्म उन्नतिके कार्य होते रहेंगे ।

महाशयो ! आजकल एकताकी बहुत खामी है । पिता पुत्रके बीच, गुरु शिष्यके अंदर, भाई भाईके मध्यमें, स्त्री पुरुषके दरमियान जिधर देखो उधर ही प्रायः मतभेद दिखाई देता है । परंतु अपने अर्थात् पूज्यपाद श्रीमद्विजयानंद सूरि श्रीआत्मारामजीके शिष्यसमुदायमें इसका समावेश अभीतक नहीं हुआ, यह बड़े ही हर्षकी बात है । ऐसी एकता सदैवके लिये बनी रहे इस बातका स्मरण रखना आपका परम कर्तव्य है । अपनेमें

इस समय कैसा सम्प है इस प्रश्नका उत्तर यह मुनिसम्मेलन अच्छी तरहसे दे रहा है।

मुनिवरो ! यह एकतारूप तंत्र बड़ा ही प्रभावशाली है। उन्नतिके प्रशस्त मार्गमें चलने वा चलानेवाले सत्पुरुषोंके लिये इस महामंत्रका अनुष्ठान बड़ा ही हितकर है। इसकी कृपासे धर्मकार्यमें विघ्न उपस्थित करनेवाले अदृश्य जंतु बहुत ही शीघ्र दूर हो जाते हैं। इसके महत्वका अनुभव आप स्वयंही कर लीजीये।

आपके एकता रूप अभेद्य किलेकी प्रौढ दीवारको तोड़नेके लिये यत्न करनेवाले बहुतसे क्षुद्र मनुष्य मुँहके बल गिरे होंगे, ऐसा मेरा विश्वास हैं। एकताके साम्राज्यमें किसीकी ताकत नहीं जो अपना उलटा दखल जमा सके। यदि आप एकताके सच्चे अनुरागी न होते तो यह सौभाग्य आपको कदापि न प्राप्त होता जो कि इस वक्त हो रहा है।

यह मुनिसम्मेलन जैनधर्ममें बहुत दिनके पीछे प्रथम ही हुआ है। इस सम्मेलनको देख बहुतसे महानुभावोंके चित्तका आकर्षित होना एक स्वाभाविक बात है; परंतु जैन समाजके लिये यह सम्मेलन विशेष हर्षजनक होगा ऐसी मुझे आशा है।

महाशयो ! मुझे फिर कहना चाहिये कि इस कार्यमें जैसी, आप लोगोंने सहानुभूति प्रकट की है, वह विशेष प्रशंसनीय है।

यदि ऐसा न होता तो, इस कार्यमें मुझे वह सफलता कदापि न प्राप्त होती जो इस वक्त हुई है, इस लिये आपके इस सद् उद्योग और प्रेमका मैं बहुत आभार मानता हूँ।

मुनिसम्मेलनमें पास किये गये प्रस्तावोंमेंसे आचार संबंधी नियम कोई नवीन नहीं है; क्यों कि, अपने समुदायमें आचार द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार जैसा चाहिये गुरुकृपासे प्रायः वैसा ही है; परंतु भविष्यमें भी कदाचित् कुछ न्यूनता न हो इस लिये ऐसे प्रस्तावोंका पास करना उचित समझा गया है। जाहिर भाषण देनेसे धर्मकी कितनी उन्नति हो सकती है इस बातका उत्तर समयके आन्दोलनसे आपको अच्छी तरहसे मिल सकता है। साथमें यह भी स्मरण रहे कि, सम्मेलनमें पास हुए नियमोंको जबतक आप अमलमें न लावेंगे तब तक कार्यकी सिद्धिका होना सर्वथा असंभव है। आत्म उन्नति और धर्म उन्नतिका होना कर्त्तव्यपरायणता पर ही निर्भर है। दीक्षा संबंधी जो नियम पास किया है उसकी तर्फ पूरा ख्याल रखना। आजकल जो साधु निंदाके पात्र हो रहे हैं उनमेंसे अधिक भाग वही है जो शिष्य वृद्धिके लालचसे अकृत्यमें तत्पर हो रहा है। अपना समुदाय यद्यपि इस लांछनसे अभीतक वर्जित है, तथापि संगति दोषसे भविष्यमें भी ऐसे कुत्सित आरोपका भागी न हो इस लिये इसका स्मरण रखना जरूरी है।

महाशयो ! अब मैं आपका अधिक समय नहीं लेना चाहता, अपने व्याख्यानको समाप्त करता हुआ इतना कहना अवश्य उचित समझता हूँ कि, श्रावकवर्य गोकलभाई दुल्लभदासने इस सम्मेलनके लिये जो परिश्रम उठाया है और बड़ौदाके श्रीसंघने सम्मेलनमें आये हुए सैंकड़ों स्त्री पुरुषोंकी जो भक्ति की है वह सर्वथा प्रशंसनीय है। अंतमें अर्हन् परमात्मासे प्रार्थना करता हुआ आपसे कहता हूँ कि, परकल्याणको ही स्वकार्य समझ निरंतर धर्म उन्नतिमें ही तत्पर रहना आपका परम कर्तव्य है।

" उपसर्गाः क्षयं यान्ति छिद्यन्ते विघ्नवल्लयः ।
" मनः प्रसन्नतामेति पूज्यमाने जिनेश्वरे ॥ १ ॥
" सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारणं ;
" प्रधानं सर्वधर्म्माणां जैनं जयति शासनम् ॥ २ ॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

सभापतिजीके व्याख्यानके अनंतर जयध्वनिपूर्वक सभा विसर्जन हुई ।

" लेखक प्रार्थना । "

प्यारे पाठको ! मैं इस सम्मेलमें स्वयम् उपस्थित था इसलिये जो कुछ मेरे देखने व सुननेमें आया है वही अपनी लेखनीद्वारा उद्धृत कर आपकी सेवामें निवेदन किया गया है।

" धावतस्खलनं कापि " इस न्यायसे यदि कुछ लिखनेमें त्रुटि रह गई हो तो कृपया क्षमा करें ।

आपका कृपाभिलाषी हीरालाल शर्मा ।
मैनेजर श्रीआत्मानंद जैन लायब्रेरी
'अमृतसर' (पंजाब)

सम्मेलनमें उपस्थित महात्माओंके नाम.

१ श्री १००८ श्री आचार्य महाराज श्रीविजय कमलसूरि.
२ श्री १०८ श्री उपाध्यायजी महाराज श्रीवीरविजयजी.
३ श्री १०८ श्री प्रवर्त्तकजी महाराज श्रीकांतिविजयजी.
४ श्री १०८ मुनिमहाराज श्रीहंसविजयजी.
५ पंन्यासजी महाराज श्रीसंपत्‌विजयजी.
६ मुनि महाराज श्री वल्लभविजयजी. (हमारे चरित्रनायक)
७ मुनि श्रीमानविजयजी.
८ पंन्यासजी श्रीदानविजयजी.
९ मुनि श्रीचतुरविजयजी
१० मुनिश्री विवेकविजयजी.
११ मुनिश्री लाभविजयजी
१२ मुनिश्री कीर्त्तिविजयजी.
१३ मुनिश्री दौलतविजयजी.
१४ मुनिश्री नयविजयजी.
१५ मुनिश्री अनंगविजयजी.
१६ मुनिश्री हिम्मतविजयजी.
१७ मुनिश्री नेमविजयजी.
१८ मुनिश्री प्रेमविजयजी.
१९ मुनिश्री उत्तमविजयजी.
२० मुनिश्री ललितविजयजी.

२१ मुनिश्री सोमविजयजी.	२२ मुनिश्री धर्मविजयजी.
२३ मुनिश्री संतोषविजयजी.	२४ मुनिश्री लावण्यविजयजी.
२५ मुनिश्री दुर्लभविजयजी.	२६ मुनिश्री सोहनविजयजी.
२७ मुनिश्री नायकविजयजी.	२८ मुनिश्री मंगलविजयजी.
२९ मुनिश्री विमलविजयजी.	३० मुनिश्री कस्तूरविजयजी.
३१ मुनिश्री कुसुमविजयजी.	३२ मुनिश्री पद्मविजयजी.
३३ मुनिश्री शंकरविजयजी	३४ मुनिश्री उमंगविजयजी.
३५ मुनिश्री मेघविजयजी.	३६ मुनिश्री विज्ञानविजयजी.
३७ मुनिश्री विबुधविजयजी.	३८ मुनिश्री जिनविजयजी.
३९ मुनिश्री तिलकविजयजी.	४० मुनिश्री विद्याविजयजी
४१ मुनिश्री विचारविजयजी.	४२ मुनिश्री विचक्षणविजयजी.
४३ मुनिश्री पुण्यविजयजी	४४ मुनिश्री तरुणविजयजी.
४५ मुनिश्री मित्रविजयजी.	४६ मुनिश्री कर्पूरविजयजी.
४७ मुनिश्री समुद्रविजयजी.	४८ मुनिश्री लक्षणविजयजी.
४९ मुनिश्री मेरुविजयजी.	५० मुनिश्री उद्योतविजयजी.

सातक्षेत्रोंमें पोषक क्षेत्र कौन ?

(स्थान, लालबाग बंबई ।)

" गृहस्थो ! विषयकी गम्भीरता का खयाल करनेसे स्खलना होनेका सम्भव है तथापि आप सज्जनोंसे मुझे आशा है कि उसे सुधार लेंगे ।

जैन शास्त्रोंमें सात क्षेत्रोंके नाम ये हैं; साधु, साध्वी श्रावक, श्राविका, जिनप्रतिमा, जिनमन्दिर और ज्ञान । कहीं कहीं यात्रा और प्रतिष्ठाको क्षेत्र कहा है । कहीं जीवदयाको भी; परन्तु पिछले क्षेत्रोंका समावेश पूर्वोक्त सात क्षेत्रोंमें हो जाता है । साधु और साध्वियोंका एक वर्ग है और उनका धर्म अणगार धर्म कहलाता है । श्रावक और श्राविकाओंका एक वर्ग है और उनका धर्म सागार धर्म कहलाता है । जैनशास्त्रमें एक संविग्न पक्ष भी कहा है । परन्तु उसका अन्तर्भाव साधु-धर्ममें हो जाता है । पहले कहे हुये अणगार और सागार धर्मको सर्व विरति और देशविरति भी कहते हैं । साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका ये चार जीव क्षेत्र हैं । ये पुरुषार्थ करनेवाले हैं और अन्तिम तीन क्षेत्र अपने आप कुछ नहीं कर सकते किन्तु उक्त जीवक्षेत्रोंके सहायक हैं । इन चार जीवक्षेत्रोंको

चतुर्विध सङ्घ कहते हैं। श्रावक न हों, तो चतुर्विध सङ्घ नहीं बन सकता, न सातक्षेत्र ही रह सकते हैं।

श्रावक शब्द तीन अक्षरोंसे बना हुआ है। उनके अर्थ जाननेसे स्पष्ट मालूम होगा। 'श्रा पाके' धातुसे 'श्रा' बना है;—'श्रान्ति पचन्ति तत्त्वार्थश्रद्धानं निष्ठां नयन्ति इति श्राः' 'श्रा' का अर्थ है तत्त्वोंको जाननेवाले। तत्त्वशब्दमें जीवाजीवादि नव पदार्थ लिये जाते हैं और देवगुरु धर्मरूप तीन तत्त्व भी लिये जाते हैं। 'डुवप' बीज सन्ताने धातुसे 'व' बना है;—'वपन्ति गुणवत्सु क्षेत्रेषु धनबीजानि निक्षिपन्तीतिवाः' इसका अर्थ है बोना। बोनेके लिये क्षेत्र और बीजकी जरूरत रहती है। क्षेत्रोंका परिचय पहले ही दिया गया है, बीजके जाननेकी आवश्यकता है। इमानदारी अर्थात् साहूकारीसे जो धन पैदा किया जाय वह बीज है। साहूकार शब्दके लिये संस्कृतमें साधुकार शब्द है। धनरूप बीजका उक्त क्षेत्रोंमें बोना इसका मतलब साधु साध्वियोंको धन प्रदान करना नहीं है। यदि ऐसा मतलब लिया जायगा तो पाँचों व्रत उड़ जाएँगे, एकका भी ठिकाना न रहेगा। निर्दोष अन्न, पानी, स्थान, पात्र आदि देकर उनकी धर्म क्रियामें मदद पहुँचाना बोना है। 'कृ विक्षेपे' धातुसे 'क' बना है;—'किरन्ति क्लिष्टरजो विक्षिपन्तीति काः' भीतरी सचित कर्मोको उड़ा देनेवाला 'क' कहलाता है। उक्त तीनों गुणोंसे युक्त जो होगा वह श्रावक है, चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य कोई भी क्यों न हो। धर्म सबके लिये समान है, जो चाहे उसका पालन करे। पहले कह चुका हूँ कि जीवदया भी क्षेत्र है। जीवोंको बचाना अपने शास्त्रोंका सिद्धान्त है, तदनुसार आप हजारों रुपये खर्च करते हैं। क्या इससे आपका उद्देश्य सिद्ध होता है? आप जिनसे जीव छुड़ाते हैं उनके व्यापारमें कोई कमी नहीं दिखलाई देती। जबतक वे जीवहिंसाकी बुराइयोंको न जानेंगे तबतक अपना क्रूर कर्म नहीं छोड़ेंगे। इसके लिये उपदेशक, पुस्तकें, ट्रैक्ट आदि साधनोंको काममे लाना चाहिये। अपनी मर्यादाका उल्लङ्घन न करके समयानुसार अगर हो सके तो साधुओंको खड़े होकर उपदेश देनेमें मेरी समझसे कोई अनुचित बात नहीं है। अनुचित काम वह है जिसके करनेसे अन्तःकरणकी वृत्ति मलिन हो। सिद्धसेन दिवाकरका वृद्धवादीसे जहाँ शास्त्रार्थ हुआ वहाँ कोई सभा नहीं थी किन्तु जङ्गल था। अहीर (Cowherd) मध्यस्थ थे, सिद्धसेन दिवाकर अपना पक्ष संस्कृत भाषामें सुनाते थे और वृद्धवादी ग्रामीण भाषा बोलते थे। मध्यस्थ अहीरोंने फैसला दिया, " वृद्धवादी पण्डित हैं, सिद्धसेन नहीं " बाद वृद्धवादीने सिद्धसेनसे कहा " यहाँ मध्यस्थ पण्डित नहीं थे इस लिये शहरमें जाकर किसी योग्य व्यक्तिकी मध्यस्थतामें शास्त्राथ करें।" उत्तरमें सिद्धसेन दिवाकरने कहा, " शास्त्रार्थ हो चुका जब कि मैंने समय ही नहीं पहिचाना तब तो मेरा हार जाना

ठीक ही है। " मतलब यह है कि बड़ा आदमी खड़ा होकर और इतर लोग बैठकर सुनें यह रिवाज इस जमानेमें अनुचित नहीं समझा जा सकता। सभाओंमें राजा महाराजाओंका खड़े होकर बोलना क्या अनुचित समझा जाता है? रुचि पैदा करनेके लिये जमानेके अनुसार काम करनेमें कोई हर्ज नहीं, जीव बचाना हमारा उद्देश्य है। प्रतिदिन दश हजारमेंसे एक भी जीव बचा सकें, तो वर्षमें तीनसौ साठ बचाये जा सकते हैं, यह कम लाभ नहीं है।

केवल उपदेशादि कामोंसे भी उतना लाभ नहीं हो सकता जितना कि बाल्यावस्थामें ही सांसारिक शिक्षाके साथ बालकोंको धार्मिक शिक्षा देनेसे हो सकता है। इस विषयमें एक दृष्टान्त मेरे बाचनेमें आया है;–मदिरासे बचनेका उपदेश करनेवाला कोई उपदेशक एक स्कूलमें आया, स्कूल मास्टरने उससे पूछा, " आप कबसे उपदेशका काम करते हैं और कितने मनुष्योंने मदिरा पीनेका व्यसन छोड़ा? " उत्तरमें उपदेशकने कहा,–"दश वर्षसे उपदेश देता हूँ, " और जितने लोगोंको उसने व्यसनसे छुडाया था, गिना दिया। स्कूल मास्टरने कहा,–" आप हमारे विद्यार्थियोंसे मदिराके विषयमें उनकी क्या राय है पूछ लीजिये। " उपदेशकके पूछने पर सब विद्यार्थियोंने एक स्वरसे मदिरापानकी बुराइयाँ कह सुनाई।

सद्गृहस्थो! शास्त्रकारोंने पोषक क्षेत्र कौन है, सो कह दिया है; परन्तु वह अपनी समझमें नहीं आया अथवा समझकर उपेक्षा

की जा रही है । जो बड़ा हो वह पोषक । अपने अपने स्वरूपमें सब बड़े हैं । पाँच उँगलियोंमेंसे किसे प्रधान कहा जाय ? जमानेके अनुसार यदि विचार नहीं करोगे तो जैसा अबतक चलता आ रहा है वैसा ही चलेगा । जिसके अधीन सारे क्षेत्र हैं उसे खोज निकालो । मेरी समझके अनुसार वह क्षेत्र श्रावक श्राविका हैं ।

उनके रहनेसे मन्दिर और प्रतिमा हैं । साधु साध्वियोंके पास कौनसा धन है जिससे वे मन्दिरादिकी रक्षा करेंगे ? प्रतिष्ठा, जीर्णोद्धार आदिमें साधु क्या कर सकते हैं ? साधु साध्वियाँ भी तो इन्हींमेंसे होती हैं । उपदेशके अतिरिक्त साधु साध्वियाँ और क्या कर सकती हैं ? श्रावक श्राविकायें सब क्षेत्रोंका मूल हैं । जिसका मूल ढीला उसकी सब चीजें ढीली । यदि वे ढीले हैं तो पुष्ट होनेका प्रयत्न करें । एक राजाके चार लड़के थे । चारोंको उसने लोहा, चाँदी, सोना और रत्नोंकी खानें बाँट दीं । किसीने उस लोहेकी खान पाये हुये लड़केसे कहा, आपके पिताने अन्याय किया है क्योंकि यह समान विभाग नहीं कहा जा सकता । लड़केने कहा जिन खानोंको तुम श्रेष्ठ समझे हुये हो, बिना मेरे उनसे क्या काम निकलेगा ? जब तक कि मैं लोहेके हथियार रत्नोंकी खान खोदनेके लिये नहीं देऊँ ? इसी तरह श्रावक श्राविकारूप क्षेत्रके पुष्ट होने पर दूसरोंका काम चल सकता है ।

सद्गृहस्थो ! समुद्रका पानी किसीके काममें नहीं आता, नदियोंसे हजारों प्राणियोंका गुजारा होता है । समुद्र-तुल्य देव

प्रतिमा, मन्दिरोंका द्रव्य किसी दूसरेके उपयोगमें नहीं आ सकता। मेरा अभिप्राय क्या है, ठीक समझो। किसी माताके चार लड़कोंमेंसे एक बीमार हुआ। वह (माता) तीनोंका खयाल छोड़कर बीमार लड़केकी शुश्रूषा करती है, तो क्या माताका अभिप्राय तीनों लड़कोंके विषयमें अनुचित समझा जायगा? हर्गिज् नहीं, बल्कि उचित ही समझा जायगा; क्योंकि तीनों लड़के तन्दुरुस्त हैं, इनकी हानि होनेका सम्भव नहीं। पर यदि बीमारकी खबर माता न लेवे तो हानिकी सम्भावना है और उसका व्यवहार भी अनुचित समझा जा सकता है। सात क्षेत्रोंमेंसे साधनक्षेत्र प्रायः पुष्ट देखनेमें आते हैं, लाखों रुपये मन्दिरोंके जमा हैं। ऐसा सुननेमें आता है। उनपरसे ममत्त्व हटाकर यदि खर्च किया जाय तो हिन्दुस्तानके कुल मन्दिरोंका उद्धार हो सकता है। ऐसी हालतमें साधकक्षेत्र श्रावक श्राविकाओंके उद्धारका विचार न किया जायगा तो कितना नुकसान पहुँचेगा इसका अनुमान करना भी मुश्किल है। इस लिये बीमार लड़केकी सेवा, शुश्रूषाकी तरह; शिथिल प्रायः श्रावक श्राविकारूप क्षेत्रको मजबूत करनेमें,-उसकी रक्षा करनेमें इस समय यदि अधिक व्यय किया जाय तो मेरी समझसे अनुचित नहीं समझा जा सकता। नदीके समान यह श्रावक श्राविकारूप क्षेत्र परिपूर्ण होगा तो अन्य सब क्षेत्रोंको भली भाँति फायदा पहुँचानेवाला कहो, चाहे पोषक कहो, बराबर हो सकेगा। इस समय जहाँ खर्च करनेकी जरूरत है वहाँ खर्च करते

नहीं हो अन्यत्र हजारों रुपये उड़ा देते हो। श्रावकोंमेंसे अधिकांश तो चौबीस तीर्थङ्करोंके नाम तक नहीं जानते। खेतीहर (कृषक) भी क्षेत्रकी परीक्षा करके बीज बोता है। किस समय, किस क्षेत्रमें, कौनसा बीज, किस प्रकार बोना चाहिये यदि इस बातका ध्यान नहीं रखते हो, तो तुम खेतीहरसे भी गये बीते हो।

गृहस्थो! हम तुम दोनों मिलकर काम करना चाहें तो हो सकता है। एकसे काम नहीं हो सकता। हाँ कितने ही कार्य हमारे (साधुओंके) बिना भी तुम कर सकते हो। साधु न होनेसे विवाह बन्द न रहेगा, सामायिक पौषधादि भी बन्द न रहेंगे, परन्तु छः छः महीने पहाड़ोंमें रहकर भी साधुओंको तुम्हारे पास आकर हाथ पसारना पड़ता है। सारांश यह है कि तुम्हारा हमारा परस्पर धार्मिक सम्बन्ध है। लक्ष्मी स्वभावसे चपल है. धर्मके काममें विलम्ब नहीं करना और बुरे कामोंमें विलम्ब करना अच्छा है। सामर्थ्यके रहते हुये भी अपनी जातिका, अपने धर्मका उद्धार न करोगे तो दूसरा कौन करेगा? शास्त्रके अनुसार जो कहोगे साधु माननेको तैयार हैं। जो श्रावक होगा वह शास्त्रका उल्लङ्घन कर साधुको कदापि कुछ नहीं कह सकता। साधुओंकी सार सम्भाल लेना, श्रावकोंका परम कर्तव्य है। श्रावकको जैनशास्त्रमें साधुके मातापिताकी उपमा दी है,—" **अम्मापि उसमाणे** " श्रावकको साधुका राजा कहा है, " **सादूणं सड्ढो राया** " तब तुम्हारा फर्ज है कि सात क्षेत्रोंमें जहाँ त्रुटि मालूम देवे—शिथिलता मालूम देवे उसे दूर करनेका प्रयत्न करो।

नाभेका शास्त्रार्थ।

ढूंढियोंसे ६ प्रश्न ।

(१) जैनमतके शास्त्रानुसार जैनमतके साधुका भेष कैसा होना चाहिये अर्थात् साधु को कौन कौन चीज़ ज़रूरी चाहिये और किस किस कारण के वास्ते रखनी चाहिये जिनमें ऊनकी कितनी ? सूतकी कितनी इत्यादि, इसमें इस बातका भी निर्णय हो जावेगा कि मुख दिनरात बँधा रहे या खुला ही रहे ॥

नोट—इस प्रश्नका मतलब यह है कि ढूँढिये साधु एक कपड़े के टुकड़े को डोरेमें पाकर कानों के साथ लटका कर मुख को दिन रात बाँध रखते हैं सो जैनमत के शास्त्रों से बिलकुल विरुद्ध है ॥

(२) दिशा पिशाब होकर शुचि करनी चाहिये या नहीं ? यदि करनी चाहिये तो ढूँढिये साधु रात्रि को पानी बिलकुल नहीं रखते ह सो जब दिशा पिशाब होते हैं तब क्या करते हैं ?

नोट—इस प्रश्न का मतलब यह है कि ढूँढिये साधु रात्रि को जंगल जाते हैं तो पानी बिना शुचि कैसे करते होंगे, बुद्धिमान् आप ही विचार लेंवे । लज्जा के कारण इस बात को साफ साफ जाहिर नहीं करते हैं, जब कोई पूछता है तो कहते हैं जतन करते हैं सो न जाने क्या जतन करते हैं ? यदि इस बात में किसी को शंका होवे तो वह ढूँढिये साधु साध्वीको चौबीस तीर्थंकरकी कसम देकर तहकीकात कर सकता है ।

(३) जूठे बर्तनों का मैला पानी साधु को लेना योग्य है या

नहीं ? ढूँढिये मैला पानी लेते और पीते हैं। आम लोग प्रायः जानते हैं।

(४) शास्त्र कितने मानने और उसमें क्या प्रमाण है ? निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका आदि प्राचीन अर्थ मानने या नहीं ? व्याकरणादि का पढ़ना योग्य है या नहीं ? यद्यपि ढूँढिये इन बातोंको नहीं मानते हैं परन्तु जैनशास्त्र क्या फरमाता है सो देखना योग्य है।

(५) सूतक पातक मानना चाहिये कि नहीं ? उस घर का आहार पानी लेना योग्य है या नहीं ? ढूंढिये इन बातों का परहेज नहीं करते हैं।

(६) जैनमत के शास्त्रानु सार गृहस्थी को इष्टदेव की मूर्त्ति का पूजन करना योग्य है या नहीं ?

पूर्वोक्त ६ प्रश्नों का जैनशास्त्रानुसार कोई भी उत्तर ढूँढियों-की तरफ से नहीं मिला है। इस वास्ते न्यायवान् सत्य को पसंद करनेवाले धर्मात्मा महाराजा साहिब H. H. महाराजा हीरासिंह बहा-दुर नाभापति के पंडितगण ने अपने न्यायशील धर्मात्मा स्वामी महा-राजा साहिब की आज्ञानुसार पूर्ण विचार करके फैसला लिखकर रजिस्टरी कराके मुकाम रायकोट जिला लुधियाने में लाला देवीचंद चंबाराम की मार्फत महाराज श्रीवल्लभविजयजी को भेजा। पढ़कर उन महात्माने वह फैसला सर्वके लाभार्थ हमको भेज दिया। हमने देखकर जो कुछ आनंद मनाया, परमात्मा ही जानते हैं। जिह्वा से कहा नहीं जाता है और लेखनी से लिखा नहीं जाता है। यदि हमारे उस आनंद का किसी को अनुभव करना हो तो वह इस फैसले के

पढ़ने से अपने आपको जो कुछ आनंद प्राप्त होवे उसके साथ तुलना कर लेवे।

बस इस बात पर हम आनंद के वश होकर श्रीजैनधर्म्म की, श्रीमहाराज श्रीमद्विजयानंद सूरीश्वर श्रीआत्मारामजी महाराज-की, तथा नाभानरेश महाराज हीरासिंहजी बहादुर की जय बुलाने से नहीं रुक सकते हैं, बेशक धर्मी राजा हों तो ऐसे ही हों; महाराज साहिब ने अपनी न्यायकला द्वारा दूध और पानी को पृथक् २ करके दिखा दिया है, इस बात पर हम ऐसे धर्मात्मा न्यायवान् महाराजा साहिब को बारबार धन्यवाद देते हैं और प्रार्थना करते हैं कि महाराजा साहिब के तेज प्रताप ऋद्धि पुत्र पौत्रादि की प्रति दिन वृद्धि होवे साथ में अपने भूले हुए भाइयों से अरज़ गुजारनी मुनासिब समझकर हितशिक्षा रूप लिखा जाता है कि इस रीति का फैसला होने पर भी यदि आप अपने हठवाद को छोड़ने का उद्यम न करेंगे तो जरूर पक्षपात के प्रवाह में आपको गोते मारने पड़ेंगे।

अब नाभा में हुए शास्त्रार्थ का फैसला—जिसका वर्णन प्रथम किया गया—लिखा जाता है॥

(यह फैसले की अक्षरशः—हूबहू नकल है।)

फैसला शास्त्रार्थ नाभा।

ॐ श्रीगणाधिपतये नमः।

श्रीमान् मुनिवर वल्लभविजयजी,

पंडित श्रेणी सरकारनाभा इस लेख द्वारा आप को विदित करते

हैं । गतसंवत्सर में आपने हमारे यहाँ श्री १०८ श्रीमन्महाराजाधिराज नाभानरेशजी के हजूर में छः ६ प्रश्न निवेदन करके कहा था कि यद्यपि जैनमत और जैनशास्त्र भी सर्वथा एक हैं परंच कालांतर से हमारे और ढूंढियों में परस्पर विवाद चला आता है बलकि कई एक जगा पर शास्त्रार्थ भी हुए हैं परन्तु यह बात निश्चय नहीं हुई कि अमुक पक्ष साधु है । श्रीमहाराज की न्यायशीलता और दयालुता देशांतरों में विख्यात है इससे हमें आशा है कि हमारे भी परस्पर विवादका मूल आपके न्यायप्रभाव से दूर हो जावेगा । भगवदिच्छा-से इन दिनों में ढूँढियों के महंत सोहनलालजी यहाँ आये हुए हैं उनके सन्मुख ही हमें इन छः ६ प्रश्नों का उत्तर जैनमत के शास्त्रा-नुसार उनसे दिलाया जावे ।

आपके कथनानुसार उक्त महंतजी को इस विषय की इत्तला दी गई, आपने इत्तला पाकर साधु उदयचंदजी को अपने स्थानापन्न का अधिकार देकर उनके हानि लाभ को अपना स्वीकार करके शास्त्रार्थ करना मान लिया था ।

तदनंतर श्री १०८ श्रीमन्महाराजाधिराजजी की आज्ञानुसार हम लोगों को शास्त्रार्थ के मध्यस्थ नियत किया गया । तिस पीछे कई दिन तक हमारे सामने आपका और उदयचंदजी का शास्त्रार्थ होता रहा शास्त्रार्थ के समय पर जो प्रमाण आपने दिखलाये सो शास्त्र विहित थे । आपकी उक्ति और युक्तियाँ भी निःशंकनीय और प्रामाण्य थीं । प्रायः करके श्लाघनीय हैं ।

उक्त शास्त्रार्थ के समय पर और इस डेढ वर्ष के अंतर में भी जो

इस विषय को विचारा है उससे यह बात सिद्ध नहीं हुई कि जैनमत के साधुओं को वार्त्तालाप के सिवाय अहोरात्र अखंड मुखबंधन और सर्वकाल मुखपोतिका के मुख पर रखने की विधि है। केवल भ्रांति है। केवल वार्त्तालाप के समय ही मुखवस्त्र के मुख पर रखने की आवश्यकता है। हमारे बुद्धिबल की दृष्टिद्वारा यह बात प्रकाशित होती है कि आपका पक्ष ढूँढियों से बलवान् है।

यद्यपि आपका और ढूंढियोंका मत एक है और शास्त्र भी एक हैं। इसमें भी सन्देह नहीं, साधु उदयचन्दजी महात्मा और शांतिमान् हैं परंच आपने जैनमत के शास्त्रों में अतीव परिश्रम किया है और आप उनके परम रहस्य और गूढार्थको प्राप्त हुए हैं। सत्य वो ही होता है जो शास्त्रानुसार हो और जिसमें उसके कायदों से स्वमत और परमतानुयायिओंको शंका ना हो, शास्त्र के विरुद्ध अंधपरंपराका स्वीकार करना केवल हठधर्म है।

पूर्व विचारानुसार जब आपका शास्त्र और धर्म एक है और उसके कर्त्ता आचार्य भी एक हैं फिर आश्चर्य की बात है कि कहा जाता है कि हमारे आचार्यों का यह मत नहीं है और ना इन ग्रन्थों के वोह कर्त्ता हैं! आप देखते हैं कि हमारे भगवान् कलकी अवतार की बाबत जहाँ आप देखोगे एक ही वृत्त पावेगा ऐसे ही आपके भी जरूरी है।

आपके प्रतिवादी के हठ के कारण और उनके कथनानुसार हमें शिवपुराण के अवलोकन की इच्छा हुई। बस इस विषय में उसके देखने की कोई आवश्यकता नहीं थी। ईश्वरेच्छा से उसके

लेख से भी यही बात प्रकट हुई कि वस्त्रवाले हाथ को सदा मुख पर फैंकता है इससे भी प्रतीत होता है कि सर्व काल मुखवस्त्र के मुख पर बाँधे रखने की आवश्यकता नहीं है किन्तु वार्त्तालाप के समय पर वस्त्र का मुख पर होना जरूरी है।

आपके शास्त्रार्थ में एक हमें बड़ा भारी लाभ हुआ है कि हमें मालूम हो गया कि जैनमत में भी सूतक पातक को ग्रहण किया है और जैनी साधुओं को उनके घरों के आहारादि के लेने की विधि नहीं है।

व्यतीत संवत्सर के आठ जेठ ज्येष्ठ सुदी पञ्चमी सं० १९६१ को जो शास्त्रार्थ मध्यमें छोड़ा गया उससे यह आशय था कि ढूंढियों की ओर से सदा मुखबन्धन की विधि का कोई प्रमाण मिले-सो आज दिन तक कोई उत्तर उनकी तरफ से प्रकट नहीं हुआ, अतः उन की मूकता आपके शास्त्रार्थ के विजय की सूचिका है।

बस

इस विषय में हमारी संमति है और हम व्यवस्था याने फैसला देते हैं कि आपका पक्ष उनकी अपेक्षा से बलवान् है। आपकी विद्या की स्फूर्त्ति और शुद्ध धर्माचार की नेष्टा अतीव श्रेष्ठतर है प्रायः करके जैनशास्त्रविहित प्रतीत होता है और है।

हस्ताक्षर पण्डितों के

पण्डित भैरवदत्त।
पण्डित श्रीधर राज्यपण्डित नाभा।
पण्डित दुर्गादत्त।
पण्डित वासुदेव।
पण्डित बनमालीदत्त ज्योतिषी।

उक्त फैसले के आने पर श्रीमुनिवल्लभविजयजी ने श्रीमान् नाभा नरेश को एक पत्र लिखा, उसकी अक्षरशः नकल आगे देते हैं ॥

श्रीमान् महाराजा साहिब नाभापति जी जयवन्ते रहें, और रायकोट से साधु वल्लभविजय की तर्फ से धर्मलाभ वांचना, देवगुरु के प्रताप से यहाँ सुखशान्ति है, और आपकी हमेशह चाहेत हैं। समाचार यह है कि आपके पण्डितों का भेजा हुआ फैसला पहुँचा। पढ़ कर दिल को वहुत आनन्द हुआ। न्यायी और धर्मात्मा महाराजों का यही धर्म है, कि सच और झूठ का निर्णय करें जैसा कि आपने किया है। कितने ही समय से वहुत लोगों के उदास हुए दिल को आपने खुश कर दिया। इस वारे में आपको वार वार धन्यवाद है। अब इस फैसले के छपवानेका इरादा है, सो रियासत नाभा में छपवाया जावे या और जगह भी छपवाया जा सकता है ? आशा है कि इसका जवाब वहुत जल्द मिलेगा ॥

ता० १८-१-१९०६

द० वल्लभविजय, जैनसाधु ॥

पूर्वोक्त पत्र के उत्तर में नाभानरेशकी तरफसे पण्डितों के नाम पत्र लिखा, उसकी नकल नीचे मूजिब है:—

ब्रह्ममूर्त पण्डित साहिबान कमेटी सलामत—नम्बर ११९२.

इन्दुल गुजारिश पेशगाह खास से इरशाद सादर पाया कि बावाजी को इत्तला दीजावे कि जहाँ उन का मनशा हो वहाँ इसको तबअ करावें यह उनको इखतियार है, जो कुछ पंडितान ने बतलाया

वह भेजा गया है, लिहाजा मुतकाह्लिफ खिद्मत हूँ कि आप बमनशा हुक्म तामील फर्मावें ।१०माघ संवत् १९६२.अज् सरिशतह ड्योढी।

पन्नालाल, सरिशतहदार ।

इस पत्र के उत्तर में कमेटी पंडितान ने श्रीमुनि वल्लभविजय जी के नाम पत्र लिखा, उसकी नकल नीचे मूजिब है:—

ब्रह्मस्वरूप बावा साहिब जी श्रीमहात्मा वल्लभविजयजी साहिब साधु सलामत । नम्बर ७७६

सरकारवाला दाम हश्मतहू से चिट्ठी आपकी पेश होकर वर्दी जवाब बतवस्सुल ड्योढी मुबारिक व हवालह हुक्म खास वर्दी इरशाद सदूर हुआ कि बावा जी को इत्तला दी जावे कि जहाँ उन का मनशा हो, तबअ करावें। बखिद्मत महात्मा जी नमस्कर दस्त वस्तह होकर इल्तिमास किया जाता है कि जहाँ आपका मनशा हो छपवाया जावे, और जो फैसला तनाजअ बाहमी साधुआन् महात्मा का जो जैनमत के अनुसार पण्डितान् ने किया था, आपके पास पहुँच चुका है, मुतलअ हो चुका है। तहरीर ११ माघ संवत् ११६२

द० सपूर्णसिंह, अज् सरिशतह कमेटी पण्डितान ।

गुजराँवालाका शास्त्रार्थ ।

"जैन पत्र सम्पादकजी महाशय,

कृपाकर इस लेखको अपने पत्रमें छपवाकर प्रसिद्ध कर दीजिएगा।

जिस समय यहाँ प्रतिष्ठा महोत्सव बड़ी धामधूमसे हुआ, उस उत्सवको देखत ही ढूँढक भाइयोंके पेटमें मारे द्वेषके ज्वलाएँ उठने

लगीं। फल यह हुआ कि उन्होंने एक छोटीसी किताब छपवाकर, श्रीआत्मारामजी महाराजके विरुद्ध सनातन धर्म्मावलंबी भाइयोंको खड़ा किया, तथा द्रव्यादिसे उनकी सहायता करने लगे। किताबमें ऐसे वाक्य लिखे हुवे थे,—“ आत्मारामजी पुजेरेने अपने बनाये ‘अज्ञान तिमिर भास्कर’ नामक ग्रन्थमें लिखा है कि वेदोंमे नरमेध, गोमेध तथा अश्वमेध आदि यज्ञोंका विधान है। ब्राह्मण लोग, मनुष्य गाय, घोड़े आदि प्राणियोंको मारकर यज्ञ करते थे। ब्राह्मण भाइयो! क्या यह बात सच्ची है ?”

इस किताबको देखकर, सनातन धर्म्मावलंबी बहुत बिगड़े। उन्होंने नोटिस दिया, जिसका आशय यह था,—“ आत्मारामजी महाराजने ‘अज्ञान तिमिर भास्करमें’ हमारे शास्त्रोंसे जो जो प्रमाण हिंसा साबित करनेके लिये दिये हैं, उनको सत्य ठहरानेके लिये आप लोग अपने पण्डितोंको बुलावें, हम लोग भी अपने पण्डितोंको बुलाते हैं। अगर इस नोटिसका जवाब नहीं दोगे तो आत्मारामजी मिथ्यावादी समझे जायँगे।”

इस नोटिसको पाकर जैन भाइयोंकी ओरसे उत्तरमें नोटिस दिया गया। उसमें यह प्रार्थना की गई थी,—“ श्रीमान् आत्मारामजी महाराजने अज्ञानतिमिर भास्करमें वेदादि शास्त्रोंसे जो २ प्रमाण दिये हैं वे सत्य हैं। किताब छपेको इक्कीस वर्ष हुए अभी तक किसी महाशयने उसके विषयमें तकरार नहीं उठाई। आप लोगोंको यदि सन्देह हुवा हो, तो, अज्ञान तिमिर भास्करमें दिये हुए प्रमाणोंको अपने शास्त्रोंसे मिलाकर स्वयं देख लेवे, अथवा अपने पण्डितोंको

दिखला कर निर्णय कर लेवें। यदि आपके पास पुस्तकें न हों, तो हमारे पास आकर देख लेवें, क्योंकि आपसमें विरोध फैलाना अच्छा नहीं है, और गुप्त बातोंको पबलिक (सर्व साधारण) में जाहिर करना, हम लोग अच्छा नहीं समझते हैं, फिर आपकी इच्छा।"

इस नोटिसको पाकर वे लोग शान्त नहीं हुए, किन्तु शास्त्रार्थ करनेके लिये उत्तेजित करने, तथा अपने पण्डितोंको बुलानेका प्रबन्ध करने लगे। श्रीसंघ गुजराँवालाने भी मुनिराज श्रीवल्लभविजयजी महाराजको तारद्वारा सूचित किया, मुनिराज श्री दिल्लीमें चौमासा करना चाहते थे पर इस समाचारको सुनते ही फिर पंजाब आने वास्ते लौटे। पाठकगण! सख्त गरमीके दिनोंमें चलनेके कारण पैरोंमे सूजन आ गई थी अतएव श्रावक भाई आग्रहसे अपने २ ग्रामोंमें विश्राम लेनेके लिये आग्रह करते थे, लेकिन जैन शासनकी किसी प्रकार हेलना न हो, इस लिये मुनिराज बड़े वेगसे विहार करने लगे। ऐसे ही मुनिराज धन्यवादके पात्र हैं! और जैन पंडित श्रीव्रजलालजीको तारद्वारा सूचना दी। वे महाशय सूचना पाते ही यहाँ आ गये।

इधर सनातनी भाइयोंने पं० भीमसेन शर्म्मा, विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र तथा पं० गोकुलचंदजी आदिको बुलाया। प्रथम पं० भीमसेनजी आये, उन्हें लेने वास्ते ढूँढक भाई भी स्टेशनपर गये थे, इतना हीं नहीं बलकि पण्डितजीके गलेमें अपने हाथोंसे पुष्प माला भी डालते रहे! तथा सनातन धर्म्मकी जयमें जय मिलाते थे।

दूसरे दिन, सनातनी भाइयोंकी ओरसे सायंकालके चार बजे

नोटिस तथा एक पत्र मिला, जिसका आशय यह था,—"आज सायंकालके ६ बजे ब्रह्म अखाड़े में सभा होगी, हमारे पं० भीमसेनजी शास्त्रार्थ करनेकेलिये तैयार हैं। आत्मानन्दी पुजेरे भी अपने पण्डितको लावें। यदि आत्मानन्दी नहीं आवेंगे तो पं० भीमसेनजीका व्याख्यान होकर सभाका कार्य समाप्त किया जायगा तथा जैनोंका पराजित होना प्रसिद्ध कर दिया जायगा"

इस नोटीसको पाकर जैनलोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ कि न तो कोई मध्यस्थ, न पुलिसका प्रबन्ध। फिर भी घंटेकी फुरसत (अवकाश) देकर शास्त्रार्थके लिये बुलाना, सभास्थान भी ब्राह्मणोंका, सभापति भी उन्हींके पक्षपाती पं० लालशङ्करजी, मानों यह एक गुड़ियोंका खेल ही इन लोगोंने समझ लिया! पाठकगण, सच्ची बात तो यह है कि वेदमें हिंसा है यह बात दुनियामें जाहिर है। बंबई शहरकी धर्म्मसभाने २६ प्रश्न निकाले थे। जिनमेंसे आठवें और ग्यारहवें प्रश्नका जवाब तारीख ३० जुलाई सन् १९०४ के 'बंबई समाचार' में छपा है, जिसमें खुलासा वेदमें हिंसा लिखी है! परन्तु सनातन धर्म्मावलंबियोंने तथा उनके पं० भीमसेन शर्म्माने जोशमें आकर तथा पक्षपातका चश्मा चढ़ाकर विचार किया कि ब्राह्मण क्षत्रियादि हजारों मनुष्य हमारे पक्षमें हैं। जैनी कुल थोड़ी संख्यामें, फिर भी ये जैनी हमारे सन्मुख बोलते हैं? इस लिये इन्हें शास्त्रार्थमें चालबाजीसे अथवा लड़ाई दंगेसे दबाना और प्रसिद्ध कर देना कि जैनी हार गये। पर जैन लोग उनका अन्तःकरण अच्छी तरहसे जानते थे अतएव थानेदार तथा पुलिस को साथमें लेकर जैन पं० ब्रजलालजीको सभामें ले गये।

सभामें सनातनी, आर्यसमाजी, ढूंढक, सिख, मुसल्मान आदि ५००० पाँच हजारके लगभग मनुष्य एकत्रित (इकट्ठे) हुए थे। थोड़ी ही देरमें पं० भीमसेनजीका भाषण प्रारम्भ हुआ जब भाषणके समाप्तिका समय कुछ बाकी था, इतनेमें जैन पं० व्रजलालजीने पत्रमें लिखकर सभापतिको सूचना दी कि दश मिनिट बोलनेकी इजाजत (आज्ञा) मुझे मिलनी चाहिये।

अनन्तर सभापतिकी आज्ञा पाकर उठकर वे बोलना चाहते थे, इतनेमें पं० भीमसेनजी बड़े आवेशसे बोल उठे कि—"प्रतिपक्षी जैनी ही बोल सकता है, न कि ब्राह्मण ! इस लिये बोलनेकी इजाजत आप को नहीं दी जायगी।"

उत्तर देते हुए पण्डितजीने गम्भीरतासे कहा कि,—"मैं जैनी हूँ अतएव आपका रोकना अनुचित है।" तदनन्तर पं० भीमसेन जीने कहा कि, यह हमको लिख दो। पंडितजीने लिख दिया, और उच्च स्वरसे कहा कि,—"जैनी बननेका कारण वेदविहित हिंसा है।"

यह सुनकर सभामें कोलाहल मच गया। मारे गुस्सेके पं० भीमसेनजीकी आँखें लाल हो गईं। तदनन्तर इजाजत पाकर पण्डितजीने यह कहा;—"श्री आत्मारामजी महाराजने अज्ञान तिमिर भास्करमें वेदादिशास्त्रोंके जिन प्रमाणोंसे गोमेध, नरमेध, तथा अश्वमेधादि दिखलाए हैं, तथा उन प्रमाणोंका जैसा हिन्दीभाषामें अनुवाद किया है, उनको सत्य सिद्ध करनेकेलिये हम तैयार हैं, परन्तु मध्यस्थ जरूर होना चाहिये। जो निष्पक्षपाती तथा संस्कृत भाषाके पदोंका

अर्थ समझनेकी अच्छी योग्यता रखता हो। पं० भीमसेनजीका यह कहना कि,—"पबलिक मध्यस्थ है, दूसरे मध्यस्थकी आवश्यकता नहीं।" बिलकुल गलत (अनुचित) है। गोया पं० भीमसेनजी अपने मुखसे ही सिद्ध करते हैं कि, हम सच्चा शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते। यदि योग्य मध्यस्थ नहीं मिल सकते हों, तब तो पं० भीमसेनजीका कहना कुछ मान भी लिया जाता; किन्तु इन्हीं सनातनी भाइयोंने, आर्यसमाजके साथ शास्त्रार्थ करनेके समय, मेयो कॉलेजके प्रिन्सिपल थिबो साहब, तथा क्विन्स कॉलेजके प्रिन्सिपल बेनिस साहबको मध्यस्थ बनानेका आग्रह किया था अतएव मैं सम्पूर्ण सभासदोंसे निवेदन करता हूँ कि, वे ही निष्पक्षपात बुद्धिसे विचार करें, ऐसे शास्त्रार्थमें मध्यस्थकी जरूरत है अथवा नहीं? बलके मध्यस्थका निषेध सम्बधी पं० भीमसेनजीका व्याख्यान, साफ जाहिर करता है कि मध्यस्थके रहनेपर हमारी चालबाजी चलेगी नहीं; किन्तु पोल खुलजायगी।"

बस इतना ही जैन पं० ब्रजलालजी कहने पाये थे कि सभापतिने कहा,—"समय हो गया, बोलना बंद करिए।" अभी दस मिनिट पूर्ण नहीं हुए, किन्तु पाँच मिनिट बाकी (शेष) थे, अतएव इस अन्यायको देखकर कई लोगोंने कह दिया कि पक्षपात हो रहा है, पर वहाँ कौन सुनता है। बड़ी जल्दीसे पं० भीमसेनजीने उठकर कहा कि,—" वादी, प्रतिवादी दोनों यदि चाहें तब मध्यस्थ नियत किया जाता है, हम लोग मध्यस्थको नहीं चाहते हैं; क्योंकि उसमें रिश्वतखोरी (घूसदेना)

होती है; अब समय हो गया, अतएव सभा बन्द की जाती है, कल फिर सभा होगी।"

तदनन्तर दोनों पक्षवाले,—"जैन धर्म्मकी जय!" "सनातन धर्म्मकी जय!" पुकारते हुये सुरक्षित अपने अपने घर गये। सभास्थलमें कोई २ बहादुर अपनी बहादुरी दिखलानेकी चेष्टा करते थे, पर पुलिसने भी बहादुरीका फल हवालातमें बन्द होना पड़ेगा, इत्यादि कहकर शान्त किया।

दूसरे दिन मुरादाबादके पं० ज्वालाप्रसादजी, तथा मेरठके पं० गोकुलचंदजी आ गये, और सभा की गई। व्याख्यानमें जैनियोंको मनमानी गालियाँ देकर पं० ज्वालाप्रसादजीने विद्यावारिधि पदवीकी सार्थकता दिखला दी! तथा पं० भीमसेनजी भी अपनी वृद्धावस्थाकी शान्ति दिखलाकर लोगोंको मात करते थे! बिचारे ढूँढक भाइयोंकी बड़ी दुर्दशा होती थी! क्योंकि खर्च भी देना और सभामें पण्डितोंकी गालियाँ भी सुनना। अन्तमें, परिणाम यह हुआ कि लोगोंमें अत्यन्त अशान्ति फैल गई। प्रति क्षण मारपीट होनेकी सम्भावना होने लगी, अतएव पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट बहादुरको सब प्रबन्ध करना पड़ा। उन्होंने कहा कि,—"दोनों पक्षवाले लोग, अपने २ पण्डितोंको लेकर, कल सवेरे सात बजे कोतवालीमें हाजिर हों। जज साहब व चटर्जी साहब संस्कृतके जानकार हैं उनके समक्ष तुम्हारा फैसला करा दिया जायगा"

यहाँ पाठकोंको यह दिखलाना आवश्यक है कि, जैनोंकी ओरसे पं० भीमसेनशर्म्माको एक रजिष्टर पत्र भेजा गया था, परन्तु उन्होंने

लिया नहीं। पत्रका आशय यह था कि, आप ब्राह्मण स्मृति आदि ग्रन्थोंमें किन २ ग्रन्थोंको प्रमाण मानते हैं ? " खैर !

पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबसे सनातन धर्मसभाके सेक्रेटरी पं० केदारनाथने कहा कि, हम पाँच प्रश्न जैनियोंको देते हैं, वे कल सवेरे इन प्रश्नोंका जवाब लिखकर लावें। उसी समय जैन भाइयोंकी ओरसे भी रजिस्टरपत्र दिखलाया गया, और कहा गया कि, इस प्रश्नका उत्तर, सनातनी पण्डित भी लिखकर लावें। दूसरे दिन सवेरे सात बजे दोनों पक्ष कोतवालीमें उपस्थित हुए। उसी समय साहब आ गये। पुलिस इन्स्पेक्टर द्वारा भीड हटवाई गई। चुनेहुए शिक्षित लोगोंको छोड़कर, अन्य लोग बाहर कर दिये गये तथा फाटक बन्द कर दिया गया।

श्रीमान् पं० ज्वालासाहब डिस्ट्रिक्ट जज तथा हेडमास्टर चटर्जी साहब मध्यस्थ किये गये थे। पाठकगण, यहाँ मध्यस्थके विषयमें कुछ लिखना अप्रासंगिक नहीं समझा जायगा। मध्यस्थ जज साहब ब्राह्मण कुल तिलक, निष्पक्षपाती अमृतसर निवासी थे। आपके पूर्वज भी बड़े बड़े अधिकारी थे। धर्मान्दोलनके कारण परस्पर बढ़ी हुई अशान्तिको पक्षपातरहित होकर दूर करनेके कारण, आप जैनीमात्रके धन्यवादके पात्र हैं। और ऐसे ही संस्कृतज्ञ मि० बी. सी. चटर्जी बी. ए. हेडमास्टर भी उपस्थित थे। मौलवी नजीरहुसेन, मौलवी सय्यद कलन्दरहुसेन, डिस्ट्रिक्ट सुपरवाइझर, आर्यसमाजके नेता मि० आत्माराम अमृतसरी आदि प्रतिष्ठित हिन्दु, मुसल्मान तथा राजकर्मचारी भी उपस्थित थे।

कार्य प्रारम्भ हुआ। जजसाहबने सनातनी भाइयोंसे पूछा कि; अज्ञान तिमिर भास्करको छपे कितने दिन हुए ? उत्तरमें कहा गया, इक्कीस वर्ष। फिर जज्जसाहबने पूछा कि, इतने दिनतक क्यों तकरार नहीं उठाई गई ? उन्होंने कहा,—अभीतक किताब देखनेमें नहीं आई थी। अनन्तर एक जैन भाईने कहा कि यह बात गलत है, क्योंकि पं० भीमसेनजीने कहा था,—"एक वार मैं इस किताबका खण्डन कर चुका हूँ।"

फिर सनातनी भाइयोंकी प्रार्थनानुसार जजसाहबने कहा,—"कल पाँच प्रश्न जैनियोंको दिये थे वे लावें।"

जैनियोंकी ओरसे लिखित प्रश्नोंके उत्तरकी कॉपी जजसाहबके सन्मुख रक्खी गई और कहा गया कि, हम लोगोंने सनातनियोंको जो प्रश्न दिये थे उनका उत्तर चाहते हैं।" जज साहबके माँगनेपर पं० भीमसेनजी बोले कि, प्रथम हमारे प्रश्नका जवाब दिया जाय पीछे इनके प्रश्नका जवाव दूँगा; क्यों कि प्रथम हमारी ओरसे प्रश्न किये गये थे।

उसी समय जैनियोंकी तरफसे रजिस्टर पत्र दिखलाकर कहा गया कि, प्रथम हमारी ओरसे हीं प्रश्न किया गया था। तपास करनेपर यही बात सच्ची निकली। तदनन्तर जज साहबने जैन पं० ब्रजलालजीसे कहा कि, आप अपने प्रश्न सुना देवें, पश्चात् प्रश्न सुन कर, उन्होंने पण्डित भीमसेनजीसे पूछा कि,—"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" इस महर्षिके सूत्रानुसार ब्राह्मण ग्रन्थको वेदत्व प्राप्त है, अतएव मैं आपसे पूछता हूँ कि, ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं वा नहीं ?

पाठको ! यहाँ यह लिखना आवश्यक है कि, सनातन धर्म्मावलंबीमात्र ब्राह्मण ग्रन्थोंको वेद मानते हैं और उन्हींमें गोमेध तथा नरमेध बड़े विस्तारसे लिखा है। अतएव पं० भीमसेनजीने बड़ी चालाकीसे उत्तर दियाथा कि,—" मूल वेदमेंसे गोमेध तथा नरमेध दिखलाओ, " इससे उपर लिखा पूछा गया था।

पं० भीमसेनजीने कहा,—" ब्राह्मण ग्रंथोंको वेद मानता हूँ परन्तु मैं जैनी पण्डितसे पूछता हूँ कि, वे मूल वेदमेंसे गोमेध तथा नरमेध दिखलावें।

जज साहब पं० भीमसेनजीसे बोले,—"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" इस वचनसे ब्राह्मण ग्रन्थोंको वेदत्व प्राप्त है, उसे आप स्वीकार भी करते हैं। बस अब आपको जैन पं० ब्रजलालजी अपनी इच्छानुसार संहिता अथवा ब्राह्मणभागसे नरमेध तथा गोमेध दिखलावेंगे। यह आपका आग्रह करना कि, मूलमेंसे ही दिखलावें, अनुचित है।

पं० भीमसेनजीने कहा,—" ब्राह्मण ग्रंथ, मूल वेदका व्याख्यान हैं, अतएव मूलका आग्रह किया जाता है।"

जज साहबने कहा, " इसमें क्या प्रमाण है कि, ब्राह्मण ग्रन्थ मूल वेदका व्याख्यान हैं ? फिर यह शङ्का उठती है कि वह व्याख्यान वेदानुकूल है अथवा नहीं ? "

तदनन्तर पं० ज्वालाप्रसादजी बोलने लगे। उन्होंने भी पिष्टपेषणसाही किया जिसे सुनकर जज साहबने स्पष्ट कह दिया कि आप लोग बराबर उत्तर नहीं देते हैं।

इतनेमें तीसरे सनातनी पण्डितने कहा कि,—" गौणमुख्ययो-

मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः" इस न्यायसे संहिता मुख्य तथा ब्राह्मण ग्रन्थ गौण हैं. अतएव जैन पण्डितको मूल वेदसे ही हिंसा बतलानी चाहिये।"

जज साहबने कहा,—"ऐसा क्यों ? यह न्याय इस स्थलके लिये नहीं आप लोग विचारकर बोलें।"

(इतना कहकर हँस दिये और सनातनी पण्डितोंसे बोले कि,) "आपलोगोंमेंसे किसीने भी उत्तर ठीक नहीं दिया खैर ! जैन पं० ब्रजलालजी ! आप मूल वेदमें हिंसा बतला सकते हैं या नहीं ?

उत्तरमें पण्डितजीने कहा कि,—"हमारा यह पक्ष ही नहीं है, क्यों कि आत्मारामजी महाराजके बनाए हुये अज्ञानतिमिरभास्करके लेखको सत्य सिद्ध करना यही हमारा पक्ष है। यदि मूल वेदके विषयमें आप निर्णय करना चाहते हों तो, स्वयं पं० ज्वालाप्रसादजीने तथा पं० भीमसेन शर्म्माने अपनी लेखनीसे ही मूल वेदमें हिंसा सिद्ध की है।"

इस वाक्यको सुनकर जज साहबने कहा,—"दिखलाओ।" शीघ्र ही पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रका—"मिश्र भाष्य" दिखलाया गया, जिसमें अश्वको मारकर उसके मांसको पकाना इत्यादि अश्वमेध यज्ञका वर्णन लिखा था। वैसे ही पं० भीमसेनजीका लेख दिखलाया गया। उन्होंने साफ लिखा है,—"वेदमें लिखा है कि आए हुए ब्राह्मण वा क्षत्रिय राजा वा अतिथिके लिये बड़े बैल वा बड़े बकरेको पकावे।" इन वाक्योंको सुनकर सनातन धर्म्मावलंबी तथा उनके पं० भीमसेनजी व ज्वालाप्रसादजी कुछ भी नहीं बोल सके।

तदनन्तर मध्यस्थ पुरुषोंने कहा कि जो कुछ मतलब है हम खूब

समझ गये हैं । मगर हम भ्रातृभावसे आपसमें राजीनामा हो जावे और ऐसे क्लेश वृद्धिको प्राप्त न होवें इसमें अच्छा समझते हैं । आखिरकार मध्यस्थ पुरुषोंका वचन मान्य रखना मुनासब समझा गया और परस्पर भ्रातृभावका राजीनामा लिखा गया ! यह वृत्तान्त जैसा मेरे अनुभवमें आया पाठकवृन्दको सूचनार्थ लिखा गया है । यदि इसमें कुछ न्यूनाधिक लिखा गया हो, तो दोनों ही पक्षवाले मुझपर क्षमा करें ।

K. C. Bhutt.

(२६ जुलाई १९०८)

जैन.

(नोट) इस कार्यमें शहर जलंधरनिवासी यतिजी केसरऋषिजीने भी प्रशंसनीय मदद दी थी । इनकी धर्म पर पूर्ण श्रद्धा है । पढ़े हुए भी ये प्रायः यतिवर्गमें उच्च कोटिके लायक हैं । यदि इनके जैसा ख्याल अन्य यतिवर्गका होवे तो जैनधर्मोन्नति शीघ्र ही हो जावे । इतना ही नहीं बलकि जैनधर्मपर झूठे आक्षेप करने वालोंको खूब शिक्षा मिल जावे ।

" पंडित भीमसेनजी शर्माके उद्‌गार "

गुजराँवाला पंजाब ।

जैनधर्मावलम्बी लोगोंमें कई फिर्के होने पर भी ढुँडेरे और पुजेरे ये पंजाबमें विशेष कर हैं । पुजेरे जैनियोंमें एक आत्माराम साधु हो चुका है । उक्त साधुने एक पुस्तक अज्ञान तिमिर भास्कर नामक छपाया था जिसमें वेदादि मान्य शास्त्रोंकी ऋषि महर्षियोंकी

और विशेषकर ब्राह्मण मात्रकी खूब निन्दा की है। वेदको हिंसादि अधर्म फैलाने वाला कहा है। सब सनातन धर्मी आर्यसमाजी और स्वा० दयानन्दको भी हिंसक अधर्मी लिखा है। पंजाबमें नागरीका प्रचार कम है इससे उस पुस्तकका हाल सब कोई नहीं जानते थे। ढुँडेरे जैनियोंने पुजेरोंका खंडन करते हुए अज्ञान तिमिर भास्करका अनुवाद करके दो तीन ट्रेक्ट उर्दूमें छपा दिये। जिनको देखकर सनातन धर्मी पबलिकमें बड़ी हलचल पैदा हो गई कि सनातन धर्मके वेदादि शास्त्रोंमें मनुष्यका तथा गौका मारना लिखा है तो हम वेदको छोड़ देंगे। ढुँडेरोंकी चालाकी यह थी कि सनातन धर्मी दलको अपने शत्रु पुजेरोंका विरोधी बना दें तो इन दोनोंमें खूब झगड़ा हो। सो यदि सनातन धर्मी ऐसा कहते कि हम जैनधर्मके सभी फिर्कोंको वेदविरुद्ध तथा नास्तिक मानते हैं, हम सभीका खंडन करेंगे तो एक पुजेरोंके साथ झगड़ा कम होता। सो न हुआ किन्तु पुजेरोंसे बखेड़ा बढ़ गया। शास्त्रार्थ होनेकी बात चीत चली। इटावेसे पं० भी० श० और मुरादाबादसे पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र तथा मेरठसे पं० गोकुलचंदजी गुजराँवालेमें पहुँचे। गुजराँवालेमें चार दिन बड़े समारोहसे सभा हुई। पहिले दिनकी सभामें कुछ जैन लोग आये। पुजेरे जैनियोंकी ओरसे कोई पण्डित नहीं था। काशीकी जैन पाठशालामें पढ़नेवाला एक ब्राह्मण विद्यार्थी (जिसने लघु कौमुदी भी ठीक नहीं पढ़ पाई थी) शास्त्रार्थके लिये आया था। अनुमानसे जाना गया कि कुछ लोभ देके उसे वेद विरोधी बनाया गया था।

जब सभामें वह विद्यार्थी बोलनेको खड़ा किया गया तब सनातन

धर्मियोंने पूछा कि तुम कौन हो?" उसने कहा-"मैं काशीकी जैन पाठशालाका अध्यापक ब्राह्मण हूँ।" तब सनातन धर्मियोंने कहा कि,-"यहाँ जैनियोंके साथ शास्त्रार्थ है, क्या तुमने वेदोक्त धर्म त्याग दिया है? क्या तुम जैनी हो गये हो?" ऐसा सुनकर विद्यार्थीका चहरा बिगड़ गया और कुछ घबरा गया। तो भी लोभ वश मिथ्या बोला कि, मैंने वैदिक धर्म छोड़ दिया मैं जैन हो गया हूँ। तब कहनेकी इजाजत होनेपर भी उससे कुछ न कहा गया। केवल यही कहा कि गुजराँवालाके कलक्टर साहब सभापति हों। २२ प्रबन्ध कर्त्ता हों कोई अंगरेज मध्यस्थ हो तब शास्त्रार्थ होना चाहिये। सनातन धर्मकी ओरसें पत्रलिकको सुनाया गया कि शास्त्रार्थ टालनेके लिये यह इनकी बहानेबाजी है। सभामें सिद्ध किया गया कि वेदमें मनुष्यको तथा गौको कदापि मत मारो इनकी रक्षा करो ऐसा साफ २ लिखा है। प्रमाण दिखाये गये, आत्मारामको मिथ्यावादी, जैनियोंको निर्दयी हिंसक नास्तिक सिद्ध किया गया। तीन चार दिन तक जैनोंको सब प्रकार सभामें बुलाया पर घबड़ाके नहीं आये, डर गये। सनातन धर्मका जय जयकार होके सभा विसर्जन हुई।

ब्राह्मण सर्वस्व मासिकपत्र संपादक पंडित भीमसेन--
शर्मा--भाग--९--अंक १२ पृष्ठ ४९७--४९८।

पूर्वोक्त दोनों अखबारोंके लेखोंको देखकर वाचकवृंद स्वयं विचार कर सकें इस वास्ते यह उद्यम किया गया है, न कि पक्षपात करनेके-लिये। इस वास्ते वाचकवृंदसे सविनय प्रार्थना है कि वे निष्पक्ष पात हो स्वयं निर्णय कर लेंवे इति।

(विशेष निर्णय नामक पुस्तकसे उद्धृत)

बारहवीं श्वेतांबर जैनकान्फरेंस सादड़ी (मारवाड़)

के समय दिया हुआ भाषण ।

ॐ नमः वीतरागाय ।

यस्य निखिलाश्च दोषा न सन्ति सर्वे गुणाश्च विद्यन्ते ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥

(भावार्थ—जिसमें एक भी दोष नहीं है और जिसमें सारे गुण विद्यमान हैं उसको मैं नमस्कार करता हूँ । वह चाहे ब्रह्मा हो, विष्णु हो, महादेव हो या जिन, हो ।)

मान्य मुनिवरो ! सुशीला साध्वियो ! सभ्य सद्गृहस्थो और सन्नरियो ! आप सर्वका यहाँ पर उपस्थित होना कुछ अन्य ही कथन कर रहा है । रंग बिरंगी विचित्र पगड़ियों और लाल पीले अनेक प्रकारके कपड़ों व गहनोंसे सुसज्जित दो दलोंका एकत्रित होना तो अनेक विवाह (शादी) जीमनवार आदि प्रसंगोंमें ही संभव है । परन्तु आपसे ही क्या ? सारी दुनियासे उलटे रस्ते चलनेवाले हमारे दोदल जो आपको दिखलाई देते हैं उससे साफ़ जाहिर होता है कि, यह प्रसंग सांसारिक नहीं है, किन्तु धार्मिक है । इस लिए मैं भी यहाँ कुछ बोलनेका अधिकार रखता हूँ ।

मेरा विचार और अधिकार ।

महाशयो ! यहाँ जो कुछ कहूँगा अपना निजका विचार कहूँगा । उसको मानना न मानना उस पर विचार करना न करना आपका

अख्तियार है । मेरे पास तो क्या जैन साधुमात्रके पास ऐसी सत्ता नहीं है जिसके बलसे आप पर किसी किसमका जोर या फर्ज डाला जा सके ? जैसा कि साँझवर्त्तमानमें सुलहके उत्सवमें शामिल नहीं होनेका करवीर पीठके जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यका अपने अनुयायियोंको फर्मान जाहिर हुआ है ।

जैन गुरुओंको उपदेशका अधिकार है आदेशका नहीं । सज्जनो ! आपके पास प्रतिनिधित्व (Deligation) सूचक चिन्ह फूल हैं । मेरे पास रजोहरण धर्मध्वज है । आपके पास कागजका कटा हुआ टिकिट है मेरेपास कपड़का बना हुआ वेष है । आपको जैन कॅन्फरेंस–जैन महासभाके इस अधिवेशनके तीन दिनोंका प्रतिनिधित्व मिला है मुझे जैनशासनका हमेशाके लिये प्रतिनिधित्व मिला है ।

आपको आमंत्रण पत्रिका द्वारा अपने अपने ग्राम–नगर संस्थाकी तरफसे अधिकार प्राप्त हुआ है । मुझे–प्रातः स्मरणीय मरहूम जैनाचार्य श्रीमद्विजयानंदसूरि श्रीआत्मारामजी महाराजके हस्तसे समस्त श्रीजैनसंघकी तरफसे अधिकार प्राप्त है । प्राप्त अधिकारको यथाशक्ति अमलमें लाना अपना कर्तव्य समझ कर ही इस समय मैं उद्यत हुआ हूँ ।

कॉन्फरेंसकी आवश्यकता ।

सज्जनो ! ऐसी सभाओंकी कितनी आवश्यकता है सो आप सब जानते हैं । इस सभाके स्वागत कमेटीके प्रमुखने और सभाध्यक्षने अपने अपने वक्तव्यमें भली प्रकार जाहिर कर दिया

है। अन्यान्यस्थानोंमें ऐसी अनेक सभाएँ हो रही हैं। यदि इस सप्ताहको सभासप्ताहका नाम दिया जाय तो योग्य ही है। सभाओंका उद्देश उन्नतिके सिवा और कोई नहीं है। यह बात सत्य ही माननी पड़ती है। मगर कभी कभी उससे विपरीत कार्य होता सुनाई या दिखाई देता है। जिससे कई लोगोंको अरुचिसी हो जाती है। मेरी समझमें यह उनकी बड़ी भारी भूल है। इस तरह करनेसे पक्ष पड़ जाता है। एक दूसरे पर परस्परमें इल्जाम या दोष लगा देते हैं, उसका परिणाम बुरा होता है। संपके स्थानमें कुसंप प्रीतिकी जगह अप्रीति, सुधारकी जगह बिगाड़, हो जाता है। इस लिए प्रिय महाशयो ! व्यक्तिगत कार्यको आगे खड़ाकर समष्टिका नाश करना बुद्धिमत्ता नहीं है। बड़ी मुश्किलसे, अनेक कष्ट सहनकर धन व्ययकर तीन दिनके लिए जो सम्मेलन होता है, उसमें तकरारी बातको स्थान न देकर जिस मुद्देकी बातके लिए, जिस उद्देशसे एकत्रित होते हैं उसका ही निराकरण होना उचित समझा जाता है।

शान्तिकी योजना।

बेशक यदि अशान्तिका कोई प्रश्न हो जिससे समाजपर बुरा असर होनेकी संभावना हो, कुसंपका बीज बोया जाता हो उसके लिये न्यायको मान देकर सभ्यतासे गंभीरताके साथ परस्पर विचारोंका मीलानकर शान्त चित्तसे समाजके हितकी खातिर, थोड़े ही समयमें यदि निराकरण होता दिखलाई देवे तो कसरत रायसे कर देना योग्य है। परन्तु एक तुच्छसी बातकी खातिर अपना ही कक्का

खरा किये जाना और समाजको धक्का दिये जाना आधी आधी रात सारी सारी रात एक ही बातको उठा लिए जाना योग्य नहीं है।

महरबानो! यदि आपको अपने समाजका, जैन समाजका अपने स्वामी भाइयोंका, अपनी धर्मात्माबहनोंका, अपनी सन्तानका अरे! अपने पिता महावीरके शासनका कुछ भी दर्द हो, आप की नस और रगरगमें धर्माभिमान या मनुष्यत्वका अंश भी हो तो अपने, अपनी समाजके हितके लिए आपको अशान्ति, क्लेश और कुसंपको समाज़से धक्का देकर शान्ति, प्रेम और संपका वास करानेके लिए जुदा जुदा इलाकोंके मुख्य मुख्य समाजके प्रतिष्ठित नेताओंकी एक खास सभा कायम करनी चाहिए। जरूरतके वक्त वह सभा जहाँ योग्य समझा जाय एकत्र हो कर जो खुलासा अपने हस्ताक्षरोंसे जाहिर करे सर्व समाजमें मान्य हो जावे। मेरी समझमें यह बात क्या गृहस्थ और क्या साधु सबको पसंद आयगी।

महाशयो! पीछे भी ऐसी प्रणाली चलती थी ऐसा जैन इतिहाससे मालूम होता है। श्रीधर्मघोष सूरि महाराजने जैनधर्मसे विरुद्ध चलनेवाले श्रावकोंको शिक्षा (दंड) देने के लिए अठारह श्रावक कायम किये थे। जिनमें श्रीमालकुलतिलक यशोधवल नामक खजानचीका पुत्र जगदेव मुख्य था। जिस जगदेवको श्री हेमचंद्रसूरिने बाल कविका विरुद किया था।

विद्याकी खामी दूर करो।

प्यारे जैन भाइयो! आपने समझ लिया होगा कि, पिछले हमारे जैन भाई सुशिक्षित, धनाढ्य, अधिकारी और प्रतिष्ठित होते थे।

जिससे वे धार्मिक और सामाजिक यावत् राज्यकार्यमें भी प्रवीण होते थे। आजकल अपनी कैसी दशा हो रही है सो आपसे छुपी हुई नहीं है। जिसका मुख्य कारण, जहाँतक मेरा खयाल पहुँचता है, विद्याका अभाव नहीं तो भी कमी तो अवश्य है।

मुझे कहना पड़ता है कि हिन्दुस्तानमें प्रायः क्या हिन्दु, क्या मुसलमान, क्या ईसाई, क्या पारसी, क्या आर्य समाजी, क्या सिख, सबके कॉलेज सुनाई देते हैं, परन्तु जैनोंका एक भी कॉलेज—महा-विद्यालय नहीं है।

जिस समाजमें सबसे अधिक विद्या-ज्ञानका प्रेम कहा जाता है; माना जाता है उसमें कोटीश्वरोंके विद्यमान होते हुए भी विद्याका क्षेत्र संकुचित ही बना रहे, यह थोड़े दुःखकी बात नहीं है! कमसे कम हिन्दुस्तानमें तीन जैन कॉलेज होनेकी आवश्यकता है। एक गुजरातमें ऐसे स्थान पर हो कि, जिसका लाभ गुजरात, काठियावाड़ कच्छ और दक्षिण सब ले सकें। एक मारवाड़में ऐसे स्थान पर हो कि जिसका लाभ मारवाड़, मेवाड़, मालवा सबको मिले। एक ऐसे स्थान पर हो कि जिसका लाभ पंजाब, बंगाल, संयुक्त प्रांत आदि सबको मिले।

कॉलेजकी आशा।

महानुभावो! बड़े हर्षकी बात है कि पंजाबमें जैन कॉलेजकी संभावना महोदय सभापतिजीने आपके आगे प्रकट कर ही दी है, तो भी प्रसंग होनेसे पंजाबी भाइयोंको याद दिलानेके लिए स्वर्गवासी गुरु महाराजका उच्च आशय मैं सुना देना चाहता हूँ।

एक दिनका जिक्र है। लुधियानेमें कुछ आसर्यमाजी भाइयोंने श्रीमहाराज साहबसे अर्ज की कि, आप देव मंदिर तो बनवाये जाते हैं, मगर देवमंदिरके रक्षकोंके उत्पादक देववाणी-सरस्वतीके मंदिरकी भी जरूरत है।

श्रीमुखने, आहा! क्या ही उस वक्त समयसूचकताका जवाब दिया! सुनकर सब खुश हो गये। आपने फर्माया था,—" इस वक्त इनको देवभक्त बनानेकी जरूरत है, इस लिए देवमंदिर बनते हैं। जब यह कार्य पूर्ण हो जायगा खुद ब खुद देववाणीका खयाल हो जायगा। "

बेशक महापुरुषोंकी वाणीमें भी देववाणीकाही असर होता है। आपका कहना ज्योंका त्यों ही मेरे अनुभवमें आ रहा है। धीरे धीरे पाठशाला हाइ स्कूलके रूपमें प्रविष्ट हो कॉलेजके रूपमें आनेकी संभावना हो रही है।

महाशयो! मेरे अंदर भी इस बातका बीज उस वक्तका बोया हुआ धीरे धीरे अंकुरके रूपमें प्रकट हुआ आपको नजर आता होगा। परंतु वह सद्गुरूका बोया हुआ बीज सफल तब ही माना जायगा, जब सरस्वती मंदिर बन कर उसमेंसे देव—देववाणीके रक्षक सरस्वतीपुत्र उत्पन्न होंगे। मुझे कहनेका अधिकार नहीं, मगर रहा भी नहीं जाता, जितना आप लोगोंका लक्ष्मीके प्रति प्रेम है यदि थोड़ासा भी सरस्वतीके प्रति होवे तो आपका उभय लोकमें भला होवे। परंतु अफसोस! आपने एकको जितना मान दिया है उतना ही बल्के उससे भी अधिक दूसरीका अपमान कर रक्खा है। लोक—

में भी नूतन प्रेमपाशबद्ध होकर पुरातन स्त्रीका अपमान करते हैं। परंतु राज्यभयसे, लोकापवाद भयसे या ज्ञातिबंधनके भयसे उसका निर्वाह तो उसे अवश्य ही करना पड़ता है। अफसोस सरस्वतीका इतना भी निर्वाह नजर नहीं आता। मैं सत्य कहता हूँ! आप लोगोंकी जो बिगड़ी हुई दशा दिखलाई या सुनाई देती है, उसे आपके किये अपमानसे कुपित हुई सती सरस्वतीके शापका ही प्रभाव समझना चाहिए। इस लिए उसको मनाओगे तब ही आपका सौभाग्य बढ़ेगा।

गुजराती भाइयोंकी आशा छोड़ दो।

महानुभावो! मुझे सहर्ष कहना पड़ता है कि आप सब क्या गुजराती, क्या मारवाड़ी, क्या पूर्वी क्या पंजाबी इसी मारवाड़ भूमिके पुत्र हैं। सौभाग्यवश आप सब क्या ओसवाल, क्या श्रीमाल, क्या पोरवाल अपनी मातृ भूमिमें उपस्थित हुए हैं। आप सबको मिलकर मातृभूमिका उद्धार करना होगा। जब आपकी मातृभूमिका उद्धार होगा याद रखना आपका, आपके धर्मका, प्रभु वीर भगवानके शासनका तभी उद्धार होगा। जिनमें गुजराती भाई तो इस भूमिसे बिल्कुल निर्मोही हो चुके हैं। इन्होंने अपना खानपान, पहेरवेश, बोलचाल, रीतिरिवाज, रंगढंग सब ही प्रायः बदल लिया है। इससे इनकी आशापर रहना तो मुझे ठीक नहीं मालूम देता।

यहाँ तक जिन्होंने जवाब दे दिया कि, कभी हमारे पर मारवाड़ी भाई हक न जमा लेवें, अपना गोत तक भुला दिया। आप यूँ न समझें कि, महाराज मारवाड़में हैं इस लिए मारवाड़ियोंको अच्छा

लगानेके लिए गुजराती भाइयोंकी तरफ कड़ी नजरसे देखा जाता है ! नहीं, नहीं, मेरा जन्म बड़ोदा—गुजरातमें है और मेरी दीक्षा आपके सामने बैठे हुए नवमी कॉन्फरन्सके माजी प्रमुख सेठ मोतीलाल मूलजीके शहर राधनपुरमें हुई है। मेरी दोनों ही अवस्थाकी मातृभूमि गुजरात है। मुझे गुजरातकी भूमिका मान है। परंतु मैं जिस आशयसे कह रहा हूँ उस पर लक्ष्य दिया जायगा तो मेरा कहना आपको अवश्य न्याय संपन्न दिखलाई देगा। जितने पुराने बड़े बड़े भव्य राणकपुरजी सरीखे मंदिर मरुभूमिमें दिखाई देते हैं, गुजरातमें नहीं दिखाई देंगे। गुजरातमें जाकर इन अपूर्व मंदिरोंके लिए गुजराती भाइयोंने कितना द्रव्य भेजा ? हाँ गुजरातमें प्रकट होते नये नये तीर्थोंके लिए मारवाड़ी भाइयोंसे द्रव्य लिया तो जरूर होगा। इस हालतमें बतलाइए गुजरातकी आशा पर बैठ रहना ठीक है ? कदापि नहीं। रहा पूर्व और पंजाब। सो उधर तो इतनी वस्ती ही नहीं। वे अपना काम आप ही निभा लेवें तो गनीमत है। बस तेलीके बैलकी तरह इधर उधर घूमघाम कर फिर मारवाड़ी भाइयों पर ही दृष्टि आ ठहरती है। इसमें शक नहीं कि मारवाड़ी व्यापारी हैं, धनाढ्य हैं, श्रद्धालु हैं, परंतु विद्याके अभावसे विवेकका वियोग हो जानेसे हठीले ज्यादा नजर आते हैं। जिस बातको पकड़ लेते हैं छोड़ते नहीं। यद्यपि यह बड़ा भारी अवगुण है, परन्तु मेरे लिए, नहीं, नहीं आप सबके लिए, वीर प्रभुके शासनके लिए वह गुणरूप होता नजर आता है। आप समझ लेवें, इस वक्त जिस कामके लिए मारवाड़ी भाइयोंने हाथ लंबाया है, हठ पकड़ लिया तो बस जयजयकार समाजका उद्धार हुआ ही पड़ा है। इसमें शक नहीं।

महाजन डाकू मत बनो।

आप सुनकर खुश होंगे मारवाड़ी भाइयोंने श्रीत्मानंद जैनविद्यालय गोड़वाड़ स्थापन करनेका निश्चय कर लिया है। जिसके लिये चंदा फंड जारी है। करीब दो ढाई लाखकी रकम लिखि गई है। मैं उम्मीद करता हूँ इसी तरह इनका उत्साह जारी रहा तो यह रकम दश लाख तक पहुँच सकती है और जैन कॉलेजका उद्देश बहुत ही जल्दी पूरा हो सकता है। देखना चाहिए अब मारवाड़ी भाई मुझे कितना सच्चा बनाते हैं। हुंडी तो लिखी गई है अब सिकरनेकी देरी है। यदि सिकर गई तो वाह! वाह! वरना समझा जावेगा बाहिरसे हमें मीणे-डाकुओंने लूटा और अंदरसे महाजन-डाकूओंने लूटा।

महाशयो! समय अधिक होता जाता है। मेरा कथन कहीं कहीं आपको चुभता भी होगा; परंतु आप जानते हैं, मातापिताका दिल जब दुखता है तब कटु औषध ही पुत्रको पिलाते हैं। मेरा दिल अंदरसे दुखता है तभी आपकी, समाजकी दुर्दशाको सुधारके लिए इतना कहता हूँ। यदि आप इसको हितबुद्धिसे, गुरुबुद्धिसे निःस्वार्थ हमारे भलेके लिए ही कहते हैं, इस आशयसे स्वीकारेंगे तो आपका, आपके बालबच्चोंका, आपके समाजका हित होगा, और यदि उल्टा समझेंगे तो आपका ही अहित है। परंतु मुझे तो उपकार दृष्टिसे, हितबुद्धिसे, अनुगृह बुद्धिसे, कहनेमें एकांत हित ही हित है।

वीतरागकी दुकानके सच्चे मुनीम।

महानुभावो! तीर्थंकर भगवान वीतराग देवकी दुकानके सच्चे

मुनीम—जो साधु मुनिराज कहाते हैं—यदि किसी किसमकी बेईमानी न करें तो हानिका तो काम ही नहीं बल्के, वृद्धि पाते पाते परमात्मा स्वरूप खुद परमात्मा बन सकते हैं। दुकान मौजूद है, सौदा मौजद है। मुनीम होशियार होना चाहिए। यदि मुनीम सचाईसे काम करता रहेगा, दिन दिन बढ़ती ही होगी। यदि कोई बेईमानी की तो वह काँदेकी वासकी तरह जाहिर हुए विना न रहेगी। आखिरमें उस बेईमान मुनीमका दिवाला निकल जायगा। मुँह काला हो जायगा। इस लिए वीतरागकी दुकानमें वीतराग बनने बनानेका ही सौदा होना चाहिए। जहाँ वीतराग बनने बनानेके सौदेके सिवाय—रागद्वेषकी परिणतिकी कमी—हानिके सिवाय—अन्य कोई सौदा रागद्वेप, ईर्षा, ममता, माया अहंकार आदिकी वृद्धिका नजर आता है वह वीतरागकी दुकान नहीं, वह वीतरागकी दुकानका मुनीम नहीं, वह ज्ञान नहीं, वह ज्ञानी नहीं, वह समझ नहीं, वह समझवाला नहीं। भगवान हरिभद्रसूरि महाराज फरमाते हैं।

तज्ज्ञानमेव न भवति यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणाः।
तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिनकर किरनाग्रतः स्थातुम्॥ १॥

भावार्थ इसका यह है कि, वह ज्ञान नहीं है जिस ज्ञानके होने पर रागादिका समूह दिखाई दे। अंधेरेमे सूर्यकिरणोंके आगे खड़े रहनेकी शक्ति कहाँ हैं?

कर्तव्यपरायण होना चाहिए।

महाशयो! ज्ञानका फल वैराग्य होना चाहिए। इस लिए ज्ञान, पांडित्य, समझ, इल्म तभी सफल माना जाता है, जब उसके स्वामी सदाचारी

चारित्रपात्र, और गुणग्राही हों । तभी वे प्रतिष्ठा पात्र उच्चपद सद्गतिके अधिकारी हो सकते हैं । अन्यथा वे जगतमें ज्ञानी, पंडित, इल्मदार भले कहावें, परन्तु इतने मात्रसे उनका परलोक कभी न सुधरेगा । चतुर्दश पूर्वधारी भगवान भद्रबाहू स्वामी फरमाते हैं ।

जहा खरो चंदन भारवाही भारस्स भागी न तु चंदनस्स ।
एवं खु नाणी चरणेन हीणो, नाणस्स भागी न हु सोमाईए ॥१॥

इसका मतलब यह है कि जैसा चंदनका बोझा उठानेवाला गधा-भारका ही भागी है, चंदनकी खुशबूका नहीं ऐसे ही ज्ञानी—पंडित ज्ञान—पांडित्यकाही भागी है, परंतु वह निर्विवेकी, सदाचार चारित्रसे हीन-रहित होनेसे सद्गतिका भागी नहीं होता । जो पढ़े लिखे हैं पर चारित्र सदाचारमें तत्पर नहीं, कर्तव्य परायण नहीं वे पढ़े लिखे मूर्ख (पंडित मूर्ख) हैं । वे (Gramophone) ग्रामोफोनकी चूड़ीके समान हैं । जैसे गायनका असर चूडीपर नहीं होता पर जब वह गाती है तब दूसरोंपर असर जरूर होता है । ठीक इसी तरह वे चेतन परमात्माके स्वरूपका दावा करनेवाले हैं । बेशक आत्मामें अनंत शक्ति है । यही आत्मा परमात्मा होता है पर वह शक्ति प्रगट होगी तब । जब तक ऐसा न होगा तब तक वह ज्ञानी पंडित, इल्मदार मुनीम, कहानेवाले भी अन्य प्राणियोंके समान संसारमें ही इधर उधर भटका करेंगे ।

आत्मा ही परमात्मा है ।

हे वीर पुत्रो ! यदि न्यायसे देखा जाय तो कर्मयुक्त जीव संसारी कहा जाता है । कर्ममुक्त शिवसिद्ध परमात्मा कहा जाता है । बस

सिद्ध हुए हम ही अनंत शक्तिवाले हैं, हम ही परमात्म स्वरूप हैं। केवल कर्मके कारण ही हमारी तुम्हारी अनंत शक्ति ढकी हुई है। कैसी दुर्दशा है? दिल भर आता है। बहुत उपदेश देने पर भी कुछ असर न होनेका कारण मेरे खयालमें एक यही है। निर्विवेक! विवेकरूप शक्तिका विकास होनेके बदले संकोच हो रहा है, जिससे कोई भी सत्योपदेश अवश्य करणीय रूपमें ठहरता ही नहीं है और इसीसे जैन समाजकी दुर्दशा हो रही है। अपनी वर्तमान दशा और अपने पूर्वजोंकी दशाका मीलान करनेपर मालूम होगा कि अपने पूर्वज क्या थे और हम क्या हो गये हैं? और यदि अब भी न चेते तो क्या हो जाँयगे? परंतु यह दशा विद्यारूपी दर्पणके बिना नजर न आयगी। बिना दर्पणके मस्तकका दाग नहीं दिखता और बिना देखे मिटाओगे ही क्या? इसी लिए अब तो सबसे पहिले विद्यारूपी दर्पणको तैयार करनेका उद्यम करना जरूरी है।

संप और उदारताकी आवश्यकता।

प्यारे जैन बंधुओ! उक्त दर्पणके लिए आपको संप और उदारताकी जरूरत है। आप खयाल करें ६ और ३ ये दोनों अंक एक सरीखे हैं। परन्तु जब ये दोनों एक दूसरेके सामने मुख करते हैं तब ६३ हो जाते हैं और जब विमुख हो जाते हैं तब ३६ ही रह जाते हैं अर्थात् उनकी कीमत घट जाती है।

इसी तरह एक १ जब अकेला होता है तब कोरा एक ही है, पर जब एक १ और आ मिलता है तब ११ हो जाते हैं। इससे एकताकी बड़ी जरूरत है। खेलमें बादशाह, रानी सब साथ होते हैं पर इक्केके आगे सब झक मारते हैं।

इससे भी समझा जाता है कि एका बड़ी चीज़ है। आप सब इक्के हो कर आपसमें मिलजुल जो कुछ करना चाहोगे बड़ी सुगमताके साथ कर सकोगे। संप तो क्या अमीर क्या गरीब सबका चाहिए। परंतु उदारता तो केवल अमीरोंकी ही होनी चाहिए।

दाता और कृपण ये दो नाम धनाढ्यके लिए ही बख़्शिश हैं। गरीबोंका इन पर कोई दावा नहीं। दुनियामें गरीबको न कोई दाता कहता है न कंजूस ही। धनवान अमीर होकर दान करे तो दाता कहाता है। यदि जमा ही करता रहे दान करे ही नहीं तो वह कंजूस कहाता है। मतलब; ये दोनों पदवियाँ अमीरोंके लिए रजिस्टर्ड हो चुकी हैं। अब दोनोंमेंसे आपको जो रुचे सो स्वीकार करें। आपका—अमीर वर्गका अख़्तियार है। परंतु यह याद रखना कि, दाताका नाम प्रातःकालमें लोग खुशीसे लेते हैं और कंजूसका नाम लेना तो दूर रहा कभी भूलसे लिया जाय या सुनाई दे तो उसके नाम पर सब थूँकते हैं और कहते हैं हाय हाय किस पापी कंजूसका नाम लिया। बस अमीर बने हो तो अपने नाम पर थुंकाओ मत। उदार बनो। लक्ष्मीको भेजकर सरस्वतीको आमंत्रण दो। सरस्वतीके बिना घरमें अज्ञानांधकार है। अंधकारमें रहना लक्ष्मी पसंद नहीं करती। वह सदा शाप दिया करती है, कि हाय मैं किस अँधेरे कैदखानेमें आई! वह मौका ही देखा करती है कि, मैं किधरसे भागूँ? याद रखना ऐसी हालतमें यदि वह रूठकर भाग गई तो फिर इस भवमें तो क्या कई जन्मोंमें भी तुम्हारे पास नहीं फटकेगी। इस लिए यदि लक्ष्मीको प्रसन्न रखना चाहते हो तो ज्ञानरूपी सूर्यकी

किरणोंको घरमें आने दो। ज्ञान प्रकाशके आते ही लक्ष्मी प्रसन्न हो आपका घर कभी न छोड़ेगी।

पाठशाला–विद्यालय–स्कूल–कॉलेजसे फायदा।

सज्जनो! थोड़ी समझवाले महाशयोंका यह कहना होता है कि जिनको पढ़ना पढ़ाना होगा आप ही अपना उद्यम कर लेंगे। समाजके पैसोंसे पाठशाला–विद्यालय–स्कूल–कॉलेज बनवानेकी क्या जरूरत है? अँग्रेजी पढ़ जायँगे तो उल्टे श्रद्धाहीन नास्तिक हो जायँगे।

बेशक मुझे कहना होगा, कि किसी अंशमें उनका कहना या मानना ठीक है; परंतु उसमें भूल किसकी है? इस बातका खयाल उन महाशयोंको नहीं आया है। यदि अंग्रेजी विद्यामें ऐसी शक्ति है तो मेरे सामने बैठे हुए श्रीश्वेतांबर जैन कॉन्फरन्सके पिता गुलाबचंदजी ढड्ढा एम. ए. और श्रीमहावीर जैन विद्यालयके ऑनरेरी सेक्रेटरी मोतीचंद कापड़िया सॉलिसिटरको उसका असर क्यों न हुआ?

आपको मानना ही होगा कि, इनको बचपनमें धर्मका शिक्षण मिला है। बस यही उद्देश पाठशाला आदि जारी करनेका है। लोग अपने मतलबके लिए सांसारिक शिक्षण तो देते और लेते हैं; परंतु धार्मिक शिक्षणका वहाँ कोई प्रबंध नहीं। ऐसी हालतमें अंग्रेजी पढ़े लिखोंमें यदि श्रद्धाका ह्रास या अभाव हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं, इसी वास्ते उनकी श्रद्धा बनी रहे और वे अपनी समाजकी उन्नतिको चाहें इसके लिए ही धार्मिक शिक्षणके प्रबंधकी अत्यावश्यकता है।

राज्यभाषा न सीखे और अकेला ही धार्मिक शिक्षण ले यह तो होना ही असाध्य है। एक साधु भी यदि राज्य भाषा जानता

हो तो बहुत काम कर सकता है। तो गृहस्थ जिसे व्यापारादिसे अपना निर्वाह करना है उसका तो कहना ही क्या ? इस लिए धार्मिक शिक्षण वे खुशीसे लें। और साथ साथ व्यावहारिक शिक्षण भी उन्हें देना जरूरी है। जिसके लालचसे वे धार्मिक अभ्यास करें। आप सबको इस बातका पूरा अनुभव है।

जिस रोज उपाश्रयमें पतासे या श्रीफलकी प्रभावना होती है कहीं उपाश्रयमें जगह भी नहीं मिलती। आपके सामने ये श्रीमहावीर जैन विद्यालयके विद्यार्थी बैठे हैं। विद्यालयमें दाखिल हुए उस समय जैन किस चिड़ियाका नाम है इतना भी इनको ज्ञात न होगा। परंतु इस वक्त धार्मिक अभ्याससे और प्रखर पंडित व्रजलालजीके सहवाससे इनमें एक नया ही जीवन आया दिखाई देता है कि, जिससे यह जैन समाजकी जाहोजलाली—उन्नति देखनेको उत्सुक हो रहे हैं। यह सब प्रताप अपने स्वतंत्र प्रबंधका है। इस लिए महाशयो ! यदि अपने समाजकी उन्नति चाहते हो तो अपनी स्वतंत्र पाठशाला आदि अवश्य होने चाहिए, जिसमें अपनी इच्छानुसार धार्मिक शिक्षाका प्रबंध हो सके। महानुभावो ! समय अधिक हो गया। मैं बोलते थक गया। आप सुनते नहीं थके होंगे तो बैठे तो थक ही गये होंगे। आखिरमें गवैया प्राणसुखका गाया हुआ पद आपको याद दिलाता हूँ। मेरे बोलनेके प्रवाहमें कहीं त्रुटि रह गई हो, कहीं असंबद्ध या अनुचित बोला गया हो तो उसकी बाबत मिच्छामि दुक्कडं देता हुआ मैं अपने वक्तव्यको यहीं समाप्त करता हूँ।

आत्मानंद जयंती।

[यह व्याख्यान आपने सं १९७१ के ज्येष्ठ सुदी ८ को आत्मानंदजयन्तीके समय लालबागमें दिया था ।]

महाशयो ! यद्यपि आजका दिन जयन्तीका है तथापि मैं इसको खुशीका दिन नहीं समझता; अफसोसका दिन समझता हूँ। मनुष्यको दुःख उसी समय होता है जब किसी ऐसे मनुष्यका वियोग होता है जिसके कारण उसका लाभ होता है, अथवा यूँ कहिए कि उसी मृत मनुष्यके लिए लोग शोक करते हैं जिसके कारण उनका कोई मतलब बिगड़ता है; उनका कोई स्वार्थ नष्ट हो जाता है। इस स्वार्थी दुनियामें कोई तबतक दुःख नहीं करता जबतक उसके स्वार्थमें व्याघात नहीं पहुँचता।

सज्जनो ! आप कहेंगे कि, साधुओंको शोक करनेकी क्या आवश्यकता है ? मैं कहूँगा शोक शोकमें भी भेद होता है। एक प्रशस्त होता है और दूसरा अप्रशस्त। अपने निजी नुकसानके कारण जो शोक किया जाता है वह स्वार्थपूर्ण, और मोहगर्भित अप्रशस्त शोक है। मगर जब एक मनुष्य यह विचार कर शोक करता है कि एक उपकारी महात्मा उठ गये हैं उनकी जगहको अब कौन पूरेगा ? तब उसका शोक निःस्वार्थ और भक्ति पूर्ण प्रशस्त शोक कहलाता है। मैं जिस शोककी बात कहता हूँ, वह अप्रशस्त नहीं प्रशस्त है। अप्रशस्त शोक कर्म बंधनका कारण होता है और प्रशस्त शोक कर्म निर्जराका।

शासन नायक चरम तीर्थंकर भगवान श्रीमहावीर स्वामीके निर्वाणके समय गौतम स्वामीने जो विषाद किया था, उसका कारण उनका कोई निजी स्वार्थ न था। वह स्वार्थरहित और भक्तिगर्भित था। जिसका फल उत्तरोत्तर सारे कर्मोंको क्षय करनेवाला और मोक्षदायी हुआ। शास्त्रकारोंका कथन है कि,—

अहंकारोपि बोधाय, रागोपि गुरुभक्तये।
विषादः केवलायाभूत्, चित्रं श्रीगौतमप्रभो॥

सज्जनो! हमें भी यहाँ इसी प्रकारका शोक प्रदर्शित करना है। जिन महापुरुषके गुणका अनुकरण करके शोक प्रदर्शित किया जाय, उन महापुरुषके गुणोंका जरासा भी अनुकरण न किया जाय तो मैं कहूँगा कि, फोनोग्राफमें और हममें कोई भी अंतर नहीं है। हाँ फोनोग्राफ जड़ है और हम चेतन हैं; अन्यथा फोनोग्राफमें भरी हुई कोई भी चीज जैसे प्रगट हो जाती है वैसे ही हमारे अंदर भरी हुई चीज भी मुँहके द्वारा—भाषणके रूपमें प्रकट हो जाती हैं; मगर उसका अनुकरण और उसपर अमल न करनेसे फोनोग्राफसे जुदा हो, उससे उच्च होनेका अभिमान नहीं कर सकते हैं। इस लिए हमें चाहिए कि, हम फोनोग्राफ न बन कर्त्तव्य कर, उससे भिन्न हो, अपनी चैतन्यशक्तिको इसी प्रकार विकसित करें जिस प्रकार कि ऊपर गौतम स्वामीके उदाहरणमें वर्णन की गई है।

सज्जनो! हमें अब यह विचारना है कि, हम जिन पूज्य प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय श्रीमद्विजयानंद सूरि महात्माकी जयन्ती मनानेके लिए आज एकत्रित हुए हैं उनका किस तरह अनुकरण करनेसे

हमारा शोक मनाना सफल हो सकता है । सच कहा जाय तो जयन्तीका उद्देश यही है, केवल बाहरी धूम धाम करनेका नहीं । धूम धाम तो केवल लोगोंके दिलोंको आकर्षित करनेके लिए की जाती है । सभामेंसे एक भाईने अफसोस जाहिर किया है । कुछ अंशोंमें उसका ऐसा करना ठीक भी है, तो भी बम्बईकी जैनोंकी बस्तीके प्रमाणमें और लालबाग स्थलके प्रमाणमें जितने लोग जमा हुए हैं उन्हें देखकर मुझे तो क्या हरेकको प्रसन्नता हुए बिना न रहेगी । मेरा अनुमान है कि, पर्युषणों के या किसी खास बड़े पर्वके दिनके सिवा कभी इतने मनुष्य शायद ही जमा होते हों । हाँ लड्डू और दूधपाक पूरीवाले दिनकी बात जुदा है । (हास्य)

महानुभावो ! इस शुभ कामके लिए आपने अपना अमूल्य समय खर्च किया है यह वास्तवमें प्रशंसनीय है । मगर यदि सच कहा जाय तो तुमने जो कुछ किया है या करोगे वह तुम्हारे हितहीके लिए है । इसमें तुमने किसी पर अहसान नहीं किया है । अगर इसी तरह थोड़ेमेंसे भी थोड़ा समय निरंतर निकाल कर धर्ममें बिताओगे तो तुम्हारे आत्माका उद्धार होगा । अन्यथा अगर फुर्सत फुर्सत ही पुकारते रहोगे तो जब तक दम है तब तक फुर्सत न मिलेगी और जब दम निकल जायगा तब तुम्हें कोई यह न पूछेगा कि, तुम्हें फुर्सत है ? (हास्य)

प्रसंगवश मुझे कहने दीजिए कि, माँडवी स्कूल, विद्यार्थी मंडलके मैनेजरकी महनतसे विद्यार्थी मंडलने जो काम किया है उसे आप खुद देख चुके हैं । वह स्तुतिके पात्र है । साथ ही अफसो-

सके साथ कहना पड़ता है कि, हमें जिस सभ्यताको धारण करना चाहिए उस सभ्यताकी हमें जरासी भी खबर नहीं है। पाँच दस हजार आदमी जमा हों तो भी शान्तिसे सभी सुन सकें, हमें ऐसी शान्ति रखनी चाहिए उसकी जगह गड़बड़ करके न स्वयं सुनना न दूसरे को सुनने देना; क्या यह हमें शोभा देता है? मैं जानता हूँ कि दुनियाका ढंग जुदा है? '**सत्य मिरची झूठ गुड**' झूठी बातें गुडके समान मीठी लगती हैं; परन्तु सच्ची बातें मिरचीके समान तीखी लगती हैं; । सिरसे पैर तक झाल फूट उठती है।

हम जिन महात्माकी जयन्ती मनानेके लिए यहाँ एकत्रित हुए हैं उन महात्मामें इससे उल्टा गुण था। वे '**झूठ मिरची सत्य गुड**' इस सिद्धान्तको माननेवाले थे। इसी लिए आज जैसे अमुक, अमुक सेठके गुरु और अमुक, अमुक सेठके गुरु कहलाते हैं वैसे ही वे अमुक सेठके गुरु नहीं कहलाते थे। कारण वे सेठियोंके कथनानुसार चलना पसंद नहीं करते थे; वे जानते थे कि उनकी गुरुता कैसे रह सकती है। वे सेठ ही क्या हरेक श्रावकको धर्मोपदेश द्वारा अपने हुक्ममें चला सकते थे। वे भली प्रकार समझते थे कि, साधु और श्रावकोंके आपसमें धर्मके सिवा दूसरा कोई संबंध नहीं है, इसी लिए उन्हें किसीकी परवाह रखनेकी आवश्यकता न थी। आज तो ऐसी दशा हो रही है कि सेठका कहना गुरुको मानना ही चाहिए; सेठ चाहे गुरुका कहना माने या न माने। इसका मतलब सेठ गुरु होता है या गुरु गुरु होता है सो तुम खुद सोच लेना। (हास्य)

सज्जनो! स्वर्गीय महात्मामें किस तरहकी बेपरवाही थी और

कितना साहस था इस बातका मैं तुम्हें दिग्दर्शन कराऊँगा। पं० हंसराजजीने जिस अज्ञान तिमिर भास्करकी बात कही है, वह जब छपवानेके लिए प्रेसमें दिया जानेवाला था तब कई लोगोंने कहाः—" महाराज ! आप साधु हैं। आप कानून नहीं जानते। इसके छपनेसे ' मानहानि ' का केस दायर होनेकी संभावना है। "

महाराजने फर्मायाः—" भाई हम साधु हैं। हम धन नहीं रखते इसी लिए तुम्हें पुस्तक छपानेके लिए सूचना देनी पड़ती है। तुम्हारे हितके लिए तुम धन खर्चो या न खर्चो यह तुम्हारी इच्छा है; अन्यथा इसमें मानहानि जैसी कोई बात नहीं है और यदि होगा तो उससे तुम्हें कोई हानि नहीं होगी। पुस्तक बनानेवाला मैं मौजूद हूँ। जिसको मान-हानिका केस करना होगा वह मुझपर करेगा। तुम निश्चिन्त रहो; बेफिक्र रहो। अंग्रेज सरकारका राज्य है। जब ऐसे न्यायी राज्यमें भी हम अपने धर्मपर आक्रमण करनेवालोंको, शास्त्रानुसार जवाब दे, अपने धर्मकी रक्षा करनेके न्याय्य हकका उपयोग न किया जायगा तो कब किया जायगा ? "

आहा ! कितनी धर्मकी लगन ! कैसी हिम्मत ! बेशक दुनियामें साहसी मनुष्य कभी अपने निश्चित विचारोंको दूसरोंके कहनेसे. या भय दिखानेसे नहीं छोड़ता। वह तो उन्हें पूरा ही करता है। मैं तुम्हें गये बरस स्वर्गीय पूज्य महात्माका चरित्र सुना चुका हूँ उससे विशेष मैं कुछ न कहूँगा; मगर मैं इस बार यह बात विपद रूपसे बताऊँगा कि वे कैसे साहसी, ज्ञानवान, गंभीर, निरभिमानी, निर्भय और स्पष्टवक्ता थे ?

महाशयो ! स्वर्गीय महात्मा कैसे ज्ञानवान थे, इस विषयमें कई वक्ता कह चुके हैं। उनके कथनसे तुम्हें उनके ज्ञानका अंदाजा हो गया है। मैं जो कुछ कहता हूँ उस पर ध्यान दोगे तो उनके ज्ञानके विषयमें पूर्णरूपसे जान सकोगे।

श्री १०८ श्री वुद्धिविजयजी (बूटेरायजी) महाराजके पाँच शिष्य थे । श्री मुक्तिविजयजी (मूलचंदजी) महाराज, श्री वृद्धि-विजयजी (वृद्धिचंदजी) महाराज श्रीनीतिविजयजी महाराज, श्रीखां-तिविजयजी महाराज और पाँचवें स्वर्गीय महाराज कि, जिनकी जयन्ती मनानेका आज हम लाभ उठा रहे हैं। पाँचवें महाराजकी अपेक्षा श्रीमूलचंदजी महाराज प्रायः गुजरातमें विशेष प्रसिद्ध हैं और श्रीवृद्धिचंद्रजी महाराजको काठियावाड़में लोग विशेष जानते हैं। श्रीनीतिविजयजी महाराज और श्रीखांतिविजयजी महाराजको भी काठियावाड़ी ही प्रायः जानते हैं। खांतिविजयजी महाराज काठिया-वाड़में कई स्थानोंमें दादा खांतिविजयजी तपस्वीके नामसे प्रसिद्ध हैं। मगर पाँचवें महात्मा तो गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, मारवाड़, मालवा, मेवाड़, पंजाब आदि सारे हिन्दुस्थानमें प्रसिद्ध हैं। इतना ही नहीं विदेशोंमें—विलायतमें—भी लोग उन्हें जानते हैं।

इसका कारण क्या है ? इसका कारण यही है कि, इस सदीमें इनको जितना ज्ञान था उतना किसीको नहीं था। इस बातको सभी जानते हैं। जिनमें जितना पानी होता है उतनी ही उनकी दूर देशोंमें कीमत होती है। मोतीमें पानी होता है, इसी लिए उसकी कीमत होती है। जिसमें जितना पानी उतनी ही उसकी कीमत।

अहमदाबादमें शान्तिसागरको जवाब देनेमें ये महात्मा ! तीन थुईवालोंको जवाब देनेके लिए ये महात्मा ! स्थानकवासियोंको, सम्यक्त्वसार नामक पुस्तकका उत्तर देनेके लिए ये महात्मा ! दयानंद सरस्वतीके, जैनधर्म पर किये गये आक्षेपोंका उत्तर देनेके लिए ये ही महात्मा ! और वैदिक धर्मवालोंको जवाब देनेके लिए भी ये ही महात्मा ! कितनी विद्वत्ता ! कितना प्रताप ! (धन्य ! धन्य ! की ध्वनि !)

सज्जनो ! स्वर्गीय महाराजके ज्ञान गुणसे मुग्ध होकर ही, श्रीसंघने पालीतानेमें उन्हें, उनकी इच्छा न होते हुए भी, आचार्य पदवी दी थी । इस विषयमें भरूचके सेठ अनूपचंदजी अपनी पुस्तक प्रश्नोत्तर चिन्तामणिमें अच्छा प्रकाश डाल गये हैं । मुझे कहने दीजिए कि, उस जमानेमें बड़े भाग्यसे लोगोंको एक आचार्य मिले थे । प्रसन्नताकी बात है कि, भाग्यवश जैनोंमें आज पाँच छः आचार्य विद्यमान हैं । आचार्य श्रीविजयकमल सूरि, आचार्य श्रीविजयनेमि सूरि, आचार्य श्रीभ्रातृचंद्र सूरि, शास्त्रविशारद श्रीविजयधर्म सूरि, शास्त्रविशारद, योग्यनिष्ठ श्रीबुद्धिसागरसूरि, शास्त्र विशारद श्रीकृपाचंद्र सूरि । स्वर्गीय एक ही आचार्य महाराजने अपने समयमें अनेक प्रकारसे जैनधर्मकी उन्नतिके कार्य कर जैनोंको उपकृत किया है । इसी तरह वर्तमानके आचार्य महाराज भी यथाशक्ति अपनेसे हो सकें उतने धर्मकी उन्नतिके कार्य कर लोगोंका उपकार करें तो धर्मकी इतनी उन्नति हो कि, जिसका अंदाजा नहीं किया जा सकता है ।

प्रसंगवश मुझे कहना पड़ता है,—थोड़े दिन पहले रतलामके एक श्रावकका पत्र मुझे मिला है, उसमें लिखा है कि, यहाँ एक ब्रह्मचारी आये हुए हैं। उन्होंने ब्रह्मसूत्र पर 'वेदमुनि कृत ब्रह्म-भाष्य' नामा भाष्य रचा है, जो निर्णय सागर प्रेसमें छपकर तैयार हो गया है। उसमें सप्तभंगी, स्याद्वाद, नवतत्व आदिका खंडन किया गया है और स्याद्वाद पर अडतालीस दोष लगाये गये हैं। उसका योग्य उत्तर देनेकी आवश्यकता है। यद्यपि, चाहे जैसा, उत्तर तो दिया जायगा; भगवानका शासन जयवंत है, कोई न कोई उत्तर जरूर देगा तथापि इसका योग्य उत्तर योग्य भाषामें वर्तमान आचार्योंमेंसे अथवा पन्यासोंमेंसे कोई दे तो वह विशेष महत्व का हो। इस बातको सभी जानते हैं कि एक सामान्य व्यक्तिकी अपेक्षा किसी प्रतिष्ठित पदवीधरकी रचना विशेष प्रतिष्ठित होती है।

सज्जनो! अब मैं मरहूमकी गंभीरताका कुछ परिचय कराऊँगा। हमें गंभीरताकी खास जरूरत है। मैं जानता हूँ कि समय बहुत ज्यादा हो चुका है। लोग ऊँचे नीचे होने लग रहे हैं। बार बार जेबोंमेंसे घड़ियाँ निकालकर देखी जा रही हैं। मगर इन घड़ियोंकी अपेक्षा अपने जीवनकी घड़ी देखोगे तो मालूम होगा कि, कितना समय हो गया है और कितना बाकी है। भाग्योदयसे यह शुभ प्रसंग हाथ आया है। इसे स्थिर चित्तसे सफल कर लेना चाहिए। जैसे सांसारिक कार्योंकी चिन्ता रहती है वैसे ही बल्के उससे भी अधिक धार्मिक कार्योंकी चिन्ता रखनी चाहिए। जब तुम

अपने बाप दादोंकी द्रव्यरूपी पुँजीके मालिक बने हो, उसका बराबर हिसाब रखते हो और उसे बढ़ानेकी चिन्ता करते हो, तब उन्हीं बापदादोंकी धार्मिक पूँजीको तुम लापरवाहीसे क्षीण होने देते हो; यह कितने दुःखकी बात है।

संसारकी नश्वर पूँजीके लिये जितनी जहमत उठाई जाती है; जितना प्रयत्न किया जाता है उतना ही यदि परमार्थकी धार्मिक पूँजीके लिए–जो आत्माकी खास ऋद्धि है–प्रयत्न किया जाय तो यह आत्मा अत्यंत उच्च बन सकता है। हमेशा याद रखना चाहिए कि, दुनियामें सांसारिक उन्नतिका मूल कारण धार्मिक उन्नति ही है। मर्यादाके–धर्मके आदेशोंके–अनुसार जो संसारमें वर्तता है वही संसारमें उन्नति कर सकता है। कोई बता सकता है कि मर्यादाहीन अनीतिमान मनुष्यने भी कभी उन्नति की है। कदापि नहीं। धार्मिक उन्नति आत्माके गुण, जैसे जैसे प्रकट किये जाते हैं वैसे ही वैसे आत्मिक उन्नति बढ़ती जाती है कि, जिससे अंतमें मोक्ष मिलता है। यहाँ मैं इतना कहूँगा कि, गुण प्रकट करनेके लिए अवलंबनकी आवश्यकता पड़ती है। इस लिए आत्मिक गुण प्रकट करनेकी इच्छा रखनेवालोंको, स्वर्गीय महात्माके समान महात्मा पुरुषोंका, आदर्शकी तरह, अवलंबन करना चाहिए। सच्चे अवलंबनका त्याग करनेहीसे इस दुनियामें आजकल हम कितने पीछे पड़ गये हैं? यह बात विचारणीय है।

कई कहते हैं कि, आजकल पंचमकाल है। मैं पूछता हूँ कि, पंचमकाल सबके लिए है या फकत जैनोंहीके लिए है। जो जैन

एक दिन बड़े धनिक थे वे ही जैन आज गरीब व्याकुल दिखाई देते हैं और जो गरीब थे वे आज धनिक बन गये हैं। इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि जैन गुणियों या गुणोंका आलंबन छोड़, शिक्षाविहीन हो, पुरुषार्थ हीन बन गये हैं और अपनी निर्बलताको वे कलियुग या पंचम कालके बहाने तले छिपाते हैं। पंचम कालमें केवलज्ञान आदि अमुक शक्तियाँ ही विकसित नहीं होती हैं अन्यथा प्रत्येक शक्तिको मनुष्य अपने पुरुपार्थके अनुसार विकसित कर सकता है। विचार करोगे तो अंग्रेज, पारसी आदि इसका आदर्श तुम्हें मालूम होंगे। इस लिए पंचम कालके अपंग कारणको आगे कर अपने प्रमादको उचित बताना और अपनी जवाबदारीसे छूट जाना अनुचित है। हम आज जिन महात्माकी जयन्ती मना रहे हैं वे महात्मा पंचमकाल—कलियुग—के थे या चतुर्थ काल—सत्ययुग—के थे? हमको स्वीकार करना पड़ेगा कि, वे भी पंचमकालहीके थे। अन्तर इतना ही है कि, उन्होंने अपने बलको प्रस्फुटित किया था और हम नहीं करते। उनका जीवन धन्य हो गया और हमारा नहीं।

महानुभावो! स्वर्गीय आचार्य महाराजमें गंभीरता कैसी थी? और उसके कारण वे अपने सामने आनेवाले उद्धतसे उद्धत मनुष्यको भी कैसे शान्त कर देते थे और कैसे उसके हृदय पर अपना प्रभाव जमा देते थे उसके एक दो उदाहरण मैं तुम्हें दूँगा।

मालेरकोटलेमें एक मुल्लाँ सृष्टि—रचनाके संबंधमें प्रश्न करनेके लिए आचार्यश्रीके पास आया। चर्चामें वह बराबर उत्तर न दे सका, इस लिए, एक तो मुसलमान, फिर मुल्लाँ और मुसलमानी

राज्य, मुल्लाँजीका मिजाज गरम हो गया। सत्य है जूठा पड़े, कोई उत्तर न मिले तो क्रोध करके लड़नेके सिवा दूसरा क्या करे? तो भी आचार्यश्रीने शान्त भावसे कहाः—"मुल्लाँजी! गुस्सा न करो। हम काफिर तो काफिर ही सही, मगर क्या एक बातका उत्तर दोगे?"

मु०—शौकसे।

आ०—हिन्दुओंका—जिनको आप काफिर बताते हैं—बनानेवाला कौन है? अपने धर्मके अनुसार बताना हमारी मान्यताकी तरफ़ न देखना।

मु०—इसमें कौनसी बात है? जब कुल कायनात (सृष्टि) को बनानेवाला खुदा है तब हिन्दुओंको बनानेवाला भी खुदा ही है।

आ०—अच्छा मुल्लाँजी जरा सोचिए कि, जिन हिन्दुओंको तुम काफिर कहते हो उन हिन्दुओंको खुदाने क्यों बनाया? क्या वह जानता नहीं था कि ये काफिर मुझसे खिलाफ (विरुद्ध) चलेंगे।

मुल्लाँजी शान्त हो गये और थोड़ी देरके बाद "फिर हाजिर होऊँगा" कह कर चले गये। बाहर जाकर लोगोंसे कहने लगे,—"बेशक! इनके साथ मेरा मत नहीं मिलता; मगर यदि कोई सच्चा फकीर हो तो ऐसा ही हो; दुनियाकी परवाह नहीं, मकर—फरेब—दगाबाजीसे दूर; खुश मिजाज शान्त स्वभाववाला, गंभीर और सच्चा हो।"

महाशयो! देखा आपने कि मुसलमान भी पीठ पीछे गुण गाने लगा। यह फल किसका है? यह है गंभीरता और समझानेके उत्तम ढंगका।

मुझे सखेद कहना पड़ता है कि,—अनेक ऐसी प्रकृतिवाले होते हैं कि, अगर कोई कुछ पूछने आता है तो उसे अपने माने हुए शास्त्रोंके प्रमाण देकर मनानेका प्रयत्न करते हैं। अगर वह नहीं मानता है तो उसे तुम नास्तिक हो, तुम्हें धर्मपर श्रद्धा नहीं है आदि ऐसे कटु शब्दोंका पान कराते हैं कि, वह फिर कभी उनके पास नहीं आता। इतना ही नहीं वह जहाँ जाता है वहीं उनकी निंदा करता है। मगर उन महाशयोंको यह खयाल नहीं आता कि, अगर वह हमारे माने हुए शास्त्रोंके प्रमाणोंको स्वीकारताही होता तो वह इस तरह उल्टे सीधे हमसे प्रश्न क्यों करता? और अपने समान शास्त्रोंपर श्रद्धा रखनेवालेको मना दिया तो इसमें बड़ी बात कौनसी हो गई? सच्ची बड़ाई तो तब है जब श्रद्धाहीन भी समझानेसे और सहवाससे श्रद्धावान बन जाय। ऐसी शक्ति आचार्यश्रीमें थी। इसका उदाहरण मैं ऊपर दे चुका हूँ। वे लोग भी भली प्रकार जानते हैं जिन्हें उनके दर्शनोंका और व्याख्यान श्रवणका सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

आचार्यश्रीमें ऐसी कला थी कि, वे सामनेवालेके मान्य शास्त्रोंके अनुसार ही उसे समझा देते थे और अपना सिद्धान्त उसके गले उतार देते थे। वे इस महासूत्रका हमेशा पालन करते थे कि,—'**सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियं।**' (सत्य और प्रिय बोलो। अप्रिय सत्य न बोलो) उनके हृदयपटपर महावीर स्वामीके साथ जो संवाद हुआ था वह बराबर अंकित था। जब गौतमस्वामी भगवान महावीरके पास आये थे तब वे शिष्यकी

तरह न आये थे, वे वादीकी तरह, भगवान महावीरको, इन्द्रजालिया समझ, जीतनेके लिए आये थे। मगर महावीर स्वामीने उन्हें ऐसे मधुर शब्दों द्वारा संबोधन किया और उनके मान्य शास्त्रोंद्वारा ही उन्हें समझाया कि, वे तत्काल ही समझ गये। क्या इस बातको हम जानते नहीं हैं? जानते तो हैं, मगर उसका आशय समझनेमें फर्क रह जाता है। जैसे एकही कूएका पानी सारे बगीचेमें जाता है; मगर जैसा पौदा होता है वैसा ही उस पर पानीका असर होता है; बबूलके पौदेसे काँटोंका वृक्ष होता है और आमके पौदेसे आमका वृक्ष। वैसे ही एकसी वाणी भी ग्राहक और पात्रके अनुसार परिणत होती है।

महानुभावो! स्वर्गीय महाराज साहबकी गंभीरताका एक दूसरा उदाहरण सुना, जो दो उद्देश बाकी रहे हैं उन्हें संक्षेपमें वर्णन कर, मैं अपना भाषण समाप्त करूँगा।

जीरे (पंजाब) में एक ईसाई आचार्यश्रीके पास आया और उद्धताके साथ बोला:—" तुम अहिंसा अहिंसा चिल्लाकर मांस खानेकी मनाई करते हो; मगर तुम खुद मांसाहारसे कहाँ बचे हुए हो?"

इस बातको सुन कर साधुओंके हृदयमें दुःख हुआ। श्रावकोंकी त्योरियाँ बदलीं। वे कुछ बोलना चाहते थे, इतनेहीमें आचार्यश्रीने उन्हें रोककर कहा:—" भाई उतावले न बनो। गुस्सा न करो! इसके कहनेसे हम मांसाहारी नहीं बन जाते। यह किस हेतुसे हमें ऐसी बात कह रहा है उस हेतुको समझ लें।"

आचार्यश्रीकी इस बातको सुनकर आगत ईसाईको बड़ी शर्म आई। उसके दिलने कहा,— तूने बड़ा बुरा किया कि, ऐसे महा-

त्माको कठोर शब्द कहे। अब क्या हो सकता है? जो भाषा वर्गणा निकल गइ वह निकल ही गई।

आचार्यश्रीने पूछा:—" तुम कैसे कहते हो कि हम भी मांसाहारसे नहीं बच सकते हैं ?"

ईसाई:—तुम दूध पीते हो या नहीं ?

आचा०—पीते हैं।

ई०—तो बस, दूध मांस और खूनसे ही बनता है। जब मास और खूनसे बना हुआ दूध पी लिया तो फिर बाकी रहा ही क्या ? मांस नहीं खाना और दूध पीना यह कहाँका न्याय है ?

आ०—बेशक, दूधकी पैदाइश इसी तरह होती है। इसी लिए जैन-मानते हैं कि न्याई हुई भैंसका पन्द्रह रोज, गायका दस दिन और भेड बकरी वगैरहका दूध आठ दिनतक नहीं पीना चाहिए। कारण उसके दूध रूपमें परिणमन होनेमें कसर रहती है। जब वह दूधके रूपमें परिणमन हो जाता है। तब जुदा ही पदार्थ बन जाता है। इस लिए इसमें कोई हानि नहीं समझी जाती है। यह कोई दलील नहीं है कि जिससे पदार्थ बनता है उसको भी पदार्थका खानेवाला जरूर खावे। अन्नके खेतसें गंदी चीजें डाली जाती हैं; ईख, खरबूजा वगैरहकी पैदाइश गंदगीकी खादसे ही होती है; तो कोई यह कहेगा कि अन्न खरबूजा आदि पदार्थोंको खानेवाला गंदगी भी जरूर खाय ? गंदगी खाकर पुष्ट बने हुए सूअरका मांस खानेवाला ईसाई क्या गंदगी भी खायगा ? सुनो, तुमने जिस तरहका सवाल किया है उसी तरहका जवाब भी तुम्हें मिलेगा। अगर

तुम्हारे कथनको तुम ठीक समझते हो और यह कहनेकी हिम्मत कर सकते हो कि, अन्नादि खानेवाला ईसाई गंदगी भी खाता है तो हमें भी तुम अपनी अकलके अनुसार जैसा मुनासिब समझो मान लो। हमारा इसमें कोई नुकसान नहीं है। हम तो यही मानते हैं कि, अन्नादि गंदगी नहीं है। गंदगी जुदा पदार्थ है और अन्न जुदा पदार्थ है। इसी तरह लोहू मांस जुदा पदार्थ हैं और दूध जुदा पदार्थ है। इस लिए यह कभी सिद्ध नहीं हो सकता है कि, दूध पीने वाला मांसाहारी है।

ईसा०—महाराज! आपने तो मुझे बड़े चकरमें डाल दिया। इसका जवाब और क्या हो सकता है कि, या तो मांस खानेवाला गंदगी खानेवाला बने या मांस खाना छोड़ दे।

आचा०—(उसे ठंडा देखकर) अगर तुम्हारा यह पक्का विश्वास है कि, जिसका दूध पीना उसका मांस भी खाना चाहिए तो बच्चा माताका दूध पीता है इस लिए उसे माताका मांस भी, तुम्हारी मान्यताके अनुसार, खाना चाहिए।

ईसाई— अरे तोबा! तोबा! महाराज आप साधु हो कर क्या कहते हैं? माता बच्चेको पालती है। बच्चेका फर्ज है कि, वह जितनी हो सके उतनी माताकी सेवा करे। वह उपकार करनेवाली है। उपकार करनेवाले पर अपकार करना महानीचताका काम है।

आचा०—वाह! जब तुम इतना जानते हो तब जान बूझकर उल्टे रस्ते क्यों चलते हो? हम साधु हैं इसी लिए तो तुम्हारी भलाईके लिए तुम्हे सच्ची बात कह रहे हैं। केवल बचपनहीमें दूध पिलाने

वाली माता जब उपकार करनेवाली है तब जन्म भर दूध, घी खिलाकर पुष्ट रखनेवाले पशु क्या उपकारी नहीं हैं। माता तो थोड़े ही दिनतक दूध पिलाती है; मगर पशु तो जिन्दगी भर दूध पिलाते हैं। अगर उपकार करनेवाली माताकी सेवा करना उचित है तो फिर जन्मभर घी, दूध पिलाकर उपकार करनेवाले पशुओंकी भी सेवा करना चाहिए या उन्हें मार कर खा जाना चाहिए? अगर इन्साफ कोई चीज है तो तुम खुद ही इस बातको भली प्रकार समझ लोगे।

ईसा०—महाराज! मैंने आपको तकलीफ दी क्षमा कीजिए, मगर आपके वचनसे मेरा मन बदल गया है। मैं सच्चे दिलसे कहता हूँ कि जहाँतक मेरा वश चलेगा मैं खुद तो मांस खाऊँगा ही नहीं दूसरोंको भी खानेसे रोकूँगा।

फिर वह नमस्कार कर चला गया। सज्जनो! गंभीरता और मधुरताके फल आपने देखे। अब मैं आचार्यश्रीकी निरभिमानता-का परिचय कराऊँगा। पंडित हंसराजजी बता चुके हैं कि, आचार्यश्री प्रतिष्ठा या मानके भूखे न थे। उसीको पुष्ट करते हुए मैं कहूँगा कि, उनको मानसे बिलकुल प्रेम न था। वे हमेशा सत्यसे प्रेम करते थे। स्वयं अकेले न थे। उनके साथ पन्द्रह साधु-ओंका परिवार था। यदि वे अपने आप दीक्षित हो कर फिरते तो क्या कोई उन्हें बाहर निकाल देता? मगर नहीं, उन्हें शास्त्रकी रीति पसंद थी। यदि उन्हें मनःकल्पित रीति ही रखनी होती तो वे ढूँढियापन ही क्यों छोड़ते? अपने आप दीक्षित होना जैन शास-

नकी रीति नहीं है। इस लिए, आचार्यश्रीने बाईस बरस तक ढूँ-ढियापनमें बिताया था उतने समयमें जितने दीक्षित हुए जितनोंने सम्वेगदीक्षा ली थी उन सबको वंदना करना स्वीकार कर उन्होंने संवेग दीक्षा ली और जगतको अपनी निराभिमानताका प्रमाण दिया। उसका फल यह हुआ कि वे पहलेकी अपेक्षा अधिक आदर सत्कारके भागी हुए। इस बातको हमें हमेशा याद रखना चाहिए। वे कैसे निर्भय और विचारशील थे इस विषयमें श्रीयुत मोतीचंद कापडिया सॉलिसिटर कह चुके हैं। इसमें मैं थोड़ा और जोडूँगा। आचार्यश्रीने जैन प्रश्नोत्तर ग्रंथमें लिखा है कि, जैनोंकी भिन्न भिन्न जातियोंके एकत्र होनेसे जैनोंकी उन्नति होगी। वह बात आज नहीं मगर कालांतरमें कुछ कालके बाद होती दिखाई देती है। उसे तुम खुद न करोगे; मगर जमाना धीरे धीरे जबर्दस्ती तुमसे करा लेगा।

महाशयो! स्वर्गीय आचार्यश्रीके अनेक गुणोंका वर्णन किया गया है। उनका अपनेसे हो सके उतना अनुकरण कर जयन्ती मनानेके उत्साहको सफल करना चाहिए। एक क्षत्रिय वीरका वर्णन बगैर जोशके नहीं हो सकता। जोशमें यदि मुझसे कुछ अनुचित बोला गया हो तो, आपने उसकी उपेक्षा की है यह बतानेके लिए स्वर्गीय आचार्य महाराजके नामकी और शासननायक प्रभु श्रीमहा-वीर स्वामीके नामकी जय बोलें! मैं अपना स्थान ग्रहण करता हूँ।

महावीर जयन्ती ।

[यह भाषण आपने चैत्र शुक्ला १३ सं० १९७४ ता०५—४-१७ के दिन, वड़ोदेके जानी शेरीके उपाश्रयमें, महावीर जयन्तीके समय दिया था ।]

परम पूज्य प्रवर्त्तकजी महाराज, मुनिमंडल, सुश्रावक और श्राविकाओ !

आजका प्रसंग ऐसा है कि, जिसकी सभाके लिए नवीन सभापति चुननेकी या प्रस्ताव करनेकी आवश्यता नहीं है । श्रमण भगवंत महावीर स्वामीकी तस्वीर प्रमुख स्थानपर विराजमान की गई है, वे ही सबके प्रमुख हैं और हम उनके गुणगान करनेके लिए एकत्रित हुए हैं । प्रतिष्ठित श्रीकान्तिविजयजी महाराज हम सबमें बड़े एवं गुणी हैं । उनकी हाजिरीमें और उनके सामने हम अपना काम चलाते हैं, इस लिए नवीन सभापति चुननेकी कोई आवश्यकता नहीं है ।

आज भगवान महावीरका जन्म दिन है । हम प्रति वर्ष जयन्ती मनाते हैं । पर्युषण पर्वमें भगवान महावीरका जन्म चरित्र बँचता है और भादवा सुदी १ के दिन उनके जन्म-वाँचनका उत्सव, सारा संघ, प्रत्येक स्थान पर, करता है; मगर वह दिन वास्तवमें जन्म दिन नहीं है ।

हममें जयन्ती मनानेका रिवाज नया नहीं है । तीर्थंकरोंके च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवल और मोक्ष ऐसे पाँच कल्याणक होते हैं । हरेक कल्याणकके दिन कल्याण महोत्सव करना चाहिए । वर्तमान चौवीसीमें कौनसे तीर्थंकरका कौनसा कल्याणक किस दिन आता है ? यह बात बतानेवाला तख्ता मैंने आज सवेरे ही उपाश्रयमें देखा है ।

पूज्यपाद हरिभद्र सूरि महाराजने आजसे १९०० वर्ष पहले **'यात्रा पंचाशक'** नामक ग्रंथ रचा है, उसमें कल्याणक उत्सव मनानेकी आज्ञा दी गई है। (यहाँ आपने शास्त्रोंके प्रमाण दिये थे) इनसे सिद्ध होता है कि यद्यपि हममें जयन्ती मनानेकी प्रथा नवीन नहीं है तथापि समयानुसार हम इसको नवीज पद्धतिसे मनाते हैं इस लिए हमें यह नवीन लगती है।

गृहस्थोंमें अपने जन्मवाले दिन और अपने पिताके जन्मवाले दिन आनन्द मनानेका रिवाज है। प्रपिता और पितामह और उनके पहलेके पूर्वजोंको यद्यपि गृहस्थ मानते हैं तथापि उनके जन्म दिन न तो याद रखते हैं और न उनका उत्सव ही करते हैं। अनन्त तीर्थंकर हो चुके हैं। वे सभी हमारे पूज्य हैं। तो भी हम उनके कल्याणक नहीं मना सकते हैं। वर्तमान चौवीसीके सभी तीर्थंकरोंके कल्याणकका उत्सव करें तो वर्ष भरमें १२० दिन चाहिए, जो वर्षका तीसरा भाग होता है। इस लिए उन सबके कल्याणक भी यद्यपि हम नहीं मना सकते हैं, तथापि जिन भगवान महावीरके शासनमें हम हैं और जिनके पुत्र कहलानेका हमें अभिमान है उनके कल्याणकके दिनकी तो हम आराधना कर सकते हैं इस लिए जितनी हो सके उतनी उत्तमताके साथ उनके कल्याणक मनाने चाहिए।

जो पुत्र अपने पिताका जन्म दिन आनंदमें बिताते हैं, अपने पिताके सद्गुण याद करते हैं; पिताने जो उपकार उस पर किये हैं

उन्हें स्मरण कर अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं और यदि पिता जीवित होते हैं तो उनकी सेवाभक्ति कर अपना कर्तव्य करते हैं वे ही पुत्र सुपूत कहलाते हैं।

जयन्ती मनानेसे हमींको लाभ है। भगवान तो कर्मोका नाश कर परम पदको प्राप्त कर चुके हैं। इस लिए उनकी तो सदा विजय ही है। हमें तो अब उनके गुणोंका स्मरण कर शक्तिके अनुसार उन गुणोंको सम्मान दे हमें अपना ही जय करना है। जो भगवान महावीरको माननेवाले हैं, उनके लिए यह जयन्तीका दिन तन, मन और धनसे उत्सव करने योग्य है, जो उन्हें मानते नहीं हैं वे जयन्ती मनावें या न मनावें उनसे हमें कोई मतलब नहीं है।

ये वीर कैसे हो गये हैं उनका यथार्थ चरित्र कहनेकी मेरी शक्ति नहीं है। उनके सम्पूर्ण गुण तो जो उनके जैसा होता है वही जान सकता है। तो भी पूर्ण पुरुषोंने उनके गुणोंका वर्णन किया है उनमेंसे कुछ कहूँगा।

भगवानका 'वीर' नाम अन्वर्थ है। जो नाम गुणसे उत्पन्न होता है उसे अन्वर्थ कहते हैं। 'वीर' नाम गुणसे हुआ है; उन्होंने वीरताके जो काम किये हैं और अपनी जो वीरता प्रकट की है उनके कारण 'वीर' कहलाते हैं। वास्तवमें तो, इनका, मातापिताका दिया हुआ, नाम वर्द्धमान था। वीरका प्रभाव अपने हृदयमें स्थापित करनेके लिए वीर जयन्ती मनाई जाती है

जो विशेष सुशोभित होता है वह ‘ वीर ’ है। जो वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित होता उसे वीर नहीं कहते; जो आत्मिक गुणोंसे सुशोभित होता है उसे वीर कहते हैं। जिनमें जरासा भी दोष न हो, जो निर्दोष हों, और देदीप्यवान हों ऐसे गुणोंवाले सभी ‘ वीर हैं।

शत्रुओंका नाश करनेसे, कर्मोका नाश करनेसे भी वीर कहलाते हैं। इस तरह वीर शब्दके अनेक अर्थ होते हैं। उपर्युक्त गुण उनमें थे। हमें भी अपनेमें उन गुणोंको उत्पन्न करना चाहिए। वीर, वीर कहनेसे हमारी भलाई न होगी। जगतमें कर्मवीर, दान वीर, शूरवीर, योगवीर आदि अनेक प्रकारके वीर कहलाते हैं। भगवान महावीर दानवीर थे। वे क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुए थे। दान करनेका गुण क्षत्रियोंहीमें होता है। राज्यमें ब्राह्मण भले राज्यगुरु कहलानेका दावा करते हों; मगर उनमें दान गुण नहीं होता उनमें तो शिक्षा और भिक्षावृत्तिका ही गुण होता है। वैश्योंमें लोभवृत्ति होती है इस लिए वे भी वास्तविक दान नहीं कर सकते हैं। भगवंतने किसी तरहका भेद भाव न रख जगतके सभी लोगोंको दान दिया था। उन्होंने एक वर्षमें तीन अरब, अठासी करोड, अस्सी लाख सोनैये (उस समय चलता सोनेका सिक्का) दानमें दिये थे। ऐसे अवतारी पुरुष ब्राह्मणों या वैश्योंमें उत्पन्न नहीं हो सकते हैं।

भगवानने दान देते समय, धर्मी या अधर्मी, गुणी अथवा निर्गुणी, गरीब अथवा अमीर, इस तरहका कोई भेद न रख सभी को, अनु-

कंपासे, दान दिया था। इससे वे हमें अनुकंपा दान देना सिखा गये हैं। जो गृहस्थ होकर अपनी शक्तिके अनुसार दान नहीं देता है वह वास्तवमें वीर पुत्र नहीं है।

वीरताका गुण शुद्ध क्षत्रियके बिना दूसरोंमें उत्पन्न नहीं हो सकता है। भगवान ध्यानवीर भी थे। ध्यान अर्थात् चपलताका अभाव। तुम्हारा हमारा चित्त जैसे चंचल और चपल है वैसे भगवानका नहीं था। ऐसी शक्ति प्रकट करके हम भी उनके समान हो सकते हैं। चपलताका दोष नाश करनेके लिए हम यदि अभ्यास करेंगे तो अवश्यमेव, कुछ अंशोंमें ध्यानमें आगे बढ़ सकेंगे।

भगवान ज्ञानवीर भी थे। उन्होंने जगतके पदार्थोंको उनके यथार्थ रूपमें जाना था। संसारमें कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जिससे प्रभु अज्ञात या अजान हों। जिनमें अजानपन हो वे ज्ञानवीर नहीं कहला सकते। भगवान महावीरने अज्ञानके सभी आवरणोंको खपा दिये थे, इसी लिए वे ज्ञानवीर कहलाते हैं।

कर्मवीर भगवंत आत्मिक गुणोंको प्रकट करनेमें कायर न थे। यह काम होगा या नहीं, ऐसी शंका उनको कभी नहीं होती थी। जिसके मनमें कार्य प्रारंभ करनेके पहले ही ऐसी शंका उत्पन्न होने लगती है कि, यह कार्य मुझसे पूरा होगा या नहीं? वह काम कभी उससे पूरा नहीं होगा। जिस समय भगवान संसारको छोड़ दीक्षाग्रहण कर विचरण करने लगे, उस समय इन्द्रने आकर विनती की— "भगवान आपको बहुत कष्ट उत्पन्न होनेवाला है इस लिए यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपकी मददके लिए यहीं रहूँ।"

उस समय भगवानने कहा:—हे इन्द्र ! दूसरोंकी ! सहायतासे कभी कर्मोंका नाश नहीं होता; दूसरोंकी सहायतासे कभी केवलज्ञान नहीं होता। किसी भी तीर्थंकरने केवलज्ञान उत्पन्न करनेके लिए न किसीकी मदद ली है न भविष्यमें ही लेंगे। इससे भगवानने हमें स्वात्मावलंबी बननेका उपदेश दिया है। संसारमें कोई भी कार्य परावलंबनसे नहीं होता। भगवानमें संपूर्ण रूपसे स्वावलंबनका गुण था और अपनी आत्मिक ऋद्धि प्रकट करनेके लिए उन्होंने किसीकी सहायता नहीं ली थी।

योगवीरका अभिप्राय यह है कि, वे आलसी, प्रमादी या कायर न थे। वे कर्तव्य परायण थे इसी लिए वे योगवीर कहलाते हैं। इन गुणोंका आराधन करनेसे हम भी योगवीर हो सकते हैं। आत्मा ध्याता, ध्येय, ध्यान इन दर्जोंमें पहुँचनेके लिए योग निमित्त है। बाहिरी उपाधियोंको सर्वथा मिटा कर यदि भगवान महावीरके इन गुणोंको अपने हृदयमें स्थापित न करेंगे तो ये गुण हमें कदापि प्राप्त न होंगे। प्रत्येकको निमित्तकी आवश्यकता है। प्रतिमा ध्यानका साधन है। इनकी प्रतिमाद्वारा यदि हम इनका ध्यान करें तो हममें योगके कुछ अंश आ सकते हैं। प्रतिमाके निमित्तसे गृहस्थोंको द्रव्य और भावसे तथा साधुओंको भावसे योगका साधन करना चाहिए। साधुओंको भाव पूजाका अधिकार है। भगवानने संसारका त्यागकर, अपना ज्ञान प्रकटा उपदेश दिया है कि, तीर्थंकरोंके कल्याणकोंका आराधन करो। कल्याणकका अर्थ—कल्य माने सुख और अण माने बुलाना, अर्थात्

कल्याणकका आराधक सुखका बुलानेवाला होता है। यानी आराधन करनेवाला सुखी होता है। उनके चरित्रका ध्यान करनेसे उनके गुणोंकी छाप हृदयमें डालनेसे हम बुरे कामसे बच सकते हैं और सुखकी प्राप्तिके साधन जुटा सकते हैं।

भगवानके चरित्रमेंसे एक बात खास हमारे ध्यानमें लेने योग्य है। भगवानके जीवने एक बार कुलका मद किया था; अहंकार किया था, वह कर्म उनको भोगना पड़ा था। भगवान महावीरके समान उच्च कोटिके जीवको भी जब उस कर्मके प्रतापसे भिक्षुक कुलमें उत्पन्न होनेका प्रसंग आया था। तब आजकलके लोग जो कुलका मद, जातिका मद, धनका मद, बलका मद, आदि अनेक प्रकारके मद कर अनर्थ करते हैं; सत्कार्यमें योग नहीं देते, कई बार तो वे अच्छे कर्मोंके भी बीचमें आते हैं—कैसे ऐसे कर्मोंका फल भोगनेसे बच सकेंगे? इससे उन्हें यह उपदेश ग्रहण करना चाहिए कि, इन मदोंके कारण जो कर्म बँधते हैं उनसे अनेक भव भ्रमण करने पड़ते हैं,—इस लिए भगवानकी जयन्ती मना, किसी प्रकारका मद नहीं करनेका गुण हमें ग्रहण करना चाहिए।

भगवानने उपर्युक्त गुण प्रकट करनेके लिए महान् प्रयत्न किया था। उसमें उन्हें अनेक कष्ट सहन करने पड़े थे तो भी वे निस्पृह वृत्तिसे दृढ रह कर चलायमान नहीं हुए थे। संसारको छोड़नेवाले साधुओंको चाहिए कि, वे भगवानके गुणोंका अनुकरण करें और

अपना चारित्र पालते वक्त किसी भी तरहके अनुकूल या प्रतिकूल उपसर्ग हों तो उनसे विचलित न होकर अपने चारित्रमें दृढ रहें।

दुनियाकी हरेक चीजको आँखोंवाले देख सकते हैं। जिनके आँखें नहीं हैं, वे कुछ भी नहीं देख सकते। जिनके विवेक चक्षु हैं, वे भगवान वीरके चरित्रमें बहुतसी उत्तम बातें देख सकते हैं, जिनके विवेक चक्षु नहीं हैं उन्हें उनके चरित्रमें कुछ भी दिखाई नहीं देगा।

भगवानके चरित्रमेंसे मुख्यतया हमें जो कुछ सीखना है वह यह है कि, वीरताके कार्य कर हमें अपना वीरपुत्र नाम सार्थक करना चाहिए। यदि हम वीरताके कुछ भी कार्य न करें तो उनके चरित्रसे हमें कोई लाभ नहीं है। यदि हम वीरताका गुण प्रकट करेंगे, वीरताका गुण प्रकट करनेके लिए वीरकी उपासना करेंगे तो सेव्य सेवक भाव निकल जायगा और हम अवश्य मेव उनके समान (कर्मको नष्ट करनेके लिए) वीर हो सकेंगे।

परिशिष्ट।

सकल शास्त्र पटिष्ट मुनिश्वर । व्रजवरिष्ट गरिष्ट गुणैः शुभैः । विबुधनिष्प्रतिमप्रतिभान्वित ।
हितविचारविलासनिकेतन ? मुनिपवल्लभतेचरणद्वयं । सततमाश्रयतान्नतिसंततिः ।
सुरभिपद्मसमूहमुपेत्यकिं । व्रजितुमन्यतइच्छतिषट्पदी ॥ २ ॥
मम्यगाराधितंपर्व, महत्पर्यूषणाभिदं । यथाशक्तिसमाश्रित्य, देशकालादिकारणं ॥ ३ ॥
तत्राप्याराधितंसम्य-गभविष्यन्मुमुक्षूणां । भवादृशां प्रभावाच्च, श्रीसंघैः हर्षपुरितैः ॥ ४ ॥
प्रतिक्रमणनामानं, साध्वाचारं चिरंतनं । वल्लभानन्ददंकृत्वा, विचक्षणजनप्रियं ॥ ५ ॥
सांवत्सरे पर्वणि सर्वमान्ये, प्रत्येक जीवैः क्षामितोपराधः । पूज्यैर्विमानैः क्षमते जनोयं,
कृपांविधायक्षमणीय इश ॥ ६ ॥ (कलापकं)
कृपावता भवतां कृपयात्र कुशलं तत्र त्वमपि तत्रभवतांकुशलं प्रेषणीयं

सं० १९७८ —श्रीयुत पं० हंसराज ।

परिशिष्ट [क]

[इसमें आपके लिए लोगोंने जो प्रशंसाके उद्गार निकाले वे दिये गये हैं।]

(१)

आवोजी वल्लभविजय ऋपिराया। मार्ग जैन दर्शाया॥
वल्लभ जिनमत वल्लभ स्वामी। वल्लभजननी जाया॥
वल्लभ चारित्र कंठ सरस्वती। वल्लभ नाम धराया॥ १॥
पंडितराज धर्म उपकारी। परम द्यालु सुखदाया॥
सर्व जीवों पर करुणासागर। जैन जहाज चलाया॥ २॥
स्वामी गुरु तीर्थ अभिलापी। धर्म समाज टिकाया॥
पोसे बिन तेरे कौन स्वामी। बूटा आत्म लगाया॥ ३॥
हो सुनी वीर वचन परकाशी। अर्पण कीनी काया॥
अर्थी अर्थ बचाये अपना। निगुर्णी गुण नहीं गाया॥ ४॥
मन चाहे चिन्तामणि पाऊँ। कल्पवृक्षकी छाया।
पुण्यवानसे मिले सहेली। बिन पुण्य पाये गँवाया॥ ५॥
लाख करोड़ी तेरी आन माने। छद्दुन न तेरा पाया॥
हम गरीब तेरी किस गिनतीमें। जो इतना चिर लाया॥ ६॥
सिंह मार्गमें निराधार चाले। आप तो निरपरवाया॥
हम परवाई दर्शनके प्यासे। क्यों कर मुझे भुलाया॥ ७॥
तुम तो मेघ सम हम शिष्य मूर्ख। गुरुसम घन वर्पाया।
मन मेरा मीन बाज जल तड़फत। मृग प्यासा जलचाया॥ ८॥

पंछी नहीं पिंजरेमें पाऊँ । दर्शन आसा धाया ॥
बैल नहीं जे रसड़ी बाँधूँ । टकता नहीं टकाया ॥ ९ ॥
जोगी नहीं जे जोगमें जोड़ूँ । भुलदा नहीं भुलाया ॥
दर्शन चाहा चंचल चित्त वाटे । निशदिन दौड़ दुड़ाया ॥ १० ॥
सर्व साथ संघ आप लै आवो । नैन नैन दर्शाया ॥
शशि सम शीत सदा क्रांति । भ्रांति पाप उड़ाया ॥ ११ ॥
अतिशय गरमी अतिशय सरदी । क्या पंजाब कि पाया ॥
बाज तेरे कौन इधर पधारे । करुणा निध तु जाया ॥ १२ ॥
आवो देश पंजाब पधारो । रहे तेरी साया ॥
संजमवंत महन्त महामुनि । तुमरी मुझे सहाया ॥ १३ ॥
केशोंसे चरणन रज चाटूँ । नैन नीर दोनुं पाया ॥
कुंकुमचंदन नवअंग पूजूँ । खुशी खुशी रंग रंगाया ॥ १४ ॥

—लाला खुशीराम ।

---

(२)

गुरु वल्लभकी बानी है अमृतभरी ! ॥ अंचली ॥
वल्लभविजय महाराज बसें दिलोजानमें ।
उन्हीं गुरुका नाम धरूँ अपने ध्यानमें ॥
ऐसे गुरु महाराज हो सारे जहानमें ।
तारोंमें चाँद जिस तरह हो आस्मानमें ॥
मैं गुन गुरुके क्या कहूँ ? बरसाते हैं झड़ी ॥ गु० ॥ १ ॥
चौकीपै गुरु जिस घड़ी सजते व्याख्यानमें ।
मानों शजर फूलोंके थे गुरुकी जबानमें ॥

वर्षा दहनसे फूलोंकी होती मकानमें ।
वो रस भरीसी वानी जो पडती थी कानमें ॥
महिमा कथाकी क्या कहूँ हीरोंकी फुलझड़ी ॥ गु० ॥ २ ॥
समताका वास गुरुके हिरदे विराजता ।
करनेसे दरस जिनकें अज्ञान भाजता ॥
दूषणसे रहित बिल्कुल आनंद गाजता ।
ज्ञानीको खुशी होती मूरख है त्रासता ॥
सनअतं गुरुकी क्या कहूँ ? लाखों भरी पड़ीं ॥ गु० ॥ ३ ॥
बिन ज्ञानके हिरदेमें बिल्कुल अंधेर है ।
नामको इन्सान पर मिट्टीका खेल है ॥
निंदा जो गुरुकी करें किस्मतका फेर है ।
जानेमें उनके नरकको हरगिज न देर है ॥
आती है दया देख बात मूर्खता भरी ॥ गु० ॥ ४ ॥
चंदाके निकलनेकी खुशी सब जहानमें ।
चकवी व चोर रोते हैं चुर चुर मैदानमें ॥
सूरजकी कला तेज है सारे जहानमें ।
उल्लू खुशी करता नहीं सूरजकी शानमें ॥
ऐसे ही लोग वादी गुरुसे नाखुशी खरी ॥ गु० ॥ ५ ॥
थोडीसी सिफ़त करता हूँ गुरुकी बयान मैं ।
इक बार कोई आगया सुननेः वखानमें ॥
कुगुरुको तजके होगया सत्गुरुके ध्यानमें ।
सूत्रोंका अर्थ आगया उसकी पहचानमें ॥
तारीफ मुझ नादानसे हरगिज न जाकरी ॥ गु० ॥ ६ ॥

जिनवरका दर्श करके तू जीवन सुधार ले ।
वल्लभ हैं गुनकी खान यह निश्चय तू धार ले ॥
गुरु बिन मिले न ज्ञान ये मनमें विचार ले ।
कहता दसौंदीराम ये हिरदेमें धार ले ॥
नादान छोड़ भावना अज्ञानकी भरी ॥ गु० ॥ ७ ॥

—श्रीयुत दसौंदी राम ॥

---

(३)

१ बोल बाला हो वल्लभविजयका, है जो प्रशिष्य आनंदविजयका ।
कह रहे हैं वे सबको सुनाकर, पालो मुक्ति कर्म को खपाकर ॥
२ जन्म अच्छे घराने में पाया, सरपे था वाल्दीं का भी साया ।
कहते दुनियासे अब दिल हटाकर, पालो मुक्ति कर्म को खपाकर ॥
३ दुनिया तो है यह बिलकुल ही फ़ानी, चार दिन की ही बस ज़िंदगानी ।
लेना क्या है यहाँ दिल लगाकर, पालो मुक्ति कर्म को खपाकर ॥
४ पुण्य पहिले जन्म में किया था, जिससे मानुष जन्म यह लिया था ।
पुण्य वैसे ही अब भी कमाकर, पालो मुक्ति कर्म को खपाकर ॥
५ पाओं में अपने काँटा लगे जो, दरद करती है हरदम जगह वो ।
मत करो जुल्म दिल में यह लाकर, पालो मुक्ति कर्म को खपाकर ॥
६ हरगिज़ हरगिज़ न रेशम को पहनो, मेरी हिन्दु मुसलमान बहनो ।
बनता यह लाख जानें गंवाकर, पालो मुक्ति कर्म को खपाकर ॥
७ पहिले कीड़ों को मेहनत से पालें, फिर गरम पानी में सब डुबा लें ।
कारखानों में देखो यह जाकर, पालो मुक्ति कर्म को खपाकर ॥
८ खाँड मुतलक न खाओ विदेशी, होती है इससे पापों में बेशी ।
मिलता क्या पेट कबरें बनाकर, पालो मुक्ति कर्म को खपाकर ॥

९ आई जबसे यहाँ पर मशीनें, धर्म और कर्म सब हम से छीनें ।
चलती पुर्जों में चरबी लगाकर, पालो मुक्ति कर्म को खपाकर ॥
१० इन मशीनों को भट्टी में डालो, खड्डी चरखे घरमें लगा लो ।
खुद बुनो सूत घर में कताकर, पालो मुक्ति कर्म को खपाकर ॥
११ हिन्दवाले भी खुशहाल होंगे, दूर बीमारी और काल होंगे ।
देखना फिरा जरा चश्म वा कर, पालो मुक्ति कर्म को खपाकर ॥
१२ कोई कमजोर हिन्दी न होगा, कोई डरपोक हिन्दी न होगा ।
खाएँगे दूसरों को खिलाकर, पालो मुक्ति कर्म को खपाकर ॥
१३ ये ही उपदेश देते मदामी, ताकि हो दूर सारी गुलामी ।
कह दिया जो कि शर्मा ने गाकर, पालो मुक्ति कर्म को खपाकर ॥

—श्रीयुत भागमल शर्मा ।

---

(४)

अर्हं

श्रीमद्गुरुवर्य-श्रीवल्लभविजय-स्तुत्यष्टकम् ।

(वल्लभविभक्त्यष्टकम् ।)

उपजातिवृत्तम् ।

महागुरुश्रीमुनिसत्तमाऽऽत्मा-रामाभिधाचार्यपदाब्जभृङ्गः ।
तद्वाक्सुधापानचकोरचेता, न "वल्लभः" कस्य स "वल्लभो" ऽस्ति ॥ १ ॥
तपःप्रकर्षेण रिपूञ्जयन्तं, गीर्भिर्नृचेतांस्यनुरञ्जयन्तम् ।
स्वधर्ममर्माणि निदर्शयन्तं, वन्देत को नो "मुनिवल्लभं" तम् ॥ २ ॥
संसारसिन्धोर्यदि ते तितीर्षा मुक्तिश्रियां चापि मुदां दिधीर्षा ।
तदाऽमुना लोचनवल्लभेन, वाचः शृणुष्वा "मुनिवल्लभेन" ॥ ३ ॥
जैनागमाम्भोनिधिमन्थनाय, स्फुटीकृतज्ञानमहापथाय ।

---

१ मुक्तिश्रियां चापि मुदा दिधीर्षा.

जना भवार्तिप्रविनाशकाय, नमः कुरुध्वं "मुनिवल्लभाय" ॥ ४ ॥
शमादयो यद्धि गुणाः समग्राः, समेत्य दार्ढ्यादिह संवसन्ति ।
मन्ये ततोऽमीभिरुमाश्रयोऽन्यो, लब्धोनुरूपो "मुनिवल्लभा" न्नो॥ ५ ॥
जनैश्चकोरैरिव पीयमाना, अतीव माधुर्यरसं दधानाः ।
वाणीसुधाः कं न हि तर्पयन्ति, मुखेन्दुजाता "मुनिवल्लभस्य" ॥ ६ ॥
सदा जिनेन्द्रान्परिवन्दमाने, स्वभक्तलोकैः परिवन्द्यमाने ।
जना भजध्वं भवसागरेस्मिन्, सारं सुभक्तिं "मुनिवल्लभे"ऽस्मिन् ॥ ७ ॥
महागुरुश्रीमुनिनायकात्मा—नन्दाह्वयाचार्यकृपैकपात्र !
संसारतः प्राणिन उद्धरन्सन्—विराज नित्यं "मुनि वल्लभ" ! त्वम् ॥८॥

(उपगीतिवृत्तम्)

'मुनि' राजस्य सुललितं, 'वल्लभ'विजयस्य सत्स्तोत्रम् ।
'भवि'कं नित्यानन्दो 'जय'दं कृतमान्धृतानन्दः ॥ ९ ॥

॥ **इति गुरुस्तुत्यष्टकम्** ॥

—श्रीयुत पं० नित्यानंद शास्त्री आशु कवि ।

---

(५)

आर्याभिनन्दनपत्रम् ।

समस्ताजिनरत्नानां, धर्माणामतुलोमहान् ।
आचार्य विजयानन्दो, विभुर्विजयतेतराम् ॥ १ ॥
तद्पादपङ्कजरजः समुपास्यधीरस्त्यक्त्वा रमां स च रमाविजयो महात्मा
श्रीमज्जिनेन्द्रशुभशासनकर्णधारो, हारो बभूव जिवरत्नजुषां जनानाम् ॥ २ ॥
तेषां शुभाचरणलोकवशीकृताना—मात्माभिरामजनशोकाविशोषकरणाम् ॥
धर्म्मात्मनामुपगतः किलशिष्यभावं, श्रीहर्षपूर्व विजयोत्तरनामधेयः ॥ ३ ॥

संसारसारजिनधर्मविभासलास्यम् ।
विज्ञानभानदमनीकृतगोजदोपम् ॥
शश्वत्प्रतापभवरोगनिरासिवैद्यम् ॥
॥ आर्याः नमन्ति सततं चरितामृतंयम् ॥ ४ ॥
तच्छासनामृतनिपीत सुलब्ध बोध !
श्रीवल्लभेति जनवल्लभभाविभावः
आनन्दधाममधिगम्य यशो यदीयम्
आर्याः सदा कलुषताञ्जहतीह चित्रम् ॥ ५ ॥
यद्धर्मशासनविधौ निशिवासरं हि।
सुज्ञाः विहाय कलुपं कलिकालजातम् ।
स्वैरं चरन्ति जनसंसदि वीतरागास्तस्मै यतीन्द्रपतये गदनाङ्क्मिस्ति ॥ ६ ॥
लोके ललामललितालपनाविलासम्,
भावं निपीयरसिकाः विरसाः भवन्ति ।
तद्पादभानुभवनैशनिरासकन्तु,
चित्रम्भवेत्सुजन संसदि किम्विचित्रम् ॥ ७ ॥
पाञ्चालमालमधिगम्य यशो यदीयम् । विज्ञानवारिविमलीकृतमुद्भिमाल्य
लोकोत्तरोपकृतिरद्यविभाति किन्नु शश्वचकार तिलक किल किं न चित्रम्॥८॥
गायन्ति कीर्तिरधुनापिच गुर्जरीयाः,
कैर्वा जनैर्न विदितं सुकृतन्तदीयम् ।
कीर्तिर्विभातिशिखरेऽभ्युदयस्य किम्वा
सूर्यस्यनोभवति कुत्रचिदंशुपातः ॥ ९ ॥
मार्तण्ड एप भगवान् किमु धर्मएव,
स्वाचारशासनविधौ स्वयमेव जातः ।

भाषा सुभाषण विधौ गुरूरेवनान्यः ।
इत्थंजना प्रतिजनान्निगदन्ति शश्वत् ॥ १० ॥
यतीन्द्र सम्प्राप्त गुणस्य वैभवनके समर्थाः कथितुं गुरूं विना ।
पिपीलीकाऽपीच्छति लङ्घितुं नगं तथैव वाचा गदितं मयाधुना ॥ ११ ॥
सर्वशास्त्रगरिष्ठस्यकुमारान्तशिवस्थच शिष्यः कृष्णपुराख्येऽ
ह्मम् अर्पयामिसतांमुदे । ११ ।
विद्यारत्नालङ्कारपदवीकेन द्वारकाप्रसादशर्मणाङ्कृतिरियम् ।

---

(६)

॥ श्री वीतरागायनमः

" विद्या धर्मेण शोभते "

श्री वर्द्धमान ज्ञानमन्दिर उदयपुर की अपील।

जैन समाज की सेवामें।

प्रधान संस्थापक शासन प्रभावक श्रीमद् जैनाचार्य विजय वल्लभसूरिजी महाराज

[स्थापित सम्वत् १९७७ विक्रम]

महानुभावो

इस दिव्य भूमि ' मेवाड ' का—जिसमें उक्त संस्था स्थापित है—परिचय देना अनावश्यक है, क्योंकि इसका केवल शुभ नाम ही इसके लिये पर्याप्त है। जैन संसारमें इस वीर भूमि का क्या स्थान है ? वह इतिहास के प्रेमियोंसे छिपा नहीं है।

यह वही पवित्र भूमि है, जिसमें आज भी परम पवित्र जगदाधार जगतवत्सल प्रथम तीर्थंकर देव 'श्री केसरीयाजी' महाराज विराजमान हैं।

यह वही धर्म एवं कर्मभूमि है जिसमें शिरोमणि तप गच्छीय शाखा का प्रादुर्भाव हुआ था।

यह वही रत्नप्रसविनी भूमि है, जिसने स्वनाम धन्य भामाशाह जैसे दानशीर एवं स्वदेशीप्रेमी, तोलाशाह कर्माशाह जैसे धार्मिक नर-रत्नों को जन्म दिया। अस्तु एक दिन वह था कि जैन जाति सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक उन्नति के शिखर पर पहुँची हुई थी। आज दिनों दिन उसका ह्रास देख कर कौन ऐसा जैन होगा जिसको इस पर शोक न होता हो, किन्तु सज्जनो, शोक केवल प्रदर्शित करनेसे काम नहीं चलेगा। समय कार्य करनेका है। सत्र जातियाँ उन्नति की ओर बढ़ रही हैं। हम दिनों दिन पिछड़े जा रहे हैं।

हमारी अवनति का मूल कारण, समाजमें चारों ओर अविद्याका साम्राज्य होना तथा जैन सिद्धान्तों की अनभिज्ञताका होना है। जिस जैन धर्मने सारे संसारको, कल्याणका मार्ग बतलाया, सुख और शान्ति का पाठ पढाया, उसी धर्म के अनुयायी, अविद्या एवं धार्मिक सिद्धान्तों की अनभिज्ञता के कारण दिनों दिन दुखी हो रहे हैं।

अविद्याको मिटानेके लिये और जनतामें विद्या फैलाने के लिये कई प्रकारके साधन हैं। उपदेश देना, पुस्तकालयों पाठशालाओं और वाचनालयों आदिका खोलना भी आधुनिक समयमें शिक्षाप्रचार के मुख्य साधन हैं। इस देशकी राजधानी उदयपुर जैसी विशाल नगरीमें—जो 'श्री केसरीयाजी महाराजके विराजमान होनेके कारण समस्त जैन बन्धुओंका प्रधान स्थान (अड्डा) है—जैन संसारके हितार्थ एक वृहत जैन संस्थाकी बहुत कालसे आवश्यकता थी; जिससे स्थानीय एवं समस्त जैन बन्धु तथा जैनेतर, यथावकाश ज्ञानकी

वृद्धि कर सकें तथा धार्मिक सिद्धातोंका मनन कर अपने जीवनका लाभ उठा सकें।

इस अभाव की पूर्ति के लिये स्थानीय यति वर्य श्रीअनूपचन्द्रजी महाराजके अविरल उद्योगसे सम्वत् १९७७ वि० में 'श्री वर्द्धमान ज्ञानमन्दिर' नामक संस्था स्थापित हुई।

इस संस्थाका उद्घाटन, परम पवित्र वीर परमात्माके अनन्य भक्त अतुल पुरुषार्थी, जैन मुनि-शिरोमणि, शान्त, दान्त, धीर, वीर श्रीमद् जैनाचार्य श्रीविजयवल्लभ सूरिजी महाराजके पवित्र करकमलोंसे हुआ है।

इस संस्थाने, धार्मिक ज्ञान प्रचार के लिए तथा जनतामें सेवाभाव जागृत करने के उद्देश से शीघ्र ही '(१) श्रीवर्द्धमान-ज्ञान-मंदिर (पुस्तकालय) (२) श्रीवर्द्धमान पाठशाला (३) श्रीवर्द्धमान औषधालय, नामक तीन उपयोगी संस्थाएँ स्थापित कर दी हैं।

श्रीवर्द्धमान ज्ञानमन्दिर (पुस्तकालय) का उद्घाटन भी उपरोक्त श्रीमद् जैनाचार्य के करकमलोंसे ही हुआ है।

इस समय पुस्तकालय में करीब ३००० पुस्तकें हैं, जिनमें करीब २५०० के वहु मूल्य जैन धार्मिक ग्रन्थ हैं। इससे लाभ उठाने वाले सज्जनोंकी संख्या वर्ष में कई हजार तक पहुँचती है। इस नगरमें अपने ढंग का यह एक ही पुस्तकालय है। यह शहर जैन जातिका केन्द्र होनेके कारण तथा श्री केसरीयाजी महाराजकी यात्राके निमित्त, प्रति वर्ष कई मुनिराज अपने शिष्य—वर्ग सहित पधारते रहते हैं, उनके लिये तथा श्रावक वर्ग के लिए यही एक मात्र पुस्तकालय है, जिसको अभी तक तीनों समुदायोंके जैन मुनिराजोंकी सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। तथा इसकी सेवासे

उनको समयपर आवश्यक ग्रंथ मिल जानेसे बड़ा ही सन्तोष रहता है। आशा है कि ऐसे लोकोपकारी पुस्तकालयको सभी, उन्नतिकी चरम सीमापर पहुँचा हुआ देखना चाहेंगे।

श्रीवर्द्धमान ज्ञानपाठशाला एवं औषधालय का काम भी सुचारू रूपसे चल रहा है।

'सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति' के अनुसार, भविष्य तथा वर्तमान समय में, भी द्रव्यकी सहायताके बिना इस संस्थाका उन्नतिकी ओर अग्रसर होना कठिन मालूम होता है।

इसको अच्छे रूपमें चलाने के लिए कई हजार रुपयोंकी आवश्यकता है। आज-कल बिना आर्थिक सहायताके संस्थाओंका चलना कठिन ही नहीं; किन्तु असंभव है।

पुस्तकालयके लिए भी जैसा साहित्य चाहिए, वैसा, अर्थाभावके कारण, संग्रह नहीं हो सका। अन्य दोनों संस्थाओंकी भी वहीं दशा है।

ऐसी सार्वजनिक संस्थाओंका जीवन आप ही लोगोंके हाथ है। जैन जाति सदासे दानशीलताके लिए प्रसिद्ध है। जीवनमें ऐसे अनेक प्रसंग आते हैं जिनमें लाखों रुपये बातकी बातमें व्यर्थ कामोंमें खर्चे किये जाते हैं। ऐसे शुभ कार्यके लिए आप लोगोंसे ऐसे शुभ धार्मिक अवसर " पर्युषण " पर इस लोकोपकारी संस्थाकी सहायताके लिए निवेदन किया जाता है; आशा है आप इस अवसर पर, इस शुभ कार्यमें, हाथ बँटाकर अवश्य ही अपनी उदारताका परिचय देंगे।

सहायता भेजनेका पताः—

कसेरोंकी ओल
उदयपुर (मेवाड)
संवत् १९८२ भाद्रपद शुक्ला १

भवदीय—निवेदक
श्रीसंघका दास
मालमसिंह दोसी. बी. एस. सी. (बम्बई)
मंत्री—श्रीवर्द्धमान ज्ञानमन्दिर.

(७)

(चाल-मजा देते हैं क्या यार, तेरेवाल घुंघर वाले ।)

धन २ विजयवल्लभ सूरीराज डंका धरमत्रजानेवाले ॥ अंचली ॥

श्री गुर्जर देश मझार, वड़ोदा कुलश्री श्री माल।
इच्छा श्री दीपचंद गुणधाम-की इच्छा पूर्ण करनेवाले ॥ १ ॥ ध० ॥

लघुवयमां सत संगसार श्री विजयानंद सूरीराज ।
धर लीनो मनवैराग भवदधिपार उतरनेवाले ॥ २ ॥ध०॥

गुरुसंघ विनयको धार- इच्छा सम वर्ते सार ।
किया जगमें अति उपकार विद्या प्रेम बढ़ाने वाले ॥ ३ ॥ध०॥

विजयानंद सुरीश्वर बाग- था फूल हुवा गुलजार ।
सींचें गुरूजल पंजाब- आदिपे प्रेम धराने वाले ॥ ४ ॥ध०॥

वनिताश्रम शिक्षणसार- विद्यालयका नहि पार।
औषधालय और दुष्काल केलवणी फंड खुलानेवाले॥५॥ध०॥

पूजा निन्यानवेसार ऋषीराज लोककी धार ।
अष्टापद एकवी प्रकार नंदीश्वरके गुणगाने वाले ॥६॥ध०॥

आदि पारस महावीर परमेष्टी सब जगहीर ।
तारक तीरथ मन धीर- की रचनाकरके बतानेवाले॥७॥ध०॥

व्रत द्वादश श्राद्ध विचार- रचे रत्न त्रयी सुखकार ।
स्तवनादिका नहीं पार के रस्ता सरल दिखानेवाले॥८॥ध०॥

तब संघने किया विचार गुरुगुण मुक्ताफल माल ।
पद योग्य सूरी निर्धार आतम रूप बतानेवाले ॥ ९ ॥ध०॥

इन्दु सर युगकर साल चंद्र मगसर पंचमी श्रीकार ।
साडे सात बजे शुभकार सूरीपद संघ समर्पणवाले ॥ १० ॥ध०॥

केशवसुत दोनों बाल रखे तुम चरणोंमें भाल ।
वह आसपूर रहनार- सदाशिर आशा धरनेवाले ॥ ११ ॥ध.॥

---

(८)

वल्लभ-वृत्त-विलासः ।

मङ्गलानन्दसदनं, सदनन्तमहोनिधिम् ।
प्रभुं शब्दार्थजननं, जननन्दकमाश्रये ॥ १ ॥
श्लोकी वल्लभविजयः, सूरिरुपश्लोक्यते मया श्लोकैः ।
आर्याणां खलु चरितं, रसभरितं कं न मुखरयति ? ॥ २ ॥
यस्य परां गुणगीतिं, तथा च लोकातिशायिनीं नीतिम् ।
सुजना अपास्य भीतिं, शृण्वन्तो न स्मरन्त्यमृतपीतिम् ॥
वल्लभयश उपगीतिः, शमयत्यरतिं सतां मनसः ।
दीप्तिर्दीप्तिपतेर्यति, यथा तमःसंहतिं जगताम् ॥ ४ ॥
अक्षरपङ्क्ति–प्राप्य यदीया । भाति गुणाली मौक्तिकमाला ॥ ५ ॥
इह मुनि-सूर्ये तपति नितान्तम् । शशिवदनानां भवति गतिः किम् ? ॥६॥
अस्मिन् वल्लभसिंहे, दृष्टे दान्तिनखाग्रे ।
कामेभस्य निकामं, नष्टा स्याद् मदलेखा ॥ ७ ॥
श्रीवल्लभमुनेः श्लोको, लोके माति कदापि नो ।
मित्रमन्त्रा यथा दुष्ट–लोके माति कदापि नो ॥ ८ ॥
भाति भव्यं शमदममयं वल्लभमानसम् ।
गद्यपद्यमयं चम्पू–काव्यं संराजते यथा ॥ ९ ॥

---

१ कीर्तिमान् । २ कीर्तिः ।

वल्लभ—सूरीश्वहृदे[1]—माणवकाक्रीडनकम् ।
द्रागिति[2] जैनं चरितं करोति चेतो महताम् ॥ १०

महात्मवल्लभस्मृतिः सतामभीष्टकामदा ।
द्युसन्नगस्वरूपिणी[3] विभाति भावुका भृशम् ॥ ११ ॥

एतत्सूरिस्वान्ताश्लिष्टा जैनी भक्तिर्भूयो भाति ।
यद्वत् सम्यक् शोभां धत्ते मेघाश्लिष्टा विद्युन्माला ॥ १२ ॥

पर्षदि भान्ती वल्लभमूर्तिः श्रोतृजनानां करोति चित्तम् ।
केलिवने किं चम्पकमाला चोरयते नो दर्शकचक्षुः ॥ १३ ॥

वल्लभसूरेर्देशनया बोधित आशु श्रोतृगणः ।
कर्हिचिदवोद्यत्कलुषे कर्मणि बन्धं नो धत्ते ॥ १४ ॥

साङ्गोपाङ्गालंकृतिः सुप्रसन्ना, दोषापेता सद्रसा सद्गुणाढ्या ।
माधुर्यश्रीशालिनी वल्लभोक्तिः, कस्मै दत्ते नो मुदं वल्लभेव ॥ १५ ॥

भो भो भव्या! भव-भव-भवक्लेश—दोदूयमाना !
मनाहः सद्गुणगणगृहं शान्तदान्तान्तरात्मा ।
आत्मारामस्मरणनिरतो वन्द्यतां वन्द्यपादोऽ—
मन्दाक्रान्तान्तररिपुरयं[4] वल्लभाचार्यवर्यः ॥ १६ ॥

एतत्सूरेश्चरणयुगली सेवाभाजां हृदयसरसि ।
आतिष्ठन्ती सुविशदगुणा हंसी वैषाऽपहरति मनः ॥ १७ ॥

वल्लभ ! वल्लभ ! यास्तव पादयुग्ममदोधकं[5] आनतिमार्गम् ।

---

१ हृदेव माणवको बालकः तस्य आक्रीडनकं खेलनकम् (खिलौनेति प्रसिद्धम्)। २ अति द्राक् शीघ्रम् । ३ द्युसदां देवांना नगो वृक्षः कल्पवृक्ष इत्यर्थः, तत्स्वरूपिणी तत्तुल्येत्यर्थः । ४ अमन्दं यथा तथा आक्रान्ता वशीकृता आन्तरा अन्तर्भवा रिपवो येन सः । ५ अदः इदं (पादयुग्मम्) अध एव अधकः नीचैः आनतिः प्रणामस्तस्य मार्गम् ।

आनयते सकृदप्यसकृत् स उन्नतिमार्गमहो ! उपयाति ॥ १८ ॥
श्रीवल्लभपर्वैवच इन्द्रवज्रा उज्जृम्भितुं चेत् किल नोत्सहेरन् ।
दुर्वादिदुर्वादक-पर्वतोक्ति-पक्षा अपक्षाय न तद् व्रजेयुः ॥ १९ ॥
श्रीवल्लभाचार्यगिरां समक्षं दुर्वादिनः किं प्रभवन्ति वक्तुम् ।
स्थातुं सहन्ते खलु किं गिरीन्द्रा उपेन्द्रवज्रायुधमक्षताङ्गा ॥ २० ॥

सम्यक्त्वलक्ष्म्या उपजातिमन्त-
यदीच्छथ द्रागयि ! भक्तिमन्तः ! ।
श्रयध्वमार्यं मुनिवल्लभं तत्
संतारयन्तं भविनां समाजम् ॥ २१ ॥

आख्यानकी या विपरीतपूर्वा
मुनाविहोक्तिर्नहि साऽपरत्र ।
इति स्वचित्ते सुतरां विचार्य
निधत्त भो वल्लभ-देशनां द्राक् ॥ २२ ॥

साधुसाधितमनोरथोद्धता-
ऽखण्डपातकतमःकदम्बका ।
ज्ञानधामनिधिरर्हदाकृति-
स्त्वन्मनोनभसि वल्लभ ! स्थिता ॥ २३ ॥

स्वागतादरविधिं कुरुते यो-

---

१ वचांसि एव इन्द्रस्य वज्राः । २ स्वार्थे कः । ३ अपक्षाय विलीय । 'क्षै क्षये' इत्यस्य रूपम् । ४ इन्द्रस्य यद् वज्रायुधं तस्य समीप इत्यव्ययीभावः । ५ आख्यानके व्याख्याने तत्संबन्धिनी । ६ अविपरीता स्वधर्मानुकूला सा चासौ पूर्वा मुख्या इति कर्मधारयः । ७ मनोरथा इत्यन्तं पृथक् पदम् ; उद्धतं नाशितमित्यर्थः । ८ ज्ञानानां, धाम्नां तेजसां च निधिः । धामनिधिः । सूर्यश्च ।

वल्लभस्य मुनिवल्लभसूरेः ।
उत्सवोत्कलिकया[1] किल तस्य
स्वागतानि कुरुते शिवलक्ष्मीः ॥ २४ ॥

अर्हत्पङ्क्तिस्ते वल्लभाचार्यवर्य !
शान्ते स्वान्तेऽलं राजते वैश्वदेवी[2] ।
तेन त्रैगुण्यात्[3] सत्कलानां कलाप-
स्त्वय्येकस्मिन् भो लोक्यते चारु लोकैः ॥ २५ ॥

शुभशान्तिगृहे रमणीयतरे
मुनिवल्लभसूर्युपदेशवने ।
रसवत्फलदायक—वाक्य—तरौ
मुदितोऽट कदापि कदापि सखे ! ॥ २६ ॥

मुनिवल्लभाननविधूदयिता प्रमिताक्षरा सुगमतामयिता ।
सुतदेशनामय—सुधाकणिका
परिपीयतां वचनधोरणिकां[4] ॥ २७ ॥

यदा ते मुने वल्लभाचार्यवर्य !
स्फुरेद्देशना गारुडी मन्त्र—शक्तिः ।
भवेद्देव—देव-प्रसादात्तदानीं
महामोह—बाधा—भुजङ्गप्रयातम् ॥ २८ ॥

द्रुतविलम्बितसंशयदोलिकां

---

१ उत्कलिका उत्कंठा । २ विश्वस्य जगत इयं वैश्वी सा चासौ देवी देवता इत्यर्थो ज्ञेयः । ३ त्रैगुण्यात् अर्हत्पङ्क्तेश्चतुर्विंशत्यात्मिकायाः त्रिगुणितः द्वासप्तत्यात्मक इत्यर्थः महापुरुषे द्वासप्ततिः कला वसन्तीति जैनानां मतम् । ४ धोरणी श्रेणी ।

त्यजत मे शृणतोक्तिमतोलिकाम् ।
अयि जनाः ! सुदृढासनमास्यतां
विजयवल्लभसूरिरुपास्यताम् ॥ २९ ॥

चपलाऽऽशु कुधी—हरिणीप्लुता-
न्यभितनोतितमां भव—कानने ।
परमुत्कट—वल्लभ—केसरि-
ध्वनिमवाप्य जवेन पलायते ॥ ३० ॥

गृहस्थतायां व्यवहारपद्धति-
सुचातुरीं प्राप्तमिव व्यवस्थिताम् ।
जगत्यमुष्मिन् मुनिराज—वल्लभः
सुवैश्य—वंशस्थतया व्यराजत ॥ ३१ ॥

संसारसिन्धोरपसारतां विदन्, गार्ह्यं परित्यक्तुमिवैतदेधकम् ।
श्रीमाञ्जयानन्दशुभाभिधानक—सूरीन्द्रवंशानुगते विराजते ॥ ३२ ॥

श्रीमन् ! मुने ! तव विशदप्रभावती शीतांशुतोऽप्यतिरुचिरा चिरार्जिता ।
कीर्तिः श्रयत्युदधिमुपागता ततो गम्भीरता भजति भवन्तमीहितम् ॥ ३३

धन्यस्त्वं स्मरजयमल्ल वल्लभर्षे !
यत्पूर्णागमसुरहस्यपूरितं स्वे ।
एकाग्रे हृदि परमप्रहर्षिणीह
श्रीतीर्थङ्करनिकरं करोपि गुप्तम् ॥ ३४ ॥

---

१ न विद्यते तोलः साम्यं यस्याः सा तथोक्ता तां अतुल्यामित्यर्थः । २ एतस्य संसारसिन्धोः एधकं वर्धकम् । ३ श्रीमान् भवानित्यर्थः । ४ विजयानन्द इति पूर्ण नाम ।

आचार्य ! सज्जनवनस्पतिसंविकास-
लीलावसन्त ! तिलकादनगारकाणाम् ।
व्याख्यानदक्ष ! भवतो भव—तोयराशि-
निस्तारसाधनमिह प्रविदन्ति भव्याः ॥ ३५ ॥

स्वगुरुमभिविनीतः स्वस्वभावेन शीतः
सफलसकलकार्यैः श्रीयुतो वल्लभार्यः ।
स्फुरति जिनपदाब्जे यस्य चेतःप्रवृत्तिः
प्रकटिततरभूपो भक्तिसीमाऽलिनीव ॥ ३६ ॥

श्रमणकशिरोमाणिक्य! त्वां नु वल्लभ! वल्लभं,
स्वनयनपथाध्वन्यीकृत्य प्रकृत्यविदूषितम् ।
बहुलबहुलं विध्यन्त्युग्रैः कटाक्षशरैः परं,
धृतयममहासन्नाहत्वाद् हता हरिणीक्षणाः ॥ ३७ ॥

मुने ! भ्रान्त्वा भ्रान्त्वा जगति गतिहीना गुरुगुणा
विचिंत्यौचित्येन त्वयि परगुरौ वासमयिताः ।
यथान्विष्यान्विष्य प्रथममथ मेरौ शिखरिणी-
हितं लीलावासं स्थिरमनुभजन्ते सुमनसः ॥ ३८ ॥

विभाति भवतो मुने ! सुभवनेन पृथ्वी क्षणा-
द्विभाति गृहणी यथा सुभवनेन पृथ्वीक्षणा ।
अतः समुचितं भवान् शुचिमहो महाराजति
सुकीर्तिरपि कीर्तिता शुचिमहोमहा राजति ॥ ३९ ॥

---

१ मुनीनां (तिलकात्) । २ भ्रमरीव । ३ धृतसंयमकवचत्वेन । ४ परास्ता इत्यर्थः । ५ (मेरौ) पर्वते अग्रे ईहितमितिच्छेदः । ६ सुजन्मना । ७ सुगृहेण । ८ आयतनेत्रा । ९ विमलोत्सवः । १० महान् राजेव आचरति । ११ शुचि श्वेतं महः तेजः यस्य तथाभूतश्चन्द्रः तद्वत् महः तेजो यस्याः सा श्वेतकान्तिरित्यर्थः ।

सम्यक्त्वप्रवराऽशतद्रुतिमिता शुद्धा सदेरावती
रम्या चारुविपाशिका खलु महाधी–चन्द्रभागा मुने ! ।
स्थाने पञ्चनदीकृतेष्टि–झरिणीसूतिस्त्वयाऽऽत्मस्थिति-
स्तस्मात्पञ्चनदीय इच्छति सुधीशार्दूल ! विक्रीडितम् ॥

राजत्कान्त्यातपत्रो गुरुवरविजयानन्दसेवी महात्मा
साधीयः शिष्यसेनः परिलसितरजोहारि सच्चामरोऽयम्
विध्वस्ताभ्यन्तरारिर्ललितसुचिवको वल्लभाचार्यराजो
नित्यानंदामृतश्री वरवर–वरण–स्रग्धरात्मा विराज्यात्

१ अयमर्थः–हे सुधीशार्दूल ! पण्डितपुङ्गव ! मुने ! त्वया आत्मस्थितिः स्थाने युक्तं पञ्चनदीकृता पञ्चापदेशीकृता, तस्मात् ततः पञ्चनदीयः मनुष्य इत्यर्थः । विक्रीडितं केलिं इच्छति । अस्यां (भवदात्मस्थितौ) इति शेषः । कथम् ? इत्यत आह–सम्यक्त्वेति । सम्यक्त्वेन (सम्यग्) ज्ञानेन प्रवरा, । पञ्चनदपक्षे सम्यक्त्वेन समीचीनतया प्रवरा । शतं शतप्रकारेण द्रुतिः चापल्येन इतस्ततो गमनं तदभावं इता प्राप्ताः; अन्यत्र शतद्रुः 'सतलज' इति प्रसिद्धा नदी तया तिमिता आर्द्रीभूता । शुद्धा इति स्फुटम् । सदा इरावती प्रशंसायां मतुप् प्रशस्तवाणीसहितेत्यर्थः । अन्यत्र इरावती 'रावी' इति प्रसिद्धा नदी तया रम्या । चारुः तथा विपाशिका पाशहीना अन्यत्र चारुः विपाशा "व्यासा" इति ख्याता नदी यत्र । महती धी एव चन्द्रभागा 'चनाव' इति प्रथिता नदी यत्र तथा इष्टिः इच्छा मनोरथ इत्यर्थः सैव झरिणी 'जेलम' इति प्रख्याता नदी तस्याः सूतिः प्रभवस्थानं; इति रूपकेण साम्यम् । २ वल्लभः आचार्याणां राजा इति तस्य राजतां प्रकटयति । राजन् देदीप्यमानः कान्तिः कान्तिविजयप्रवर्तक एव आतपत्रं छत्रं यस्य सः । राजापि विराजमानकान्तिकं आतपत्रं धरति । तथा रजोहारि रजोहरणं तस्य चामरम् । तथा ललितः ललितविजयमुनिः सचिवो मन्त्री यस्य । अन्यत् स्पष्टम् । एतादृश आचार्यराजः विराज्यात् । कथंभूतः सन्नत आह—नित्यं आनन्दो यत्र तथाभूता या अमृतश्रीः मुक्तिलक्ष्मीः तस्या या वर–वरस्य श्रेष्ठभर्तुः वरणस्रक् स्वयंवरमाला तस्या धर आत्मा यस्य सः । इत्यन्ते आशंसनम् । कविनाऽन्ते नित्यानन्द इति स्वनामापि सूचितम् । शम्

वल्लभवृत्तविलासं श्रुतबोधानुक्रमोक्तसद्वृत्तम् ।
अकुरुत नित्यानंदो ललिताविजय-धीमदनुरोधात् ॥

इति श्रीयोधपुरवास्तव्येन दाधीचकासल्योपाख्येन आशुकविकविभूषण-कविराजेन पण्डितनित्यानन्द-शास्त्रिणा रचितो वल्लभवृत्तविलासः समाप्तः ।

---

(९)

श्रीमद्विजयवल्लभाभ्युदयम् ।

कविमण्डली—[सहर्षोद्गारमुच्चैः]

दिष्ट्या वल्लभ एष तारकपतिः सन्मङ्गलात्मा स्फुटं
प्राक् चन्द्रप्रभवस्ततः परगुरोर्हर्षाद् गुरुत्वं गतः ।
जाग्रत्काव्यतया मतः किल ततो दुर्वादिशैलेऽशनी-
भावं बिभ्रदभूतपूर्वमधुना सूर्यासनं लब्धवान् ॥

[इत्यादि पुनः पुनः पठति]

श्रावकमण्डली—[निशम्य]

अयि भोः सुकोमलकाव्यकलाकलापालापकुशले ! कविमण्डलि ! अमन्दमकरन्दस्यन्दसिक्तानीव सुधारसमयानीव परमाश्चर्यगर्भितानीव किं कर्णपूरीकारयसि, कौतूहलेन सुरम्यरचनानि वचनानि । अहो ! एतैर्नितान्तं चित्रीयते नश्चेतः । किं, तारकपतिश्चन्द्रः क्रमशस्तत्तद्ग्रहरूपमवगाहमानोऽधुना भानुतां बिभर्त्ति ?

कविमण्डली—

---

१ चन्द्रोऽपि । २ बुधोऽपि । ३ शुक्रतया इत्यपि । ४ शनित्वमपि । ५ सूर्यस्यासनमित्यपि ।

किं नामात्राश्चर्य्यम् ? एष मुनिराजः श्रीवल्लभविजयो दिष्ट्याऽधुना सूरिपदमलंकृतवानिति समुचितमेव सत्यमेवाभिनन्दितवत्यस्मि एनम् ।

श्रावकमण्डली—

विदुषि ! यद्येतेन निरवद्येन पद्येन अमन्दानन्दसन्दोहलाभवती भवती अमुमर्थं ध्वनयति, नयति च मामपि एतादृशीं सदृशीं दशां तर्ह्यहं अधिकाधिकाधिकाराधिगमाऽसमसमाचारसञ्चारणेन परमकृपाक्रीता भवितास्मि भवत्याः ।

कविमण्डली—

श्रवणरसिके ! श्रवणीयं खलु इदं श्रवणीयं सावधानम् ।

एष हि मुनिमहानुभावः—

श्रीमालिवैश्यान्वय—खे विराजता श्रीदीपचन्द्रेण वटोदरे पुरे ।
इच्छात उत्पादित उच्छलच्छविर्लोकैर्य आलोक इवावलोकितः ॥

इति पितुर्नाम्नो दीपचन्द्रस्य नामैकदेशनिर्देशेन दर्शितं चन्द्रप्रभव इति ।

अथ पुनः—

उद्गच्छत्तपगच्छकाच्छगगनाभोगेोपभोगोष्णगो-
रात्मारामपराभिधान—विजयानन्दाख्यसूरीशितुः ।
तत्पादाम्बुजसेवनभ्रमरितस्वेन प्रशिष्येण यः
श्रीलक्ष्मीविजयाऽर्चि—हर्षविजयाख्येनर्षिणा दीक्षितः ॥

अत एवोपश्लोकितं परगुरोर्हर्षाद् गुरुत्वं गत इति ।

तत एष मुनिशिरोमणिः—

---

१ भ्रमरीकृतात्मना । २ अर्ची पूजकः शिष्य इत्यर्थः ।

गुरुसमधिगताऽर्हत्सिद्धसिद्धान्तमर्मा,
सुमतिमदुपलब्धव्याकृतिन्यायतत्त्वः ।
अतिबहुपटिमानं प्राप्तवान् काव्यशास्त्रे,
सुरगुरुरिव वाचोयुक्तिमाधत्त युक्ताम् ॥

एनमेवाशयमनुसृत्य स्थाने वर्णितं प्राधान्येन जाग्रत्काव्यतया मत इति । तदनन्तरमनन्तरोक्तामविदूष्यवैदुष्यशक्तिं चावगाहमान एष महाशयः—

सभासु भासुरमतिः स्वमतं सममण्डयत् ।
दुर्वादिगिरिपक्षांश्च वज्रवत् समखण्डयत् ॥

एतदेवाभिप्रेत्य सुनिपुणं भणितं दुर्वादिशैलेऽशनीभावं बिभ्रदिति ।

अधुना तु महामान्यम्—

उज्जाग्रज्जिनधर्मशासनहितार्थप्रार्थ्यमानोत्तम-
न्यायाम्भोनिधि—सूरिवर्य—विजयानन्दाप्तपूर्वाज्ञया ।
प्राप्तप्रागधिकारमेनमधुना पञ्चापजः प्रागिव,
संमत्याऽऽर्हतसंघ आर्यविदुषां सूरेः पदं प्रापयत् ॥

एतदभिप्रेत्यैव सूर्यासनं लब्धवानिति युक्तमुक्तम् ।

श्रावकमण्डली—

अहो ! परमाह्लादोदधिनिमग्नमिव मदीयं मानसं, पुलकितानीवाङ्गानि, आस्वाद्यरसाप्लुतमिव प्रसादसदनं वदनं, तृप्ते इव कौतुकश्रवणप्रवणे श्रवणे । परं कृपया विशदयतु विषययुगलकम्; पूर्वं तावत् 'प्रागिव' इति । कदा कं कुत्र पञ्चाप-संघः सूरिपदं प्रापितः ? अथ च आर्यविदुषामिति तन्नामस्फुटीकरणेन पुनातु

अभिमत सुरसरसनां रसनां स्वकीयां, मदीयं च कौतूहलमयं श्रवणयुगलम् ॥

कविमण्डली—एषा करोमि—

अभूल्लवपुरे[1]ऽत्रैव पूर्वं वर्षचतुःशतात् ।
भानुचन्द्र उपाध्याय आचार्यो जिनसिंहकः ॥

एतेन भवत्याः प्रथमः प्रश्न उत्तरेण विशदीकृतः ।

अथ च—आर्यविद्वांसस्तु—

गुर्वाज्ञाऽभ्यनुवर्तका जिनजुषां पुंसां सुखावर्तका,
दुर्मार्गात् सुनिवर्तका अपमति—ध्वान्तैकसंवर्तकाः ।
ये राजन्ति प्रवर्तका इति मताः शान्त्याः समावर्तकाः
हृद्रङ्गे ननु कस्य कान्तिविजया न स्युश्चिरं नर्तकाः ? ॥

अपि च—

आत्मारामोऽभिरमित आत्मारामे हि येन सः ।
सुमतिर्भाति सुमतिविजयो विजयोदयी ॥

तृतीयस्तु महात्मा—

समायाते सम्यक् सलिलधरकाले सपदि यः
स्थिरं वासं वासं रचयति मुदा मानसैमितः ।
तथा शेषे काले भुवि भुवनभूत्यै विहरति
यथा हंसो हंसोपमितसयशा हंसविजयः ॥

१ अत्रैव लवपुरे लाहोरनगरे इति मनोनिर्दिष्टस्य लवपुरस्य बहिः प्रकटीकरणम् ।
२ 'प्रह्वे' ति नियमेन संयोगपरोऽपि 'तिः' अत्र लघुरेव । ३ मानेन संमानेन संगतः ।
हंसोऽपि जलधरसमये मानसं सर इतो भवति ।

इत्यादयोऽन्येऽपि आर्यविद्वांस उन्नेयाः । इति भवत्या अपराऽपि शङ्का समाहिता ।

अत एव सांप्रतं सांप्रतं[1] समभिनन्दितं मया—

[" दिष्ट्या वल्लभ एष " इत्यादि पुनः पठति].

श्रावकमण्डली—

[समाकर्ण्य] आर्ये ! कविमण्डलि ! कृतार्थीकृतास्मि भवत्या एतेन गुरुवरोच्चतमसमुचितपदप्राप्तिरूपपरमप्रमोदवृत्तश्रावणेन ।

कविमण्डली—

अपरं पुनस्ते प्रमोदविषयं विशदीकरोमि—

सूरीभूय तदा तं व्यधादयं[2] शोभनं[3] ह्युपाध्यायम् ।
यः पंन्यासाँल्ललितोमङ्गक-विद्यामुनीन्[4] व्यधक्त प्राक् ॥

श्रावकमण्डली—

अहो ! उत्तरोत्तरशुभसमाचारप्रदानादात्मवशीकरणेनापि नाहं भवत्या अनृणीभावं प्राप्तमुत्सहे । [इति मुहुर्मुहुः पादयोः पतित्वा]

धन्यो दुर्लभदर्शनोऽयममृतश्रीवल्लभो वल्लभो
धन्यः पञ्चनदीयसंघ उदितश्री-कीर्तितः कीर्तितः ।
धन्यस्त्वं च शुभाभिनन्दनविधौ सत्पेशला[5] पेशला[6]
धन्या तच्छ्रवणादहं पुनरघप्रोद्धर्षणाद्धर्षणा[7][8] ॥

कविमण्डली—

किमितः परं स्पृहणीयम् ? तथाप्याशासे—

अज्ञानध्वान्तराशिप्रविदलनपटुः सद्विवेकप्रकाश-

---

१ युक्तम् । २ अयं वल्लभसूरिः । ३ शोभनविजयम् । ४ ललितविजयं, उमङ्गविजयं, विद्याविजयमुनिं च । ५ सुचतुरा । ६ मनोहरा । ७ पापनाशकात् तच्छ्रवणात् । ८ हर्षोन्मुखी ।

संचारात्तप्रशंसो मृदुतरवचनापूर्वपीयूषवर्षी ।
नक्षत्रैर्वा स्वशिष्यैः सह चरणविधिप्राप्तसंपूर्णदाक्ष्यै-
श्चन्द्रो वा वल्लभार्यो जनकुमुदगणं बोधयन् सन्विराज्यात् ॥

इति

हृदय–शीतलता कृतिचन्दनं सुमुनिसेवकसाधितवन्दनम् ।
इति मया रचितं बुधनन्दनं विजयवल्लभसूर्यभिनन्दनम् ॥

इति श्रीयोधपुरवास्तव्येन आशुकवि–कविभूषणकविराजेन पण्डित-
नित्यानन्दशास्त्रिणा रचितं विजयवल्लभाभ्युदयं समाप्तम् ।

---

(१०)

भक्तामरपादपूर्तिरूपासूरिराजस्तुतिः ॥

वर्ण्यं कथं त्वपुरं ननु यत्र शान्ति-
दत्त्वा पदं प्रतिनिधेर्हरिविष्टरस्थः ।
आशंसयद् विजयवल्लभसूरिमादा–
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥ १ ॥

यः संवदत्तपदआर्हतभक्तिवीरो,
मात्सर्यरोपमदमोहमहीपुसीरः ।
स्वार्थं विहाय परमार्थरतं कवींद्रम्,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथगं[1] जिनेन्द्रम्[2] ॥ २ ॥

श्रीवीरशासननिकेतनकेतनाभं,
सूरेः पदं शमपदं जनजीवनाभम् ।
सूरीश ! भूरितरभारभरं विना त्वा–
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ? ॥ ३ ॥

---

१ प्रथा विस्तृतामा लक्ष्मी शोभा यस्य । २ जिन इव इन्द्र आत्मा यस्य ।

शाब्देतिहासमिपगागमनक्रचक्रं,
ज्योतिष्कमन्त्रसमतन्त्रतरङ्गलोलम् ।
विज्ञाननीतिनयतर्कमयं विना त्वां,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ? ॥ ४ ॥
अज्ञानतापहरणाय गुरो ! प्रजानां,
पद्मांम्बुनीवृति विभो विहृतं त्वया यत् ।
नो चित्रमत्र जनको भयदेऽपि देशे,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ? ॥ ५ ॥
धर्माङ्कुरः प्रकटितो भविचित्तभूमौ,
तत्रोपदेशजलदः किल नाथ ! हेतुः ।
माधुर्यमुद्भवति यत्कलकण्ठकण्ठे,
तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतुः ॥ ६ ॥
अद्यापि यत् समवलोकनमार्गमेति,
जैनव्रतोपचितिरोधिजनः क्वचिद्यः ।
चित्रं न तत्र, यदि कोऽपि ददर्श दर्यां,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमंधकारम् ॥ ७ ॥
वाणीं निपीय जनवल्लभ ! वल्लभां ते,
वैराग्यमागतवती सुजनस्य बुद्धिः ।
पात्रस्य गौरवमिदं बिसिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा मुखं तव विभो प्रशमं प्रसन्नं,
लोकेऽत्र लोकनिवहाः प्रमदं भ...
प्रद्योतनं समुदितं खलु वीक्ष्य
पद्माकरेषु ...

दीक्षार्थमागतवतोऽसुमतोऽनुगृह्य,
दत्सेऽपवर्गपदवीं पदवीं[1] स्वकीयाम् ।
तस्यैव जन्म सफलं जगति स्वकीय-
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं[2] करोति ॥ १० ॥

ये सत्यशोधनपराः बहवोऽन्यधर्माः,
पीत्वेह भङ्गरचनं वचनं त्वदीयम् ।
गृह्णन्ति नैव खलु ते कुमतं सुधाशी,
क्षारं जलं जलनिधेरशितुं क इच्छेत् ? ॥ ११ ॥

वृद्धोऽपि बोधलवलेशयुतः समन्तात्,
पादं विमुंचति पथे नहि दुर्विदग्धः ।
संपूर्णबोधकलितस्य तवैव चित्रं,
यस्ते समानमपर न हि रूपमस्ति[3] ॥ १२ ॥

शास्त्रार्थवादनिपुणोऽपि नु भीमसेनो,
भीमस्त्वया खलु जितः प्रसभं स्वयुक्त्या[4] ।
चन्द्रस्य विम्बमिव तस्य मुखं तदाभूत्,
यद्वासरे भवति पाण्डु पलाशकल्पम् ॥ १२ ॥

मा वंचिताःस्युरवबोधचयैः सुशीलाः,
संसारवालकचया इति सद्विचाराः ।
सन्त्यत्र नाथ ! भवतो भवतोदरूपाः,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ? ॥ १४ ॥

तेषां प्रचारवशतः किल वीरपूर्व-
विद्यालयो विरचितो जिनधर्मशिक्षः ।

---

१ पदवी मार्गः २ ना×पुरुष । ३ रूपं×स्वभावं जले जडे×अज्ञाने । ४स्वयुक्त्या-युक्तियुक्तं-विरोधनिर्णय-भीमज्ञानत्रिंशिकारूपं ग्रंथयुग्मंविरचय्येति परामर्शः ।

ईर्ष्यालयो धुवति तं किमु, घोरवातैः
किं मंदाराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्? ॥ १५ ॥

विद्यालयस्य सुफलं विभुवीरनाम्नो,
विद्याप्रकाशलसितं जिनधर्मयुक्तम्
प्रीत्या वदन्ति शिशुवृन्दमवेक्ष्य लोका,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥ १६ ॥

चण्डद्युतिर्निजगवा नु मनोगुहानाम्,
हर्ताः तमो स्खलनदं मलिनं जनानाम् ।
तस्माद्वदामि जगतीह भयेन शून्यः,
सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके ॥ १७ ॥

नित्यं प्रसन्नवदनं सदनं कलाना-
मानन्ददं कुवलयस्य तवार्य जाने ।
प्रौढप्रभावमपि तापहरं जनानां,
विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम् ॥ १८ ॥

पीयूषयूषनिभयुक्तिधरोक्तिमेघै-
राप्लाविता यदि रसा बहुधान्यवर्धैः ।
आचार्यमानिनिवहैर्नदकृन्मदान्धैः,
कार्यं कियज्जलधरै[1]र्जलभारनम्रैः ॥ १९ ॥

वाचंयमेश ! चरणे रमते जनाना-
माध्यात्मिकेषु न च संप्रतिकालजेषु ।
चेतो यथा सुरमणौ लभते प्रमोदं,
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥ २० ॥

---

१ जलधरैः जडधरैः डलयोरैक्यात् ।

सर्वांगसुंदरतया जितकामदेव !
त्रैलोक्य मोद जनने सुररत्नतुल्यः।
चित्रं तदेव तव यन्न रमाविलासः,
कश्चिन्मनोहरति नाथ ! भवान्तरेऽपि ॥ २१ ॥

जैनेन्द्रशासनमिदं प्रसभं प्रकाशं,
स्थाने निनाय सुखदं नु तवैव वाणी।
आलस्यदं प्रमददं तरणिं तमोदं,
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥ २२ ॥

संसारजीवभरचित्तचकोरचन्द्रा-
चारं विचारमखिलं चरणं त्वदीयम्।
शुद्धां गिरं च कथयन्ति निरीक्ष्य लोका,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पन्थाः ॥ २३ ॥

देदीप्यमानकरुणानिलयं पवित्रं,
स्याद्वादभङ्गनयमानसराजहंसम्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य महाप्रभावं,
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥ २४ ॥

वैधव्यमूलरुगरुंतुदटुःखभाजा
मज्ञानसिन्धुजलपूरसमाप्लुतानां।
विश्रामधामकरणादबलाजनानां,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥ २५ ॥

---

१ भवान्तरे भवमध्ये।

आनन्दसूरिचरणाब्जमधुव्रताय,
विश्वार्तिवारणसमर्पितजीवनाय ।
दुर्बोधसुप्तनरनेत्रविभाकराय,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ॥ २६ ॥
क्रोधाग्निधूमभरशोणितनेत्रयुग्मो,
मायोरगीविषविकारविदूषितात्मा ।
मानोदकोक्षितवपु र्नु मया जगत्यां,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥ २७ ॥
नित्यं व्रतादिभवकान्तिकदम्बकेन,
देदीप्यमानकचपुञ्जविभाग ! नाथ ! ।
आस्यं विभाति भवतोऽत्र महाप्रकाशं,
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥ २८ ॥
अज्ञानगाढतिमिरं तव गोविलासैः,
बालस्य वृद्धवयसः करपीडनात्म ।
नाशं गतं व्यसनदं समजीवबंधो !
तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥ २९ ॥
म्लानंयुगावनितलं विमलं विधाय,
शुभ्रं यशो धवलयत् सुरलोकमार्गम् ।
मन्ये गतं मुनिवरेश ! तवैव शीघ्र,
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥ ३० ॥
रत्नत्रयं हृदयमध्यविराजमानं,
संसारसागरशरण्य ! मुने ! तवेदम् ।

मन्येऽस्ति नाथ ! भुवने विमलं हि भावि;
प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥ ३१ ॥
वाणीं सुधारसझरीं, शिवमार्गयानं,
सर्वेऽन्यधर्मनिरता अपि ते निपीय ।
मत्वाहि मुक्तिरमणीरमणानि पाद-
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥ ३२ ॥
सामाजिकोन्नतिपरा मनसः प्रवृत्ति-
र्याता यथा तव तथा न मुने ! परस्य ।
यादृग् विभो भवति निश्चलता ध्रुवस्य,
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥ ३३ ॥
पूजाविरोधिनिपुणार्यसमाजभाजां,
गन्तुं भवार्णवतले तरिभञ्जकानाम् ।
एतादृशां सुपथवर्तनलोपकानां,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥ ३४ ॥
अध्यात्मवेषमिषसंयमिनामभाजां,
बालादिवृद्धवयसां खलु वंचकानाम् ।
माध्वीकतुल्यवचसां कुविकल्पजालं,
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥ ३५ ॥
वामाविलासवरभोगभरेन्धनौघै-
र्वृद्धिं गतं भविनरोपितबोधिबीजम्,
कामानलं मुनिवरेश्वर ! चित्तजातं,
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ॥ ३६ ॥

मिथ्याप्रवादजलपूर्णतटाकमग्न—
मेकान्तपक्षधुतलक्षणलक्षिताक्षम् ।
दूरीकरोति मुनिपास्तमयं द्विजिह्वं
त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥ ३७ ॥

सूरीश ! सूरभव ! भूतभयंकरात्रं,
भव्यांगिनां निजकृतं सहसा जगत्याम् ।
उच्चण्डचण्डकरकान्तिकदम्बकेन,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशुभिदामुपैति ॥ ३८ ॥

साहित्यशर्कररसामृतपूरितायाः,
सन्न्यायभंगनयनक्रसुदुस्तरायाः ।
पारं परं गतभयं हि सुरापगायाः,
त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥ ३९ ॥

आचार्य ! वर्यबहुशिष्यगणैर्वृतस्य,
जैनेन्द्रशासनविलोपिजनस्य चाग्रे ।
शास्त्रार्थमत्र भवदीयसुशिष्यवर्गाः,
त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति ॥ ४० ॥

सिद्धौपधिं समुपिलभ्य मुने ! भवन्तः,
कर्माग्नितापपरितापितदेहयष्टीम् ।
संत्यज्य मोक्षरमणीरमणत्वमाप्य,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥ ४१ ॥

सम्यक्त्वमाप्य शिवमार्गनिबन्ध नं भो,
लोकेशलोकसमभावविभूषितांग !

शिष्याः प्रकाशमित पूर्णकलाकमिन्दोः

सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥ ४२ ॥

संपूर्णरोगभयभूतपिशाचबाधा,

देहं विभो न परमार्दति सा कदाचित् ।

एकाग्रमर्थपरिचिन्तनया त्रिसंध्यं,

यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥ ४३ ॥

मुक्तालतां तव नुतिं सुगुणां सुवर्णां,

नित्यं प्रसादसहितां रहितां कलङ्कैः

कण्ठे विचक्षणजनः किल यः करोति

तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥ ४४ ॥

—मुनि श्रीविचक्षणविजयजी ।

गजल ! (रेखता)

विजय वल्लभ सुरीवरका । जिने देखा तिने पाया ।
हृदय आनंद मनमोदन । आत्म अनुभवरस जाया ॥ वि० ॥
मधुर हैं वस्तुएँ जितनी । इकट्ठी संपसे मिलतीं ।
समय सम वाणी जो बोले । जगत उसका ही सब होले ॥ वि० ॥
शशी वसु निधी शशी वर्षे । मगसर सुदी पंचमी सोमे ।
ज्ञान—तप—संयमी शोभी, सुरि पद स्थापें जन क्षेमे ॥ वि० ॥
मिलें लवपुरमें आकरके, विविध देशोंके जन सुंदर ।
अनुपम शुभ उत्सवसे, करे आचार्य गुण मंदिर ॥ वि० ॥

श्री न्यायाम्भो निधी सूरी, श्री विजयानंद बुध धुरी ।
उन्हीं के पट–गगन–चंदा, शान्त मूरत है सुखकंदा ॥ वि० ॥
प्रतिष्ठितसे प्रतिष्ठित हैं, शान्त तपी पुष्पदंत देवा ।
लोकोत्तर ठाठ हुआ भारी, चतुर्विध संघ करे सेवा ॥ वि० ॥
काम उत्तम हुए दोनों, बरस शत चारमें नाहीं ।
दशा लवपूरकी जागी, बसे जो सुखी इन माहीं ॥ वि० ॥
धन्य धन गाम पुर नगरी, जो इस विध धर्म को चाहें ।
तन मन धनसे शोभित, करत जो चाल शिव राहे ॥ वि० ॥
अती अनुमोदना मेरी, आतम लक्ष्मी अन्तर कुमुदे ।
प्रगट आतम हीरो चमके, वरे शिवलब्धि मन सुमुदे ॥ वि० ॥

कर्ता:—

श्री मद्विजयवल्लभ सूरि भक्त
मुनि श्री लब्धिविजयजी महाराज ।

परिशिष्ट (ख)

[इसमें वे तार दिये गये हैं जो आचार्य पद देनेके लिए आए थे ।]

Copy of telegrams received at Lahore before Acharyapad.

1. To Sohanvijayji, Jain House,
Bazaz Hatta, Lahore.

Never miss to recognise Vallabhvijayji as acharya before Sangh to be met on Parthishtha. Reconcile Sumtivijayji any how.

Kantivijayji, *Jamnagar.*

2. To President Lala Motilal,
C/o. Bhagat Niwas, Mitha Bazar
Jain Atmanand Sabha, Lahore.

Recd. you might have read wire of Sohanvijàyji. We are willing for Acharya Padvi to Vallabhvijay.

Parvartak Shree Kantivijayji, *Jamnagar.*

3. To Moti Lal, President,
Atmaram Jain Sabha,
Bhagat Nivas Saidmitha Street, Lahore.

Received wire. Parvartakji is informed by wire. He must have replied. Our wish same as Parvartakji and Punjab Sangha I glad this matter.

Hansvijayji, *Ahmedabad.*

4. To Sumtivijayji, Bazaz Hatta,
Jain House, Lahore

We all Munimandal request you to give Acharya padvi to Vallabhvijayji. You being head you must do this anyhow.

Munimandal, Ghat Koper,
Bombay.

5. To Sohanvijaiji, Jain House,
Bazaz Hatta, Lahore.

Give Acharya padvi to Vallabhvijayji tomorrow anyhow.

Lalitvijay, *Bombay.*

6. To

Motilal Mulji, Jain House,
Bazaz Hatta, Lahore.

Give acharya padvi to Vallabhvijayji any how to-morrow. reply wire.

Dahyabhai Kapurchand,
Javeri, Bombay.

2. Copy of above to Govindji Khushal.
3. Copy to Navinchandra Hemchand,
4. Copy to Kali Das Sevachand.
5. To Motilal Mulji, Jain House,
Bazaz Hatta, Lahore City.

You are leader in Sangha. Vallabhvijayji has much respect for you, you have conscientiously worked for him upto now; therefore give acharya padvi to Vallabhvijay to-morrow first December in your presence. Don't miss.

Kantivijayji and Hansvijayji have full consent time is scarce; therefore Devkaranbhai and other leaders can't reach. you are leading chief of Bombay Wire having finished the work.

Wilful Lalitvijayadi,
Munimandal, Bombay.

7. To Jain Swetamber Sangh, Lahore.

We recommend to give Maharaj Sree Vallabhvijayji acharya padvi certain on Magsar Sudi panchmi.

Jain Atmanand Sabha,
Bhavnagar.

परिशिष्ट (ग)

[इसमें वे तार हैं जो हमारे चरित्रनायक को अभिनंदनके मिले थे]

Copy of telegrams received by Shrimad Acharya ShriVallabh Vijayji at Lahore.

On their being appointed as Acharya on 31st December, 1924.

1. Hearty congratulations upon getting the honour of an Acharya. Maganlal Pitamber Dalsukh Gulabchand Sakarchand Nagji Nemchand Pitamber Malukchand Shivlal Chhaganlal etc.

Dalsukh Chhagan,
Khemchand, *Miyagam.*

2. Extremely pleased at your getting padvi of Acharya trusting shall work more for good of world than at present. May God Sasan Bless you with more glory and life.

Chhotalal Motichand,
Bombay.

3. All members highly glad reading news of Acharya padvi for Vallabhvijayji and Upadhyay for Sohanvijayji. Hearty congratulations.

Atmananda Sabha, *Bhavnagar.*

4. Hearty congratulation Jain Sangh Lahore upon conferring Acharyapad on Maharajsaheb.

Manager Jain Vanita Vishram,
Surat.

5. My hearty congratulations on your appointment as an Acharya distinction befitting your dignity.

Hazarimal, Johari, Delhiwala,
Rampur.

6. Extremely pleased for Acharyaship bestowed upon your lordship.

Shree Hansvijayji,
Jain Free Library, Baroda.

7. Baroda Jain Sabha heartily congratulate Maharaj Shri Vallabhvijayji being Acharya and Maharaj Shri Sohanvijayji being Upadhyay.

Amthalal Nanabhai Gandhi,
Baroda.

8. Hearty congratulation hearing Acharyapad given to Vallabhvijayji Maharaj.

Palanpur Jain Sangh,
Palanpur, Gujerat.

9. We agree with you for appointing Vallabhvijayji Maharaj as Acharya wishing bright success.

Acharya Ajitsagarji and Mahendrsagar,
Ahmedabad.

10. Right glad Punjab brothers installed Acharyaship pray accept humble Vandna. Joy no bounds. praying. starting for Gujerat.

Bhojilal Tarachand, *Ahmedabad.*

11. Congratulation we are glad hearing Vallabhvijayjee Maharaj appointed as Acharya thanking for your devotion to Gurudeva carry our Vandana.

Mulchand Ashram Vanaty,
Ahmedabad.

12. Hearty salutation for your Acharya padvi.
Prabhudas Ramchand Photographer,
Ahmedabad.

13. Hearty congratulations on Acharyapad bestowed.

Mausukhlal, Hony. Secretary,

Devkaran Mulji Saurashtra Veesa srimali Boarding,
Junagad.

14. Exceedingly glad for degree of Acharya conferred on you and wish ever lasting success.

Atmanand Jain Library, *Junagad.*

15. Kindly accept our hearty congratulations and ananda for degree of Acharya conferred on you.

Jain Sangh, *Junagad.*

16. You accepted Acharya padvi so we are hearty pleasure.

Ghatkopar Jain Sangh, *Bombay.*

17. All hearty glad for Acharya padvi to Vallabhvijayji. Heartily congratulation.

Dosabhai Abhechand,
Jain Sangh, *Bhavnagar.*

परिशिष्ट (व)

[हमारे चरित्रनायक के भक्त और समाजके कुछ धर्मभक्त प्रसिद्ध व्यक्तियोंके संक्षिप्त परिचय दिये गये हैं ।]

(१)

दानवीर सेठ मोतीलाल मूलजी जे. पी. ।

सेठ मोतीलाल मूलजी उन पुरुषोंमेंसे एक थे जो अपने ही भुजबलसे ऊँचे उठते हैं, उन्नत होते हैं, धनकमाते हैं सत्कार्यों-में उसे लगाते हैं और अपनी कीर्ति फैला लोगोंको अपने उपकारोंके तले दबा चले जाते हैं ।

इनका जन्म राधनपुर (गुजरात) में हुआ था । घरकी स्थिति साधारण थी, इसलिए कमाई करनेके इरादेसे बंबईमें चले आये और एक पेढ़ी पर पचास रुपये महीने पर नौकर हो गये । उस समय इनकी उम्र तीस बरसकी थी । धीरेधीरे वेतन बढ़ता गया और अपनी कार्यदक्षता, धर्म प्रेम परोपकार वृत्ति एवं सत्साहसके कारण ये सर्वजनप्रिय होते गये । कई बरसोंके बाद इन्होंने नौकरी छोड़ दी और दलाली करना शुरू किया । स्वतंत्र रोजगार भी करने लगे ।

तेतीस बरसकी आयुमें इनकी धर्मपत्नीका देहावसान हो गया । वे अपने पीछे दो पुत्र रत्न छोड़ गईं । सेठजीसे दूसरा ब्याह करनेका, लोगोंने आग्रह किया; मगर उन्होंने इन्कार किया और जीवन भरके लिए ब्रम्हचर्य व्रत धारण कर लिया और उसका निर्वाह किया । ऐसे पुरुष रत्न धन्य हैं !

इनके संयमके प्रभावसे लक्ष्मी इन पर प्रसन्न हुई और इनका व्यापार चमक उठा । देखते देखते ये लखपति हो गये ।

जब इनका धन कमानेका मार्ग प्रशस्त हो गया तब इन्होंने उस धनको सन्मार्गमें लगाना प्रारंभ किया ।



दानवीर सेठ मोतीलाल मूलजी संघवी. पृ. २१६ उ.

स. १९६१ में इन्होंने राधनपुर में, एक महान उद्यापन–उजमणा किया। हजारों लोग उस अवसर पर वहाँ आये। ३५०००) हजार रुपये उसमें खर्च हुए। उस समयसे उनके शहरके बाहिर बनवाये हुए बँगलेमें कार्तिकी पूर्णिमा और चैत्री पूर्णिमा पर सिद्धाचलजीका पट बाँधाजा ता है, लोग उसके भाव पूर्वक दर्शन कर साक्षात् सिद्धाचलजीकी यात्रा करने जितना संतोष मानते हैं और सेठजीकी प्रशंसा करते हैं।

स० १९६६ में पूज्यपाद आचार्य महाराज श्रीविजयवल्लभ-सूरिजी–जो उस समय सामान्य मुनि थे–के पास पालन पुरमें आकर बड़ी ही नम्रता पूर्वक विनती की कि मैं संघ निकालना चाहता हूँ। कृपा करके आप संघमें पधारिए। आचार्य श्रीके स्वीकार करनेपर इन्होंने छरी पालते हुए सिद्धाचलजीका संघ निकाला। इसका सविस्तर वर्णन पूर्वार्द्धमें किया जा चुका है। पाठक वहाँसे देख लें। इस मौकेपर मार्गमें अनेक स्थानोंके श्री संघोंने इन्हें मानपत्र दिये थे ; उस समय करीब ३५०००) हजार रुपये खर्च हुए थे।

पालीतानेमें सं० १९६७ में चौमासा किया और सं. १९६८ में '**नवाणुयात्रा**' की आर उस समय दान पुण्य आदिमें इन्होंने १५०००) रुपये खर्च किये।

सं० १९७४ में ये जब सम्मेताशिखरजीकी यात्रा करने गये तब इन्होंने १७०००) रु. जुदा जुदा धर्मालयोंमें दान दिये।

ये जैसे थे धर्मप्रेमी वैसे ही विद्याप्रेमी भी थे। आचार्य महाराज श्री विजयवल्लभ सूरिजीके उपदेशसे इन्होंने बीस हजार रुपये इस हेतुसे

निकाले कि जो कोई जैन विद्यार्थी मेट्रिक पास करके आगे अभ्यास करना चाहे उसे स्कॉलरशिप दी जाय। उसी समय वह रकम इन्होंने चार ट्रस्टियोंके आधीन कर दी थी। अनेक विद्यार्थी इस रकममेंसे स्कॉलरशिप पाकर ग्रेज्युएट हुए और सेठजीका गुण गानकर रहे हैं।

जब ये 'राधनपुर जैन मंडल' के सभापति थे तब एक बार मंडलकी सभामें हुनर—उद्योगके विपयकी चर्चा हुई। इन्होंने वड़ोदेके कलाभुवनमें तीन विद्यार्थियोंको तीन वर्षतक अध्ययन करनेके लिए भेजनेको कहा और उनका जो खर्चा हो वह इन्होंने देना स्वीकारा। तीन विद्यार्थी गये और उनके लिए १०८०) रु. का खर्चा हुआ।

राधनपुरमें इन्होंने एक जैन शाला खोली। उसका सारा खर्चा ये खुद ही देते थे और अब भी उनके पुत्र दे रहे हैं। सैकड़ों बालक बालिकाएँ इससे लाभ उठाते हैं और धर्म ज्ञान प्राप्तकर धर्म में रत होते हैं।

एक लाख रुपये, इन्होंने राधनपुरमें एक औपधालय स्थापित कर दान दिये। उसमें एक वैद्य और एक डॉक्टर रहता है। हजारों ही नहीं लाखों स्त्री पुरुषोंने इससे लाभ उठाया है और उठा रहे हैं। दस हजार रुपये लगाकर औषधालयके लिए इन्होंने एक उत्तम मकान भी बँधवा दिया था। औषधालयमें भेद भाव बगैर मनुष्य मात्रकी चिकित्सा होती है। अपने अन्त समयमें पचास हजार रुपये इस औषधालयको और भी दान दे गये हैं।

राधनपुरमें कई बरस पहले इन्होंने एक सदा व्रत खोला और उसमें बीस हजार रुपये दिये। उनके व्याजसे सदाव्रत चल रहा है।

इन्होंने बीस हजार रुपये अपने साधनहीन श्रावक भाइयोंको मदद देनेके लिए निकाले हैं। इनके व्याजसे प्रतिवर्ष अनेक श्रावकोंको सहायता दी जाती है।

करीब १५००) रु. सालानाका गुप्त दान देते थे। उसमें किसी तरहका भेद भाव नहीं रखते थे।

श्री शान्तिनाथजीके मंदिरमें संघ जिमानेके लिए इन्होंने सोलह हजार रुपये दिये थे।

महावीर जैन विद्यालय बंबई के ये पेटरन थे। करीब इक्कीस हजारकी रकम इन्होंने महावीर जैन विद्यालयके भेट की है।

आचार्य श्रीविजयवल्लभ सूरिजीके ये अनन्य भक्त थे। होते क्यों नहीं? बचपनहीमें दोनों कुछ समय साथ रहे। राधनपुरमें—स्वर्गीय हर्षविजयजी महाराजके चरणोंमें बैठकर दोनोंने एक साथ अध्ययन किया। इन्हींके सामने वल्लभविजयजी महाराजकी दीक्षा हुई। वल्लभ विजयजी महाराजको ये अत्यधिक पूज्य मानते थे। ऐसा कोई काम नहीं जिसके लिए महाराज साहिबने लिखा हो या कहा हो और इन्होंने उसे नहीं किया हो। सं० १९८१ में लाहोरमें जब आचार्य पदवी अर्पण की गई उस समय ये वहाँ मौजूद थे और इस खुशीमें इन्होंने वहाँ साधर्मी वात्सल्य किया था।

राधनपुरके नवाब साहिबसे इनका अच्छा मेल था। श्रीशंखेश्वरजीमें एक धर्मशालाकी आवश्यकता थी। वहाँ इन्होंने नवाब साहिबसे कहकर कुछ जमीन ली और उसमें एक उत्तम धर्मशाला तैयार करवाई। इसमें यद्यपि अहमदाबाद और बंबईके कुछ सेठोंकी भी सहायता ली गई थी; परन्तु विशेष रुपये तो इन्होंने ही लगाये थे।

सं० १९७७ में राधनपुर की पिंजरापोलके निभाव फंडमें तीस हजार रु० का दान दिया।

राधनपुर और संखेश्वरजीके बीचमें एक जैनमंदिर बना, उसमें पाँच हजार रुपये दान दिये।

सं० १९८० के दुष्कालमें राधनपुके अंदर गरीबोंको सस्ता अनाज और अनाथोंको मुफ्तमें अनाज देने के लिये पाँच हजार रुपये दिये। इसके अलावा राधनपुरके आसपासके गरीब श्रावकोंको पाँच हजार रुपये नकद गुप्त रूपसे खुद बाँटकर आये। सात हजार रुपये उसी साल राधनपुरकी पिंजरापोलको दिये।

राधनपुरमें वर्द्धमान तपका खाता प्रारंभ कराके उसमें पाँच हजार रुपये दान दिये।

जैन कौमने इनकी कदर करके इन्हें जैनश्वेतांबर कॉन्फरेंसका सुजानगढ़में जो जल्सा हुआ था उसके सभापति चुने थे। बंबईके श्री गोडीजी पार्श्वनाथके मंदिरके मुख्य और शान्तिनाथजीके भी ये ट्रस्टी थे। ऐसी कोई धार्मिक संस्था न थी जिसके साथ इनका संबंध न हो।

जैसा इनका समाजमें मान था वैसा ही सरकारमें भी था। सरकारने इन्हें जे. पी. की पदवीसे विभूषित किया था।

सं. १९८१ के चौमासेके दिनोंमें जब मैं पंजाबके सज्जनोंसे इनके मकानपर मिलने गया था। इन्होंने मुझे न पहचानते हुए भी अच्छा सत्कार किया था। इनके हृदयमें धनाढ्यता या पदवीका कोई अभिमान नहीं था। दूसरी बार जब इनसे मिला तब करीब दो घंटे तक

ये मेरे साथ धार्मिक और सामाजिक चर्चा करते रहे। अपने जीवनकी भी कई घटनाएँ इन्होंने सुनाई। मैंने जब इन्हें राजपूतानेके मंदिरोंकी अव्यवस्थाकी चर्चा की तब उन्होंने कहा थाः–" हमने–गोड़ी जीके ट्रस्टियोंने–इसका विचार किया है। कुछ कार्य भी हमने प्रारंभ कर दिया है। आदि। "

ये यावज्जीवन ब्रह्मचारी तो रहे ही थे साथ ही इन्होंने अनेक तपस्याएँ भी की थीं। इन्होंने आठ आठ दस दस दिनके व्रत किये थे। एक बार तो सोलह दिनके व्रत किये थे। सं० १९७१ में जब पं० जी महाराज श्रीललितविजयजी गणीका चौमासा बंबई गौडीजीके उपाश्रयमें था तब इन्होंने लगातार २८ दिनके आम्बिल किये थे। देवदर्शनके विना ये कभी अन्नोदक ग्रहण नहीं करते थे। प्रायः पूजा और सामायिक, प्रतिक्रमण भी सदा किया करते थे।

पंन्यासजी महाराज श्री ललितविजयजी पंन्यासजी महाराज श्री उमंगविजयजी आदि जब सं० १९८१ में बंबई आये थे तब वीले-पारलेमें प्रातःस्मरणीय आचार्य महाराज १००८ श्रीविजयानंद सूरिजीकी जयन्तीके ऊपर इन्होंने जो हार्दिक भावना व्यक्त की थी वह यहाँ दी जाती है।–

" वड़ोदेसे गुरु महाराजको (वल्लभविजयजी महाराजको) लाये। महावीर जैन विद्यालय स्थापन कराया। सूरतसे फिर गुरु महाराजने पं० ललितविजयीको भेजा और विद्यालयकी नींव पक्की हुई। अब फिर कृपालुने कृपा करके तेरह चौदह सौ माइल पर बैठे हुए भी वहाँसे पं० ललितविजवजी

आदिको और अहमदाबादसे पं० उमंगविजयजी आदिको हमारे उपकारार्थ भेजा। इन्होंने भी परिश्रम करके गुरुवचनको पाला। आजके समयमें भी ऐसे उपकारी गुरु महाराज विद्यमान हैं जो अपने शिष्योंको इतनी इतनी दूरसे भेज कर समाजपर उपकार करते हैं। धन्य है उन उपकारी गुरु महाराजको जो पंजाबमें बैठे हुए भी हमारे उद्धारका प्रयत्न कर रहे हैं। मेरा मन आज बड़ा प्रसन्न हुआ है। मैंने जो साढ़े बारह हजार रुपये विद्यालयको ब्याजू दे रक्खे हैं उन्हें आजके शुभ प्रसंगपर मैं विद्यालयके भेट करता हूँ और उसका ब्याज भी माफ करता हूँ।"

इस तरह धर्म और जातिके उपकारार्थ लगभग पाँच लाख रुपयेका दान दे उनकी भलाईके लिए अनेक प्रकारका परिश्रम कर सं० १९८१ के पोस वदी ४ के दिन। अपनी करीब ६९ वर्ष की आयुमें इन्होंने स्वर्गारोहण किया और अपने पीछे समाजकी सेवाके लिए दो पुत्र श्रीयुत मणिलालजी और श्रीयुत सकरचंदजीको छोड़ गये और छोड़ गये वे अपना अनुकरणीय परोपकारमय जीवन।

(२)

श्रीयुत लाला गंगारामजी।

लाला गंगारामजी शहर अंबालेके रहनेवाले थे। वे पहले स्थानकवासी थे। स्वर्गवासी १००८ श्री मद्विजयानंद सूरिजी (आत्मारामजी)



परमश्रद्धालु लाला गंगारामजी.

शहर अंबाला पंजाब. पृ. २२२ उ.

मनोरंजन प्रेस, बम्बई नं. ४

महाराज जब ढूँढक धर्म छोडकर शुद्ध जैन धर्मोपदेशक; शुद्ध जैन-धर्मके धारी हो गये तब उन प्रभाविक महापुरुषके उपदेशसे हजारों स्थानकवासी श्रावक भी शुद्ध जैन धर्मधारी यानी मंदिर मार्गी हो गये थे। उन श्रावकोंमें लाला गंगारामजी भी एक मुख्य थे।

धर्मप्रेम इन्हें बचपनहीसे था। शुद्ध धर्मकी प्राप्ति कर इनका आत्मा और भी अपने धर्मकी तरफ झुका और दुगने उत्साहके साथ वे अपना धर्म पालने लगे। वे प्रायःहमेशा सामायिक एवं प्रतिक्रमण किया करते थे। प्रभुके दर्शन किये बगैर तो वे कभी अन्नका एक दाना भी मुँहमें नहीं डालते थे। रात्रि भोजनका भी उनके त्याग था। उनके घरके भी—तीन तीन चार चार बरसके बच्चे तक —दर्शन किये बगैर मुँहमें अन्न नहीं डालते हैं।

एक बार उनके पोतेको बुखार हो आया। दिनभर वह कुछ न खा सका। रातके करीब दो बजे जब उसका बुखार उतरा तब उसे भूख मालूम हुई। उसने भोजन माँगा। खाना उसके सामने रक्खा गया तब बालक बोला,—" बाबा! (पिताके पिताको पंजाबमें बाबा कहते हैं) मैंने आज दर्शन नहीं किये हैं, मुझे पहले मंदिरजी ले चलो।" धर्मप्रेमी लालाजीने बालकको छातीसे लगाया और कहाः— " बेटा! अभी तो मंदिरजी बंद हैं।" बालक बोलाः— नहीं मुझे ले चलो।" लालाजी उसे मंदिरजी ले गये। ताला बंद था। बालक निराश हुआ।

जब वापिस घर आये तो उसकी माँने बालकको खानेके लिए कहा। बालक बोलाः—"मैं दर्शन किये बिना कुछ नहीं खाऊँगा"।

घंटेभर बाद उसने फिर कहाः—" बाबा ! अब चलो दर्वाजा खुल गया होगा ।" मगर उस बार भी वापिस लौटना पड़ा । तीसरी बार करीब साढ़े पाँच बजे बाद जब मंदिरजीके दर्वाजे खुले तब बालकने अपने बाबाके साथ जाकर दर्शन किये । उस समय उनको जो खुशी हुई वह बयान नहीं की जा सकती । बालकका धर्म पर इतना प्रेम होना उन्हींकी धर्मपरायणताका प्रभाव था ।

मंदिर बनवानेके काममें उन्हें बड़ी दिलचस्पी थी । सामाना, रोपड़ और अम्बालेके मंदिर प्रायः उन्हींकी देखरेखमें हुए थे । दुकानका कामकाज अपने लड़केके भरोसे छोड़कर इन्होंने उपर्युक्त मंदिर बनवानेमें अपना समय लगाया था । मुल्तानका मंदिर भी तैयार होते समय वे कई बार जाकर देख आये थे । मुल्तानकी प्रतिष्ठाके मौकेपर तो इन्होंने बहुत ज्यादा सहायता की थी । इस लिए कृतज्ञता दिखानेके लिए मुल्तानके श्रीसंघने एक स्वर्णपदक इन्हें भेटमें दिया था ।

अंबालेमें कोई उपाश्रय नहीं था । इन्होंने उपाश्रयके लिए अपना एक मकान दे दिया । अंबालेमें जब प्रतिष्ठा हुई तब इन्होंने चार दुकानें और एक तबेला मंदिरजीके भेट कर दिया । अंबालेके मंदिर जीका प्रबंध मुख्यतया सब इन्हींके हाथमें था ।

हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र कमेटीके ये सभापति थे । धार्मिक कार्योंमें ये जहाँ बुलाये जाते थे वहीं तत्काल ही पहुँच जाते थे ।

पंजाबसे सं० १९८१ में पंन्यासजी महाराज श्रीललितविजयजी जब बंबई आने लगे और जब उन्होंने अंबालेमें प्रवेश किया तब

लालाजी बीमारीमेंसे उठे थे, तो भी दो माइल तक ये नंगे पैर घग्घर नदी तक उनके सामने श्रीसंघके साथ गये थे। पंन्यासजी महाराजने कहाः—" लालाजी! आपकी तबीअत खराब है और आप नंगे पैर क्यों चले आ रहे हैं ? "

ये बोले:—" गुरुदयाल! तिर्यचगतिमें न जाने कितनी वार भटक आया ? उस समय पैरमें पहननेको क्या था ? गुरुदयालके साथ जितना समय निकले उतना ही शुभ है। आप हजारों माइल नंगे पैर चलते हैं। हम क्या इतनेमें मर जायँगे ? "

ये जैसे धर्मप्रेमी थे वैसे ही विद्याप्रेमी भी थे। अंबालेके आत्मानंद जैन विद्यालयमें इन्होंने एक खासी रकम दी थी। इतना ही नहीं अपनी वृद्धावस्थामें भी, विद्यालयके लिए चंदा जमा करनेके लिए अम्बालेसे एक डेप्युटेशन बंबई आया था उसके साथ ये आये थे। आत्मानंद जैन सभा अंबालेके जब तक ये जीवित रहे पेटरन रहे थे। सारे पंजाबका जैन संघ इनकी बातको मानता था और एक मुरब्बीकी तरह इनकी इज्जत करता था और करता है।

इनके घरमें कभी कंदमूल नहीं खाया जाता है। इनके पुत्र लाला बनारसीदासजीने तो कंदमूल चक्खे तक नहीं हैं। पंजाबकी प्यारी वस्तु आलू तक बनारसीदासजीने नहीं चक्खे।

अपने समाजमें जैसी इज्जत थी वैसी ही इज्जत इनकी अन्य समाजोंमें भी थी।

स्वर्गीय आत्मारामजी महाराजके ये अनन्य भक्त थे। उनके कथनको ये प्रभु आज्ञाकी तरह मानते थे। जब महाराज साहिबकी तबीअत

ठीक नहीं थी, लालाजीने उनसे पूछा थाः—" भगवन् आप हमें किसके भरोसे छोड़ जाते हैं ?" महाराज साहिबने फर्माया थाः—" मैं तुम्हें 'वल्लभ' के भरोसे छोड़ जाता हूँ।" तभीसे वे वल्लभविजयजी महाराजपर असीम श्रद्धा रखने लगे। आत्मारामजी महाराजके बाद विजयवल्लभसूरिजी महाराज पर उनको जितनी श्रद्धा रही उतनी और किसीपर न रही।

लालाजी जब सन् १९२४ में बंबई आये थे तब उनसे हमारी भेट हुई थी। बड़े ही मिलनसार, शान्त प्रकृति, सरल स्वभावी और निरभिमानी पुरुष थे। बातों ही बातोंमें उन्होंने कहा था,—" मेरे जीवनकी एक साध अबतक पूरी नहीं हुई। वह साध है वल्लभविजयजी महाराजको गुरुगद्दीपर स्थापित करना।"

मैंने उनसे कहा थाः—" लालाजी ! आप कोई पत्र क्यों नहीं निकलवाते ? गुरुदयालके नामका एक पत्र जरूर होना चाहिये।" उन्होंने कहा थाः—" आत्मानंद जैन सभावाले अगर प्रेस खरीद कर पत्र निकालनेको राजी हों तो एक हजार रुपये मैं देनेको तैयार हूँ।" न जाने क्यों आत्मानंद सभा अंबाला इस ओर ध्यान नहीं देती ?

जिस समय वल्लभविजयजी महाराजको आचार्य पदवी दे कर पंजाबने गुरुगद्दी पर स्थापित किया उस समय लालाजीको कितनी खुशी हुई होगी उसका अंदाजा लगाना हमारी शक्तिके बाहिर है।

उनका स्वर्गवास सं० १९८२ के असाढ़ वदी १४ के दिन लुधियानेमें हुआ। जब वे स्वर्गवासी हो चुके तब अंबालेसे उनके पुत्र लाला बनारसीदासजी और दूसरे प्रतिष्ठित सज्जन मोटरें लेकर लालाजीके शवको अंबाले लेजानेके लिए लुधियाने गये। लुधियानेवालोंने लालाजीको भेजनेसे



सद्गत सेठ हेमचंद अमरचंद. पृ.२२७ उ.

इन्कार किया और कहाः—" वे जैसे तुम्हारे पिता एवं मुरब्बी थे वैसे ही हमारे भी थे। हम भी उनके पुत्र समान हैं। हम उन्हें यहाँसे नहीं लेजाने देंगे।" देहान्त होजानेके बाद तार मिलनेपर होशियार पुर, रोपड, सामाना, अमृतसर, अंबाला और लाहौरके प्रतिष्ठित सज्जन एवं संघके मुखिया भी स्मशानयात्राके पहले लुधियाने, उनका सत्कार करने पहुँच गये थे। सभीने अपने अपने शहरके संघकी तरफसे मृत देह पर दुशाले ओढाये थे। करीब ७० बरसतक चोलेमें रहकर उनका जीवनहंस सदाके लिए उड़ गया। पंजाबके श्रीसंघने गत आत्माके वियोगमें आँसू बहाते हुए चोलेकी दाह-क्रिया की। संसारमें उसीका जीवन सफल है जिसके आने और जिसकी हस्तीसे दुनियाको फैज पहुँचे और जिसके चले जानेसे दुनिया आँसू बहावे।

लालाजी अपने अंत समयमें अपने पुत्रको आज्ञा दे गये कि वे २५ बरसतक ४००) चार सौ रुपये सालाना हस्तिनापुर मंदिर और अंबालेके मंदिर व स्कूलमें देते रहें।

उनके कुटुंबमें इस समय एक पुत्र लाला बनारसीदासजी उनकी पुत्र वधू और पौत्र विजयकुमार हैं। पौत्र गोद रक्खा हुआ है।

---

(३)

स्वर्गीय सेठ हेमचंद अमरचंद।

सज्जन पुरुष वे कहलाते हैं जो संसारमें आकर धर्महित, ज्ञाति-हित या देशहित कुछ न कुछ कर जाते हैं; जिनका जीवन अपने

और परायेकी भावनासे ऊपर होता है और जो लोगोंको यथासाध्य संतुष्ट किया करते हैं। सेठ हेमचंद्र भी ऐसे ही सज्जनोंमेंसे एक थे।

इनका मूल निवास माँगरोल था। इनके पितामह सेठ बंबईमें आये तभीसे इनका कुटुंब बंबईमें रहता है। इनका जन्म सं० १९३६ का भादवा वदी १० के दिन हुआ था। इनकी माताका नाम श्रीमती हेमकुँवर और इनके पिताका नाम सेठ अमरचंदजी था। ज्ञातिके दशा श्रीमाली थे। इनकी शिक्षा मेट्रिक तक हुई थी। इनका पहला ब्याह सं. १९५० के साल सोलह बरसकी आयुमें हुआ था। पत्नीका नाम सौ० आनंदबाई था। इनके चार सन्तान हुई थीं। दो लड़के और दो लड़कियाँ। लड़कोंका नाम है नरोत्तमदास और नवीनचंद्र लड़कियोंका नाम है बहिन मेनावती और बहिन वीणावती। नरोत्तमदासका देहान्त हो चुका है। अन्य धर्मके प्रभावसे मौजूद हैं।

सं. १९६६ में इनकी पहली पत्नी सौ. आनंदबाईका देहान्त हो गया; मगर इच्छा न होते हुए भी छः महीने बाद इन्हें दूसरा ब्याह करना पड़ा। इसके कारण यहाँ देना उचित जान पड़ता है।

१—जिस समय पहली पत्नीका देहान्त हुआ उस समय बालक सभी छोटे थे। उन्हें संभालनेवाला कोई नहीं था।

२—इनके अनुज सवचंद भाई उनका ब्याह हुआ उसके पाँच महीने बाद ही, अपनी बाल पत्नीको छोड़कर इस संसारसे चले गये थे, इस लिए विधवा बाई अकेली घबराती थी और कुटुंबका बोझ उठाना उन के लिए असंभवसा था।

२—इनके पिता सेठ अमरचंद्रजी, अपने छोटे लड़के सवचंदका ब्याह जैनविधिसे करना चाहते थे। उन्होंने जैन पंडितको बुला लिया था और जातिको जिमानेके लिए सब भोजन-मिठाई वगैरा बनवा चुके थे। ठीक मौकेपर जातिके पंचोंने कहलाया कि अगर तुम जैन-विधिसे ब्याह करोगे तो जाति तुम्हारे यहाँ जीमने नहीं आयगी। सेठ अमरचंद्रजीने जातिकी आज्ञाको विवश स्वीकार किया; परन्तु युवक हेमचंद्रजीका अन्तःकरण असंतुष्ट हो उठा। उनके अन्तरात्माने कहा,—"धर्मविहित कार्य करना मनुष्यका कर्त्तव्य है। पंचोंका उसमें दखल देना अन्याय है। अन्यायके आगे सिर न झुकाना ही मनुष्यता है।" यद्यपि उस समय वे कुछ न बोले, तथापि पंचोंके इस अन्यायको वे न भूले। दैवयोगसे प्राप्त उस समयका उन्होंने सदुपयोग कर जातिमें, जैनविवाहविधि चलानेका संकल्प कर लिया।

शहरमेंसे अनेक लड़कियोंके पिता अपनी कन्याएँ इन्हें देनेको तत्पर हुए; मगर वे जैनविधिसे ब्याह कर पंचोंकी नाराजगी न उठा सकनेसे चुप हो रहे। आखिर 'सरधार' गाँवमें—जो राजकोटके पास है—इनका ब्याह जैनविधिसे हुआ। पत्नीका नाम मंगला बेन था। उनसे दो पुत्र हुए। एकका नाम प्रवीणचंद्र है और दूसरेका अनिलकान्त।

जैनविधिसे ब्याह होनेके कारण माँगरोलके दसा श्रीमालियोंमें बड़ी हलचल मची। पंच इकट्ठे हुए और उन्होंने श्रीयुत हेमचंद्र और उनके कुटुंबियोंको जाति बाहिर कर दिया। इतना ही नहीं दशा श्रीमालियोंके मांगरोलके श्वेतांबर श्रीसंघने भी इनको संघ बाहिर कर दिया। अपराध

क्या था? यह कि इन्होंने श्वेतांबर जैनविधिके अनुसार व्याह किया था; धर्मके विरुद्ध जातिमें जो रूढि थी उसको इन्होंने छोड़ दिया था।

दसा श्रीमालियोंमें वैष्णव भी हैं, स्थानकवासी भी हैं और श्वेतांबर भी हैं। वैष्णवोंका कार्य उचित कहा जा सकता है; क्योंकि उन्होंने अपने धर्मके विरुद्ध कार्य करनेवालेको जातिबाहिर किया था; स्थानकवासियोंकी कृति भी क्षम्य हो सकती है; क्यों कि उन्हें दोनोंमेंसे एक भी विधिके साथ कोई संबंध नहीं था; परन्तु अफसोस तो उन लोगोंकी कृति पर है कि, जिन्होंने श्वेतांबर होते हुए भी श्वेतांबर धर्मके अनुसार कार्य करनेवाले अपने भाईको, श्वेतांबर जैनविधिसे लग्न करनेका अपराध लगाकर संघ बाहिर कर दिया। ऐसे संघके मुखिया वास्तवमें श्वेतांबर धर्मके पालक हैं या नहीं इस बातका संदेह उत्पन्न हो जाता है। मुखियाओंकी यह कृति धर्मको लांछित करनेवाली और उनकी रूढि पूजाका एक अनोखा उदाहरण है। ऐसे ही मुखियोंके कारण, धर्म अवहेलित और अपमानित होता है और धर्मविहित किन्तु रूढिके विरुद्ध कार्य करनेवालोंको संघ बाहिर करनेकी सजा देनेवाले, रूढिभक्त संघके नेताओंके कारण श्वेतांबरसंघकी नींव डगमगा उठी है और इसकी जनसंख्या बड़े वेगसे कम होती जा रही है। अस्तु।

पाठक! संघबाहिर और जातिच्युत होनेका आघात जबर्दस्त होता है। इसको वही समझ सकता है जिसको कभी इसका अनुभव हुआ है। धननाशका, और मनुष्यके मरणका आघात सहना कठिन है; मगर इस आघातको अकेले खड़े हो कर सहना विरले ही वीर पुरुषोंका काम है। सेठ हेमचंद्र ऐसे ही वीर पुरुषोंमेंसे एक थे।

कुछ कमजोर दिलके हितु इनके पास आये और कहने लगे,— "कुछ दंड देकर जातिको खुश कर लो।" ये हँसे और बोले:—" धर्म पालनेमें बाधा डालनेवाली जाति या संघके आगे सिर झुकाना मैं धर्म-च्युति और अपमान समझता हूँ। मुझे देखना है कि तुम लोगोंमें सच्चे धर्मात्मा कितने हैं और ढोंगी कितने हैं ? "

मांगरोलके पंचोंने और संघने बंबईके दसा श्रीमाली पंचों और श्वेतांबर संघको लिखा कि हमने श्रीयुत हेमचंद अमरचंदको जाति और संघसे बाहिर कर दिया है तुम भी कर देना। बंबईमें जाति-वालोंने भी मांगरोल जातिवालोंका अनुकरण किया; परन्तु संघने इन्कार कर दिया। इतना ही नही बंबईके श्वेतांबर संघने इस धर्मवीरका सत्कार किया।

कलकत्तावाले सेठ जेठाभाई जयचंद और बंबईवाले सेठ मोतीचंद देवचंद भी कुछ महीनोंके बाद आसोजमें मांगरोल खास इसी झगड़ेको मिटाने के हेतु आये हुए थे। उन्होंने संघके मुखियों एवं पंचोंको कहा कि,—" आप लोगोंने हेमचंद भाईको अपनेसे अलग करनेका कार्य बिलकुल ही अनुचित किया है।" मगर इन लोगोंकी बातोंपर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

आसोजमें आंबिलकी ओलियाँ आता हैं। सेठ हेमचंदजीके घरसे आंबिल करनेवालोंके लिए आठ दिन तक खानपानकी सुविधा कर दी जाती है। उपरोक्त दोनों सेठोंने संघनेताओंसे कहा कि—" आंबिल करनेवाले लोगोंके धर्म पालनेमें बाधा डालना अनुचित है। आपको बाधा हटाकर लोगोंको सरलतासे धर्म पालने देना चाहिए। अगर ऐसा नहीं होगा तो हम हेमचंद भाईके साथ रहेंगे।"

अपने नेतृत्वके अभिमानमें इनके कथनकी कोई परवाह न की गई। दोनोंने सेठ हेमचंदजीके यहाँ जाकर आंबिल किया। इसका परिणाम यह हुआ कि वे भी संघबाहिर कर दिये गये।

बड़े लोगोंका कथन है कि–' **यतो धर्मस्ततो जयः।** ' जहाँ धर्म है वहीं जय है। धीरे धीरे लोगोंके साहस बढ़े और सच्चे धर्मपर चलनेवाले हेमचंद भाईके साथ करीब डेढ सौ घर आ मिले। डेढ बरस तक मुकद्दमा चला। आखिरमें पंचों और संघके नेताओंने धर्म और धर्मवीरके आगे सिर झुकाया। आपसमें फैसला हुआ और हेमचंद भाईको वापिस जाति और संघमें मिला लिया। सच है जो '**सिर साँटे धर्म पालते हैं उन्हींकी धर्म रक्षा करता है।**' अन्याय रोकनेके लिए हेमचंद्र भाईका उदाहरण अनुकरणीय है।

हेमचंदभाई बारह व्रतधारी श्रावक बननेके इच्छुक थे। नौ व्रत तक वे पालने लग गये थे। उनके घरमें देरासर था और सदा सामायिक पूजन आदि किया करते थे। अपने घर में उन्होंने ऐसा नियम बना रक्खा था कि, सारा कुटुंब एक ही साथ सामायिक करे। तदनुसार छोटे बड़े सभी एक साथ बैठकर सामायिक किया करते थे। सामायिकमें जीवविचार, नवतत्त्व, कर्मग्रंथ आदि तात्विक ग्रंथोंहीका वाचन और मनन वे प्रायः किया करते थे और सारे कुटुंबको उनका रहस्य समझाया करते थे।

अपने अनुजकी विधवा–गंगास्वरूप–श्रीमती मणि बहिनके साथ वे अपनी छोटी बहिनकासा व्यवहार रखते थे। घरका सारा काम काज इन्हींकी सलाहसे करते थे। इन्हें नियमित रूपसे धार्मिक शिक्षा

दिया करते थे। दुकानसे घर आते ही वे पहले अपने सभी कुटुंबियों और नौकरोंकी प्रसन्नताके समाचार पूछते थे। अगर किसीके चहरे पर उदासी दिखाई देती या किसीका सिर दुखता सुनते तो पहले उसकी खबर लेते। घरमें जो औषध होती उसका उपयोग करते अन्यथा झटसे डॉक्टरको टेलिफोन कर देते। वे नौकरको भी अपने घरका ही आदमी समझते थे। उनकी रसोईमें जीमनेवाले क्या नौकर और क्या बाहिरके आदमी सभीके लिए एकसी रसोई होती थी। आम वगैरा कोई भी नई चीज खानेकी घरमें आती तो कुटुंबियोंकी तरह उनके नौकरोंको भी बराबरका हिस्सा मिलता था।

इनके पिता सेठ अमरचंदजी स्वर्गीय आत्मारामजी महाराजके संघाडे पर बहुत भक्ति रखते थे। इनके हृदयमें भी वह मौजूद थी। हमारे चरित्रनायक आचार्य श्रीविजयवल्लभसूरिजीके एक बार इन्होंने दर्शन किये थे। तभीसे इनके हृदयमें भक्तिभावका संचार हो गया था। जब बंबईमें आपका दूसरा चौमासा सं० १९७० में हुआ था, तब आप दादरमें इन्हीं सेठ हेमचंद अमरचंदके बंगलेमें ठहरे थे। सेठ आपके व्यवहार, उपदेश, निस्पृह भाव और साम्य दृष्टिसे मुग्ध हो गये। इन्होंने आजतक किन्हींको आंतरिक श्रद्धासे नहीं माना था; परन्तु उस समयसे हमारे चरित्रनायकको उन्होंने संपूर्ण श्रद्धासे माना और तबसे वे हमारे चरित्रनायककी आज्ञा पूरी तरहसे पालने लगे थे। वे कहा करते थे कि,—"अगर मुझे गुरु-महाराज हुक्म दें तो मैं जलती अग्निमें तक कूदने को तैयार हूँ।"

जब महावीर जैन विद्यालय स्थापन करनेका हमारे चरित्रनायक-ने उपदेश दिया और अनेक तरहकी बाधाओंका विचार किया

जाने लगा तब हेमचंद भाईने हमारे चरित्रनायकसे कहा थाः—" गुरुदेव ! आप केवल आज्ञा दीजिए और हमारी पीठपर रहिए । हम सब कठिनाइयोंको दूर हटा देंगे ।

वह कौनसा उक्दा है जो वा हो नहीं सकता ?
हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता ?

(वह कौनसा गूढ प्रश्न है जिसकी मीमांसा नहीं हो सकती है ? और वह कौनसा कार्य है जो मनुष्य हिम्मत करे तो हो नहीं सकता है ?) महावीर जैनविद्यालयके लिए इन्हीं हेमचंद भाईने दस हजार रुपयेकी रकम सबसे पहले भरी थी और ये कहा करते थे कि,—अगर जीवित रह गया तो अपने दूसरे जैन बंधुओंकी सहायतासे इसे एक आदर्श विद्यालय बना दूँगा । मगर दुर्दैवको यह बात स्वीकार न हुई उसने विद्यालयकी स्थापनाके एक बरस बाद ही इस सच्चे गुरुभक्त विद्याके सच्चे उपासक, धर्मके सच्चे पालक, कुटुंबके सच्चे प्रतिपालक सबको एकदृष्टिसे देखनेवाले समदृष्टा और मिथ्यात्वमय रूढियोंके ध्वंसक नरवीर को सं० १९७१ वैशाख वदी १२ के दिन विकाल कालके मुँहमें लेजाकर डाल दिया ।

इन्होंने जैसे जैनविवाह विधि समाजमें प्रचलित करनेका आचरणीय उपदेश दिया वैसे ही इन्होंने बालविवाहके बुरे रिवाजको समाजसे निकालनेका भी दृढ संकल्प कर लिया था । इन्होंने अपने पुत्रोंको पचीस बरसकी उम्रमें और पुत्रियोंको अठारह बरसकी उम्रमें ब्याहनेका निश्चय किया था । इनके लडके लडकियोंकी बडी आयु देख कर लोग इन्हें ताने दिया करते थे, रहस्यमें अनेक बातें कहा करते थे;

मगर ये थे कि सब तरहकी बातें सहकर भी अपने संकल्पसे नहीं हटे थे। जिस समय इनका देहान्त हुआ उस समय इनके बड़े लड़के नरोत्तमदासकी आयु १८ बरसकी और इनकी बड़ी कन्या श्रीमती मैनावती देवीकी उम्र सोलह बरसकी थी। इनके बाद यद्यपि मैनावती देवीका व्याह थोड़ेही अर्सेमें इनके कुटुंबियोंको करना पड़ा था; परन्तु इनके लड़के श्रीयुत नरोत्तमदासने साफ शब्दोंमें कह दिया था कि, मैं पिताजीकी इच्छानुसार जबतक पचीस बरसका न होऊँगा तबतक व्याह न करूँगा। दैवयोगसे यह वीर भी बाईस बरसकी अवस्थाहीमें इस संसारसे चल बसा।

उनकी द्वितीय पत्नी श्रीमती मंगला बेनका देहान्त भी सं० १९७६ में हो गया था। उन का स्वभाव बड़ा ही सुशील और स्नेही था। उनके हृदयमें कभी अपनेसे पहले पत्नीकी संतानके प्रति दुर्भाव उत्पन्न नहीं हुआ। वे सभीको अपने बालकोंके समान ही समझती थीं।

ये अपनी सन्तानको उच्च शिक्षा दिलानेके बड़े पक्षपाती थे। यद्यपि इन्हें मेट्रिक तक ही तालीम मिली थी; तथापि वे अपने सब लड़के लड़कियोंको ग्रेज्युएट बनानेकी इच्छा रखते थे। लड़के तो क्या उनकी पुत्रियाँ भी वे मरे उस समय—बड़ी मेट्रिकमें और छोटी श्रीमती वीणावती देवी इंग्लिश फिफ्थ स्टांडर्डमें अभ्यास करती थीं; मगर सेठके साथ ही उनके विचार भी चले गये।

उनके दूसरे लड़के श्रीयुत नवीनचंद्रजी इंग्लिश सिक्स्थ स्टांडर्ड तक ही पढ सके पीछे इन्हें अध्ययन छोड़ कर दुकानमें लगना पड़ा।

सेठ हेमचंद भाईके मातापिता तो पहले ही कालधर्मको प्राप्त हो गये थे। वे जाते समय उनके घरमें चार लड़के, दो लड़कियाँ, सेठानी और उनके अनुजकी सुशीला विधवा श्रीमती मणि बेन को छोड़ गये थे। कुटुंबका सारा बोझा मणि बेन पर पड़ा, क्योंकि ये ही सबमें बड़ी थीं मगर वाहरे देवी! इन्होंने अपने ज्येष्ठ बंधुके समान स्नेह करनेवाले जेठसे जो शिक्षा पाई थी उसे व्यर्थ न जाने दिया। मणि बेनने सबको अपनी स्नेहकी पाँखोंमें लिया और ममत्त्वके साथ जेठकी सन्तानको यथावत पाला पोसा। घर गृहस्थीका जो कार्य पहलेसे जैसे चला आ रहा था वैसे ही ये बराबर चलाती रहीं। किसी बालकको यथासाध्य यह अनुभव न होने दिया कि आज उनके सिरपर कोई नहीं है।

सेठजी पिताके परम भक्त थे। उन्हों ने अपने पिताकी आज्ञाका कभी उल्लंघन नहीं किया। उनका दस्तूर था कि वे जैसे नियमित रूपसे प्रभुके दर्शन किये विना अन्नजल नहीं लेते थे वैसे ही अपने पिता के दर्शन किये विना भी अन्नोदक नहीं लेते थे। पिताकी अनुपस्थितिमें वे अपने पिताके फोटोका दर्शन कर लिया करते थे।

सेठजीके सद्गुण इनके कुटुंबियोंको भी विरासतमें मिले हैं। सेठजीकी तरह इनका कुटुंब भी मिलनसार धनके मिथ्या अभिमानसे रहित और सादा मिजाज है। जो कोई इनके घर मिलने जाता है, ये लोग बड़े आनंदसे उससे मिलते हैं; प्रेमसे वार्तालाप करते हैं और यथोचित उसकी आवभगत करते हैं। इन पंक्तियोंका लेखक जब इनके बंगले पर गया तब इन लोगोंने इसके साथ बड़ी



दानवीर सेठ देवकरण मूळजी संघवी. पृ. २३७ द.

ही सज्जनताका व्यवहार किया। किसी तरहकी जान पहचानके बिना ऐसा सौहार्द दिखाना बड़े ही उच्च हृदयके मनुष्योंका कार्य है। साध्वी मणी बेन तो साक्षात सौजन्यकी मूर्ति ही मालूम होती हैं।

सेठ हेमचंद्रजी जैसे महावीर जैन विद्यालयसे स्नेह करते थे वैसे ही उनका कुटुंब भी करता है। और उसने विद्यालयको सोलह हजारकी रकम और दी है। इस तरह आजतक सेठ हेमचंद्र अमरचंदकी पेढीसे महावीर जैनविद्यालयको, छब्बीस हजारकी रकम मिली है। आशा है उनके पुत्ररत्न श्रीयुत नवीनचंद्र, प्रवीणचंद्र और अनिलकान्त भी अपने पिताके पदचिन्हों पर चलकर उनकी सत्कीर्तिको बढानेका प्रयत्न करेंगे।

---

(४)
दानवीर सेठ देवकरण मूलजी।

सेठ देवकरण मूलजी उन महान व्यक्तियोंमेंसे एक हैं, जो पाँच सात रुपये मासिककी नौकरीसे जीवन प्रारंभ करते है; धीरे धीरे आगे बढ़ते हैं, लक्षाधिपति बनते हैं, लक्ष्मीका अपनी सेविकाकी तरह उपयोग करते हैं, परोपकारमें खुले हाथों धन खर्चते हैं और इसीमें जीवनका आनंद मानते हैं।

इनका जन्म सं० १९२१ के पोस सुदी ७ के दिन मांगरोलमें हुआ था। ये ज्ञातिके वीसा श्रीमाली हैं। मांगरोलसे ये वनथली रहने गये थे और वनथलीसे धन कमानेकी तलाशमें बंबई आये और सं० १९३६ में इन्होंने ६) छः रु. मासिक वेतनपर एक कपड़ेकी दुकान पर नौकरी कर ली। इनकी होशियारीसे सेठ इन पर प्रसन्न रहते थे।

धीरे धीरे वेतन बढ़ता गया और सं० १९४४ में तो ये अपनी होशियारीके कारण करसनदास लखमीदासकी पेढीमें हिस्सेदार होग ये। फिर इन्होंने सं० १९५३ में देवकरण नारायणजीके नामसे अपनी अलग दुकान खोल ली, सं० १९५६ में देवकरण मूलजीके नामसे अपनी पेढी चलाई और लाखों रुपये कमाये।

धर्म और विद्यापर इनका प्रेम पहलेहीसे है। ये नियमित रूपसे सेवा पूजा किया करते हैं। यदि कभी पूजा नहीं कर सकते हैं तो भगवानके दर्शन किये विना तो ये कभी अन्न जल ग्रहण नहीं करते हैं। जिस उत्साह और होशियारीसे इन्होंने धन कमाया उसी उत्साह और होशियारीसे उसे खर्च भी किया। उन्होंने जो धन धर्मार्थ और विद्या प्रचारार्थ खर्च किया उसकी सूची हम यहाँ दे देते हैं

१२५०००)	जूनागढ देवकरण मूलजी वीसा श्रीमाली जैन बोर्डिंग।
२९०००)	श्रीमहावीर जैनविद्यालय बंबई।
४००००)	सम्मेत शिखरका संघ निकाला और उसमें हर्ष मुनिजीमहाराजको भेजे।
१०००००)	वणथलीमें मंदिर बनवाया और प्रतिष्ठा करवाई।
७००००)	मलाडमें मंदिर बनवाया।
३१०००)	जामनगरमें विश्रांतिगृह करवाया।
२००००)	सीहोरमें धर्मशाला बनवाई।
१५०००)	वनथलीमें धर्मशाला बनवाई।
५०००)	जूनागढ गिरनारजीर्णोद्धारमें।
८०००)	वणथली कन्याशालामें।
४४३०००)	

इनके अलावा सिद्ध क्षेत्र जैनबालाश्रमको एक अच्छी रकम दी। पालीतानेके जलप्रलयके समयमें खुदने एक बहुत बड़ी रकम दी और दूसरोंसे भी ३६०००) रुपये की मदद करवाई। गिरनारपर प्रतिष्ठा करते समय अच्छा खर्च किया। मलाड प्रतिष्ठा करने में भी बहुतसा खर्चा किया। सार्वजनिक दानसे जितनी जन संस्थाएँ चलती हैं उनमेंसे शायदही कोई ऐसी संस्था होगी जिसको इनसे मदद न मिली हो। बंबईमें जितने चंदे जैनियोंकी संस्थाओंके हुए उनमें एक भी चंदेकी फेहरिस्त ऐसी न मिलेगी जिसमें इनका नाम न हो। इस तरह परचूरण करीब आठ लाख रुपये दानमें दिये। इनके दानकी सारी रकम इकट्ठी की जाय तो वह लगभग बारह लाखकी होती है।

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि सं० १९३६ में जो व्यक्ति ६) रुपये मासिकमें नौकर हुए थे वे ही सं० १९८२ में लक्षाधिप ही नहीं लाखोंके दानी कैसे हो गये! मगर इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। कहा है,–' **धर्म करत संसार सुख** ' धर्मका प्रभाव ही ऐसा ही है। धर्ममें सेठ देवकरण भाइको विशेष रूपसे लगानेवाले, स्वर्गीय पूज्य मोहनलालजी महाराजके शिष्य मुनि श्रीहर्षविजयजी महाराज थे। कहा जाता है कि उनकी कृपासे ही ये पूर्ण धर्मात्मा भी बने और धनिक भी।

इनकी दानशीलतासे प्रसन्न होकर समाजने इनको दानवीर की पदवी दी और बंबईकी वीसा श्रीमाली कौमने इनको मानपत्र दिया। जब इनको मान मिला तब इन्होंने हमारे चरित्रनायक आचार्य महा-

राज १००८ श्री विजयवल्लभसूरिजीके पास एक पत्र भेजा वह पूर्वार्द्धमें दिया गया है। उससे मालूम होता है कि, इ मुनि श्री हर्षविजयजी महाराजके बाद हमारे चरित्रनायक पर श्रद्धा की है और इन्होंने जितना दान दिया है अथवा इनमें जि दानशीलता है वह सब हमारे चरित्रनायकके सदुपदेशका ही प्रभाव

ये जैसे धर्म प्रेमी हैं वैसे ही विद्या प्रेमी भी हैं। इनके दा सूची बताती है कि, विद्याके प्रचार में भी इन्होंने लाखों खर्चे हैं

ये जातीय कार्योंमें अच्छा भाग लेते हैं। श्री जैनश्वेतांबर क रंसके कार्यवाहक हैं, स्टेंडिंग कमेटीके सभासद हैं, कन्वेन्शन रिसे कमेटीके सभापति थे, श्री महावीर जैन विद्यालयकी कमेटीके प्रारंभ सभासद और खजानची हैं, मांगरोल जैन सभाके प्रमुख हैं, लाल जैन उपाश्रय और मंदिरके बहुत बरसोंसे ट्रस्टी हैं, श्री भाय मंदिरके रिसिवर हैं, श्री मोहनलालजी जैन सेण्ट्रल लायब्रेरीके और सेक्रेटरी हैं, जामनगरके विश्राम मंदिरकी व्यवस्थापक क मेम्बर और खजानची हैं, श्री सिद्ध क्षेत्र जैनबालाश्रमके मे हैं, श्री जैन एसोसिएशन ऑफ इण्डियाके उपसभापति हैं, बं जीवदयामंडलीके मेम्बर हैं श्री वीरतत्त्व प्रकाशक मंडलके खज हैं और बंबईमें जब दुष्काल मंडल तथा इन्फ्लुएंजा कमेटी हुई ये उनके मेम्बर बने और बड़े उत्साहसे उनमें काम किया।

रोजगार भी इनका अच्छा है। ये माधवजी मिलके सेलिंग और कपड़ेके बहुत बड़े व्यापारी हैं।